श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा प्रकाशन

भाग-६

तृतीयाचार्य श्री रायचंद के समय के साधु

मुनि नवरत्नमल

☐ प्रथम सस्करण . १९८३

☐ मूल्य . ~~पैंतीस रुपये~~

☐ प्रकाशक .

केवलचन्द नाहटा

साहित्य-मत्री : श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा

३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००१

☐ मुद्रक पकज प्रिन्टर्स द्वारा

राजीव प्रिन्टर्स, दिल्ली-५३

प्रस्तुति

तेरापंथ के तीसरे आचार्य राजचदजी हुए । उनका जन्म मेवाड़ मे 'वड़ी रावलिया' मे हुआ । वे गोत्र मे वम्ब (ओसवाल) थे । उनके पिता का नाम चतूजी और माता कुशालांजी था । उन्होने ११ वर्ष की वय मे स० १८५७ चैत्र शुक्ला १५ को अपनी माता के साथ आचार्य भिक्षु के हाथ से वडी रावलिया मे दीक्षा स्वीकार की । वे वड़े होनहार और प्रतिभा-सपन्न मुनि हुए । उनके दीक्षित होने के पश्चात् स्वामीजी के युग में (स० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ तक) तेरापथ मे २१ साधु-साध्वियो की दीक्षा हो गई । उन्हे लगभग अढाई साल स्वामीजी का सान्निध्य मिला । उस अल्पावधि मे उन्होने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली । उनकी बुद्धि, विनय, विवेक आदि गुणो को देखकर आचार्य भिक्षु ने कहा था कि मुनि रायचद आचार्य पद के लायक है :—

वुद्धि पुन्य गुण पेख नै, भीखू भाख्यो एम ।
पद लायक दीसै प्रकट, निमल निभावण नेम ॥

आचार्य भिक्षु के स्वर्ग-प्रयाण के पश्चात् मुनि रायचदजी ने आचार्यश्री भारीमालजी के नेतृत्व मे रहकर सिद्धान्तो का गहन ज्ञान किया एव व्याख्यानादिक कला मे कुशल वने । साथ-साथ लिपिकला का भी अच्छा विकास किया । आचार्यश्री भारीमालजी के सम्मुख प्रमुख रूप से व्याख्यानादिक कार्य करने लगे । सं० १८७७ वैशाख कृष्णा ६ गुरुवार को केलवा मे आचार्यश्री भारीमालजी ने मुनि रायचदजी को अपने उत्तराधिकारी के रूप मे मनोनीत किया । स० १८७८ माघ वदि ८ को राजनगर मे आचार्यश्री भारीमालजी का स्वर्गवास हुआ एव दूसरे दिन माघ वदि ६ को युवाचार्य रायचदजी आचार्य पद पर आसीन हुए । उस समय उनकी उम्र लगभग ३२ साल की थी ।

भगवान् महावीर के तीसरे उत्तराधिकारी जम्बू स्वामी की तरह वे आचार्य भिक्षु के तीसरे उत्तराधिकारी वने । उनका शासनकाल उत्तरोत्तर वृद्धिगत रहा । सघ का चतुर्मुखी विकास हुआ । थली प्रदेश मे तेरापथ के प्रचार-प्रसार का

शुभारभ उनके समय मे हुआ। सर्वप्रथम थली प्रदेश मे पधार कर उन्होंने अपना स० १८८७ का चातुर्मास बीदासर मे किया।

उन्होंने अपने तीस वर्षीय आचार्यकाल मे अनेक देशो मे परिभ्रमण कर जन-जन को अध्यात्म का उपदेश दिया एव तेरापथ को प्रगति के शिखर पर चढ़ाया। वे बडे भाग्यशाली आचार्य हुए। उनके पुण्य प्रभाव से 'पदे-पदे निधानानि, योजने रसकूपिका' उक्ति चरितार्थ होती रही अर्थात् साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका एव क्षेत्रादिक की अभूतपूर्व वृद्धि हुई[1]।

उनके शासनकाल मे ७७ साधु और १६८ साध्वियों की दीक्षा हुई। उनमे अनेक साधु-साध्विया त्यागी, विरागी, महान् तपस्वी एव ज्ञानी-ध्यानी हुए जिन्होने अपनी बहुमुखी साधना के द्वारा स्व-पर कल्याण करते हुए अपनी आत्मा को उजागर किया और भैक्षव-शासन की सुषमा को बढाया।

उनके सरस, रोचक और प्रेरणादायी जीवन-घटको को इस शासन-समुद्र भाग-६ मे प्रस्तुत किया गया है। पाठकगण क्रमबद्ध अध्ययन कर लाभान्वित होंगे तथा ऐतिहासिक विषय मे पर्याप्त जानकारी करेंगे[2]।

साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी के निर्देश से साध्वी सोमलताजी ने प्रूफ-संशोधन का कार्य बडी जागरूकता के साथ किया है। लाडनू निवासिनी कुमारी कनक नाहटा ने अधिकाश पृष्ठो की अवधारणा की है। इन सबके प्रति मैं प्रमोद भावना व्यक्त करता हू।

भिक्षु विहार (स्वास्थ्य-निकेतन)
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)
फाल्गुन शुक्ला २, २५ फरवरी १९८२

—मुनि नवरत्न

---

१. आचार्य श्री रायचदजी का जीवन-वृत्त प्रकाशित शासन-समुद्र भाग-१ (ख) पृ० २५७ से ३३८ मे पढ़ें।
२. साध्वियों के जीवन-वृत्त शासन-समुद्र भाग-७ मे पढ़ें।

प्रकाशकीय

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। किसी भी जाति या समाज को भलीभांति जानने-समझने के लिए उसके साहित्य का अवलोकन परम अपेक्षित है। जो समाज जितना ही उन्नत होगा, उसका साहित्य भी उतना ही समृद्ध होगा। तेरापथ का सवा दो सौ वर्षो का इतिहास काल की दृष्टि से भले ही छोटा हो किन्तु कार्य की दृष्टि से वहुत महत्वपूर्ण है। इस धर्म-सघ के त्यागी, तपस्वी एवं मनीषी साधु-साध्वियो ने जो कार्य किया है, वह सदैव स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा। अपने धर्म-सघ के अतीत एव वर्तमान पर जव हम नजर डालते है तो हमे गौरव की अनुभूति होती है।

परमाराध्य आचार्यश्री तुलसी का साहित्य के प्रति विशेष लगाव है। सघीय तथा अन्य कार्यों मे अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी आपने अनेक मौलिक ग्रन्थो का सृजन किया है। तेरापथ धर्म-सघ का इतिहास व्यवस्थित और सुसंपादित होकर जनता के सामने आए, इसके लिए आपने अपने विद्वान शिष्य मुनिश्री नवरत्नमलजी को प्रेरित किया। मुनिश्री ने वड़े परिश्रम एवं विद्वता के साथ इस कार्य को पूरा किया है। 'शासन-समुद्र' के एक से लेकर पांच भाग तक महासभा द्वारा प्रकाशित होकर पहले ही जनता के सामने आ चुके है। अव यह छठा भाग प्रस्तुत है।

इस अवसर पर अत्यन्त विनम्रता पूर्वक आचार्यप्रवर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं, जिनकी असीम अनुकपा से यह ग्रन्थ प्रकाशित करने का हमे अवसर मिला।

कलकत्ता
१ मई १९८३

केवलचन्द नाहटा
साहित्य-मंत्री,
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

अनुक्रम

शासन-समुद्र

तृतीयाचार्य श्री रायचन्दजी के समय के साधु

दोहा

युग में गणि ऋषिराय के, हुए सतंतर संत ।
भैक्षव गण-उद्यान में, आया नया वसंत ॥१॥

८८।३।१ मुनि श्री पुञ्जलालजी (उज्जैन)

(संयम पर्याय सं० १८८१-१९१३)

लय—क्या जाने किस वेष में बाबा……

श्री श्री रायचन्द गणपति के प्रथम शिष्य मतिमान रे।
पूजोजी स्वामी हो पाये लाये भाव प्रधान रे ॥ध्रुव॥

प्रांत मालवा की धरणी पर थी उज्जयिनी नगरी।
जन्म लिया वंगाणी कुल में ध्वजा धर्म की फहरी।
फूला है २ वैराग्य भाव से उनका हृदयोद्यान रे ॥१॥

मुनि स्वरूप के कर कमलों से ली है विधिवत् दीक्षा।
साल एक अस्सी की आई पाई जीवन-शिक्षा[1]।
संयम में २ रम नव्य कलावत् बढ़ते कला-निधान रे ॥२॥

विनय-विवेक-वृद्धि की बहुतर शासन-निष्ठ बनाये।
विद्याध्ययन मनन से करके प्रगति-शिखर चढ पाये।
पढ़ ली है २ आगम-बत्तीसी देकर गहरा ध्यान रे ॥३॥

थी सुन्दर व्याख्यान-प्रणाली मधुर-मधुरतर बोली।
कथा हेतु दृष्टांत युक्ति की पाई शक्ति अतोली।
श्रावक जन २ को बहुत थोकड़े सिखलाये सविधान[2] रे ॥४॥

दोहा

भीम व्रती के पास में, कर पाये सुखवास।
दिया उन्हें सहयोग भी, अंतिम वय में खास[3] ॥५॥

विचरे होकर अग्रणी, किया परम उपकार।
सोदर पूनम को किया, संयम हित तैयार[४] ॥६॥

लय—क्या जाने किस वेष में बाबा······

चोथभक्त आदिक तप क्रमशः लड़ी बीस दो दिन तक।
मास और तेतीस दिवस तक ऊर्ध्व चढ़े हैं बेशक।
सर्दी में २ बहु शीत सहा है धृति से सीना तान[५] रे ॥७॥

रहे साल बत्तीस साधना पथ पर आगे बढ़ते।
अनशन स्वीकृत कर आखिर में गये भाव से चढ़ते।
प्राप्त किया २ सुसमाधि मरण ले शरण चार बलवान[६] रे ॥८॥

सोरठा

रची गीतिका एक, जयाचार्य ने भाव युत।
मुनि गुण का उल्लेख, किया चयन कर मुख्यता[७] ॥९॥

१. मुनि श्री पुजलालजी मालव प्रान्त मे सुप्रसिद्ध उज्जयिनी नगरी के निवासी थे (ख्यात)। उनकी जाति ओसवाल और गोत्र वैगाणी था[1]।

मुनि स्वरूपचन्दजी ने स० १८८१ का चातुर्मास उज्जैन मे किया तव पुंजलालजी उनके द्वारा प्रतिवोध पाकर उन्ही के पास उसी चातुर्मास मे दीक्षित हुए। पारिवारिक जन ने वडे उल्लास से उनका दीक्षा महोत्सव मनाया[2]।

२. मुनि श्री साधु-क्रिया मे जागरूक बनकर विद्याभ्यास करने लगे। उन्होने ३२ सूत्रो का वाचन किया। उनकी व्याख्यान शैली सुदर थी। विविध कथा, हेतु, दृष्टान्तो से वे उसे अधिक सरस वना देते थे। वहुत व्यक्तियो को थोकडे सिखा कर तत्त्ववोध कराया। शासन एव शासनपति के प्रति गहरी निष्ठा थी। चतुर्विध सघ मे अच्छा सुयश प्राप्त किया[3]।

३. आचार्य श्री रायचन्दजी ने मुनि श्री भीमजी (६३) का स० १८९८ का चातुर्मास चूरू फरमाया। साथ मे मुनि श्री भागचदजी (४८), पुजलालजी (८८) और नदोजी (१२१) को दिया[4]।

मुनि श्री भीमजी क्रमश. विहार करते हुए 'विसाऊ' पधारे। वहा अकस्मात्

---

१. 'वैगाणी पुंजलाल रे'

(आर्यादर्शन ढ़ा० ५ सो० ५)

२. समत अठार इक्यासिये रे, सैहर 'उजीण' चौमास।
ऋषि पूजा नै चारित्र दियो रे, अधिक महोछव तास॥

(स्वरूप नवरसो ढ़ा० ६ गा०११)

वर्स इक्यास्ये सजम लीधो, स्वाम सरूप सुपासे।

(पुज मुनि गुण वर्णन ढ़ा० १ गा० १)

३. सुमति गुप्ति मे सावचेत वर, दिन-दिन कला प्रकासै।
पढ्यो भण्यो ने प्रबल विद्या गुण, वारूं सरस वखाणो।
विनयवंत सतगुर नो वारू, गिरवो ने गुणखांणो॥
सूत्र बत्तीस बांच्या संखरा, कथा हेतु बहु के' तो।
विविध रसे कर सरस वारता, हृद दिष्टतज दे तो।
थिर चित सेती अधिक थोकड़ा, बहुजन नैं सीखाया।
सासण ऊपर नीत निरमली, प्रगट सुजश जग पाया॥

(पूज० गु० वं० ढा० १ गा०१, २, ३, ५,)

४. भागचंद पुजलाल, वलि नदो आप्यो सुविसाल।
चूरू चौमासो भलावियो जी॥

(भीम विलास ढ़ा० ५ गा० ८)

उनके हैजा हो गया। बढती हुई वेदना को देखकर उन्होने मुनि पूजोजी से अनशन करवाने के लिए कहा। मुनि पूजोजी ने उन्हे सागारी अनशन करवाया। एक प्रहर के पश्चात् सं० १८९७ आषाढ कृष्णा ७ को दिन के पश्चिम याम में मुनि श्री का स्वर्गवास हो गया।

(भीम विलास ढा० ६ गा० ७ से १० के आधार से)

४. मुनि श्री स्वरूपचन्दजी द्वारा दीक्षित ५ साधु अग्रणी बने उनमे एक मुनि 'पूंजोजी थे'[1]।

वे कई वर्षों तक अग्रगण्य होकर विचरे और अच्छा उपकार किया। चातुर्मास स्थान उपलब्ध नही है।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० २०)

मुनि श्री के उपदेश से प्रभावित होकर उनके भाई मुनि पूनमचदजी (१०१) ने सं० १८८८ मे दीक्षा ग्रहण की[2]।

५. मुनि श्री बडे तपस्वी और आत्मार्थी हुए। उन्होने उपवास, बेले, तेले, चोले तो अनेक बार किये। पचोले से २२ तक लडी (क्रमबद्ध) की। ऊपर में—

$$\frac{३०}{१} \quad \frac{३२}{२} \quad \frac{३३}{१}$$ किये।

(ख्यात)

शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २१ मे बत्तीस के थोकड़े का उल्लेख भूल से छूट गया मालूम देता है।

उन्होने शीतकाल मे बहुत वर्षो तक शीत सहन किया[3]।

६. मुनि श्री ने अनशनपूर्वक सं०१९१३ मे स्वर्ग-गमन किया।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २१)

---

१. मुनि दीपोजी (८५), जीवोजी (८६), पूजोजी (८८), हिन्दूजी (९१), अनोपचदजी (११४)।

(मुनि स्वरूपचन्दजी की ख्यात)

२. पूनमचद सहोदर साचो, तास परसादे जाणी।
संजम लीधो कार्य सीधो, पूर्ण प्रीत पहिछांणी।

(पूंज मुनि० गु० व० ढ़ा० १ गा०६)

३. मासखमण तप कीधो मुनिवर, वले तप विविध प्रकारे।
सीतकाल में सी अति सहतो, आप तिरै पर तारै।

(पूंज० गु० व० ढ़ा० १ गा० ४)

गुण वर्णन गीतिका मे स्वर्गवास तिथि वैशाख कृष्णा १ है :—

उगणीसैं तेरे पूंजे ऋष, विद एकम वैसाखे।
कार्य सारयो जन्म सुधारयो, भलो भलो जन भाखै॥

(पूज० गु० व० ढ़ा० १ गा० ७)

आर्यादर्शन कृति मे सं० १९१३ में दिवगत साधु-साध्वियो में भी उनका नाम है :—

बैंगाणी पुंजलाल रे, अठारसयै इक्यासिये।
चरण उज्जैण विशाल रे, ए विहुं (शिवजी ७८) परभव पांगरया॥

(आर्यादर्शन ढ़ा० ५ सो० ४)

७. जयाचार्य ने मुनि श्री के गुण वर्णन की एक ढ़ाल बनाकर उनकी विशेषताओं का उल्लेख किया :—

सुगणा साधजी, वारु सत थयो पूंजो।
नगीनां संत जो, पूंजो गुणां तणो कूजो॥ इत्यादिक……॥

उनके हैजा हो गया। बढ़ती हुई वेदना को देखकर उन्होंने मुनि पूजोजी से अनशन करवाने के लिए कहा। मुनि पूंजोजी ने उन्हें सागारी अनशन करवाया। एक प्रहर के पश्चात् सं० १८९७ आषाढ़ कृष्णा ७ को दिन के पश्चिम याम में मुनि श्री का स्वर्गवास हो गया।

(भीम विलास ढा० ६ गा० ७ से १० के आधार से)

४. मुनि श्री स्वरूपचन्दजी द्वारा दीक्षित ५ साधु अग्रणी बने उनमें एक मुनि पूंजोजी थे[1]।

वे कई वर्षों तक अग्रगण्य होकर विचरे और अच्छा उपकार किया। चातुर्मास स्थान उपलब्ध नही है।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २०)

मुनि श्री के उपदेश से प्रभावित होकर उनके भाई मुनि पूनमचदजी (१०१) ने सं० १८८८ मे दीक्षा ग्रहण की[2]।

५. मुनि श्री बड़े तपस्वी और आत्मार्थी हुए। उन्होंने उपवास, वेले, तेले, चोले तो अनेक बार किये। पंचोले से २२ तक लड़ी (क्रमबद्ध) की। ऊपर मे—

$$\frac{३०}{१} \quad \frac{३२}{२} \quad \frac{३३}{१}$$ किये।

(ख्यात)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० २१ मे बत्तीस के थोकड़े का उल्लेख भूल से छूट गया मालूम देता है।

उन्होने शीतकाल मे बहुत वर्षों तक शीत सहन किया[3]।

६. मुनि श्री ने अनशनपूर्वक स०१९१३ मे स्वर्ग-गमन किया।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २१)

---

१. मुनि दीपोजी (८५), जीवोजी (८६), पूंजोजी (८८), हिन्दूजी (९१), अनोपचंदजी (११४)।

(मुनि स्वरूपचन्दजी की ख्यात)

२. पूनमचद सहोदर साचो, तास परसादे जाणी।
संजम लीधो कार्य सीधो, पूर्ण प्रीत पहिछांणी।

(पूज मुनि० गु० व० ढ़ा० १ गा०६)

३. मासखमण तप कीधो मुनिवर, वले तप विविध प्रकारे।
सीतकाल में सी अति सहतो, आप तिरै पर तारै।

(पूज० गु० व० ढ़ा० १ गा० ४)

गुण वर्णन गीतिका में स्वर्गवास तिथि वैशाख कृष्णा १ है :—

उगणीसैं तेरे पूंजे ऋष, विद एकम वैसाखे।
कार्य सारयो जन्म सुधारघो, भलो भलो जन भाखैं ॥
(पूज० गु० व० ढा० १ गा० ७)

आर्यादर्शन कृति मे सं० १९१३ मे दिवंगत साधु-साध्वियों में भी उनका नाम है :—

वेंगाणी पुंजलाल रे, अठारसयै इक्यासिये।
चरण उज्जैण विशाल रे, ए विहुं (शिवजी ७८) परभव पांगरचा ॥
(आर्यादर्शन ढा० ५ सो० ४)

७. जयाचार्य ने मुनि श्री के गुण वर्णन की एक ढाल वनाकर उनकी विशेषताओ का उल्लेख किया :—

सुगणा साधजी, वारु संत थयो पूंजो।
नगीनां संत जी, पूंजो गुणां तणो कूंजो ॥ इत्यादिक······॥

८६।३-२ मुनि श्री कोदरजी (बड़नगर)

(संयम पर्याय सं० १८८१-१८६६)

लय—वंदना लो…

तपस्वी कोदर को, साधुवाद सौ वार।
यशस्वी ऋषिवर को, वदन वार हजार।
चढ़कर तप के ऊर्ध्व गगन में, चांद उगाये चार।

देश मनोहर मालवा रे, पुर 'वड़नगर' प्रसिद्ध।
थी कोदर की मातृभूमिका, था परिवार समृद्ध ॥१॥

गोत्र विनायक(विनायकिया)आपका रे, ओसवंश अम्लान।
ताराचंद तात, जननी का-था 'मिरगां' अभिधान ॥२॥

व्यापारी पुर में बड़े रे, वढा चढ़ा व्यापार।
न्याय नीति युत व्यवहारों से, यश गाता संसार ॥३॥

शादी की तारुण्य में रे, भोग रहे सुख भोग।
खिला विरति का अभिनव उपवन, मिला श्रमण-संयोग ॥४॥

साल उनहत्तर में सही रे, पाया ज्ञान प्रकाश।
कर विचारणा सुगुरु-धारणा, ली वैणी मुनि पास ॥५॥

किया अठंतर साल में रे, ब्रह्मचर्य-स्वीकार।
पौने चार वर्ष तक भरसक, लाते गये निखार ॥६॥

संवत् अस्सी एक में रे, दीक्षा हित तैयार।
मुनि स्वरूप के सदुपदेश से, दृढतम किया विचार ॥७॥

कृष्ण द्वितीया ज्येष्ठ की रे, प्रिया स्वजन धन छोड़।
कंटालिया ग्राम में संयम, ग्रहण किया कर जोड़[१] ॥८॥

नीति निपुण विनयी नयी रे, सेवाभावी संत।
खिले विराग त्याग सुषमा से, ज्यों ऋतुराज वसंत ॥९॥

तरुण तपोधन अग्रणी रे, हुए काकड़ाभूत।
सतयुग की कलयुग में अद्भुत, दिखा गये करतूत ॥१०॥

वज्रऋषभनाराच-सा रे, सुगठित तन मजबूत।
चौड़ी आंगुल द्व्यधिक पंसलिया, देती सबल सबूत ॥११॥

चौदह वर्षों तक चली रे, अविरल तप की धार।
सुनलो श्रुतिपट खोल सज्जनों! विवरण सह विस्तार ॥१२॥

कम से कम उपवास है रे, अधिकाधिक छह मास।
बनी तालिका लम्बी चौड़ी, गढ़ा नया इतिहास ॥१३॥

सहस्र तीन दिन तीन की रे, तप दिन संख्या सर्व।
रहा अनोखा त्याग तपोमय, उनका जीवन-पर्व ॥१४॥

आछ सलिल आगार से रे, कतिपय जल आगार।
कर पाये तप विविध क्रमों से, भर साहस अनपार ॥१५॥

एकान्तर चालू रहे रे, चत्त्वारिंशत् मास।
बेले-बेले सात साल फिर, तेले-तेले खास[२] ॥१६॥

शीत सहा हेमंत में रे, चार वर्ष धर हर्ष।
उष्ण समय में ताप सहा है, लगभग ग्यारह वर्ष[३] ॥१७॥

रुग्णावस्था में किया रे, औषध का परित्याग।
आत्मार्थी के दिल में दृढता, निष्ठा भाव अथाग[४] ॥१८॥

जोडा तप के संग में रे, सेवा का अध्याय।
बीकानेर प्रवास काल में, की है दुगुनी आय[५] ॥१९॥

कहलाये कासीदिये रे, कर-कर उग्र विहार।
पावस-आज्ञा लाये गुरु से, जय इंगित अनुसार॥२०॥

सोरठा

चले सात सौ कोश, एक वर्ष में जीत सह।
जय अनुगत निज घोष, रहता विहरण समय में॥२१॥

देख लिये बहु देश, दूर-दूर तक गमन कर।
शिरोधार्य आदेश, करते प्रतिपल सुगुरु का॥२२॥

लय—वंदना लो...

आगम चन्द्रप्रज्ञप्ति की रे, प्रति लाऊं गणनाथ।
जयपुर जाकर वापिस आऊं, अगर रखे जय साथ॥२३॥

दी अनुमति गुरुवर्य ने रे, लाये उसे तुरंत।
जाने आने में एकाकी, थे निर्भय निर्ग्रंथ॥२४॥

कुछ पावस मुनि संग में, रे प्रायः जय के संग।
शासन-शासनपति सेवा में, रहे सदा रसरंग॥२५॥

पंच नवति में जीत सह रे, चूरू किया प्रवेश।
चोट पैर में लगी आपके, रहना हुआ विशेष॥२६॥

लय—मंदिर में कांई...

आई २ है शक्ति निराली हाथ, तप में ही सारी जिन्दगी लगी।
पाई २ अनुरक्ति निराली साथ, आत्मा में ज्योति ज्ञान की जगी॥ ध्रुवः

आखिर में संलेखन तप का, खोल दिया है द्वार।
और पारणे में आयम्बिल, चलते विधि अनुसार॥२७॥

तेले चार किये फिर ग्यारह, साभिग्रह संपन्न।
द्रव्य लिये दो जल सह रोटी, बाजरा की निष्पन्न॥२८॥

अठम भक्त किया फिर चौदह दिन का तप स्वीकार।
किया अभिग्रह बडा साथ में, मुनि श्री ने धृतिधार॥२९॥

लय—गीतक छन्द…

सुहागिन हो बहन चूडा हाथ में सिर चूंदड़ी।
भाल में टीकी लगी हो भावना दिल में बड़ी।
बाजरा की रोटियां दे, पारणा मैं तब करूं।
अन्यथा दो दिवस तप में कदम फिर आगे धरूं ॥३०॥

लय—मंदिर में…

फली प्रतिज्ञा कठिन कठिन वह, किया पारणा बैठ।
सवा सेर की लगभग खाई, छह रोटी भर पेट ॥३१॥

बोले वे मुनियों ! है अब भी, दो रोटी की भूख।
किंतु 'मसूड़े' सूज रहे हैं, खाने में दुःख मूक ॥३२॥

तेला किया, तीसरे दिन तो बढ़ा विराग विशाल।
साथी मित्र रामसुख मुनि की, देख मृत्यु तत्काल ॥३३॥

करो बिछौना मेरा संतो ! संत रामसुख स्थान।
प्राप्त करूं अनशन-व्रत लेकर, पंडित मरण प्रधान ॥३४॥

सिताषाढ नवमी को प्रातः, किया पारणा शेष।
साढे पांच 'सोगरे' खाये, लाये भाव विशेष ॥३५॥

दोहा

उसी रोज मध्याह्न में, आकर जय के पास।
करते अनशन के लिए, विनति सनति सोल्लास ॥३६॥

लय—यह जगने की वेला…

गुरुवर ! मुझको अब अनशन करवाना चाहिए।
अमृत पिलाना चाहिए, हृदय फुलाना चाहिए ॥ ध्रुव
श्रेणी भावों की ऊंची, अनशन की दे दो कूंची।
शिवपुर-दरवाजा शीघ्र खुलाना चाहिए ॥३७॥

मेरी है बड़ी तमन्ना, स्मृति में वह आता धन्ना।
त्रिशला सुतवत् सहयोग दिलाना चाहिए ॥३८॥

शरणागत वन मैं आया, पद-स्पर्शन कर सुख पाया।
आगंतुक का कुछ मान रखाना चाहिए ॥३९॥

करवाओ अब संथारा, यावज्जीवन का प्यारा।
संयम मदिर पर कलश चढ़ाना चाहिए ॥४०॥

कोदर की सुनकर वाणी, बोले गुरु निर्मल ज्ञानी।
अवसर से अग्रिम चरण वढाना चाहिए ॥४१॥

अच्छी तनु शक्ति तुम्हारी, भोजन भी करते भारी।
कैसे अनशन यों कहो कराना चाहिए ॥४२॥

मुनि श्रावक मिल आलोचे, दिल में फिर पक्की सोचें।
मक्खन के पहले दूध जमाना चाहिए ॥४३॥

बोले तब तरुण तपस्वी, वाणी मधुरी ओजस्वी।
ऐसे कहने में सोलह आना चाहिए ॥४४॥

लय —संता रा खुला है बारणा····

अनशन की दे दो बधाइयां, अनुनय लो मेरा स्वीकार।
परिषद् में करो वेड़ा पार॥

चरणों में शीश धर वोले कर नम्रता,
सुनो महाभाग ! भैक्षव शासन के देवता।
अन्तर की मेरी पुकार ॥४५॥

व्रती गुलाबजी ने नगर उज्जैन में,
किया है पावस सात संतो सह चैन मे।
उनमे लघु पीथल अणगार ॥४६॥

नवापुरा में आये शहर से कर गोचरी,
जान के अशक्त तन को मन मे दृढता भरी।
मांगा है अनशन उदार ॥४७॥

दोहा

साधु व श्रावक पास में, किसकी ली न सलाह।
अनशन व्रत करवा दिया, खुद ही वने गवाह ॥४८॥

लय—सतां रा खुला है बारणा....

श्रमण उपासकों को कहा है बाद मे,
पीथल ने किया अनशन परम आल्हाद मे।
हुआ सुन अचरज अपार ॥४९॥

पन्द्रह दिनों से सिद्ध हुआ सब काम है,
चढ़ते रहे है उनके भाव अभिराम है।
मुख-मुख पर जय जयकार ॥५०॥

मुझे करवाएं वैसे आप प्रत्याख्यान अब,
औरों को पूछना क्या मुझ पर दे ध्यान अब।
करवाओ इच्छा साकार ॥५१॥

कृपा कराए वरना चरणों मे आपके,
बैठता हूं बालकवत् धरणा दे बाप के।
उठने का नहीं विचार ॥५२॥

नवीन छन्द

जय ने कहा कराया जैसे, अनशन गुलाब ने पीथल को।
वैसे तो न करा सकता मैं, कर परामर्श पूछू सबको।
समझाया इस तरह उन्हे पर, कोदर की वही भावना है।
बीते सात प्रहर के लगभग करते वे एक प्रार्थना है॥५३॥

लय—तूं तो आ जाए नींद...

धारा-धारा रे कोदर मुनि ने अनशन व्रत तिविहार।
सारा-सारा रे कोदर मुनि ने खीचा जीवन-सार ॥

दशमी शुक्लाषाढ़ की रे, व्याख्यानान्तर आप।
जय-पद में आ मांगते रे, दो अनशन मां बाप ॥५४॥

साधु-उपासक रोकते रे, कहते दुष्कर काम।
बोले—चिंता मत करो रे, महाबली धृति-धाम ॥५५॥

तीन मास छह मास भी रे, निकले सहज स्वभाव।
बात न जरा विचार की रे, सुदृढ़ मनोगत भाव ॥५६॥

अ-सि-आ को बद्धांजली रे, 'नमुत्थुणं' गुन तोन।
करते अनुनय एक ही रे, हो सम्मुख आसीन ॥५७॥

तेरस को करना सही रे, कहते जय गुरुदेव।
सुन मुख मुरझित हो गया रे, बोल रहे स्वयमेव ॥५८॥

आज्ञा है जिन-मार्ग में रे, प्रमुख धर्म की डोर।
बिना सुगुरु-आदेश के रे, तनिक न चलता जोर ॥५९॥

ऊर्ध्व भावना देख के रे, बोला जन-समुदाय।
संथारा करवाइए रे, प्रभुवर ! अब निरुपाय ॥६०॥

जय ने मुनि को पूछ के रे, तीन बार साह्वान।
करवाया प्रभु-साक्ष्य से रे, विधिवत् प्रत्याख्यान ॥६१॥

धन्य धन्य सब कह रहे रे, गाते गौरव गान।
धन्य तपस्वी त्याग को रे, धन्य विरति शुभ ध्यान ॥६२॥

मुख मडल छवि चमकती रे, जैसे ज्योतिश्चक्र।
बाते वहु वैराग्य की रे, करते आप अवक्र ॥६३

प्रश्न एक नर ने किया रे, पहले तो ध्वनि मंद।
शक्ति अधिक अव लग रही रे, सुन आवाज बुलंद ॥६४॥

त्याग करायेंगे नही रे, शक्ति अधिकतर देख।
धीमे स्वर में बोलता रे, इसीलिए सविवेक ॥६५॥

सुनकर मार्मिक भारती रे, हर्षित श्रावक सत।
धन्य-धन्य सब कह रहे रे, साहस देख अनत ॥६६॥

नर-नारी बहु आ रहे रे, तीनों समय सहर्ष।
झुक झुक वंदन कर रहे रे, चरणों से शिर स्पर्श ॥६७॥

पौरुष धर ऋषि दे रहे रे, हितकर मधु उपदेश।
शासन महिमा गा रहे रे, कर गुरु को अग्रेश ॥६८॥

लय—धर्म की जय......

भैक्षव शासन में, रखना दृढ़ विश्वास ।
ज्यों हो आत्म-विकास, भैक्षव है यह एक प्रकाश । ध्रुव

सुनो श्रावकों ! मेरी वाणी, गण में शंका रख अनजानी ।
न करो किंचित् खींचातानी, आस्था स्थिर आवास ।।६९।।

निन्दा करते है जो निन्दक, बात न उनकी सुनें निरर्थक ।
अल्प बुद्धि वे कहते अक बक, करते अपना ह्रास ।।७०।।

वर्षो से मैं रहकर गण में, पाल रहा संयम दृढ़ प्रण में ।
काम पड़े है बहु जीवन में, जानू गतिविधि खास ।।७१।।

अंदर की सब बातें जानू, स्थापरूप मैं दोष न मानूं ।
निर्दोषी इस गण को जानू, निर्मल ज्यों आकाश ।।७२।।

करना जय के तो मत स्थापन, जान रहे यों भोले सज्जन ।
(पर) मेरा तो मत से न प्रयोजन, (मै) लेता अन्तिम श्वास ।।७३।।

श्रावक जन सब हुए प्रफुल्लित, भक्तिभाव से हृदय उल्लसित ।
शिक्षा रस से नस-नस पुलकित, मुख ऊपर मृदु-हास ।।७४।।

लय—वंदना......

महाव्रतारोपन किया रे, मुनिवर ने निष्काम ।
क्षमायाचना सब जीवों से, की लेकर कुछ नाम ।।७५।।

की सम्यग् आलोचना रे, सुनने से आश्चर्य ।
डेढ़ पत्र लिखकर निज कर से, शक्ति दिखाई वर्य ।।७६।।

आगम के पद रस भरे रे, जो अध्यात्म-नजीर ।
तपस्वियों की सुन गुण गाथा, तन्मय हुए वजीर ।।७७।।

मासाधिक का जानते रे, लम्बा अनशन काल ।
पर लगने से दस्त घटा बल, सूखा तन सुविशाल ।।७८।।

भावों के संबंध में रे, पूछा तब तत्काल ।
कहते वर्धमान है श्रेणी, स्थिर दिल दृढ दीवाल ।।७९।।

दिवस सातवें कह रहे रे; सुने सभी यतिराज ।
सावधान सव रहना तन का, नही भरोसा आज ॥८०॥

सायं जल पीकर किया रे, स्वयं आपने त्याग ।
त्याग करें मुनियो ! जल पीकर, वोले धर अनुराग ॥८१॥

मोती मुनि जा पंचमी रे, आये है चुपचाप ।
ऊंचे स्वर से वोले ऋषिवर, पानी पीओ आप ॥८२॥

श्रावक लोगों को कहा रे, खडे हुए जो पास ।
प्रतिक्रमण सामायिक कर-कर, करो पाप का नाश ॥८३॥

प्रतिक्रमण खुद ने किया रे, वीता रजनी-याम ।
शक्ति घट रही क्रमशः होते, पुद्गल क्षीण तमाम ॥८४॥

शरणादिक का कर रहे रे, उच्चारण अणगार ।
शान्त-मना सुनते गुनते वे, महामंत्र नवकार ॥८५॥

जय ने आ पूछा उन्हें रे, क्या करते मतिमान ।
परमेष्ठी पंचक जपता हूं, वोले सह अवधान ॥८६॥

वांह गले में डाल के रे; कहते सोयें आप ।
कैसे सोऊं जवकि आपके, तन में कष्ट अमाप ॥८७॥

पुनः कहा सोयें प्रभो ! रे, मेरे क्या तकलीफ ।
तत्क्षण करवट वदली, करके-उत्तर में मुख-द्वीप ॥८८॥

इतने में गति श्वास की रे, विगड़ी वदला रंग ।
शरण चार आधार आपको, वोले जय सोमंग ॥८९॥

अल्प काल की है व्यथा रे, फिर तो सुख वहुमान ।
इतने में तो पलक मूंदते, निकले हैं दश प्राण ॥९०॥

पहुंचे ऊंचे स्वर्ग में रे, पाकर परम समाधि ।
शतक अठारह साल छिन्नुवे, सावन विद तिथि आदि ॥९१॥

सात दिवस का आ गया रे, अनशन व्रत सोत्साह ।
मनोनीत सब काम हो गया, फैली कीर्ति अथाह ॥९२॥

देह विसर्जन कर किया रे, संतो ने प्रभु-ध्यान।
सुवह द्वितीया को हो पाया, मरणोत्सव मडान ॥९३॥

वर्ष चतुर्दश मास दो रे, पाला चरण पवित्र !
वढ़े चढ़े व्यापारी घर मे, फिर तप वणिक् विचित्र ॥९४॥

जन्म सुधारा आपका रे, पाया सुयश अनन्य।
जिन-शासन का तेज वढ़ाया, वनकर मुनि मूर्धन्य ॥९५॥

भैक्षव गण आकाश में रे, आये वन नक्षत्र।
चमके है वासर रजनी में, ज्यों मणि-मडित छत्र[10] ॥९६॥

कोदर गुण-गरिमावली रे, गाई किंचित् मात्र।
जय ने रची गीतिकाएं वहु, जान योग्यता-पात्र ॥९७॥

विघ्नहरण की ढ़ाल में रे, मुनि का पंचम नाम।
मंत्राक्षरवत् जाप जपो सब, होंगे वांछित काम ॥९८॥

ख्यात आदि में मिल रहा रे, विवरण चुम्बक रूप।
जन-जन मुख पर गुंजित होता, कोदर नाम अनूप[11] ॥९९॥

१. मुनि श्री कोदरजी मालव प्रान्त मे 'वड़नगर' के निवासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से विनायक (विनायकिया) थे। उनके पिता का नाम ताराचन्दजी और माता का नाम मृगादेवी था[1]। शहर मे वे सुप्रसिद्ध व्यापारी थे[2]। लम्वा-चौड़ा व्यापार था। उसमे प्रामाणिकता रखने से उनकी अच्छी प्रख्याति थी। यथासमय उनकी शादी कर दी गई। सभी तरह की सुख-सामग्री प्राप्त थी। सानद अपने जीवन को व्यतीत कर रहे थे। परन्तु उन्हे तव तक सत्य धर्म की उपलब्धि नही हुई थी।

मुनि श्री वैणीरामजी सं० १८७० का चातुर्मास करने के लिए सर्वप्रथम मालव प्रान्त मे पधार रहे थे। उससे पूर्व वे सं० १८६९ के शेपकाल मे वड़नगर पधारे। उनके सपर्क से कोदरजी ने तत्त्व समझकर 'गुरुधारणा' स्वीकार की और तेरापंथ के अनुयायी वने[3]।

स० १८७८ मे मुनि श्री गुलाबजी (५३) का ७ साधुओ से उज्जैन के उपनगर 'नयापुरा' मे चातुर्मास था, ऐसा उल्लेख कोदर मुनि गुण वर्णन ढा० ४ गा० ३०, ३१ में मिलता है। उसी वर्ष साध्वी श्री अजवूजी (३०) का चातुर्मास उज्जैन शहर मे था, इसका उल्लेख छोगजी (१३८) के प्रश्नोत्तर विपयक पत्रों मे है। उन दोनो मे से किसी एक सिघाडे का वड़नगर पधारना हुआ तव कोदरजी ने पत्नी सहित आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया। फिर उत्तरोत्तर धर्म भावना को विकसित करते हुए श्रावक व्रत का पालन करने लगे[4]।

---

१. कोदर तप करड़ो कियो, ओसवस अवतार।
जाति विनायक जांणज्यो, मालव देश मझार॥
तात ताराचद दीपतो, मिरगा नामे मात।
सुत कोदर कीधो सखर, वारू तप विख्यात॥
(कोदर मुनि गुण वर्णन ढा० १ दो० १,२)

२. वड व्यापारी थो ससार मे।
(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० ७८)

३. गुणतरे तो गुरु किया, स्वामी वैणीरामजी पास।
वडनगरे वसतां थका, धारचो धर्म हुलास॥
(कोदर गु० व० ढा० १ दो० ३)

४. अठतरे शील आदरचो, पूणा च्यार वर्ष उनमान।
वारू व्रत वधारता, दिन-दिन चढ़ते वान॥
(कोदर० गु० व० ढा० १ दो० ४)

स० १८८१ मे मुनि श्री सरूपचन्दजी (६२) ने उज्जैन मे चातुर्मास किया[1]। उसके वाद वे बड़नगर पधारे तव उन्होंने कोदरजी को प्रतिवोध देकर दीक्षा के लिए तैयार किया तथा उनके अभिभावकों द्वारा लिखित दीक्षा का आज्ञापत्र (वैसाख शुक्ला १५ के पश्चात्) लेकर वहां से विहार किया। कोदरजी को भी उक्त अवधि तक दीक्षित होने का सकल्प करवा दिया[2]।

कोदरजी कटिवद्ध होकर वैशाख शुक्ला १५ को कंटालिया (मारवाड़) पहुचे। वहा उन्होने आचार्य श्री रायचदजी के दर्शन कर सयम प्रदान करने के लिए निवेदन किया। मुनि श्री सरूपचंदजी और जीतमलजी आदि भी उस समय गुरु-सेवा मे उपस्थित थे। आचार्यप्रवर ने स० १८८१ ज्येष्ठ कृष्णा २ के दिन कोदरजी को कटालिया में दीक्षा प्रदान की[3]।

इस प्रकार मुनि कोदरजी ने पत्नी एव धन, परिवार को छोडकर वड़े वैराग्य से सयम ग्रहण किया[4]।

स्वरूप नवरसा ढा० ६ गा० १२ तथा जय सुजश ढा० १० दोहा २ के अनुसार मुनि हिन्दूजी (९१) और धनजी (९२) की दीक्षा मुनि कोदरजी के

---

१. सवत् अठार इक्यासिये, सैहर उजीण चौमास।
(स्वरूप नवरसो ढा० ६ गा० ११)

२. कोदरजी नै दिक्षा भणी, त्यारी करी तिवार।
कागद आज्ञा रो ले करी, सरूप शशि गुणधार॥
वैशाख सुद पूनम लगे, जाणी जेज जिवार।
आठ ठाणे मालव थकी, विहार करी सुविचार॥
(जय सुजश ढा० १० दो० ३,४)
कोदर नै वधो कराय नै, वडनगर में आया।
(स्वरूप नवरसो ढा० ६ गा० १२)

३ जय सरुप आदि सेवा करै काई तिहां दीक्षा री दिल धार।
वैशाखी पूनम दिन आवियो काई, कोदरजी सुविचार।
जेठ वदि वीज कोदर भणी काई, दीक्षा दी ऋषिराय।
(जय सुजश ढा० १० गा० ३, ४)
सवत अठारै इक्यासिये, विद जेठ वीज तिथ सार।
पूज रायचद रै आगले, लीधो सजम भार॥
(कोदर० गु० व० ढा० १ दो० ५)

४. कोदर संजम आदरयो, छाड त्रिया धन सार।
(कोदर० गु० व० ढा० ४ दो० १)

पहले हो चुकी थी। किन्तु 'ख्यात', में मुनि कोदरजी का नाम पहले होने से लगता है कि उन दोनों की बड़ी दीक्षा बाद में हुई जिससे वे दोनों छोटे और मुनि कोदरजी दीक्षा क्रम में बड़े हो गये।

२. मुनि श्री कोदरजी बड़े त्यागी, विरागी, सेवाभावी और उत्कृष्ट श्रेणी के तपस्वी हुये। उनका शारीरिक संस्थान व सहनन सुदृढ और शक्तिशाली था। कहा जाता है कि उनकी पंसलियो की चौडाई अढाई आगुल की थी। सयम मे ओत:प्रोत होकर उन्होने १४ वर्ष २ महीने साधु-पर्याय का पालन किया। सं० १८९६ सावन वदि १ को वे दिवगत हुए। उनके १४ वर्षों की तपस्या का विवरण प्रत्येक वर्ष के क्रमानुसार जयाचार्य रचित कोदर मुनि गुण वर्णन ढाल एक मे है और वहा १५वे वर्ष की तपस्या के ४३ दिन (अनशन के ७ दिनों को छोडकर) का उल्लेख भी है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनके तपश्चर्या के वर्ष स० १८८१ जेठ वदि २ (उनकी दीक्षा तिथि) से आगामी वर्ष की जेठ वदि १ तक के गिने गये है अतः इसी क्रम से उनके प्रत्येक वर्ष का लेखा-जोखा यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) पहले वर्ष मे—(सं० १८८१ जेठ वदि २ से १८८२ जेठ वदि १ तक)

उपवास	२	३२	
३३	१	१	=सर्व ६७ दिन का तप किया।

स० १८८२ का चातुर्मास उन्होने मुनि श्री भीमजी (६३) के साथ मांडा गाव मे किया।

(जय सुजश ढा० १० गा० ५ के आधार से).

(२) दूसरे वर्ष में—(सं० १८८२ से १८८३)

उपवास	५	९४	
१५	१	१	=सर्व ११४ दिन का तप किया।

सं० १८८३ का चातुर्मास कहां तथा किसके साथ किया इसका उल्लेख नही मिलता।

(३) तीसरे वर्ष मे—(सं० १८८३-८४)

उपवास	२	३	४	५	६	१३	छहमासी	
१०	२	३	१	१	१	१	१	(१८१) दिन=सर्व

२३२ दिन का तप किया।

संवत् १८८४ का चातुर्मास आचार्य श्री ऋषिराय के साथ पेटलावद मे

किया। वहां उन्होंने छहमासी तप किया :—

षट मास कोदर तप ठायो, चढ़तो जस कलश चढ़ायो।

(ऋषिराय सुजश ढा० ६ गा० ४)

वलि कोदर तप कियो आकरो रे, षट्मासी आछ आगार।

(जय सुजश ढा० ११ गा० १३)

(४) चौथे वर्ष (स० १८८४-८५) मे—

उपवास/४३, २/७, ३/२, ७/१, ६०/१ = सर्व १३० दिन का तप किया।

सं० १८८५ के चातुर्मास मे वे कहां और किसके साथ थे, यह प्राप्त नही है।

इस वर्ष उन्होने आजीवन एकान्तर तप स्वीकार किया तथा विहार व बड़ी तपस्याओं के पारणे के अतिरिक्त एकान्तर तप के पारणे मे छहो विगय खाने का परित्याग किया :—

जावजीव एकंतर धारिया, पारणा में हो षट विगै रा पचखांण।
विगै लेणी विहार तप दिन जेतला, सघला तप दिन हो एक सौ तीस जांण॥

(कोदर मुनि गु० व० ढ़ा० १ गा० ५)

(५) पांचवे वर्ष (१८८५-८६) मे—

उपवास/११६, २/१६, ३/७, ४/१, ५/१, ८/१, ६/१, २२/१, २५/१ =

सर्व २५१ दिन का तप किया।

सं० १८८६ के चातुर्मास मे वे कहां और किसके साथ थे, यह प्राप्त नही है।

(६) छठे वर्ष (१८८६-८७) मे—

उपवास/१००, २/८, ५/१, १०१/१ = सर्व २२२ दिन का तप किया।

सं० १८८७ का चातुर्मास उन्होने मुनि श्री जीतमलजी के साथ चूरू में किया।

(७) सातवें वर्ष (१८८७-८८ मे)

उपवास/१२५, २/१२, ३/१, ३०/१ = सर्व १८२ दिन का तप किया।

स० १८८८ का चातुर्मास उन्होने मुनि श्री जीतमलजी के साथ बीकानेर मे किया। वहा पानी के आगार से उक्त तीन दिन का तप किया :—

तीस किया तीखे मन हो, उष्ण पाणी रे आगार।
शहर बीकानेर में जाणजो हो, वर्ष अठ्यासीये विचार ॥
(कोदर गु० ढा० ४ गा० ६)

(८) आठवें वर्ष (१८८८-८६) में—

वेले ३ २०
—, —, —=सर्व २४२ दिन का तप किया।
१०८ २ १

स० १८८६ का चातुर्मास उन्होंने मुनि श्री जीतमलजी के साथ किया। वहा चातुर्मास के पूर्व दिल्ली मे आजीवन बेले-बेले तप करने की प्रतिज्ञा की :—

अठ्यासीये मुनि आदरयो हो, दिल्ली शहर मझार।
जावजीव बेले २ पारणो हो, सफल किया अवतार ॥
(कोदर गु० ढा० ४ गा० ४)

(६) नौवें वर्ष (स० १८८६-६०) मे—

वेले ३ ४
—, —, —=सर्व २५७ दिन का तप किया।
१२५ १ १

सं १८६० के चातुर्मास मे वे मुनि श्री जीतमलजी के साथ नही थे। कहां और किसके साथ थे, यह उपलब्ध नही है।

(१०) दसवे वर्ष (सं० १८६०-६१) मे—

वेले ३ ४
—— —, —=सर्व २३६ दिन का तप किया।
११३ ३ १

सं० १८६१ के फलौदी चातुर्मास मे वे मुनि जीतमलजी के साथ थे।

(११) ग्यारहवे वर्ष (सं० १८६१-६२) में—

वेले ३ ४
——, —, —=सर्व २३७ दिन का तप किया।
११३ १ २

स० १८६२ के लाडनू चातुर्मास मे वे मुनि श्री जीतमलजी के साथ थे।

(१२) वारहवे वर्ष (सं० १८९२-९३ मे)—

वेले/१२६, ४/१ =सर्व २५६ दिन का तप किया।

स० १८९३ के बीकानेर चातुर्मास मे वे मुनि श्री जीतमलजी के साथ थे। इस वर्ष उन्होने वेले के पारणे मे भी छहों विगय खाने का त्याग कर दिया :—

विगै बेला रै पारणे हो, त्यागी त्राणूएं वर्ष विचार।

(को० गु० ढ़ा० ४ गा० १६)

(१३) तेरहवें वर्ष (सं० १८९३-९४ मे)—

वेले/११२, ४/२, ७/१ =सर्व २३९ दिन का तप किया।

सं० १८९४ के पाली चातुर्मास मे वे मुनि श्री जीतमलजी के साथ थे।

(१४) चौदहवें वर्ष (स० १८९४-९५ मे)—

वेले/३५, तेले/५२, ४/८, ५/१, १०/१, १२/१ =सर्व २८५ दिन का तप किया।

सं० १८९५ मे उन्होंने युवाचार्य श्री जीतमलजी के साथ लाडनू चातुर्मास किया। उस वर्ष उन्होने आजीवन तेले-तेले तप स्वीकार कर लिया। पारणे में वाजरा की रोटी और गर्म पानी, इन दो द्रव्यो के अतिरिक्त त्याग कर दिया :—

जावजीव तेले-तेले पारणों हो, मुनि धारचो ऊजम आंण।
उन्हो पाणी रोटी वाजरी तणी हो, द्वे द्रव्य उपरंत पचखांण॥

(कोदर मु० गु० व० ढ़ा० ४ गा० २०)

(१५) पन्द्रहवे वर्ष में—स० १८९५ जेठ वदि २ से आषाढ शुक्ला ९ तक ५३ दिनो मे क्रमश. इस प्रकार सलेखना तप किया :—

३/४ ११/१ ३/१ १४/१ ३/१। तप के कुल दिन ४३ हुए।

इस प्रकार १४ वर्ष पौने दो महीनो मे यानी दीक्षा के दिन—सं० १८८१ जेठ वदि २ से सं० १८९५ आपाढ़ शुक्ला ९ तक तप के कुल दिन २९९६ (२९५३+४३) होते है।

मे तेले तेले तप शुरू किया जो प्राय एक वर्ष तक चला :—

एकंतर चालीस मास रे आसरै हो, छठ-छठ आसरै वर्ष सात ।
अठम-अठम वर्ष एक आसरै हो, सूरवीर साख्यात ॥
(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० १९)

३. मुनि श्री ने चार वर्ष शीत ऋतु मे वहुत शीत सहन किया। रात्रि के समय पछेवड़ी भी नही ओढी। उष्णकाल मे लगभग ११ साल आतापना ली।[1]

४. स० १८८६ में उन्होने रुग्णावस्था के समय मे भी औपध लेने का जीवन-पर्यन्त परित्याग कर दिया[2]।

५ मुनि श्री जीतमलजी ने ६ साधुओ से स० १८९३ का चातुर्मास वीकानेर मे किया। मुनि कोदरजी उनके साथ ही थे। वहां वेले-वेले की तपस्या करते हुए भी अन्य साधुओ को आहार पानी लाकर देते थे[3]।

वहां मुनि श्री कोदरजी ने यह अभिग्रह भी कर लिया था कि यदि कोई साधु गोचरी चला जाए तो मैं पारणे के दिन छहो विगय नही खाऊंगा।

(सेठिया सग्रह)

मुनि श्री पहले दोनो हाथो मे पानी के वड़े-वड़े पात्र भरकर लाते और वाद मे भोजन के लिए गोचरी जाते। दोनो हाथों मे पानी लाते हुए देखकर वीकानेर के लोग उन्हे (पखालिया महाराज) कहने लगे। (श्रुतानुश्रुत)

६. मुनि श्री कुशल कासिद (सदेशवाहक) थे। गण-गणी के आवश्यक समाचार लाने पहुचाने मे वड़े चतुर थे।

---

१. च्यार सीयाला मे वहु सी खम्यो रे, रात्रि पछेवडी नो परिहार रे।
उन्हाला मे लेता वहु आतापना रे, आसरै जांणो वर्ष इग्यार रे॥
(कोदर गु० व० ढा० २ गा० २)

२. कारण पडिया ओपध करवा तणा, मुनि कीधा हो जावजीव पचखाण।
दिढ धर्मी दिढ आतमा, तपसी भारी हो गुण रत्ना री खाण ॥
(कोदर गु० व० ढ़ा० १ गा० ७)

३. वले कोदर तपसी तिहवार, छठ-छठ तप करतो इक धार।
करी गोचरी वहु सतो नें सुजाण, एकलो अशन जल देवै आण॥
इस्या व्यावचिया मुनि जय संग, ज्यांरै कर्म काटण रो अधिक उमंग।
(जय सुयश ढा० २२ गा० ३, ४)
वारु व्यावच सर्व साधा तणी, शहर वीकाणै हो चौमासो सुखकार।
(कोदर गु० व० ढा० १ गा० १६)

(१) सं० १८८७ के चूरू चातुर्मास के पश्चात् शेषकाल मे मुनि श्री जीतमलजी ने मुनि कोदरजी के साथ आचार्य श्री रायचदजी को एक पत्र लिखकर भेजा जिसमे लिखा था 'गुरु-दर्शन की प्रवल इच्छा होते हुए भी अभी मै नहीं आ सकूगा क्योकि वीकानेर स० १८८८ का चातुर्मास करने के लिए जाना अत्यावश्यक है।'

(आचार्यो द्वारा प्रदत्त पत्रो के आधार से)

मुनि कोदरजी उस पत्र को लेकर आचार्य श्री की सेवा मे जाते समय वीदासर होकर पधारे ऐसा प्रतीत होता है क्योकि वहां एक दीक्षा साध्वी श्री पन्नाजी (१२६) की उनके हाथ से वीदासर मे स० १८८७ की साल हुई ऐसा पन्नांजी की ख्यात मे लिखा है।

(२) सं० १८८८ के वीकानेर चातुर्मास मे हरियाणा निवासी मोमनचन्दजी और गुलहजारीजी अग्रवाल ने श्री जीतमलजी को दिल्ली पधारने की विनति की तव मुनि श्री की इच्छा तो हुई पर आचार्यश्री ऋपिराय की आज्ञा की अपेक्षा थी। आचार्यवर उस समय मेवाड़ में विराजते थे। मुनि श्री जीतमलजी ने चिंतन कर मुनि कोदरजी को दिल्ली चातुर्मास की आज्ञा के लिए ऋपिराय के पास भेजा—

तिहां मुमनचंद नें गुलहजारी, हरियाणा देश ना दोय।
जय दर्शन कर दिल्ली नी अर्जी, कीधी युक्ति विनय करी जोय॥
जद कोदरजी तपसी नें मेल्या, ऋपिराय समीपे सुजोय।
दिल्ली चौमासा री आज्ञा लेवा नें, देश मेवाड़ में अवलोय॥

(जय सुयश ढ़ा० १४ गा० ६, ७)

अकेले मुनि श्री कोदरजी ने वीकानेर से विहार किया। वे द्रुतगति से लम्वे-लम्वे विहार करते हुए मेवाड़ पहुचे। वहा ऋपिराय के दर्शन कर एवं दिल्ली चातुर्मास की आज्ञा लेकर वापस विसाऊ (चूरू के निकट) मे मुनि श्री जीतमलजी से मिल गये :—

पछै विहार करी नें विसाऊ आया, इतले कोदरजी अवलोय।
दिल्ली की तरफ नी आज्ञा लेई नें, आया जीत समीप सुजोय॥

(जय सुयश ढा० १४ गा० ९)

मुनि श्री की कार्य-क्षमता से प्रभावित होकर जयाचार्य ने एक जगह लिखा है:—

पर उपकारे आगलो हो, विनय थी वहु आह्लाद।
करलो (कराड़ो) कार्य उपना छतां, कोदर आवेला याद॥

(कोदर गु० व० ढ़ा० ४ गा० ८२)

७. स० १८८९ मे मुनि श्री जीतमलजी ने दिल्ली चातुर्मास कर आचार्य श्री ऋषिराय के दर्शन किये एव उनके साथ कच्छ, गुजरात की यात्रा की। फिर ५ साधुओ से स० १८९० का बालोतरा चातुर्मास किया। उस वर्ष लगभग सात सौ कोश की यात्रा हुई। मुनि श्री कोदरजी के भी साथ-साथ सात सौ कोश का विहार हो गया।

(जय सुयश ढा० १९ गा० १४ ढा० २० दो० १ के आधार से)

यात्रा के समय रास्ते मे मुनि श्री जीतमलजी धीमे चलने वाले साथ के ५ साधुओ को पीछे छोडकर एक मुनि कोदरजी को साथ लेकर विहार कर देते थे।[1]

इस प्रकार मुनि श्री ने जय मुनि के साथ अनेक देशो का स्पर्श कर लिया।[2]

८. स० १८९० के बालोतरा चातुर्मास के पश्चात् मुनि श्री जीतमलजी ने कांठा प्रदेश मे आचार्य श्री ऋषिराय के दर्शन किये। उस समय ऋषिराय ने फरमाया—'जयपुर मे मालीरामजी लूनिया के पास चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र की प्रति है। कोई साधु जाकर उसे ले आये तो लिखवा ले।' तब मुनि कोदरजी ने कहा—'मुझे छठे सत के रूप मे मुनि श्री जीतमलजी के साथ भेजे तो मैं लाने के लिए तैयार हू।' आचार्यप्रवर ने उन्हे तत्काल आज्ञा दी और वे एकाकी जयपुर जाकर चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र की प्रति ले आये।[3]

---

१. हिवैं मोती आदि पंच मुनिवर भणी, कह्यो थे तो धीरे-धीरे आइज्यो गुणी।
गुणी थे भलाइ धीरे आवो, हुतो आगल जावसू।
इक कोदरजी ने साथ लेई, गुरु सगे सुख पावसूं॥

(जय सुयश ढा० १९ गा० ६)

२. मरुधर मेवाड ढूंढार मे, थली माहे हो मुनि कर दिया थाट।
कछ मालव नें गुजरात मे, विहरता हो दिया कर्मां ने दाट॥

(कोदर गु० व० ढा० १ गा० ४१)

३. पछै विहार करी काठा री कोर आया, गणि दर्शन करि सुख पायो रे।
श्री ऋषिराय महाराज कह्यो तब, लूणिया मालीराम कनै ताह्यो रे॥
चदपन्नत्ती है जयपुर मे, कोई ल्यावो तो लेवा लिखायो रे॥
जद कोदर कह्यूं छठो जय पास, मेलो मुझे तो हू ल्यावू तिहां जायो रे।
गणपति तुरत दीधी तन आज्ञा, तपस्वी कोदर जयपुर कानी रे।
विहार कियो चित्त हर्ष लह्यो अति, मन चिंतित काम थयुं जानी रे।

(जय सुयश ढा० २० गा० ५ से ७)

९. मुनि कोदरजी ने कुछ चातुर्मास अन्य मुनियो के सिंघाडे मे तथा अधिकाश चातुर्मास मुनि श्री जीतमलजी के साथ में किये। वे स० १८९५ के उष्णकाल मे युवाचार्य श्री जीतमलजी के साथ चूरू पधारे। वहा उनके पैर मे चोट लगने के कारण युवाचार्य श्री को अधिक दिनों तक वहा ठहरना पड़ा[1]।

१०. चूरू मे मुनि श्री ने सलेखना तप चालू किया। क्रमशः तेला, ग्यारह दिन का तप तथा तेला किया। पारणे के दिन आयम्बिल चलता था ही। उसमे वे गर्म पानी और वाजरा की रोटी, दो ही द्रव्य लेते थे। फिर उन्होंने १४ दिन तप का संकल्प किया। साथ मे यह अभिग्रह किया कि पारणे के दिन भिक्षा देने वाली—'सुहागिन वहिन हो, उसके हाथ मे चूड़ा पहना हुआ हो, शरीर पर चूनडी (ओढनी विशेष) ओढी हुई हो तथा ललाट मे टीकी लगी हुई हो और वह अपने हाथ से रूखी वाजरा की रोटी दे तो पारणा करूगा, अन्यथा दो दिन तक तप का क्रम आगे चलेगा।' सयोगवश उसका वह अभिग्रह फल गया और उन्होने १४ दिन की तपस्या का पारणा किया। पारणे मे उन्होने एक वार पानी के साथ छह वाजरा की रोटियो (जिनका वजन सवा सेर लगभग था) खाई। तपस्वी मुनि ने साधुओ से कहा—'अभी दो रोटियो की भूख तो और है किन्तुमसूढ़ों में सूजन आ गया है अतः खाने मे वहुत तकलीफ होती है[2]।'

तत्पश्चात् मुनि श्री ने तेला किया। तेले के दिन आपाढ शुक्ला ८ को मुनि श्री रामसुखजी (१०५) अचानक आयुष्य पूर्ण कर गये[3]। उनके समाधि

---

१. कोदरजी रे पग रो कारण, पडियो जिण सू पेख।
रहिणो विशेप हुवो जिहा, तिण उष्णकाल में देख ॥
(जय सुयश ढा० २६ गा० १)

२. चवदै करी अभिग्रह कियो हो, चूडो चूंनडी टीकी निलाड।
तिण रा हाथ सू रोटी वाजरी तणी हो, न पूगां वे दिन अधिकार ॥
ते पिण अभिग्रह फलियो सही हो, आंविल कियो द्रव्य दोय।
एकटक पट सोगरा आसरै हो, सवा सेर आसरै जोय ॥
तपसी कहै साधा भणी हो, वे सोगरा नी भूख मोय।
पिण मुख मसूडा सूजे रह्या हो, तिण सू खाता दुःख वहु होय ॥
(कोदर गु० व० ढा० ४ गा० २१ से २३)

३. तपस्वी मुनि रामसुखजी मुनि कोदरजी से दीक्षा पर्याय मे छोटे थे। साथ-साथ तपस्या करने से एक दूसरे के मित्र थे। मुनि रामसुखजी ने वहां ४५ दिन की तपस्या का आपाढ शुक्ला ३ के दिन पारणा किया था। शक्ति क्षीण होने से पाच दिन वाद दिवगत हो गये।

मरण को देखकर मुनि कोदरजी ने अत्यत वैराग्य पूर्ण अनशन करने का निर्णय किया और सतों से कहा—'मेरा बिछौना मुनि श्री रामसुखजी की जगह पर करो[1]।'

आषाढ़ शुक्ला ६ को मुनि श्री ने साढे पांच बाजरा की रोटियां खाकर तेले का पारण किया। मध्याह्न मे वे युवाचार्य श्री जीतमलजी के पास गये और आजीवन अनशन करवाने के लिए हार्दिक अनुनय करने लगे। युवाचार्य श्री ने फरमाया—'तपस्वी! धैर्य रखो, अभी तुम्हारी शारीरिक शक्ति और खुराक अच्छी है, ऐसी स्थिति मे सथारा कैसे कराया जा सकता है।'

इस सदर्भ मे तपस्वी मुनि व युवाचार्य श्री के परस्पर जो भावभरा संवाद हुआ वह मूल पद्यो मे इस प्रकार है :—

तपस्वी—नवमी दिन दोपहरां आसरै हो, ऋषि जीत नै कहै कर जोड़।
जावजीव संथारो कराय दो हो, पूरो मुज मन रा कोड़॥

युवाचार्यश्री—ऋषि जीत कहै तपसी भणी हो, धीरप राखो ताय।
आहार अधिक शक्ति दीसै घणी हो, इम सथारो केम कराय॥
साध अने श्रावकां भणी हो, पूछी नैं कराइजै संथार।
ते पिण घणी विचार नै हो, ए अणसण दुक्करकार॥

तपस्वी—तपसी कहै कर जोड़नै हो, नगर उजैणी चौमास।
गुलावजी कियो सात संत सू हो, लघु पीथल त्यांरै पास॥
नवापुरा थी जाय नै हो, गोचरी शहर में कर पाछा आय।
डील वीखरियो जाण नै हो, पीथल मांग्यो संथारो ताय॥
साध श्रावक बैठा घणा हो, पिण किणही नै न पूछ्यो ताय।
विण पूछ्यां लघु पीथल भणी हो, दीयो संथारो कराय॥
अणसण कराय नै बोलिया हो, साध श्रावक सुणजो वाय।
पीथैजी अणसण कियो हो, सुणनै सहु अचरज थाय॥
पनरै दिन नो पीथल भणी हो, अणसण आयो सार।
जिन मार्ग पिण दीप्यो घणो हो, मालव देश मझार॥

---

१. अठम भक्त कियो ऊजलो हो, तीजा दिन रै माय।
रामसुख तणो मरण देखनै हो, आयो वैराग्य अथाय॥
म्हा पेहली रामसुख चल गयो हो, तपसी कहै साधा नै वाय।
रामसुखजी री जायगां हो, म्हारो करो बिछावणो जाय॥
(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० २४, २५)

ज्यू आप पिण मोनैं कराय दो हो, संथारो श्रीकार।
अदर भणी कांई पूछणो हो, इम अरज करै वारंवार॥

जो अणसण मोनैं करावो नहीं हो, तो हूं बैठो छू आप पास।
परिणांम नहीं उठणतणा हो, घणा दिन रो अणसण रो हुलास॥

युवाचार्यश्री—जीत कहै पीथल नैं करावियो हो, गुलाबजी संथार।
इम तो मोसूं नावैं करावणी हो, कीजैं सगलां री सल्हा विचार॥

इम विविधपणै समजावियो हो, तो पिण मन रा उवेहिज परिणांम।
इम बीना पोहर सात आसरै हो, वारंवार अणसण मांगै तांम॥

आषाढ शुक्ला १० के दिन का वार्ता प्रसंग :—

तपस्वी—आषाढ सुदि दशमी दिनै हो, वखांण दियो पछै ताय।
बहु नर नारयां सुणतां कहै हो, मोनैं अणसण दीजैं कराय॥
साध श्रावक वरजै घणा हो, कहै संथारो दुक्करकार।
लहलीन पणै तपसी कहै हो, कोई मत करो फिकर लिगार॥

तीन मास तथा षट् मास नो हो, जो अणसण आवै मोय।
तो पिण दिढ परिणांम माहरा हो, मांहरी चिंता करो मत कोय॥

नमोथुणं अरिहंत सिद्धां नैं करी हो, धर्माचार्य नैं तीजो धार।
कर जोड बैठा मुख आगले हो, वारंवार मांगै संथार॥

युवाचार्यश्री—ऋषि जीत कहै तेरस दिन हो, दीजो अणसण ठाय।

तपस्वी—इम सुण नैं तपसी बेदल थई हो, किण विधि बोलै वाय॥
जिन मार्ग मे काम आज्ञा तणो हो, विण आज्ञा जोर चालै नाय।

तपसी वैराजी हुओ घणो हो, इम गृहस्थ बोल्या वाय॥

साधु-श्रावक—साधु श्रावक इम बोलिया हो, एहवा दिढ़ यांरा परिणांम।
तो संथारो आप कराय दो हो, निसंक पणै अभिराम॥

(कोदर गु० ढा० ४ गा० २७ से ४५)

इस प्रकार सभी के द्वारा समर्थन करने पर युवाचार्य श्री ने फिर मुनि श्री कोदरजी को तीन वार पूछा और उनकी प्रवल भावना देखकर सं० १८९५ आषाढ़ शुक्ला १० रविवार को जन-समूह के बीच उन्हे आजीवन तिविहार अनशन करवा दिया :—

ऋषि जीत कोदर तपसी भणी हो, तीन वार पूछी नै खराय।
अरिहंत सिद्ध नी साखे करी हो, दिया तीनूं आहार पचखाय॥

संवत् अठारै पचाणूए हो, आसढ़ सुदि दशम रविवार।
वहु नर-नारी देखतां हो, कोदर कियो संथार॥
(कोदर गु० व० ढा० ४ गा० ४६, ४७)

अनशन करने के वाद तपस्वी का मुख मडल देदीप्यमान हो गया और वे संवेग रस मे लहलीन होकर वड़े उमग से वुलद शब्दो मे वातचीत करने लगे। उनकी ऐसी स्थिति देखकर किसी व्यक्ति ने आश्चर्य-चकित होकर तपस्वी से पूछा—'अनशन के पूर्व तो आप धीरे-धीरे बोलते थे, जिससे आपकी शारीरिक दुर्वलता महसूस हो रही थी और अव उदात्त स्वरों मे वोलते है जिससे आपकी शारीरिक शक्ति वहुत अच्छी प्रतीत हो रही है' :—

अणसण आदरियां पछै हो, मुख थयो हे डहडायमांन।
वहु वातां करै ओछव सूं हो, संवेग रस गलतान॥

किणही गृहस्थ कह्यो तपसी भणी हो, अणसण कियां पहिलां देख।
धीरे-धीरे वोलता हो, हिवै तो दीसै शक्ति विसेख॥
(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० ४९,५०)

तपस्वी ने वडे मार्मिक शव्दो मे उत्तर देते हुए कहा—'मेरे अनशन करना था, जिससे मैंने सोचा कि अधिक शक्ति जानने पर मुझे अनशन नही कराया जायेगा, इसलिए मन्द स्वरों मे धीरे-धीरे वोलता था।'

यह सुनकर सभी साधु और श्रावक हर्षित हुए और मुनि श्री के दृढतम भावो से प्रभावित होकर 'धन्य-धन्य' घोष का उच्चारण करने लगे :—

तपसी कहैं म्हे जाणियो हो, म्हारै अणसण करणो ताय।
वहु शक्ति जांण्यां न करावसी हो, तिण सू धीरे वोल्यो मन ल्याय॥
इम सुण नै सहु हरषिया हो, साध श्रावक तिणवार।
परिणाम दृढ़ जांण्या घणां हो, धिन-धिन करै नर-नार॥
(कोदर गु० व० ढा० ४ गा० ५१, ५२)

मुनि श्री के अनशन की सूचना हवा की तरह समूचे शहर मे फैल गई। तीनो समय (सुवह, मध्याह्न, साय) भाई वहनो के झुड के झुड तपस्वी मुनि के दर्शनार्थ उमड-उमड़ कर आने लगे। मुनि श्री उन्हे विविध धर्मोपदेश देते[1]।

---

१. तीनू टक आवै घणा हो, वहु नर नार्यां रा वृंद।
तपसी उपदेश दे आछी तरै, ते सुण-सुण पामै आणद॥
(कोदर० गु० व० ढा०४ गा० ५३)

उन्होने उस समय भिक्षुशासन एवं शासन के प्रति आस्थाशील रहने के लिए जो हृदयोद्गार व्यक्त किये वे मूल पद्यों मे इस प्रकार हैं :—

तपसी कहै लोकां भणी हो, सांभलजो मुझ वाय।
संका कंखा मत आंणजो हो, भिक्षु ना मारग मांय॥

निदंक एकल निंद्या करै हो, त्यांरी वात म मानजो कोय।
ए बोलै छै विना विचारिया हो, ए अल्प बुद्धि जीव जोय॥

म्हारै तो काम पड्यो घणो हो, संत सत्यां सू जोय।
परदेश थी जातां आवतां हो, भेला रहितां अवलोय॥

हूं माहिली बातां नो जाण छू हो, दिख्या लियां वहु वास।
थाप रूप दोष जाणू नही हो, इण विध वोलै विमास॥

जीतमलजी रै तो मत थापणो हो, भोला लोक जांणै ताम।
पिण म्हारै तो मत नही थापणो हो, म्हे तो संथारो कियो सारणकाम॥

जेतरूपजी वांठिया कनै हो, वले सूरतरामजी वैद पास।
वलि शिवजी रामजी कोठारी कनै हो, इण विध वोलै विमास॥

(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० ५४ से ५६)

युवाचार्य श्री ने तपस्वी मुनि को पच-महाव्रतो का पुनरारोपन करवाया। तपस्वी ने वड़े ध्यान से सुना और सभी के साथ सरल भावो मे क्षमायाचना की एव जीवनकाल मे यत्किंचित् त्रुटियो को डेढ पृष्ठ में लिखकर आलोयणा (आत्मालोचन) की। युवाचार्य श्री तथा साधुओ द्वारा आगम-पद्य और तपस्वी मुनियो की वैराग्य-वर्धक गीतिकाओ को सुनकर वे वज्र के समान मजबूत हो गये। महीना, सवा महीना के लगभग अनशन आने की संभावना थी परन्तु दस्तो की व्याधि होने से शरीर मे कृशता वढती गई। फिर भी भावों की श्रेणी उत्तरोत्तर वर्धमान रही। किसी के द्वारा पूछे जाने पर उन्होने कहा—'मेरे भाव वहुत दृढ़ हैं।'

क्रमश. अनशन का सातवां दिन आया। प्रभात के समय तपस्वी ने साधुओ से कहा – 'आज मेरे शरीर का भरोसा नही है इसलिए आप विशेष सावधान रहना।' संध्या के समय स्वय ने पानी पीकर परित्याग किया और साधुओं को भी पानी पीकर त्याग करने के लिए कहा। मोतीजी स्वामी शौच से निवृत्त हो थोड़ा दिन वाकी रहते हुए पहुचे। उन्हे देखकर तपस्वी ने ऊंचे स्वर में कहा—'मोतीजी स्वामी! पानी पी लीजिए।' निकटस्थ खड़े श्रावकों को सामायिक व पौषध करने के लिए कहा। फिर स्वयं ने प्रतिक्रमण किया। प्रतिक्रमण के पश्चात् साधु उनको चार शरण आदि सुना रहे थे। लगभग एक प्रहर

रात्रि बीती कि उनके पुद्‌गल क्षीण पड़ने लगे ।

(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० ६० से ७० के आधार से)

उस समय युवाचार्य श्री तपस्वी मुनि के पास पधारे और गुनगुनाहट की ध्वनि सुनकर पूछा—'तपस्वी ! क्या कर रहे हैं ?' उन्होंने कहा—'नमस्कार महामंत्र का स्मरण कर रहा हू ।' इस प्रकार वे पूर्णरूपेण सचेत थे । युवाचार्य श्री के गले मे बांह डालकर बोले—'आप शयन कीजिए ।' युवाचार्य श्री ने कहा—'तुम्हारे वेदना हो रही है तब मैं कैसे सोऊं ।' तपस्वी ने कहा—'मेरे असाता किस बात की है ? आप तो शयन कीजिए ।' इस प्रकार कहते हुए उन्होंने अपने आप करवट बदली और अपना मुख उत्तर दिशा में किया । इतने मे सांस की गति बढ़ने लगी तब युवाचार्य श्री उन्हे चार शरण आदि सुनाने लगे । देखते-देखते कुछ क्षणों मे उनके प्राण पखेरू उड़ गये । साधुओ ने शरीर का विसर्जन कर चार लोगस्स का ध्यान किया'[१] ।

(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० ६० से ७५ के आधार से)

इस प्रकार स० १८९६ सावन वदि १ शनिवार को एक पहर रात्रि बीतने के बाद चूरू में मुनि श्री ने पडित-मरण प्राप्त किया :—

समत अठारैसौ छिन्नूए हो, सावण विद एकम शनिवार ।
आसरै पोहर रात्रि गयां पछै हो, पौंहता परलोक मझार ।।

(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० ७६)

मुनि श्री कोदरजी को सात दिनों का अनशन आया । जिस भावना से उन्होंने संयमी जीवन स्वीकार किया था उसी भावना से अपने जीवन का कल्याण कर

---

१. गुण गुण शब्द सुणी जी पूछियो हो, कांइ करो छो एथ ।
तपसी कहै नवकार गुणूं अछूं हो, इण विध बोलै सचेत ।।
गल बांहि घाली कहै जीत नै हो, आप पोढ़ो सुखदाय ।
जीत कहै असाता थांहरै हो, हूं किम सूवूं जाय ।।
म्हारै असाता कांहरी हो, आप सूवो कहै दूजीवार ।
पसवाडो आफेइ फेर नै हो, कियो उत्तर मुख श्रीकार ।।
शीघ्र सांस जाणी जीत बोलियो हो, थांनै होयजो शरणा च्यार ।
कष्ट थोड़ी वेलां रो रह्यो अछै हो, सुख पामता दीसो उदार ।।
इम किंचित वेलां मझै हो, प्राण छूटा तिणवार ।
साधां शरीर वोसिराय नै, गुणिया लोगस च्यार ।।
(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० ७१ से ७५)

लिया[1]।

उनकी सयम-पर्याय १४ वर्ष दो महीनों की रही। गृहस्थावस्था मे वे बड़े व्यापारी थे और साधु बनने के बाद भी घोर तपस्वी रहे[2]।

चतुर्विध सघ तथा अन्यमती समाज मे भी उनकी गहरी छाप पडी और सभी धन्य-धन्य के तुमुल घोष से उनको भावभरी श्रद्धाजलि अर्पित करने लगे। जेठ वदि २ को मृत्यु-महोत्सव मनाते हुए जन-समूह ने उनके शरीर का दाह संस्कार किया[3]।

११. जयाचार्य रचित कोदर मुनि गुण वर्णन की ६ ढाले है जिनमे मुनि श्री की जीवन झाकी का मार्मिक विश्लेपण है। उन्होंने मुनि श्री की विशेपता एव प्रशस्ति के रूप मे अनेक जगह सुंदर-सुदर पद्य लिखे हैं। उनमे से कुछ एक पद्य यहा प्रस्तुत किये जा रहे है :

मोटा थे तो चतुर सुजांण, मीठी थारी अमृत वाण।
थे अवसर ना जी जांण, वारूं थांरा वचन प्रमाण ॥

प्यारा थे तो प्राण समांन, धरै थारो वहुजन ध्यान।
थे गुण-ग्राहक जाण, कठा लग करियै वखाण ॥
ऊंडी थारी दृष्ट अनूप, धोरी थे तो धर्म रथ जूप।
याद आवै जी थांरो रूप, लागै थांरी चित्त मांहि चूप ॥

(कोदर० गु० व० ढा० ३ गा० ४ से ६)

---

१. सात दिवस रो अनशन आवियो, चउदै भक्त हो पौहता परभव माह।
चढते परिणामे चित ऊजले, जन्म सुधारचो हो पाम्या हरप ओछाह ॥
(कोदर० गु० व० ढा० १ गा० ४२)

२. वडो व्यापारी थो ससार मे हो, पछै वड तपसी थयो सूर।
चवदै वर्ष दोय मास रो हो, चारित्र पाल्यो पडूर ॥
(कोदर० गु० व० ढा० ४ गा० ७८)

३. धिन-धिन साधु श्रावक कहै हो, अन्यमती पिण कहै धिन धिन्न।
जन्म सुधारचो आपणो हो, त्यारो अहोनिस कीजै भजन्न ॥
वीज नीहरण परभात रा हो, किया महोच्छव विविध प्रकार।
ते तो सावद्य काम ससार ना हो, तिण मे धर्म नही छै लिगार ॥
(कोदर गु० व० ढा० ४ गा० ७७, ७९)

तपसीजी चूरू सेहर मे कियो चानणो, तपसीजी धन-धन करै नर-नार।
तपसीजी रो भजन चिंतामणि सारखो, तपसीजी भव जल तरण आधार ॥
(श्रावक द्वारा रचित गु० व० ढा० १ गा० ७)

कोमल विनय गुणे घणो, दमतो इंद्रिय पंच।
रमतो श्री जिन वचन में, कोदर नाम सुसंच॥
धिन-धिन कोदर मुनिवरू॥

कोड मुनि तपसा तणो, दयावन्त दीपाय।
रत्न चितामण सारिखो, कोदर नाम सुहाय॥

कोस भंडार गुणां तणो, दश विध जती धर्म धार।
रसना रो रस त्यागियो, कोदर नाम श्रीकार[1]॥

उपगारी गुण आगलो, साहसवंत सधीर।
सुवनीतां सिर सेहरो, विगट तपसी वडवीर॥
(कोदर० गु० व० ढ़ा० ५ गा० १ से ४)

व्यावच्चियो जन वालहो, विनयवंत वैरागी।
तपस्या में तीखो घणो, रसना रस त्यागी॥

तू गुण नो ग्राही घणो, उदधि जेम अथागी।
याद आयां मन हूलसै, तूं धोरी शिव मागी॥
(कोदर० गु० व० ढ़ा० ६ गा० ३, ४)

याद आयां मन हूलसै, पूरण तुज मुंज प्रीत।
सांप्रत ही सुखदायको, आवै हरष अचींत रे॥
(कोदर० गु० व० ढ़ा० ६ गा० ४)

स १८९८ मे रचित सत-गुणमाला ढा० ४ गा० ३३ मे उनके विपय में लिखा है :—

कोदर कीधी करणी अति करूड़ के, ऋष रायचंद रै वारे थया जी।
षट्मासी तप छठ छठ अठम पडूर के, संथारो दिन सात नो जी॥

हीर गुण वर्णन ढा० १ गा० २४ मे उनको मुनि श्री हीरजी (७६) के मित्र रूप में संबोधित किया है :—

बड़ तपसी कोदर तणो हो, मुनि मित्र हीर हद पार।
दोनूं ऋण गुण आगला हो, मुनि कहितां न लहै पार॥

विघ्नहरण की ढाल में 'अ भी रा शि को' मत्राक्षर के रूप मे उनके नाम का स्मरण किया है—'को' अर्थात् कोदरजी।

---

१. इन तीन गाथाओ के प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरण के आद्याक्षर—**को द र** हैं जो कोदर नाम का संकेत करते है।

कोदर तप करडो कियो, षट्मासी लग धारी हो।
व्यावचियो मुनि वालहो, छठ-छठ अठम उदारी हो।
जावजीव जयकारी हो॥

शीत उष्ण बहु तप कियो, सुगुरु थकी इकतारी हो।
परम प्रीत पाली मुनि, जाझी कीरत ज्यांरी हो।
समरण सुख दातारी हो॥

विघ्न मिटै अरियण हटै, प्रगटै सुख भारी हो।
'दल-रूप-दोहग' दारिद्र दटै, नाम रटै नर-नारी हो।
एहवो भजन उदारी हो॥

(संतगुणमाला ढा० ८(विघ्नहरण की ढाल) गा० १३, १४, १५)

ख्यात तथा शासन-प्रभाकर ऋषिराय सत वर्णन ढ़ा० ६ गा० २२ से ३६ मे भी मुनि श्री से सबधित कुछ वर्णन मिलता है।

मुनि कोदरजी आदि ९ महान् तपस्वी मुनियों के नामाङ्कन का एक प्रचलित दोहा है जिसका मत्राक्षर तथा विशिष्ट आगम-पद की तरह स्मरण किया जाता है :—

कोदर तपसी रामसुख, पीथल मोती हीर।
भोप दीप सुख सामजी, भिक्खू सिष वड वीर॥

१. मुनि कोदरजी (८९)
२. ,, रामसुखजी (१०५)
३. ,, पीथलजी (५६)
४. ,, मोतीजी (९६)
५. ,, हीरजी (१२६)
६. ,, भोपजी (४९)
७. ,, दीपजी (८६)
८. ,, सुखरामजी (९)
९. ,, सामजी (२१)

९०।३।३ मुनि श्री उत्तमोजी (खिवाड़ा)

(संयम पर्याय सं० १८८१-१९०९)

गीतक-छन्द

देश मरुधर पुर खिवाड़ा गोत्र से थे वोहरा।
साधुजन-संपर्क करके विरति-रस दिल में भरा।
लिए दीक्षा के अनेकों कष्ट पुरपति ने दिये।
किन्तु 'उत्तम' ने मधुर फल चतुरता से पा लिये ॥१॥

एक अस्सी साल में मुनि हेम से संयम लिया।
पुत्र पत्नी स्वजन को तज काम तो उत्तम किया[1]।
वास उनके पास में कर पठन-पाठन कर लिया।
तप अभिग्रह विविधतर कर सत्त्व का परिचय दिया ॥२॥

दोहा

शीत ताप परिषह सहा, कर्म निर्जरा हेतु।
ध्याया निर्मल ध्यान सह, पाया भव जल सेतु[2] ॥३॥

अष्टाविंशति वर्ष तक, चला चरण-अभियान।
शतोन्नीस नौ साल में, 'सुधरी' से प्रस्थान[3] ॥४॥

१. मुनि श्री उत्तमचन्दजी खीवाडा (मारवाड) के निवासी और गोत्र से सालेचा वोहरा (ओसवाल) थे। वे गाव के ठाकुरों के कामदार थे। दीक्षा लेते समय ठाकुर साहव तथा परिवार वालो ने उनको वहुत कष्ट दिये किन्तु उन्होंने चातुर्य व धैर्यपूर्वक आज्ञा प्राप्त की[1]।

(ख्यात)

स० १८८१ के जयपुर चातुर्मास के पश्चात् मुनि श्री हेमराजजी (३६) पाली पधारे। वहां पोप शुक्ला ३ को आचार्य श्री रायचन्दजी ने मुनि श्री जीतमलजी को अग्रणी वनाया। तत्पश्चात् मुनि श्री हेमराजजी ने मेवाड़ की तरफ विहार किया। रास्ते मे सभवत: खीवाडा पधारे। वहा उत्तमचन्दजी ने स्त्री, पुत्र आदि को छोड़ कर मुनि श्री द्वारा दीक्षा ग्रहण की[2]।

२. मुनि श्री दीक्षित होने के वाद कई वर्प मुनि श्री हेमराजजी के तथा कई वर्प मुनि सतीदासजी (८४) के साथ रहे। ऐसा हेम नवरसा और शांति विलास के उल्लेखो से ज्ञात होता है।

ख्यात मे उनके लिए लिखा है कि वे पढे-लिखे व वड़े साहसिक हुए। उन्होने विविध तपस्या और अभिग्रह ग्रहण किये। शीतकाल मे शीत और उष्णकाल आतापना ली।

उनकी तपस्या का विवरण इस प्रकार मिलता है :—

स० १८८५ के पाली चातुर्मास में उन्होने मुनि श्री हेमराजजी के साथ ३० दिन का तप किया।

(हेम० ढा० ६ गा० २)

स० १८८८ के गोगुदा चातुर्मास मे मुनि श्री हेमराजजी के साथ ३४ दिन का तप किया।

(हेम० नव० ढा० ६ गा० ६)

---

१. हुता कामेती ठाकुर तणा रे, दिक्षा लेतां उपसर्ग अपार।
ठाकुर प्रमुख किया पिण उत्तमजी रे,
कला चतुराई कर आज्ञा लीधी श्रीकार॥

(शासन प्रभाकर ऋषिराय सत वर्णन ढा० ६ गा०४१)

२. मेवाड़ देश पधारचा रे, उत्तमचन्दजी नै हेम तारचा रे।
चारित्र देई नै कारज सारचा॥
खीवारा नो वासी प्रसीधो रे, त्रिया सुत छाडी संजम लीधो रे।
उत्तमचद उत्तम काम कीधो॥

(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ६९, ७०)

सं० १६०६ के पाली, १६०७ के बालोतरा चातुर्मास मे मुनि श्री सतीदासजी के साथ क्रमशः ६ और ८ दिन का तप किया।

(शांति विलास ढा० १० गा० १०, १५)

स० १६०८ में वे संभवतः मुनि श्री सतीदासजी के साथ ही थे क्योकि सं० १६०७ मे जितने ठाणे साथ थे उतने ही स० १६०८ मे मिलते है।

स० १६०६ में वे मुनि सतीदासजी के साथ नही थे अन्य सिंघाड़े के साथ थे।

३. उन्होंने लगभग २८ साल सयम का रसास्वादन कर स० १६०६ सुधरी में स्वर्ग-प्रस्थान किया। (ख्यात)

'आर्यादर्शन' कृति मे सं० १६०६ में दिवगत साधुओ की सूची में भी उनका नाम है :—

सुत त्रिय तज व्रत सार रे, उत्तमचंद इक्यासिये।
वगड़ी सैहर मझार रे, परभव मांहि पांगरया॥

(आर्यादर्शन ढ़ा० १ सो० ३)

शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ४० से ४२ मे ख्यात की तरह ही उल्लेख है।

६१।३।४ मुनि श्री हिन्दूजी (बड़नगर)

(संयम पर्याय सं० १८८१-१९१८)

गीतक-छन्द

वडनगर के थे निवासी संत 'हिन्दू' विदितवर।
जय-सहोदर पास में चारित्र-मणि पाये प्रवर[१]।
कुशल साधक रसिक तप के साहसिक दृढ़ वचन में।
मधुर वक्ता चतुर लेखक कला-कोविद श्रमण में ॥१॥

किया वहु उपकार वन के अग्रणी भू-वलय में।
ज्ञान का दीपक जलाया भविक जन के हृदय में[२]।
आपरेशन हेम ऋषि की आंख का अच्छा किया।
सुयश जनता और वैद्यों ने उन्हें सच्चा दिया[३] ॥२॥

जीत मुनि के साथ पावस एक मिलता आपका।
अग्रगामी समय के दो, नही विवरण शेप का[४]।
तपश्चर्या यथावल कर पिरोई मुक्तालड़ी।
हेम की सेवा सजी वहु, अंत में 'शिव' की वड़ी[५] ॥३॥

दोहा

शहर देहली प्रमुख में, पाया मरण समाधि।
सफल मनुज जीवन किया, मेटी भव-भव व्याधि[६] ॥४॥

१. मुनि श्री हिन्दूजी मालव प्रान्त मे वडनगर के निवासी थे।

(ख्यात)

मुनि श्री स्वरूपचन्दजी ने सं० १८८१ का चातुर्मास उज्जैन मे किया। वहां मुनि पूंजोजी (८८) को दीक्षा दी। उसके वाद वे वडनगर पधारे। वहां उन्होने मुनि हिन्दूजी और धनजी (९२) को दीक्षा प्रदान की और कोदरजी को दीक्षा के लिए तैयार किया:—

समत अठार इक्यासीये, सैहर उजीण चौमास।
ऋषि पूंजा नै चारित्र दियो, अधिक महोछव तास॥

कोदर नै वंधो कराय नै, बड़नगर में आय।
चारित्र उभय भणी दियो, महोछव तसु अधिकाय॥

(स्वरूप० नव० ढा० ६ गा० ११, १२)

जय सुयश ढा० १० दो० २, ३ मे भी उक्त उल्लेख है।

उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि मुनि हिन्दूजी और धनजी की दीक्षा मुनि कोदरजी से पहले हुई परन्तु ख्यात के क्रमाक मे मुनि कोदरजी का नाम पहले है इससे लगता है कि कोदरजी की वड़ी दीक्षा पहले और मुनि हिन्दूजी व धनजी की वाद मे हुई जिससे वे दोनो मुनि कोदरजी से छोटे रह गये।

२. ख्यात मे मुनि श्री हिन्दूजी के सवध मे लिखा है—'वे संयमरत, तपोरसिक, वडे साहसिक, व्याख्यान कला मे कुशल, जवान के पक्के और हाथ के चतुर थे। उन्होने लेखन (प्रतिलिपि) वहुत किया। अग्रगण्य होकर वहुत वर्षो तक विचर कर अच्छा उपकार किया और अनेक व्यक्तियो को तत्त्वज्ञान सिखाया।'

३. मुनि श्री हेमराजजी की आंख मे ३।। वर्ष से मोतियाविन्द था जिससे उन्हें विल्कुल दिखाई नही देता था। स० १८९७ वैशाख वदि ६ को सिरियारी में मुनि हिन्दूजी ने उनका आपरेशन किया जो पूर्णतः सफल रहा:—

सत्ताणुवे वरस महा सुखदाई, चौमासो सिरियारी।
उदै अनूंप पचास पाणी रा, हेम भणी हितकारी॥

तिणहिज गांम वैसाख में नेत्रां री, कीधी हिन्दू संत कारी।
तेहनो विस्तार विशेष पणै सहु, हेम चोढ़ल्या मझारी॥

(हेम नवरसो ढ़ा० ६ गा० १३,१४)

सिरियारी मे मुनि श्री हिन्दूजी ने जव मुनिश्री हेमराजजी के आंखों की कारी की तव वे युवाचार्य श्री जीतमलजी के साथ थे और वैद्य के कथनानुसार आंख

का आपरेशन करने के लिए तैयार हो गये :—

ऋषि जीत आयो मेवाड़ थी, हेम मुनि पै तास।
दरसण कर हरख्यो घणो, हीन्दू ऋषि त्यां पास॥

गृहस्थ पासे कारी न करावणी, हेम कहै इम वाय।
हिन्दू ऋषि कहै वैद्य बतावै, तो हूं करस्यूं चित्त ल्याय॥

(हेम चोढालियो ढा० १ गा० १० तथा ढा० २ गा० २)

उस समय आणदरामजी और रूपचंदजी दो वैद्य आये। उन्होने पहले औजार देना नही चाहा पर साधुओ की विधि बतलाने के पश्चात् उन्होने औजार दे दिये। मुनि हिन्दूजी ने वैद्यो के कथनानुसार आंख का आपरेशन कर दिया। मुनि श्री हेमराजजी को तत्क्षण दिखाई देने लगा। उन्होने आंख, कान, अगुली आदि बता दिये। वैद्यो ने मुनि हिन्दूजी की भूरि-भूरि प्रशसा की। चार तीर्थ को अत्यंत प्रसन्नता हुई.—

आणदराम नें रूपचद बिहुं, शास्त्र हिन्दू नै दीधा।
बारूं कला बताई विध सूं, ततक्षिण कार्य सीधा॥

थट परगट आंख थइ निरमल, हेम तणी तिण वारो।
आंगुली नासिका श्रवण बताया, हरख्या घणां नर-नारो॥

(हेम चोढ़ालियो ढ़ा० ३ गा० ५,६)

वेद प्रशंसा करै घणी, हिन्दू नी तिणवार।
'अरक' वेद ना हाथ सूं, थई आंख श्रीकार॥

(हेम चो० ढ़ा० ४ दो० १)

पुणा च्यार वर्ष आसरै, रह्यो निजला रो रोग।
वैशाख विद छठ दिने, नैण थया आरोग॥

(हेम चो० ढ़ा० ४ गा० ६)

विस्तृत वर्णन 'हेम चोढालिया' तथा मुनि श्री हेमराजजी के प्रकरण में पढ़ें।

४. सं० १८८२ मे मुनि हिन्दूजी ने मुनि श्री जीतमलजी के साथ उदयपुर चातुर्मास किया :—

चिहुं ठाणें ऋषि जीत नो, करायो उदयापुर चौमास।
संग वर्द्धमान तपसी भलो, वृद्ध जीव हिन्दू गुण रास॥

(जय सुयश ढा० १० गा० ६)

स० १८८१ पोष शुक्ला ३ को आचार्य श्री ऋषिराय ने मुनि श्री जीतमल

जी का सिंघाड़ा किया। उस समय उनके साथ मुनि श्री वर्धमानजी (६७), कर्म-चंदजी (८३) और जीवोजी (८६) को भेजा था :—

जीत अनें वर्द्धमानजी रे, कर्मचंद नें इकतार।
जीवराज साध गुणी रे, यां नैं मेल्या देश मेवाड़ ॥
(ऋषिराय सुजश ढ़ा० ८ गा० १२)

मेवाड़ मे जाकर वापस स्वरूपचदजी स्वामी के साथ मुनि श्री जीतमलजी ने कंटालिया मे आचार्य ऋषिराय के दर्शन किये (स्वरूप नवरसा ढ़ा० ६ गा० १५)। तव संभवत उन्होने मुनि कर्मचन्दजी को अपने साथ रख लिया एवं मुनि हिन्दूजी (स्वरूपचदजी स्वामी दीक्षित करके लाये थे) को मुनि श्री जीत-मलजी के साथ दे दिया। उन्होने जय मुनि के साथ सं० १८८२ का उदयपुर चातुर्मास किया।

मुनि हिन्दूजी ने अग्रणी[1] रूप मे स० १९१२ का ३ ठाणो से रतलाम चातु-र्मास किया, ऐसा उल्लेख श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मास-तालिका में है। स० १९१३ का ३ ठाणो से उनका चातुर्मास वखतगढ़ (मालवा) मे था, इसका मुनि जीवोजी (८६) कृत चातुर्मासिक विवरण ढ़ाल० १ गा० ४ में उल्लेख मिलता है। शेप चातुर्मास प्राप्त नही है।

५. मुनि श्री वड़े सेवाभावी थे। मुनि श्री हेमराजजी की उन्होने अच्छी सेवा की :—

नेत्र नी कारी करी रे, हेम तणी ततखेव।
नेत्र खोल्या वलि हेम ना रे, सेव करी नितमेव ॥
(शासनप्रभाकर ऋषिराय संत व० ढ़ा० ६ गा० ४५)

सं० १९११ मे जयाचार्य ने मुनि हिन्दूजी तथा मुनि वीरचंदजी (१५८) को मुनि श्री शिवजी (७८) की परिचर्या करने के लिए राजगढ (मालवा) भेजा

---

१. मुनि स्वरूपचन्दजी द्वारा दीक्षित ५ साधु (मुनि दीपोजी, जीवोजी, पुजोजी, हिन्दूजी, अनूपचंदजी) अग्रगामी वने उनमे एक मुनि हिन्दूजी थे।
(मुनि स्वरूपचंदजी की ख्यात)

था। दोनो ने उनकी सेवा का लाभ लिया :—

मुनि थारी सेवा करवा सोयो, म्हेला मुनि दोयो रा।
मुनि ए तो संत हिन्दु सुखकंदा, वली वीरचंदा रा।।

(शिव मुनि गु० व० ढ़ा० १ गा० ७०, ७१)

६. उनका स्वर्गवास सं० १६१६ पोष मे दिल्ली शहर मे हुआ।

(ख्यात)

शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ४३ से ४७ मे प्राय. ख्यात की तरह ही वर्णन है।

६२।३।५ श्री धनजी (उज्जैन)

(दीक्षा सं० १८८१-१९१० में तीसरी वार गणबाहर)

रामायण-छन्द

श्रमण स्वरूप-चरण में 'धन' ने चरण रत्न पाया है भव्य[1]।
अलग हुए दो वार संघ से फिर आये ले दीक्षा नव्य॥
पुनः तीसरी वार हो गये गण से बाहर दस की साल[2]।
मरे दुर्दशा पूर्वक आखिर ग्रसित कर गया उनको काल[3]॥१॥

१. धनजी मालव प्रान्त में उज्जैन के वासी थे, ऐसा संतोपचंदजी वरडिया के संग्रह में लिखा है।

उन्होने स० १८८१ वड़नगर मे मुनि श्री हिन्दूजी (९१) के साथ मुनि श्री स्वरूपचंदजी (३२) के हाथ से दीक्षा ग्रहण की[1]।

२. वे कर्मयोग से स० १८९१ मे पहली वार गण से पृथक् हुए और गण से बहिर्भूत फतैचदजी (१०२) के शामिल हो गये। तीन दिन वहा रहे, फिर लिखित करके वापस गण में आये। वह लेखपत्र सं० १८९१ कार्त्तिक वदि ८ शनिवार का है। पहली वार गण से पृथक् होने का ख्यात मे उल्लेख नही है।

दूसरी वार फिर वे गण से अलग हो गये और नई दीक्षा लेकर गण मे सम्मिलित हुए।

(ख्यात)

ख्यात मे अलग होने का तथा पुनः नई दीक्षा लेकर सघ मे आने का संवत् नही मिलता परन्तु उनके द्वारा किये गये लेखपत्र के अनुसार वे स०१९०८ जेठ वदि ८ बुधवार को बीदासर में नई दीक्षा लेकर सघ मे आये थे।

सं० १९१० मे अनुमानत. माघ महीने के वाद जयाचार्य मेवाड़ से मालवा पधार रहे थे। साथ मे अनेक संत थे। कानोड पधारते समय रास्ते के 'डवोक' गाव मे मुनि श्री मोतीजी (७०) के साथ के तीन संत किसी को कुछ कहे विना गण से अलग हो गये—धनजी, जीवराजजी (११३) और हमीरजी (१४०)।

शहर कानोड पधारतां, वड मोती मुनि लार।
गांव 'डवोक' में डूविया, तीन मुनि भव वार ॥

थयो जीवराज लघु कर्म वश, कर्म जवर जोधार।
धनजी नैं दीधो धको, हमीर गयो भव हार ॥

(जय सुजश ढा० ४० दो० २,३)

तीन थया गण वार रे, धनो हमीर नंदजी।
विण पूछै हुवा खुवार रे, अजेश पाछा नाविया ॥

(आर्यादर्शन ढ़ा० २ सो० ७)

इस प्रकार वे सं० १९१० मे तीसरी वार गण से पृथक् हुए।

(ख्यात)

---

१. कोदर नैं वधो कराय नै रे, वड़नगर मे आय।
चारित्र उभय भणी दियो रे, महोछव तसु अधिकाय ॥

(स्वरूप नवरसो ढ़ा० ६ गा० १२)

उपर्युक्त जय-सुजश की गाथा मे मुनि जीवोजी का नाम है और आर्यादर्शन' की गाथा मे नदोजी का। इसका कारण है कि मुनि जीवराजजी उस समय अलग तो हुए थे किन्तु थोड़े दिनो बाद वापस गण में आ गये थे इसलिये 'आर्यादर्शन' की उक्त गाथा मे उनका नाम नही है। नदोजी उसी वर्ष अलग हुए थे अतः उस वर्ष के क्रमानुसार 'आर्यादर्शन' मे उनके नाम का उल्लेख है।

३. आखिर वे हनुमानगढ़ मे मृत्यु को प्राप्त हुए :

(ख्यात)

९३।३।६ श्री हुकमजी (जयपुर)

(दीक्षा सं० १८८१-१९०८ जयाचार्य के युग में दूसरी वार गणवाहर)

दोहा

वासी जयपुर नगर के, 'हुक्म' नाम से ख्यात।
पाये अस्सी एक में, चरण-रत्न साक्षात[1] ॥१॥

अलग हुए ऋषिराय के, युग में पहली वार।
फिर दीक्षा ली फिर हुए, पृथक् दूसरी वार[2] ॥२॥

१. हुक्मोजी जयपुर (ढूढाड) के निवासी थे। उन्होने स० १८८१ में संयम ग्रहण किया। (ख्यात)

दीक्षा कहा और किसके द्वारा ली इसका ख्यात में उल्लेख नहीं है। जयपुर निवासी महतावचदजी खारड द्वारा संकलित 'जयपुर विवरण' मे उनका दीक्षा-स्थान नाथद्वारा लिखा है।

२. वे पहली वार आचार्य श्री रायचदजी के युग मे गण से पृथक् हुए। फिर नई दीक्षा लेकर गण मे आये और फिर स० १९०८ मे जयाचार्य के समय दूसरी वार संघ से अलग हो गये :—

हुकमजी जयपुर रो छूटयो वलि दीक्षा वलि छूटयो सं० १९०८ वर्षे।

(ख्यात)

हुकमजी ग्रही व्रत भार रे, राय वारै गण थी टल्यो।
फिर आव्यो जय वार रे, फिर जय वारा मझ टल्यो॥

(शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ सो० ४९)

'छोड़यो एक हुकमा भणी।'

(आर्यादर्शन ढा० १ दो० ९)

पहली वार वे किस संवत् मे अलग हुए और कव नई दीक्षा लेकर वापस गण मे आये इसका उल्लेख नही मिलता। परन्तु सं० १८८३ में उन्होने मुनि श्री भीमजी (६३) के साथ कांकडोली चातुर्मास किया था[1]।

अतः वे उसके वाद पहली वार आचार्य श्री रायचदजी के युग मे गण से पृथक् हुए। उपर्युक्त शासनप्रभाकर के उल्लेखानुसार वे जयाचार्य के युग में नई दीक्षा लेकर गण में आये और जयाचार्य के युग मे गण से अलग हो गये। उक्त 'आर्यादर्शन' मे केवल जयाचार्य के समय सं० १९०८ में गण से पृथक् होने का उल्लेख है।

---

१. भीमजी ने पीथल भलायो रे, रत्न, माणक, हुकम सवायो रे।
पांचूं साध काकडोली मांयो॥
(पीथल मुनि गु० व० ढ़ा० १ गा० ३०)

६४।३।७ मुनि श्री उत्तमचन्दजी 'वड़ा' (आहेड)

(संयम पर्याय सं० १८८१-१८९८ के बाद)

।रामायण-छन्द

उदयचंद 'आहेड' निवासी पोरवाल कुल में आये।
हुआ भाग्य का उदय हृदय में वैराग्यांकुर लहराये।
इक्यासी की साल हेम से चरण उदयपुर में पाये[1]।
सरल तरल भावों से उत्तम संयम में रम फूलाये ॥१॥

वेले वेले तप आजीवन किया 'उदय' ने हितकारी।
शीतकाल में सहा शीत वहु गर्मी में आतप भारी।
सन्निपात की वीमारी को तप-औषध से शान्त किया।
सेवारत अग्लान भाव से होकर अच्छा सुयश लिया[2] ॥२॥

दोहा

मुनि गुलाव के सग से, पड़ा भोगना दंड।
समझाने से जीत के, गण में रहे अखंड[3] ॥३॥

करके सकुशल साधना, खीच लिया नवनीत।
स्वर्ग राजगढ़ में गये, ली है वाजी जीत[4] ॥४॥

१. मुनि श्री उदयचंदजी मेवाड़ मे 'आहेड' के निवासी थे। उन्होंने सं० १८८१ मे मुनि श्री हेमराजजी द्वारा दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

उनकी दीक्षा उदयपुर मे हुई[1]।

२. मुनि श्री वडे आत्मार्थी, सरल स्वभावी और तपस्वी हुए। (ख्यात) उन्होने तपस्या वहुत की। आजीवन वेले-वेले तप किया :—

उदयापुर में थयो उदयचंद अणगार कै, इक्यासीये संजम लियो जी।
जावजीव लग छठ-छठ तप श्रीकार के, ऋषिराय सुगुरु भल पामिया जी॥

(संतगुणमाला ढ़ा० ४ गा० ४७)

उन्होने शीतकाल मे वहुत शीत सहन किया और उष्णकाल मे आतापना ली। एक वार उनके शरीर मे शीताग (सन्निपात) का रोग हो गया तव उन्होंने अधिक तप किया जिससे वे स्वस्थ हो गये।

(ख्यात)

तपस्या के साथ उनकी सेवा-भावना भी अच्छी थी। जय सुजश ढ़ा० २५ गा० १७ मे उन्हे तपस्वी एव सेवा-भावी लिखा है :—

'पछै तीजे दिन व्यावचियो अति, उदैचंदजी तपस्वी ताहयो।'

३. स० १८६४ के पुर चातुर्मास मे वे मुनि गुलावजी (५३) के सिंघाड़े में थे। वहां गुलावजी शकाशील हो गये। आचार्य श्री ऋषिराय ने वहां पधार कर उन्हे गण से पृथक् कर दिया। उनके विचारों से सहमत न होने पर भी मुनि ईशरजी (६०) और उदयचंदजी उनके साथ रह गये जिससे उनका भी संघ से सवध विच्छेद हो गया।

जयाचार्य द्वारा समझाने से मुनि उदयचन्दजी गुलावजी की पक्ष मे नही रहे तव गुलावजी का वल भी टूट गया। फिर जयाचार्य द्वारा समझाने पर वे समझ गये और गण मे आने के लिए उद्यत हो गये। तत्पश्चात् तीनों को प्रायश्चित्त देकर गण मे ले लिया गया।

विस्तृत वर्णन मुनि गुलावजी के प्रकरण मे तथा जय सुजश ढा० २४, २५ मे पढ़ें।

---

१. उदैपुर मे वडो उदैचंदो रे, तिण नै चारित्र दियो आणदो रे।
हेम मेटया घणां रा फंदो रे॥
(हेम नवरसो ढ़ा० ५ गा० ७२)

६५।३।८ मुनि श्री उदयचन्दजी 'उदयराजजी' (गोगुन्दा)

(संयम पर्याय सं० १८८२-१९२२)

लय—कीडी चाली सासरे...

तपोधन अग्रणी रे, उदयचन्द अणगार।
तपः सूर सरदार ॥

धरती पर मेवाड़ की रे, था गोगूदा ग्राम।
गोत्र स्वजन का मालू मुंहता, नाम उदय अभिराम ॥१॥

नंदन हेमा शाह के रे, प्रसू [कुशालां ज्ञेय।
तीन बंधु में मध्यमवर्ती, पाये है पथ श्रेय ॥२॥

योग हेम ऋषि का मिला रे, उदित हो गया भाग्य।
सुधा-श्राविणी वाणी सुनकर, जाग गया वैराग्य ॥३॥

दीक्षोत्सव बहु विध हुए रे, खाये मधु पकवान।
बीस वर्ष की चढती वय में, ऊर्ध्व चढ़े सोपान ॥४॥

शुभ तिथि पूनम पोष की रे, अस्सी दो की साल।
रायचंद गुरुवर के कर से, चरण लिया सुविशाल[1] ॥५॥

रहे 'हेम' सान्निध्य में रे, गुरु आज्ञा से आप।
विनयी सरल मृदुल मुनि गण में, पाये कीर्ति अमाप ॥६॥

पंच महाव्रत-साधना रे, समिति गुप्ति संयुक्त।
करते डरते पाप ताप से, हो कषाय से मुक्त ॥७॥

हेम महामुनि योग से रे, गुण-गणि बढ़े अनेक।
उदाहरण बन गये उदय तो, विनय भक्ति का एक[1] ॥८॥

तीव्र तपोबल से बली रे, बने तपो-मूर्धन्य।
तप का लेखा सुन सब कहते, धन्य तपोधन धन्य ॥९॥

नवति साल के बाद में रे, मास-मास में एक।
किया थोकड़ा आठ साल तक, लिखे अनूठे लेख ॥१०॥

शीत सहा अति शीत में रे, उष्णकाल में ताप।
कठिन साधना कर धृति पूर्वक, काटे कर्म-कलाप[1] ॥११॥

दोहा

हेम, शान्ति ऋषि हर्ष सह, फिर स्वरूप के संग।
रहकर परम समाधि में, गये चढ़ाते रंग[1] ॥१२॥

मुनि स्वरूप परिपार्श्व में, करते 'उदय' निवास।
ध्यान शुद्ध धरते सतत, करते आत्म-विकास ॥१३॥

लय—कीडी चाली ··

तेरस शुक्ला चैत्र की रे, शतोन्नीस बाईस।
चढ़ने से ज्वर शुरू किया तप, बीते दिन बाईस ॥१४॥

सविनय अनुनय कर रहे रे, मुनि स्वरूप के पास।
संथारा करवा कर मेरी, पूर्ण करो अभिलाष ॥१५॥

क्यों इतनी है शीघ्रता रे, ठहरो कुछ दिन और।
कहा 'उदय' ने अभी कराएं, उत्कंठित मन-मोर ॥१६॥

देख बलवती भावना रे, चारतीर्थ-मध्यस्थ।
विधि-पूर्वक अनशन करवाया, छाया यश ऊर्ध्वस्थ ॥१७॥

वीरवृत्ति से आपकी रे, पाये अचरज लोग।
कलियुग में सतयुग रचना का, दिखलाया सुप्रयोग ॥१८॥

लय— मुनि घर आये आये…

अनशन की छवि छाई रे, सज्जन जन मन में भाई,
खुशियां आई-आई, खुशियां आई ॥

समाचार सुन स्व-पर मती जन आ रहे २।
दर्शन वंदन कर अचरज बहु पा रहे।
क्या ठाकुर ठकुरानी रे, राज्य कर्मचारी भारी;
भीड़ लगाई २ ॥१९॥

त्याग विराग वढ़ाते गाते गुण-गरिमा।
धन्य-धन्य ध्वनि उठती मुख-मुख पर महिमा।
गण प्रभावना प्रसरी रे, घर-घर में धर्म ध्यान की,
ज्योति जगाई २ ॥२०॥

कागद देकर भेजे जय ने संत हैं।
खिला तपस्वी का सुन हृदय-वसंत है।
विविध विरति की बातें रे, मिलजुल मुनि उन्हें सुनाते,
देते वधाई २ ॥२१॥

दोहा

मिली अचानक सूचना, आते 'जय' गण-छत्र।
मुनि का मन उल्लास से, फूला ज्यों शत पत्र ॥२२॥

लय—मुनि घर आये…

क्रमशः वढ़ते आया दिन अडतीसवां।
श्वेत-संघ ले संग पधारे जय-मघवा।
रचना लगी निराली रे, मुनि श्रमणी मिले अनेकों,
सभा सरसाई २ ॥२३॥

दर्शन पाकर खिले तपोधन खूब है।
वाणी सुन-सुन फूले ज्यों वन-दूब है।
वोले धन्य वना मै रे, भारी मेरे पर प्रभु ने,
महर कराई २ ॥२४॥

साधु-साध्वियों ने विगयादिक छोड़ दी ।
चौथ भक्त आदिक की लड़ियां जोड़ दी ।
छजमलजी स्वामी ने रे, सागारी अनशन करके,
शक्ति दिखाई २ ॥२५॥

जय गणि स्वयं सुनाते आगम-सूक्तियां ।
वीरों की वीरत्व-भरी अनुभूतियां ।
नरक निगोदादिक की रे, बतलाकर विकट वेदना,
विरति बढ़ाई २ ॥२६॥

कष्ट न अधिक क्षुधा भी नहीं सता रही ।
तीन महीनों तक की भी चिन्ता नहीं ।
आशीर्वाद आपका रे, आश्रय अरिहंत सिद्ध का,
सदा फलदाई २ ॥२७॥

चलते-चलते पैंसठवां दिन आ गया ।
बातें करते सूर्य अस्त गति पा गया ।
सावधान बिन बाधा रे, रजनी के प्रथम प्रहर में,
स्वर्गश्री पाई २ ॥२८॥

कीर्त्ति-ध्वजा फहरी है तेरापंथ की ।
विजय-दुंदुभि बजी यशस्वी संत की ।
जिन शासन की महिमा रे, फैली स्तुति गाते 'जय' की,
बहिनें भाई २ ॥२९॥

सोरठा

उष्ण सलिल आगार, तप दिन सत्तावीस का ।
अद्भुत साहस धार, छजमल मुनि के हो गया' ॥३०॥

दोहा

पर द्वेषी दिल में लगी, भारी ईर्ष्या-आग ।
पर गुण में असहिष्णुता, करती विकृत दिमाग ॥३१॥

द्रव्य प्रलोभन दे दिया, एक व्यक्ति को हंत ।
गुपचुप सिखलाकर किया, झूठा खड़ा उदंत ॥३२॥

लय—जावण द्यो…

भूत हुआ जी भूत हुआ।
मर करके मैं भूत हुआ।
अलबेला अवधूत हुआ।

सायं पुर वाहर जाकर, एक शून्य तरु पर चढ़कर।
वोला ज्यों लोभी मछुआ ॥३३॥

प्यास मर रहा जोरों से, लाओ सलिल सिकोरों से।
मीठे जल का देख कुआ ॥३४॥

भूख लग रही मुझे वड़ी, उदर-अंत्रियां हुई खड़ी ।
दे दो दलिया, दूध पुआ ॥३५॥

बल से अनशन करवाया, जिससे ऐसी गति पाया ।
दुविधाओं ने मुझे छुआ ॥३६॥

स्वर्ग नरक की कर वातें, त्याग विना मन दिलवाते।
पर यह विष मिश्रित हलुआ ॥३७॥

नाम न अनशन का लेना, साफ-साफ उत्तर देना ।
नही यहां मां, वहन, भुआ ॥३८॥

वोल रहा नर वह ऐसे, खेल हो रहा बिन पैसे ।
पुर में हल्ला सहज हुआ ॥३९॥

लय—तूं तो आ जा ए…

आये २ रे श्रावक मिलजुल करने सही तपास।
पाये २ रे भेद अवान्तर करके पूर्ण तलाश ॥
पांच सात भाई मिले रे, साहस धर निर्भीक।
पुर वाहर संध्या समय रे, छुपे वहां नजदीक ॥४०॥

अस्त हुआ भास्कर तदा रे, फैला तम का जाल ।
इतने में आकर चढ़ा रे, तरुवर पर वह वाल ॥४१॥

करता प्रतिदिन की तरह रे, दूपित वचन प्रयोग ।
लोगों ने जाना सही रे, है यह मिथ्या ढोंग ॥४२॥

आये वे सव दौड़ के रे, वोले—तूं है कौन ।
मानव या दानव दुरित रे, दे जवाव क्यों मौन ॥४३॥

वुलवाने हित तव उसे रे, फेंके खर पापाण ।
मरता क्या करता नहीं रे, वोला वनकर त्राण ॥४४॥

मत मारो मैं मनुष्य हूं रे, प्रेत न भूत पलीत ।
लालच में आकर वृथा रे, गाये गंदे गीत ॥४५॥

लाये उसको पकड़ के रे, चौराहे के वीच ।
ठागा चोड़े हो गया रे, (सव) कहते धिक्-धिक् नीच ॥४६॥

पतली जड़ है झूठ की रे, नही साच को आंच ।
घटा पाप का फूटता रे, आखिर में ज्यों कांच ॥४७॥

किस ही पर देना नही रे, मिथ्या मय आरोप ।
कुछ न विगड़ता इतर का रे, खुद का लोपालोप ॥४८॥

पाप तेरहवां यह कहा रे, प्रभु ने अभ्याख्यान ।
आता है जव उदय में रे, करता अति हैरान[६] ॥४९॥

लय—कीडी चाली ....

उदयराज तप ताज का रे, जीवन वृत्त पवित्र ।
शम संवेग वीर रस भावित, है आकर्षक चित्र ॥५०॥

जय विरचित चोढालिया रे, मुनि महिमा का एक ।
सुन्दर सुन्दरतम विवरणमय, लें नजरों से देख[७] ॥५१॥

१. मुनि श्री उदयराजजी गोगुदा (मेवाड़) के निवासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से मालू मुंहता थे। उनके पिता का नाम हेमाशाह और माता का कुशालांजी था। वे तीन भाई थे :—एकलिंगदासजी, उदयचंदजी, अमरचंदजी। उनका परिवार धार्मिक वृत्ति वाला एव भैक्षव-शासन का अनुयायी था[1]।

मुनि श्री हेमराजजी ने सं० १८८२ का चातुर्मास गोगुदा मे किया। उनकी वैराग्यमय वाणी को सुनकर उदयचदजी का विचार संयम लेने का हुआ। अपनी भावना अभिभावक जन के सम्मुख रखी तो उन्होंने सहर्ष दीक्षा की स्वीकृति दी और अनेक दिनों तक वडे उमग से उनका दीक्षा-महोत्सव मनाया[2]।

फिर उन्होंने २० वर्ष की वय में स० १८८२ पोष शुक्ला १५ को आचार्य श्री रायचन्दजी के हाथ से दीक्षा ग्रहण की :—

दिख्या महोछव दीपता, वर्ष वीस उनमांन।
जग भूठो जाणी करी, चरण हरख चित्त आण ॥

समत् अठार वयासीये, पोह सुदि पूनम सार।
राय ऋषि रा हाथ सूं, लीधो सजम भार ॥

(उदयचद चो० ढा० १ दो० ९, १०)

अठारैसे वीयांसिये अहमंद, उदयराज भणी सुखकंद।
दीक्षा दीधी पूज्य रायचंद रे, मुनि प्यारा ! उदयाचल जाप जपीजै ॥

(उदयचन्द गुण वर्णन ढा० १ गा०१)

उक्त पद्यो मे उनके दीक्षा-स्थान का उल्लेख नही मिलता किन्तु स० १८८२

---

१. देश मेवाडे दीपतो, सैहर 'गोघूदे' सोय।
'हेमोसाह' वसै तिहा, ओसवस अवलोय ॥
'मालू मूहता' जाति तसु, तास कुसाला नार।
तीन पुत्र तेहनै थया, विचेट अधिक उदार ॥
ज्येष्ठ एकलिंगदासजी, 'उदयचदजी' आप।
'अमरचंदजी' तीसरो, स्थिर भिक्षु गण स्थाप ॥

(उदयचद चोढालिया ढा० १ दो० १ से ३)

२. हेम सुधा वच सांभली, थयो दिख्या नै त्यार।
आणद सू ले आगन्या, महोच्छव मड्या अपार ॥
घणा दिवस जीम्यो गुणी, पवर वनोला पेख।
वैरागी वनडो वण्यो, उदयचद सुविसेख ॥

(उदयचंद चो० ढा० १ दो० ७,८)

माघ शुक्ला ८ को आचार्य श्री रायचदजी ने साध्वी श्री अमृतांजी (१०६) को गोगुंदा मे दीक्षा दी, ऐसा उल्लेख उनकी ख्यात मे है। इससे लगता है कि मुनि उदयचंदजी की दीक्षा गोगुंदा मे हुई।

२. आचार्य श्री रायचन्दजी ने नव दीक्षित मुनि को मुनि श्री हेमराजजी को सौप दिया :—

हेमराजजी स्वाम नै, सूप्या गणि ऋषिराय।
विनयवंत गुणवंत अति, गण में सोभ सवाय ॥
(उदयचद चो० ढ़ा० १ दो० ११)

वे उनके सहवास मे विनय-नम्रतापूर्वक रह कर अपने जीवन का निर्माण करने लगे। उनकी आचार कुशलता, पापभीरुता, विनयशीलता, प्रकृति-भद्रता आदि विविध गुणो की विस्तृत व्याख्या श्रीमज्जयाचार्य ने उदयचद-चोढालिया ढ़ा० १ गा० १ से ३३ तथा अन्य स्थलो मे की है। उसके कुछ पद्य निम्नोक्त हैं :—

पंच महाव्रत अभिलाखै, तसु यत्न घणों करि राखै।
रखे पाप लागेला मोय, इम डरतो रहै मुनि सोय।
घणो सुगुरु तणो सुवनीतं, तिण रै परम सुगुरु सू प्रीत।
रूड़ी रीत गुरां नै रीझाया, तिण सूं अधिक अधिक गुण आया।
रूड़ी रीत सुगुरु नै आराध्या, वारु उत्तरोत्तर गुण वाध्या।
अंग चेष्टा प्रमाणे चालतो, त्यांरी आण अखंड पालंतो।
वडा मृदु कठण सीख देवै, मुनि तो पिण समचित वेवै।
इण तो पोता रो छंदो रुध्यो, तिण सू दिन दिन सवलो सूध्यो।
ओ तो विनय सरोवर भूल्यो, गण में रहै फलियो फूल्यो।
ओ तो विनय वसे रंगरलियां, तिण सू मन मनोरथ फलिया।
ओ तो चालै वड़ां रै अभिप्रायो, तिण सूं रीझ्या सुगुरु सवायो।
सुगुरु रीझ्यां अधिक गुण आया, सीख सुमति सुधारस पाया।
सीख पाया उज्जल ध्यान ध्याया, तिण सू बहुला कर्म खपाया।
बहु कर्म क्षये तसु जीवो, ओ तो ऊजल हूवो अतीवो।
ओ तो जीव उज्जल थी साधी, तप विनय थकी रुचि वाधी।
रुचि वाध्यां सुगुरु ले आणा, औ तो तप करवा मंडाणा।
मंड्यो तप करवा अति भारी, ओ तो उदयराज अधिकारी।
(उदयचंद चौढालियो ढा० १ गा० ८ से १५, २०, २१, २६ से ३२)

प्रकृति भद्र उपशांत चित, पतली च्यार कषाय।
शील तणो घर सुंदरु, अमल चित्त अधिकाय ॥

विनय तणो तो स्यूं कहूं, वारूं तास वखांण।
जिम सूत्रे जिन आखियो, उदयराज तिम जांण ॥
हेम ऋषि रा संग सू, वाध्या गुण-मणि हेम।
उदयराज रा घट मझै, हेम वधायो खेम ॥
हेम सुपारस सारिखो, हेम साचलो हेम।
हेम तणा गुण संभरयां, पामै अधिको प्रेम ॥
हेम सुमति ना सागरु, हेम क्षमा भरपूर।
हेम सील नो घर सही, सखरो हेम सनूर ॥
हेम ग्यांन नो पींजरो, हेम ध्यांन गलतांन।
हेम मान मद निर्दली, हेम शांति असमान ॥
हेम संवेग रसे भरयो, हेम सुमति दातार।
कहा कहियै गुण हेम ना, शासण नो सिणगार ॥
हेम स्थंभ शासण तणो, सुपने मुद्रा हेम।
मूर्त्ति देख सुहांमणी, पांमै तन मन प्रेम ॥
एहवा हेम मुंनिद नै, रीझायां अधिकाय।
विनय करी गुण वाधिया, उदयराज घट मांय ॥
उदयराज मुनि हेम नों, विनयवंत अधिकाय।
वैष्णव मत में जिम कृष्ण रै, ज्यूं ऊधो भक्त कहाय ॥
तिम हेम मुख आगले, उदयराज अवलोय।
वैरागी त्यागी वड़ो, जशधारी अति जोय ॥

(उदयचद चो० ढा० २ दो० २ से १२)

लघु उदैचंद गुण आगलो, दिख्या दीधी ऋषिराय।
हेम हजूरी विनय गुण, तपसी महा सुखदाय ॥
राम तणै मुख आगल हणुमत, सेवग महा सुखकारी।
हेम तणै मुख आगल उदैचंद, पूरो है प्रतीतकारी ॥

(हेम नवरसो ढा० ६ दो० २ गा० २७)

३. मुनि श्री बडे उत्कट तपस्वी हुए। उनकी तपस्या का वर्णन करते हुए जयाचार्य ने लिखा है :—

तपस्वी पिण तीखो घणो, तसुं तप वर्णन वात।
पूरो तो किम कही सकै, संक्षेपे अवदात ॥
घोर तप चौथा आरा ना, मुनिवर नो जिम सुणियो।
पंचम आरे उदैराज नो, प्रगट घोर तप थुणियो ॥

(उदयचद चो० ढा० २ दो० १३ गा० १९)

उनके तप की तालिका उदयचंद चोढालियो ढ़ा०२ गा० १ से ११ के आधार से इस प्रकार है :—

उपवास से ग्यारह तक	१५	१६	१६	२१	३०
अनेक वार	२	१	१	१	१३

(जिनमें ११ मासखमण पानी के आधार से तथा दो आछ के आधार से)

३३	३५	३७	३८	३६	४१	४५	४७	५०	५३	५६
१	१	२	१	२	१	१	१	१	१	२

(ये सव पानी के आधार से किये।)

$\frac{६०}{१}$ (आछ के आधार से) $\frac{७७}{१}$ (धोवन पानी के आधार से)।

कई स्थलों मे उक्त तपस्या के आकडों से न्यूनाधिक संख्या भी मिलती है। उनके संदर्भ इस प्रकार हैं :—

(१) ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० ५६मे मासखमण १३की जगह १५ (१३ पानी के आगार से और दो आछ के आगार से) लिखे है। वहां ४० का एक थोकडा अधिक हे। ५६ के दो की जगह एक थोकड़े का उल्लेख है।

(२) उदयचद गुण वर्णन ढा० गा०८ मे १४ और १७ की तपस्या का अधिक उल्लेख है। (१४ दिन का तप डीडवाणा मे शीत काल के समय और १७ दिन का तप कटालिया मे किया था)। उनका अन्यत्र कही उल्लेख नही है। ३६ का थोकडा दो की जगह एक लिखा है। ६० की तपस्या का उल्लेख नही है।

(३) (क) हेम नवरसा में २६ दिन के थोकडे (मासखमण) को छोड़कर मासखमण १३ है। २६ का एक तथा ४३ का एक थोकड़ा और अधिक है। उनका हेम नवरसा के अतिरिक्त कही उल्लेख नही है।

(ख) शांति विलास मे १ मासखमण (पानी के आगार से), ३५, ४० तथा ४६ के थोकडे का विशेप उल्लेख है। उनमे ४६ के थोकड़े का कही उल्लेख नहीं है। ५६ के एक थोकडे का उल्लेख है।

सात थोकड़े (३३, ३८, ३६, ४१, ४५, ५३ और ५६) संभवत: वाद में करने से हेम नवरसा और शान्ति विलास में उनके उल्लेख का प्रसंग नही है। इनमे ४१ के थोकड़े का मुनि जीवोजी (८६) कृत ढाल में उल्लेख है।

हेम नवरसा के आधार से ऊपर १३ मासखमण लिखे हैं। उनसे सम्वन्धित

कुछ गाथाएं इस प्रकार हैं :—

> नव्यासीये पाली चित्त निरमल, निउवे सैहर पीपाडी।
> मासखमण तप कियो उदैचंद, हेम तणै उपगारी॥
> बालोतरे एकाणुंश्रे चोमासो, बाणूश्रे पाली मझारी।
> हेम तणी सेवा करै उदैचंद, तीस किया तंत सारी॥
>
> (हेम नवरसा ढा० ६ गा० ७, ८)

इन गाथाओं का मैंने यह अर्थ लगाया है कि स० १८८९ और १८९० मे तथा सं० १८९१ और १८९२ मे अलग-अलग मासखमण किये। इससे ऊपर दी गई संख्या ठीक वैठती है। अन्यथा उक्त चार वर्षो के दो मासखमण गिनने से दो मासखमण कम हो जाते हैं। दो मासखमण घटाने से चोढालिया और ढाल में कही गई १३ मासखमण की संख्या मिल जाती है पर ख्यात तथा शासन प्रभाकर मे १४ मासखमण लिखे है उनसे सगति नही वैठती।

अत: हेम नवरसा मे उक्त १३ माससखण और शान्ति विलास मे उक्त एक मासखमण को मिलाने से मासखमण की सख्या १४ होती है। हेम नवरसा मे उक्त २९ दिन के मासखमण को साथ मे गिनने से १५ सख्या प्रमाणित होती है।

सेठिया-संग्रह मे उनके १६ मासखसण लिखे हैं पर उक्त उद्धरणो को देखते हुए २९ के मध्यम मासखमण सहित १५ मासखमण ही यथार्थ मालूम देते हैं।

निष्कर्ष रूप मे ग्यारह से ऊपर की समग्र तपस्या की तालिका इस प्रकार है :—

१४	१५	१६	१७	१९	२१	२९	३०	३३
१	२	१	१	१	१	१	१४	१

३५	३७	३८	३९	४०	४१	४३	४५	४६	४७
१	२	१	२	१	१	१	१	१	१

५०	५३	५६	६०	७७
१	१	२	१	१

मुनि श्री हेमराजजी के साथ मुनि श्री ने जो तपस्याए की उनका वर्षो के क्रम से विवरण इस प्रकार है—

स० १८८३ के आमेट और सं० १८८४ के पुर चातुर्मास मे तप करने का हेम नवरसा मे उल्लेख नही है।

सं० १८८५ को पाली चातुर्मास में ३० दिन का तप किया।
सं० १८८६ ,, पीपाड ,, ,, ३० ,, ,, ,, ,, ।
सं० १८८७ ,, नाथद्वारा ,, ,, ३० ,, ,, ,, ,, ।
सं० १८८८ ,, गोगुदा ,, ,, ३७ ,, ,, ,, ,, ।
सं० १८८९ ,, पालो ,, ,, ३० ,, ,, ,, ,, ।
स० १८९० ,, पीपाड ,, ,, ३० ,, ,, ,, ,, ।
सं० १८९१ ,, बालोतरा ,, ,, ३० ,, ,, ,, ,, ।
सं० १८९२ ,, पाली ,, ,, ३० ,, ,, ,, ,, ।
सं० १८९३ ,, पीपाड़ ,, ,, ४३ ,, ,, ,, ,, ।
सं० १८९४ ,, लाड़नू ,, ,, ३७ (पानी के आगार से ,, ,, ।
सं० १८९५ ,, पाली ,, ,, ३० (पानी० ,, ,, ।
सं० १८९६ ,, पीपाड ,, ,, ३० (पानी० ,,) ,, ।
सं० १८९७ ,, सिरियारी ,, ,, ५० (पानी०) ,, ,, ।
स० १८९८ ,, पाली ,, ,, २९ (आछ) ,, ,, ।
स० १८९९ ,, गोगुंदा ,, ,, ३० (पानी०) ,, ,, ।
सं० १९०० ,, नाथद्वारा ,, ,, ३० (पानी०) ,, ,, ।
सं० १९०१ ,, पुर ,, ,, ७७ (धोवन पानी०) ,, ।

सं० १९०२ के उदयपुर चातुर्मास मे ३० दिन का पानी के आगार से तप किया।

स० १९०३ के नाथद्वारा चातुर्मास मे ३० दिन का पानी के आगार से तप किया।

स० १९०४ के आमेट चातुर्मास में ६० दिन का आछ के आगार से तप किया।

(हेम नवरसा ढा० ६ गा० २, ४ से १३, १६ से २०, २४ और २६ के आधार से)

सं० १९०५ से १९०९ तक मुनि श्री सतीदासजी के पास की गई तपस्या:—
सं० १९०५ के पीपाड चातुर्मास मे ४६ दिन पानी के आगार से किये।
सं० १९०६ के पाली चातुर्मास में ३० दिन पानी के आगार से किये।
सं० १९०७ के बालोतरा चातुर्मास मे ३५ दिन पानी आगार से किये।
सं० १९०८ के पंचपदरा चातुर्मास मे ४० दिन पानी के आगार से किये।
सं० १९०९ बीदासर चातुर्मास मे ५६ दिन पानी के आगार से किये।

(शान्ति विलास ढ़ा० १० गा० ६, १०, १६ १९ तथा ढाल १३ गा० ६ के आधार से)

सं० १९१३ का उन्होंने मुनि श्री हरखचन्दजी (१४४) के सिंघाड़े में जयाचार्य के साथ पाली चातुर्मास किया। वहां ४१ दिन का तप किया :—

इकताली दिन उदैचंद, उदक आगार सूं।

(मुनि जीवोजी (८६) कृत स० १९१३ के चातुर्मासों की ढ़ा० १ गा० ८ के आधार से)

शेष थोकड़ो का स्थान व संवत् प्राप्त नही है।

स० १८९० के पश्चात् सं० १९०८ तक उन्होंने प्रत्येक महीने मे चोले से आठ दिनों तक का एक-एक थोकड़ा किया :—

संवत् अठार नेउवा पाछै, मास मास में सारो रे।
एक-एक मुनि कियो थोकड़ो, आठा तांई उदारो रे ॥

(उदयचंद चो० ढ़ा० २ गा० १२)

मुनि श्री ने स० १८९० से १९०८ तक शीतकाल में एक चोलपट्टे के अतिरिक्त रात को पछेवड़ी तक नही रखी, कुछ नही ओढा। स० १९०९ से १९२२ (अत समय) तक सर्दी मे एक पछेवडी ओढी। उष्णकाल मे वहुत वर्षों तक आतापना ली :—

वरस नेउआ सूं आठा लग, शीतकाल रै मांह्यो रे।
चोलपटा उपरंत न ओढ्यो, सुखे समाधे ताह्यो रे ॥

उगणीसै नवका थी सीयाले, पछेवड़ी इक पेखो रे।
शीतकाल में ओढी सुधमन, वावीसा लग देखो रे ॥

एहवो तप कीधो मुनि उत्तम, वहु कर्म निर्जरा कीधी रे।
उष्णकाल में घणां वरस लग, आतापन पिण लीधी रे ॥

(उदयचन्द चो० ढा० २ गा० १३, १४, १५)

४. मुनि श्री दीक्षा लेने के वाद सं० १८८२ से १९०४ तक मुनि श्री हेमराजजी के तथा स० १९०५ से १९०९ तक मुनि श्री सतीदासजी के साथ रहे। तब तक के २७ चातुर्मासो की तालिका ऊपर टिप्पण संख्या ७ में तपस्या के क्रम में दे दी गई है।

सं० १९१० से १९१५ तक वे मुनि श्री हरखचंदजी (१४४) के सिंघाड़े में रहे। उनमे चार चातुर्मास सं० १९१० से १९१३ तक मुनि हरखचंदजी के साथ जयाचार्य की सेवा में नाथद्वारा, रतलाम, उदयपुर और पाली में किये। सं० १९१४ और १९१५ के दो चातुर्मास मुनि श्री हरखचंदजी के साथ वीकानेर

८ सरदार शहर में किये :—

जय गणपति पासे किया, च्यार चौमासा संच हो।
वीकाणे चउदे कियो, पनर सैहर सिरदार हो॥

(हरखचद चो० ढ़ा० ३ गा० २४)

स० १९१६ से १९२२ तक के अन्तिम सात चातुर्मास मुनि श्री सरूपचंदजी (६२) की सेवा मे किये।

(१) स० १९१६ मे चूरू
(२) सं० १९१७ मे लाडनू
(३) स० १९१८ मे वीदासर
(४) सं० १९१९ मे चूरू
(५) सं० १९२० मे लाडनू
(६) स० १९२१ मे ,,
(७) स० १९२२ मे ,,

(सरूप नवरसा ढा० ८ दो० २ से ५ के आधार से)

५. सं० १९२२ चैत्र शुक्ला १३ को लाडनू मे तपस्वी मुनि ने सलेखना चालू की। जयाचार्य उस समय वही विराज रहे थे। तेरस के दिन शरीर मे कुछ ज्वर महसूस होने से मुनि श्री ने तेरस और चौदस का वेला किया। वेला मे जयाचार्य द्वारा चोला और चोले मे ९ दिन के तप का सकल्प कर लिया। उनके जिस दिन पचोला था उस दिन जयाचार्य बीदासर की तरफ विहार कर गये। तप के सातवे दिन उन्होने मुनि श्री सरूपचदजी से अनशन करवाने के लिए निवेदन किया। मुनि श्री ने कहा—'जयाचार्य के समाचार आने के वाद ही सथारा करना।' तपस्वी ने कहा—'यदि आप अनशन नही करवाते है तो नौ दिन के तप का तो मेरे नियम किया हुआ है, उसके आगे ४ दिन का नियम और करवा दीजिए।' तव मुनि श्री ने उन्हे १३ दिन के तप का नियम दिला दिया। १३वे दिन तपस्वी ने फिर अनशन करवाने के लिए आग्रह किया तो मुनि श्री ने ४ दिन वढा दिये। तपस्वी मुनि ने साधुओ को अनशन की दलाली के लिए कहा। सत वोले—'आप परम विनयी और त्यागी-विरागी है अत. सभव है कि आपके मनोरथ फलित होगे।' १८ वे दिन फिर अनशन का आग्रह किया तो मुनि श्री ने ४ दिन और आगे वढ़ा दिये। क्रमश वैशाख शुक्ला ४ के दिन तप के इक्कीस दिन पूरे हो गये। वीच-वीच मे वे आजीवन अनशन के लिए हार्दिक अनुनय करते रहे। वैशाख शुक्ला ५ को तपस्या के २२वे दिन दो मुहूर्त दिन चढने के वाद तपस्वी ने मुनि श्री सरूपचदजी को वुलाकर अनशन के लिए प्रार्थना की।

(उदयचद चो० ढा० ३ गा० १ से १६ के आधार से)

तपस्वी ने उस दिन अनशन के लिए जिन भावभरे सतोले शब्दो में विनम्रता-पूर्वक अनुनय किया और मुनि श्री ने चतुर्विध सघ के वड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से आजीवन अनशन (सथारा) करवाया उसका जयाचार्य ने निम्नोक्त पद्यों में रोमाञ्चक चित्रण किया :—

स्वामी नाथ करूं हूं अरजी, हूं तो चाहू आपरी मुरजी।
कृपा मुझ ऊपर कीजै, संथारो पचखावी दीजै॥

म्हारा मन रा मनोरथ शेष, आप पूरचा आगै अनेक।
तिण सू आप थकी ए अरज, म्हारै संथारा की गरज॥

म्हारी पकी राखो परतीत, वारु निरमल जाणजो नीत।
आप मन में कांइ मत ल्यावो, खराखरी अणसण पचखावो॥

लोक आय पूछै छै मोय, आज दिवस किता हुवा सोय।
वार-वार पूछै नहीं कोई, एहवो काम करू अवलोई॥

पछै तो कहूं वचन उदारो, म्हारै जावजीव रो संथारो।
सरूप कहै विचारी थे भारी, थांरो सूरापणो अधिकारी॥

इसड़ी करो उतावल कांय, राखो धीरज अति मन मांय।
केइक दिवस तणी जेझ कीजै, पछै अणसण आदर लीजै॥

जव तपस्वी वोल्यो तिण वारो, हिवडांज करावो संथारो।
पचखायां पछै जावा देसू, इम हठ करै तरै तरै सू॥

स्वाम सरूपज तिण समै, भरियो तांम हुंकारो।
उदयाचल तिण अवसरे, पायो हरष अपारो॥

प्रात वखांण में परखदा, सुणियो शब्द जिवारो।
संथारो देखण आविया, वहु जन व्रंद तिवारो॥

साधु साध्वी श्रावक श्राविका, चिहुं तीर्थ हुआ भेला।
उदयाचल अणसण समै, मंडिया जवरा मेला॥

ओरी मांहि सू आय नै, हीमत अति हुंसियारी।
स्वाम सरूप सू वीनवै, मुझ संथारो सुखकारी॥

फेर सरूप खरावियां, तपस्वी वोल्यो त्यांही।
दोय मास जो नीकलै, तो पिण अटकै नांही॥

भिक्षु भारीमाल ऋषिराय नो, जय-जश नो सुखकारो।
सरणो लीधो सुंदरु, वलि गुण मगल च्यारो॥

नमोत्थुण सिद्धां भणी, वलि अरिहंत नें गुणियो।
धर्माचार्य नें नमी, स्व-मुख तपस्वी थुणियो॥

च्यार तीर्थ रा वृंद में, मरूपचंदजी स्वामी।
तीन आहार पचखाविया, जावजीव लग धामी॥

सूरापणो देखी करी, जन पाया चिमत्कारो।
चौथा आरा सारिखो, प्रत्यक्ष एह संथारो॥
वैशाख सुदि पंचम दिने, तीन महूर्त्त उनमानो।
दिन चढियै तपस्वी कियो, संथारो मुनिप्रानो॥

(उदयचंद चो० ढा० ३ गा० १७ से २२)

मुनि श्री के अनशन के समाचार सुनकर गांव के तथा अन्य गांवों के हजारों लोग दर्शनार्थ आये। तपस्वी मुनि की उत्कट साधना से प्रभावित होकर उन्होंने रात्रि भोजन, अब्रह्मचर्य, हरियाली आदि के त्याग किये। लाडनूं में त्याग-वैराग्य की बहुत वृद्धि हुई —

खबर हुई नगरी मझै, संथारो सुण कांन।
बहु नर नारी आवता, धरता तपसी ध्यांन॥

अन्यमती पिण आय नें, तपस्वी नो दीदार।
देखी अचरज पावता, वदै वारंवार॥
केई आवै केई जावता, जबरो मेलो जांण।
त्याग वैराग करै घणा, उजम अधिको आंण॥

नर-नारी बहु ग्राम नां, आवै दर्शन काज।
वंदणा कर नें इम कहै, धिन धिन धिन ऋषिराज॥

केई कहै तपसी रै संथारो, सीजै ज्यां लग निश चोविहारो।
केई नीलोतरी परिहारो॥

केई करै विगै रा त्याग, केई आदरै शील सुमाग।
इम वाध्यो त्याग वैराग रे॥

(उदयचंद चो० ढा० ४ दो० १ से ४ गा० ५, ६)

मुनि श्री के अनशन के समय आस-पास के जोधों और बीदों में परस्पर झगड़ा चलता था। उसे मिटाने के लिए जोधपुर के मुंहता विजयसिंहजी आदि मुसद्दी, कुचामण के ठाकुर केशरीसिंहजी, मनाणा आदि बहुत गांवों के मेख्या (राजपूत जाति विशेष) तथा बीदायत, सांडवा, चाड़वास, गोपालपुरा, मघरासर,

कणवाडा, लाहवो, खुडी, काणुना, हरासर, महाजन के ठाकुर अमरसिंहजी आदि वड़े-वड़े ताजिमदार सरदार कसुम्वी और पावोलाव पर डेरे लगाये हुए थे। उन्होने मुनि श्री के सथारे का सवाद सुनकर दर्शन किये। लाडनू के ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी ने भी दर्शन किये। (ख्यात)

थयो लाडनू सैहर उजास, ठाकुरां दर्शण किया तास।
लक्ष्मणसिंहजी हुवा हुलास ॥
(उदयचन्द चो० ढा० ४ गा० ९४)

मुनि श्री के अनशन के समय जयाचार्य वीदासर विराजते थे। उन्होने संतों के साथ तीन वार वैराग्य-वर्धक पत्र लिखकर दिये। उन्हे सुनकर तपस्वी का हृदय गद्‌गद् हो गया—

तीन वार मुनि मेलिया, कागद ते लसु हाथ।
विविध समय रस वारता, तपसी सुण हरपात ॥
(उदयचद चो० ढा० ४ दो० ७)

मुनि श्री स्वरूपचंदजी तथा साथ वाले साधुओ ने तपस्वी को भगवती सूत्र के कुछ स्थल, आचारांग की जोड, भिक्षु जश रसायण, हेम नवरसा तथा विविध वैराग्यवर्धिनी गाथाएं और घटनाएं सुनाई। जयाचार्य विरचित दोनो ध्यानो को १७ वार सुनाया। उन्हे सुन-सुनकर तपस्वी मुनि की हृदय कलियां विकसित हो गई।

(उदयचंद चो० ढा० ४ गा० ७ से १८ तक के आधार से)

उस समय अचानक सूचना मिली की जयाचार्य ने वीदासर से लाडनूं के लिए विहार कर दिया है और 'गुणोडा' पधार गये है। तव मुनि श्री के हर्ष का पार नही रहा:—

वहु संतां तणै परिवार, जय गणपति आप उदार।
वीदासर सू कियो विहार रे ॥
तपस्वी सुण नें हरख अति पाया, पछै सुणियो 'गुणोडे' आया।
जव तन मन अति हरषाया रे ॥
(उदयचन्द चो० ढ़ा० ४ गा० १९,२०)

सं० १९२२ जेठि वदि ६ को जयाचार्य ने लाडनू शहर मे प्रवेश किया। स्वरूपचंदजी स्वामी ने आचार्यप्रवर की अगवानी की। पारस्परिक मधुर मिलन को देखकर जनता मे हर्ष का समुद्र उमड़ पड़ा। गणिराज के दर्शन कर तपस्वी मुनि अत्यधिक प्रसन्न हुए:—

प्रथम जेठ विद छठ सार, गणि लाडणू आया तिवार।
सांहमा आया सरुप उदार रे ॥

जन पाया घणुं चिमत्कार, पछै आया सैहर मझार ।
जनवृंद संइकडां लार ॥

तपसी उठी थई सन्मुख आवी सीधा, गणपति ना दर्शण कीधा ।
वचनामृत प्याला पीधा रे ॥

गणि दर्शण कर गुणखांन, वचनामृत सांभल कांन ।
तपस्वी पायो हरष असमान रे ॥

जद हूंतो अड़तीसमो दिन, वारू वचन वदै प्रसन्न ।
म्हारे आज दिहाड़ो धन्य ॥

(उदयचद चो० ढ़ा० ४ गा० २१ से २५ तक)

विशेष घटना

जयाचार्य बीदासर से विहार कर 'गुणोडा' होते हुए लाडनू पधार रहे थे । लाडणू के श्रावक आचार्य श्री के सामने गये पर कई रास्ते होने से वे दूसरे रास्ते चले गये । आचार्य श्री दूसरे रास्ते से शहर मे पधार गये ।

श्रावक लोग चक्कर लगाकर वापस आये और बोले—'महाराज ! हम तो सामने गये और आप दूसरे ही रास्ते से पधार गये । हमे बहुत चक्कर खाना पड़ा ।' जयाचार्य ने फरमाया—'तुमने अपनी गलती से ही चक्कर खाया । अगर किसी मे आठ आने की अकल होती तो चक्कर नही खाना पड़ता ।' श्रावको ने साश्चर्य पूछा—'गुरुदेव ! वह कैसे ?' आपने कहा—'बीदासर की तरफ किसी ऊट या आदमी को भेजकर पता लगवाते तो क्या लगता ?' श्रावक—'आठ आने ।' जयाचार्य—'बस ! आठ आने की अकल होती तो इतना भटकना नही पड़ता । सभी ने अपनी भूल स्वीकार की ।

(अनुश्रुति के आधार से)

मुनि श्री के अनशन के ३८ वे दिन गुरुदेव के साथ ४५ सत और ९९ साध्वियां एकत्रित हो गई । बहुत मुनि सतियो ने उपवास, बेला, तेला आदि १५ दिन का तप करने का सकल्प किया, एवं विगय परिहार किया । मुनि छजमलजी (१७५) 'मांढा' ने जब तक संथारा संपन्न न हो तब तक तीनो आहारो का परित्याग कर दिया:—

तपस्वी रे संथारे न्हाली, सुगणा तिहां संत पैंताली ।
निनाणु समणी सुविशाली ॥

घणां धारै चौथ भक्त सार, छठ अठम-अठम धार ।
जाव पनर लगै सुविचार रे ॥

घणां संत मुनीश्वर सार, वहु विगय तणो परिहार।
'छजै' मुनि तजिया त्रिहु आहार रे ॥
(उदयचंद चो० ढ़ा० ४ गा० २६, २७, २८)

जयाचार्य ने अपनी अध्यात्म-वाणी से भिन्न-भिन्न प्रकार से मुनि श्री को लाभान्वित किया जिसका विस्तृत वर्णन उदयचन्द चोढ़ालिया ढा० ४ गा० ३० से ७१ में है।

ख्यात मे लिखा है कि अनशन के समय जयाचार्य, युवाचार्य मघवा और मुनि श्री स्वरूपचदजी स्वामी ने सूत्रादिक के विविध वैराग्यात्मक स्थल सुनाये। मुनि कालूजी (१६३) ने ६५ दिनो मे ४१ हजार से भी अधिक गाथाएं सुनाई। साध्वी श्री गुलावांजी (२७१), किस्तूरांजी (२२७) आदि ने अनेक तपस्वी साधु-साध्वियों की गीतिकाएं सुनाई।

अनशन के ४४वें तथा ६१वे दिन जयाचार्य ने भगवती सूत्र की दो ढालें रची थी जिसमे उनके अनशन की महिमा वतलाई थी। सवधित पद्य इस प्रकार हैः—

संवत् उगणीशै वावीसे, प्रथम जेठ सुदि वीज जी।
सैहर लाडणू दिख्या महोत्सव, वलि अणसण महोत्सव चीज जी ॥

उदयराज तपस्वी तप सारा, वावीस में दिन जेह जी।
संथारो पचख्यो अति हठ सू, गुणपचासम दिन एह जी ॥

संत सैताली सौ समणी रा, मेलो तीर्थ च्यार जी।
संथारा नो जवर महोत्सव, देख्यां हरष अपार जी ॥

तीन सौ पंचमी ढ़ाल कही ए, भिक्षु भारीमाल ऋषिराय जी।
तीर्थ संपति सखर साहिवी, जय जश हरष सवाय जी ॥
(भगवती शतक १४ उ० १० गा० १६ से १९)

त्रिणसौ गुणपचासमी, कही ढ़ाल रसालो रे।
भिक्षु ऋषि भला, पट भारीमालो रे ॥

तसु पट नृप इंदु, जय जश आनंदै रे।
सुख संपति सदा, चिउं तीर्थ सोहंदै रे ॥

उगणीसै वावीसे, धुर ज्येष्ठ सुजाणी रे।
सुदि पक्ष सोहतो, तिथि चवदश ठाणी रे॥

उदयाचल अणसण, इकसठमों दिनो रे।
मेलो लाडणूं, जन कहै धिन धिनो रे ॥

वावीसमै दिवसे, पचख्यो संथारो रे।
दिवस सहु थया, इकसठ सुखकारो रे॥
तिहां संत सैताली, इकसय इक अज्जा रे।
आज दिवस इहां, वर उभय सुलज्जा रे॥

(भगवती शतक १६ उ० १ गा० ३५ से ४०)

मुनि श्री ने अनशन के समय सभी के समक्ष अपनी भावना और मनोबल के संबंध मे उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा—'यदि मुझे तीन महीने का अनशन आये तो चिंता की बात नही है' —

तीन मास नो अणसण जो आय, तो पिण म्हारै नहीं छै तमाय।
आप आनंद राखो मन मांय रे॥

(उदयचंद चो० ढा० ४ गा० ६०)

अनशन के पैंसठवे दिन उनके शरीर मे वेदना हुई पर मन में पूर्ण जागरूकता थी। सूर्यास्त के समय उन्होने जयाचार्य से तथा साध्वी प्रमुखा सरदार सती से वातचीत की । लगभग डेढ मुहूर्त्त रात्रि जाने के पश्चात् प्राण-विसर्जन कर दिया। अन्तिम क्षणो मे न तो श्वास की वृद्धि हुई और न हिचकी ही आई। साधुओ ने देह विसर्जित कर चार लोगस्स का ध्यान किया। दूसरे दिन लोगो ने इक्कीस खडी मडी वनाकर धूमधाम से दाह-संस्कार किया।

(उदयचद चो० ढा० ४ गा० ७२ से ८१ के आधार से)

इस प्रकार स० १९२२ द्वितीय जेठ वदि ३ को डेढ मुहूर्त्त रात्रि बीतने के वाद वे दिवगत हुए—

उगणीसै वावीस वास, द्वितीय जेठ कृष्ण तीज जास।
उदयाचल परभव वास रे॥

(उदयचंद चो० ढा० ४ गा० ९८)

ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० ६१ तथा जय सुयश ढा ५० गा० २० में उनकी स्वर्गवास तिथि द्वितीय जेठ वदि ५ लिखी है—'द्वितीय जेठ विद पंचम सीझयो, दिन पैसठवे सथारो' परन्तु द्वितीय जेठ वदि ३ प्रमाणित होती है क्योकि चैत्र शुक्ला १३ से द्वितीय जेठ वदि ३ तक पूरे ६५ दिन होते है तथा उपर्युक्त भगवती सूत्र के पद्यानुसार उनके अनशन के ६१वें दिन प्रथम जेष्ठ शुक्ला १४ थी जिससे भी द्वितीय जेष्ठ कृष्णा ३ के दिन अनशन के ६५ दिन सपन्न होते है।

मुनि श्री को २१ दिन की संलेखना और ४४ दिन का सथारा आया, कुल ६५ दिन हुए। उनके प्रभावशाली अनशन से जिन-शासन की वहुत प्रख्याति

हुई। स्व-परमती लोग अत्यन्त प्रभावित हुए। मुख-मुख पर जय-जय की ध्वनियां गूंजने लगी :—

लोक अन्यमती स्वमती सोय, घणा अचरज पाम्या जोय।
हिन्दू मुसलमान अवलोय॥

(उदयचन्द चो० ढ़ा० ४ गा० ९२)

जिन शासन दीप्यों घणो, पाम्या सहु चमत्कार।
अन्यमति स्वमति मुख मुखे रे, जय-जय ध्वनि धुंकार॥

(शासनप्रभाकर ऋषिराय सत व० ढ़ा० ६ गा० ६८)

मुनि छजमलजी द्वारा अनशन के उपलक्ष मे किया गया अभिग्रह भी २७ दिनों से सपन्न हो गया अर्थात् उनके २७ दिन के लघुमास का तिविहार तप हो गया:—

ऋष छजमल रै अवलोय, तप दिवस सतावीस होय।
उष्ण उदक आगारे जोय रे॥

(उदयचद चो० ढ़ा० ४ गा० ९९)

६. मुनि श्री उदयराजजी के अनशन की महिमा सुनकर कुछ विरोधी आदमी ईर्ष्यावश मन ही मन जलने लगे। उन्होने एक व्यक्ति को प्रलोभन देकर तथा सिखा-पढाकर तैयार कर लिया। वह सायकाल कुछ अधेरा हो जाता तब शहर के बाहर जाता और एक वृक्ष पर चढ़कर ऊंचे स्वर से पुकारता—'मैं उदयराज हूं, भूख-प्यास से छटपटाता हुआ मर कर भूत हुआ हूं। मुझे बलात् भूखा रख-कर मार दिया गया।' दो चार दिन वह इस प्रकार बोलता रहा। धीरे-धीरे विपक्षी व्यक्तियो ने उस बात को सारे शहर मे फैलाकर सभी के दिलों में ऊहा-पोह खड़ा कर दिया। जन-जन परस्पर यही चर्चा करने लगे।

तेरापथी श्रावको ने सुना तो उस बात की जाच करने का निर्णय किया। एक दिन सूर्यास्त से पहले जीवराजजी गोलेछा आदि कई साहसिक श्रावक गांव के बाहर आकर वृक्षों की आड़ मे छिप गये। थोडी देर मे वह आदमी आया और वृक्ष पर चढ कर सदा की तरह बोलने लगा। तत्काल वे लोग दौड़ कर वृक्ष के समीप गये और उसे ललकारते हुए बोले—'अरे! तू कौन है? नीचे उतर, वरना आ रहे है पत्थर।' यह कहते हुए उन्होने दो-चार पत्थर के खड फेके कि 'मार के आगे भूत भागे' की तरह वह सकपकाता हुआ नीचे उतरा और बोला—'मैं अमुक व्यक्ति हू और अमुक व्यक्तियो के प्रलोभन मे आकर मैंने यह कार्य किया है।'

इस प्रकार सारा ढोग प्रकट हो गया। जनता उसे तथा उस अकृत्य कार्य मे भाग लेने वालो को दुत्कारने लगी।

आखिर 'सत्यमेव जयते नानृतम्' की उक्ति चरितार्थ हो गई।

(श्रुतानुश्रुत)

७. मुनि श्री उदयराजजी के जीवन प्रसंग पर जयाचार्य ने 'उदयचंद चोढालिया' नामक आख्यान की रचना की जिसकी ४ ढालें हैं। उनमें ४७ दोहे और १९३ गाथाएं हैं जिसका रचनाकाल सं० १९२२ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा ६ और स्थान सुजानगढ़ है।

मुनि श्री के गुण वर्णन की दो ढालें और हैं जो सतों द्वारा बनाई गई मालूम देती हैं।

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढाल ६ गाथा ५३ से ६८ में भी उनका कुछ विवरण मिलता है।

९६।३।९ मुनि श्री मोतीजी 'छोटा' (वाघावास)

(संयम पर्याय सं० १८८५-१८९६)

गीतक-छन्द

मरुधरा पर ग्राम वाघावास गाया आपका ।
नाम 'मोती' ज्योति प्रसरी योग पुण्य-प्रताप का ।
वोध पाकर लिया संयम हेम ऋषि के पास में ।
शहर पाली पांच अस्सी साल सावन मास में[१] ॥१॥

प्रकृति से थे भद्र विनयी सवल सेवा-भावना ।
ध्यान जप स्वाध्याय रत हो सतत करते साधना ।
तपोवल से तपोधन की कोटि में वे आ गये ।
ऊर्ध्वतर छह मास करके सुयश जग में पा गये ॥२॥

सहा है शीतोष्ण परिषह दृष्टि रख अपवर्ग में[२] ।
अडिग रोगोदय समय में सम विषम-उपसर्ग में[३] ।
अन्त में आलोचना अच्छी तरह करके श्रमण ।
छिन्नुए की साल मे शुभ पा गये पंडित-मरण ॥३॥

दोहा

मुनि स्वरूप का मिल गया, सुंदरतम सहयोग ।
रूप आपका खिल गया, पाकर शुभ संयोग[४] ॥४॥

मुनि-गुणमाला में किया, मोती मुनि को याद ।
दो ढ़ालें 'जय' ने रची, कर गुण का अनुवाद[५] ॥५॥

१. मुनि श्री मोतीजी मारवाड़ मे 'वाघावास' के निवासी थे। उन्होंने सं० १८८५ के सावन महीने मे मुनि श्री हेमराजजी द्वारा पाली मे चारित्र ग्रहण किया :—

वागावास रो मोती सावण में, हेम हस्त चरण धारी।
(हेम नवरसो ढा० ६ गा० ३)

मुनि थे तो वाघावास रा वासी, चरण निवासी रा।
(मोती० गु० व० ढा० २ गा० ३)

सत विवरणिका तथा सेठिया संग्रह मे लिखा है कि मोतीजी अविवाहित वय मे दीक्षित हुए परन्तु वह भूल से लिखा गया लगता है क्योंकि मोती गु० व० ढ़ा० २ गा० ६ मे जो—'मुनि ओ तो वालपणै वुद्धिवतो' पद्य है वह मुनि शंभूजी (११५) के लिए है। (पढिये उनका प्रकरण)

२. मुनि श्री सयम मे जागरूक, विनयी, सेवाभावी, प्रकृति से भद्र, स्वाध्याय-ध्यान के रसिक और वड़े तपस्वी थे[1]।

उन्होने दीक्षा लेते ही उसी वर्ष पाली मे मुनि श्री हेमराजजी के सान्निध्य में ७६ दिन का तप किया[2]।

उत्कृष्टत. उन्होने आछ के आगार से छहमासी तप किया :—

लघु मोती वाघावास नो, पट मासी तप कीधो हो।
वले तप विविध प्रकार नो, जग में जश लीधो हो॥
(मोती गु० व० ढा० १ गा० १)

ख्यात मे लिखा है कि उन्होने वह छहमासी तप राजनगर (संभवतः १८९६) मे किया। और भी तपस्या वहुत की परन्तु उसका उल्लेख नही मिलता।

---

१. प्रकृति भद्र प्रज्ञा भली, सुखदाई सुहोती हो।
चारित ऋख्या चोकसी, जप तप नी जोती हो॥
उष्ण शीत तप आकरो, सुविनीत सुयोती हो।
व्यावचियो मुनि वालहो, धारी ध्यान धुनोती हो॥
(मोती० गु० व० ढ़ा १ गा० २,३)

२. आछ आगारे कियो तप अधिको, दिवस छिहंत्तर भारी।
(हेम नवरसो ढ़ा० ६ गा० ३)

उक्त छहमासी तप उन्होंने आचार्य श्री रायचंदजी के समय मे किया था। उनके शासनकाल में होने वाली ८ छहमासियों में एक उनकी भी छहमासी है :—

वर्द्धमान पीथल मोती दीपजी, कोदर शिवजी किया षट मास ।
बे वार छहमासी करी हीरजी, ऋषिराय वरतारे विमास ॥

(ऋषिराय सुजश ढ़ा० १२ गा० १२)

उन्होने शीतकाल मे शीत सहन किया और उष्णकाल मे आतापना ली :—

'उष्ण शीत तप आकरो'

(मोती० गु० व० ढ़ा० १ गा० ३)

३. मुनि श्री ने रुग्णावस्था व उपद्रव के समय बड़ी दृढ़ता और समता रखी :—

रोग परीसह आवियो, तो पिण दृढ़ मुनि मोती हो ।
समभावै उपसर्ग सही, मेटी दुःख नी पनोती हो ॥

(मोती० गु० व० ढ़ा० १ गा० ४)

४. मुनि श्री ने अत मे अच्छी तरह आत्मालोचन कर शुभ ध्यान में लीन होकर समाधिपूर्वक पडित-मरण प्राप्त किया :—

अंत काल आलोयणा, आछी रीत धरोती हो ।
सुभ ध्यान तप रूपणी, कर लीधी करोती हो ॥

(मोती० गु० व० ढ़ा० २ गा० ६)

मुनि थे तो अन्त समय सुविचारचो, जन्म सुधारचो रा ।

(मोती गु० व० ढ़ा० १ गा० ५)

शासनप्रभाकर ढ़ा० ५ गा० ७० एवं सतविवरणिका मे उनका स्वर्गवास सवत् १९३० लिखा है जो गलत है। ख्यात मे भी पहले यही सवत् था किन्तु वाद मे काट दिया गया है।

अनुमानत: वे स० १८९६ राजनगर मे दिवगत हुए । इसका एक प्रमाण तो यह है कि उन्होंने छहमासी तप राजनगर मे किया। दूसरा यह है कि मुनि श्री सरूपचन्दजी ने उन्हें अन्तिम समय मे बहुत सहयोग दिया और चित्त समाधि उत्पन्न की :—

छेहड़ै साझ दियो भलो, सरूपचंद जसोती हो।
चित साचे कर सरधिया, गुण-ग्राहक मोती हो ॥

(मोती गु० व० ढ़ा० १ गा० ६)

मुनि श्री स्वरूपचंदजी का उस वर्ष चातुर्मास कांकरोली मे था और उन्होंने राजनगर आकर उन्हे सहयोग दिया हो।

इसकी पुष्टि के लिए तीसरा प्रमाण यह भी है कि जयाचार्य ने उनके गुणों की पहली ढ़ाल सं० १८९७ कांकरोली मे वनाई थी :—

समत अठारै सताणूएं, कांकरोली कहोती हो।
हरष वसै बहु हूंस थी, रटियो ऋप मोती हो॥

(मोती गु० व० ढ़ा० १ गा० ७)

५. जयाचार्य ने सं० १८९८ मे रचित संतगुणमाला में तव तक के दिवंगत साधुओ मे मुनि मोतीजी का स्मरण किया है :—

वाघावास नो मोती ऋष गुणधाम कै, छ मासी कीधी चूंप सूं जी।
संजम पाली सारघा आतम काम कै, ऋषिराय तणा प्रताप सूं जी॥

(संतगुणमाला ढ़ा० ४ गा० ४३)

जयाचार्य ने मुनि मोतीजी के गुण वर्णन की दो ढ़ालें वनाई। उनमें पहली ढ़ाल का रचनाकाल संवत् १८९७ है और स्थान कांकरोली है। दूसरी ढ़ाल का रचनाकाल सवत् १९०३ पोप वदि ९ शनिवार और स्थान जयपुर है।

दूसरी ढ़ाल की कुल १६ गाथाएं हैं। उनमे १ से ६ गाथाओ मे मुनि मोतीजी का और शेप ७ से १६ तक की गाथाओं मे मुनि शभुजी ११५ का वर्णन है।

इससे स्पष्ट है कि जयाचार्य ने दोनो मुनियों की स्मृति में इस ढ़ाल की रचना की। मुनि शंभूजी सं० १८९९ मे दिवंगत हो गए थे।

प्रकाशित पुस्तक 'कीर्त्तिगाथा' मे एक ढ़ाल तो है किन्तु दूसरी ढ़ाल भूल से छूट गई है।

६७।३।१० श्री तखतोजी (राणावास)

(दीक्षा सं० १८८५-१८८८ में गणवाहर)

रामायण-छन्द

राणावास निवास 'तख्त' का बने साधु शुद्धाशय से[1]।
तीन साल के वाद संघ से पृथक् हुए कर्मोदय से।
कुछ वर्षों के वाद हुए जव गण से दूर 'फतेह' तदा।
उनमें मिले, अलग हो उनसे एकाकी ही रहे सदा ॥१॥

अवगुण वहु शासन के वोले निविड़ पाप का वंध किया।
चंद दिनों में ही लकवे ने तन पर घेरा डाल दिया।
परिचर्या हित पैसे देकर रखा गृहस्थों ने नौकर।
दुःखित होकर वुरी तरह से मरे अन्त में रो रोकर[2] ॥२॥

१. तखतोजी मारवाड़ मे राणावास के वासी थे। उन्होंने सं० १८८५ में दीक्षा ली।

(ख्यात)

२. वे तीन साल लगभग सघ में रहे। फिर अशुभ कर्म के योग से सं० १८८८ में गण से पृथक् हो गये। सं० १८९० मे फतहचदजी (१०२) गण से अलग हुए तव वे उनके साथ हो गये। वाद मे उनसे भी अलग होकर अकेले घूमते रहे। भिक्षु-शासन के वहुत अवर्णवाद वोले। आखिर लकवे की वीमारी होने पर गृहस्थों ने उनकी सेवा के लिए प्रतिदिन के अढ़ाई पैसे देकर एक नौकर रखा। अंत में वे वुरे हवालो से मरे।

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ७१)

९८।३।११ श्री नगजी (देवगढ़)

(दीक्षा सं० १८८५-१८९५ मे गणबाहर)

रामायण-छन्द

डागा गोत्र देवगढ़-वासी 'नगजी' साधु बने सविधान[1]।
लेकिन अपनी कमजोरी से छोड़ दिया संयम का स्थान।
यती बने कुछ वर्षों तक तो रहे संघ से वे प्रतिकूल।
द्वेष भाव मिटने से क्रमशः स्वतः हो गये हैं अनुकूल ॥१॥

संतों के दर्शन करते थे और धारते चरचा-बोल।
मुनि स्वरूप को कहा एक दिन अपनी गांठ हृदय की खोल।
स्वामीजी की श्रद्धा मेरे रोम-रोम में रमी हुई।
है विश्वास न अन्य किसी का दृष्टि आप पर जमी हुई[2] ॥२॥

१. नगजी मेवाड़ मे देवगढ के वासी और गोत्र से डागा (ओसवाल) थे। उन्होने सं० १८८५ में दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

२. वे सयम का निर्वाह न कर पाने के कारण स० '१८९५ में संघ से पृथक् होकर यति वन गये। कुछ वर्षो तक धर्मसंघ के विमुख रहे। वाद मे क्रमशः द्वेप भावना मिट जाने पर अनुकूल हो गये। साधुओं के दर्शन करतत्त्व-चर्चादिक की धारणा करते। स० १९१६ मे मुनि श्री स्वरूपचंदजी के दर्शन कर उन्होंने कहा—'मेरे अंतरग में सम्यक्त्व अच्छी है। मैं आपके मत (तेरापथ) के सिवाय सवको मिथ्यात्वी मानता हू।'

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ७२)

९९।३।१२ मुनि श्री माणकचंदजी (ताल)

(सयम-पर्याय सं० १८८५-१९२५)

रामायण-छन्द

ताल ग्राम के वासी 'माणक' और गोत्र से थे मांडोत।
दीपां श्रमणी के लघु भ्राता हुए विरति से ओतप्रोत।
पिच्यासी की साल संयमी बनकर रमे साधना में[1]।
पापभीरु नय नीतिमान् ऋजु थे नैर्मल्य भावना में[2] ॥१॥

देख योग्यता जयाचार्य ने किया अग्रगामी उनको।
विचर २ कर ऋषिवर ने प्रतिबोध दिया बहुजन-जन को[3]।
बड़े तपस्वी हुए थोकड़े बडे-बड़े बहु कर फूले।
विविध अभिग्रह किये साथ में साहस-झूले में झूले[4] ॥४॥

दोहा

अनशन करके शेष में, सुयश चढ़ाया शीश।
कृष्ण अष्टमी पोष की, शतोन्नीस पच्चीस[5] ॥३॥

१. मुनि श्री माणकचंदजी मेवाड़ में ताल ग्राम के निवासी और गोत्र मे मांडोत (ओसवाल) थे। वे साध्वी श्री दीपांजी (६०) के छोटे भाई थे।

(ख्यात)

साध्वी श्री दीपांजी ने उनसे पहले सं० १८७२ मे दीक्षा स्वीकार की और वे तेरापंथ में विशेष योग्यता संपन्न साध्वी हुई।

माणकचन्दजी ने स० १८८५ में दीक्षा ग्रहण की। यद्यपि उनके दीक्षा वर्ष का ख्यात में उल्लेख नही है परन्तु उनके पहले की और बाद की दीक्षा सं० १८८५ की होने से उनका दीक्षा संवत् १८८५ ही लगता है।

२. मुनि श्री प्रकृति से भद्र, नीतिमान् और बड़े पापभीरु थे। (ख्यात)

३. वे सिंघाडबंध हुए, ऐसा ख्यात मे लिखा है। सेठिया संग्रह में उल्लेख है—'जयाचार्य ने जब मुनि श्री को अग्रणी बनाया तब उन्होंने निवेदन किया—आपकी सेवा मे रहने से मेरे विशेष लाभ है, फिर भी आप धर्म-प्रचार के लिए मुझे अलग भेजे तो मैं सहर्ष जाने के लिए तैयार हूं।' जयाचार्य ने उनके साथ मे दो सहयोगी साधु दिये। उन्होंने प्रार्थना की —'गुरुदेव ! मेरा काम तो एक साधु से ही चल जायेगा।' जयाचार्य उनकी स्वच्छ भावना व संतोष-वृत्ति से प्रसन्न हुए।

वे आचार्यप्रवर के आदेशानुसार कुछ वर्ष दो ठाणो से ही विचरे और अच्छा उपकार किया। उन्हे सूत्रों की गहन धारणा थी।

स० १९१३ मे उनका चातुर्मास तीन ठाणो से 'कोशीथल' मे था, ऐसा मुनि जीवोजी (८६) कृत स० १९१३ की चातुर्मासिक विवरण ढा० १ गा० ५ मे उल्लेख है।

सं० १९१७ के शेषकाल मे मुनि रतनजी (७४) ने अनशन किया तब उनकी सेवा मे चार संत थे, उनमे एक माणकचंदजी थे। सभी ने उनकी अच्छी सेवा की[1]।

४. मुनि श्री बड़े तपस्वी हुए। तप के साथ विविध अभिग्रह भी धारण करते। उन्होंने बहुत तपस्या की। उनके द्वारा किये गये बड़े थोकड़ों की तालिका ख्यात में इस प्रकार मिलती है :—

स० १९०८ मे उन्होने ७५ दिन का तप किया।
सं० १९०९ मे „ ९० „ „ ।

---

१. जीवराज(८६), माणक(९९) मुनि रे, खूम(१४५) पोखर(१६५) वर संत।
सेव करी साचे मन रे, रत्न तणी चित्त शान्त ॥
(रतन गु० व० ढ़ा० १ गा० २७)

सं० १९१० में उन्होने ९० दिन का तप किया।
सं० १९१२ में ,, ९० ,, ,, ।
सं० १९१३ मे ,, ७५ ,, ,, ।
सं० १९१४ मे ,, ९० ,, ,, ।
सं० १९१५ मे ,, ९० ,, ,, ।
सं० १९१७ मे ,, ७६ ,, ,, ।
सं० १९१९ मे ,, ७५ ,, ,, ।

कुल संख्या ७५/३ ७६/१ ९०/५ ।

सं० १९१३ मे उन्होंने जो ७५ दिन का तप किया वह कोशीथल चातुर्मास मे किया, ऐसा मुनि जीवोजी (८६) कृत उस वर्ष के चातुर्मासिक विवरण की ढ़ाल १ गा० ७ मे उल्लेख है।

शेष तप के स्थान प्राप्त नही हैं तथा इसके अतिरिक्त की गई तपस्या भी नही मिलती।

६. सं० १९२५ पोष वदि ८ को एक मुहूर्त्त के अनशन में उन्होने स्वर्ग-प्रस्थान किया, ऐसा ख्यात मे उल्लेख है।

शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ७३ से ७७ में उनके संबंध का ख्यात की तरह ही विवरण है।

१००।३।१३ मुनि श्री रामोजी (गुन्दोच)

(संयम पर्याय सं० १८८५-१९११)

लय—सत्य से बढ़कर······

राम के गुणग्राम से आराम सच्चा पा रहा।
राम के शुभ नाम से विश्राम अच्छा आ रहा ।।ध्रुव।।

मरुधरा गुंदोच वासी गोत्र लोढ़ा राम का।
मोह छोडा विरत हो सब ज्ञाति-जन धन धाम का।
साधु बनने से हृदय में हर्ष घन उमड़ा रहा ।।१।।

दोहा

सित छठ सावन मास की, पिच्चासी की साल।
श्रीजीद्वारा शहर में, चरण लिया खुशहाल[1] ।।२।।

लय—सत्य से बढ़कर······

थे बड़े विनयी विरागी और त्यागी उच्चतम।
धारते नाना अभिग्रह भावना से स्वच्छतम।
आर्जवादिक रश्मियों से तेज बढ़ता जा रहा ।।३।।

बन तपोधन त्याग तप की खोल दी लम्बी नहर।
धूप गर्मी में सही बहु शीत में ठंडी लहर।
दीर्घतर वृत्तांत तप का वीर रस टपका रहा ।।४।।

नवति एकाधिक हयन में शुरू एकांतर किये।
जय-पदारोहण दिवस से चरण आगे धर दिये।
निरन्तर स्वीकार बेले किये साहस धर महा[2] ।।५।।

दोहा

विहरण के संबंध का, मिलता कुछ उल्लेख।
सीखा तरना तारना, मुनिवर ने सविवेक[3] ॥६॥

लय—सत्य से बढ़कर······

विकट तप करते सदा पुरुषार्थ की लेकर गदा।
विचरते मुनि वख्तगढ़ में आ गये है एकदा।
रंग अनशन का अनोखा ही वहां पर छा रहा ॥७॥

रामायण-छन्द

शतोन्नीस ग्यारह की संवत् मृगसर विद नवमी आई।
पश्चिम रजनी में मुनि श्री के व्याधि अचानक हो पाई।
दस्तें लगी तीन जोर से दशमी को फिर दस्त, वमन।
बढ़ी वेदना तन मे उसको करते समता युक्त सहन ॥८॥

जयाचार्य उस समय पधारे मिले अठावन मुनि श्रमणी।
दर्शन देकर भाव चढ़ाते छवि छाई है मनहरणी।
महाव्रतारोपन आलोचन कर निःशल्य हुए मुनिवर।
किया पारणा छठ भक्त का चढ़े विरति के उच्च शिखर ॥९॥

दोहा

आजीवन अनशन किया, परिचय दिया वलिष्ठ।
लगे सुनाने जयगणी, मंगल चार वरिष्ठ ॥१०॥

रामायण-छन्द

गई मूहूर्त्त रात्रि दशमी की सवा प्रहर का ले अनशन।
राम गये है स्वर्ग-धाम में काम कर लिया सब पावन।
हेमराजजी मोदी ने की सेवा दशवे दिन साकार।
दिवस दूसरे मृत्यु-महोत्सव पूर्वक किया दाह संस्कार ॥११॥

दोहा

मुनि मोती व जवान ने, की सेवा दे ध्यान।
जाना उनके अंग को, अपने अंग समान ॥१२॥

भाग्य-वली ऋषि राम को, मिला सुगुरु संयोग।
धन्य तपो-मूर्धन्य को, कहते सबही लोग ॥१३॥

चुन-चुन गुण-सुमनावली, रची जीत ने ढाल।
सुन-सुन सरस पदावली, लाओ भाव रसाल ॥१४॥

१. मुनि श्री रामोजी मारवाड़ में गुंदोच (पाली के पास) के निवासी और गोत्र से लोढ़ा (ओसवाल) थे।

(ख्यात)

उन्होंने सं० १८८५ सावन शुक्ला ६ को आचार्य श्री रायचदजी द्वारा नाथद्वारा मे दीक्षा स्वीकार की।

संवत् अठारै पिच्यासीये, सावण सुदि छठ सार।
ऋष रायचंद महाराज रे, राम ऋष व्रत धार॥

(राम० गु० व० ढ़ा० १ दो० १)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ७८ में लिखा है कि उनकी दीक्षा सं० १८८८ पाली मे हुई। किन्तु जयाचार्य कृत उपर्युक्त ढाल मे दीक्षा संवत् १८८५ और सावन महीने का उल्लेख है इससे वह यथार्थ लगता है। आचार्य श्री रायचदजी का चातुर्मास भी उस वर्ष नाथद्वारा मे था।

२. मुनि श्री वड़े विनयी, त्यागी-विरागी, उच्चकोटि के तपस्वी और आत्मार्थी साधु हुए[1]।

उन्होंने वहुत वर्षो तक शीतकाल मे शीत सहा एव रात्रि के समय पछेवड़ी भी नही ओढ़ी। उष्णकाल मे आतापना लेकर कर्मो की विशेष निर्जरा की[2]।

उन्होंने उपवास से लेकर आठ दिनों तक की वहुत तपस्या की। वड़ी तपस्या की तालिका इस प्रकार है.—

मासखमण	४१	४२	४५
११	१	१	१

उक्त अधिकांश तप पानी के आधार से किया[3]।

---

१. विविध प्रकारे तप पवर, कीधो अधिक सनूर।
वैरागी त्यागी वड़ो, कर्म काटण महासूर॥
अधिक अभिग्रह आदर्यो, शीत उष्ण समभाव।
सुवनीता सिर सेहरो, निरमल तरणी नाव॥

(गु० व० ढा० १ दो० २, ३)

२. घणा वर्ष मुनि शीतकाल मे, पछेवड़ी परिहार।
आतापना लियै उष्णकाल मे, मन मांहि हरष अपार॥

(राम० गु० व० ढा० १ गा० ६)

३. उपवास छठ अठम दशम, छ सप्त तप दिन सार।
अठाई आदि सुतप अधिकेरो, कीधो है वोहली वार॥

ख्यात तथा शासनप्रभाकर मे उक्त ४१ और ४२ दिन की तपस्या का उल्लेख नही है।

जय सुयश ढ़ा० ४२ दो० ३ मे ४१ दिन की—तपस्या दो बार करने का— 'दिन इकतालिस बार बे, तप छुटकर बहु धार'। और गुणवर्णन ढाल में एक बार करने का उल्लेख है।

स० १८९१ मे उन्होने एकांतर तप चालू किया :—

संवत् अठारै एकाणुं धारचा, जावजीव लग जांण।
अंतर रहित एकांतर उत्तम, परिठावणियो पचखांण॥

(राम० गु० व० ढ़ा० १ गा० ५)

अत्यधिक आहार (जिसका परिष्ठापन करना पड़े) हो तो साधु उपवास में भी खा सकते है ऐसा उनके आगार रहता है परन्तु मुनि रामजी ने परिष्ठापन किये जाने वाले भोजन का परित्याग कर दिया।

उनके एकातर तप का क्रम लगभग १८ वर्षों तक चला।

सं० १९०८ माघ शुक्ला १५ को बीदासर मे जयाचार्य पदासीन हुए तब उन्होंने उस उपलक्ष मे आजीवन बेले-बेले तप स्वीकार कर लिया :—

संवत् उगणीसै नै आठे, छठ-छठ तप सुविचार।
जावजीव लग धारचा मुनीश्वर, महा सुदि पूनम सार॥

(राम० गु० व० ढ़ा० १ गा० ७)

उनके बेले-बेले की तपस्या का क्रम अन्त तक यानी (स० १९११) तीन वर्षों तक चला।

३. मुनि श्री के विहरण के सबंध मे इस प्रकार विवरण मिलता है :—

(क) सं० १८९४ मे मुनि गुलावजी (५३) ने ५ ठाणों से पुर चातुर्मास किया। उनके साथ मुनि रामजी, मुनि ईशरजी (६०), उदैरामजी (९४) और जीवराजजी (११३) थे। चातुर्मास के पश्चात् एक दिन मुनि गुलावजी शासन के विरुद्ध बोलने लगे। सतो के समझाने पर भी वे नही माने तब मुनि रामजी ने वहां से विहार कर नाथद्वारा मे ऋषिराय के दर्शन किये एव सारी स्थिति

इग्यारै मासखमण चित उजल, कीधा है अधिक उदार।
बहुल पणै तप उदक आगारे, आछ तणो परिहार।
इकतालिस दिन अधिक अनोपम, वलि तप दिन बयांलीस।
पैतालीस वलि किया पांणी रा, वर तप विश्वावीस॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० २ से ४)

निवेदित की। जय सुयश ढा० २४ मे इसका पूरा वर्णन है। उसमे मुनि रामजी से सबधित पद्य इस प्रकार है:—

भाई ईशर ऋषि गलगला थइ नै, घणुं वरज्यां रह्या वोलता तामो रे।
दूजै दिन वलि तिमहिज वोल्या, तव त्यांनै छोड़ी नै ऋषि रामो रें॥
विहार करि नें श्रीजीदुवारे, पूज्य दर्शण करी सुविचारो रे।
गुलाव तणा समाचार सुणाया, जद ऋषिराय जीत गुणकारो रे॥
(जय सुयश ढा० २४ गा० २, ३)

(ख) सं० १८९६ मे वे जयाचार्य के साथ थे। उस समय जयाचार्य ने अपने पास के दो संत मुनि श्री कर्मचदजी (८३) तथा रामजी को भेजकर आमेट चातर्मास कराया था।

ऋषि कर्मचन्द राम नै कांई, अम्वावती चौमास।
(जय सुयश ढ़ा० २६ गा० १३)

(ग) मुनि रामजी के अग्रगण्य होने का उल्लेख नही मिलता है पर ख्यात मे उल्लेख है कि उनके द्वारा एक दीक्षा मुनि माणकचदजी (१६१) 'देवगढ़' की सं० १९०७ वैशाख सुदि ६ को धरार में हुई इससे लगता है कि वे उस समय अग्रगण्य थे।

४. तप साधना-पूत मुनि श्री रामोजी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वखतगढ (मालवा) पधारे। वहां मृगसर वदि ९ की पश्चिम रात्रि को उन्हे तीन वार दस्त लगे। दसमी के दिन फिर दस्त लगने तथा वमन होने से शरीर मे वहुत अस्वस्थता हो गई। मुनि श्री ने समभावो से वेदना को सहा।

जयाचार्य सं० १९११ का रतलाम मे चातुर्मास सपन्न कर उन्ही दिनो वखतगढ पधारे। वहा लगभग ५८ साधु-साध्वियां सम्मिलित हो गये। मुनि रामोजी की शारीरिक स्थिति दुर्वल देखकर जयाचार्य ने उनको महाव्रतो का आरोपन करवाया। मुनि श्री ने सरल भावों से आत्मालोचन किया। दसमी के दिन उन्होंने वेले का पारणा किया था। उसी दिन उनकी भावना मे परम वैराग्य रस की धारा प्रवाहित हुई और जयाचार्य से अनशन करवाने के लिए निवेदन करने लगे। जयाचार्य ने फरमाया—'तपस्वी ! सथारे का काम वहुत कठिन है अतः इसके लिए शीघ्रता मत करो।' तपस्वी ने साहसपूर्वक कहा—'मेरा मन इतना दृढ है कि यदि छह महीने निकल जाएं तो भी चिंता की वात नही है।' इस प्रकार वार-वार आग्रह करने पर जयाचार्य ने उन्हें सागारी अनशन कराया। फिर जयाचार्य शौचार्थ पधार गये।

उस समय साध्वी श्री सरदारांजी साध्वी-वृ द के साथ मुनि रामोजी के दर्शनार्थ पधारी। उन्होने सुख-पृच्छा करके उनके साथ क्षमायाचना की और विविध

वैराग्य रस भरी बातें सुनाकर उनके भावों की श्रेणी चढाने लगी। तपस्वी चार शरणो का स्मरण करते-करते बार-बार अनशन करवाने के लिए कहने लगे। साध्वी श्री ने कहा—'गुरुदेव शौचार्थ से लौटकर आए तब आप अनशन कर लेना।'

इतने मे मुनि श्री को एकाएक ऐसा महसूस हुआ कि अब तो मेरी शक्ति क्षीण हो रही है तो उन्होंने तत्काल ऊंचे स्वर से आजीवन तीनों आहारो का त्याग कर दिया। कुछ समय पश्चात् जयाचार्य पधारे और उन्होंने सुना कि तपस्वी ने अनशन कर दिया है तो वे प्रेरणादायी वचनों से उनकी भावना को बलवती करने लगे। सध्या के समय जयाचार्य ने तपस्वी के पास विराज कर प्रतिक्रमण किया। तत्पश्चात् उन्हे शरणादि सुनाने लगे।

(राम० गु० व० ढा० १ गा० ८ से २२ के आधार से)

लगभग डेढ़ मुहूर्त्त रात्रि व्यतीत हुई कि मुनि श्री स्वर्ग-प्रस्थान कर गये। इस प्रकार जयाचार्य के सम्मुख स० १९११ मृगसर वदि १० को सवा प्रहर के अनशन मे मुनि श्री ने बखतगढ़ मे पंडित-मरण प्राप्त किया :—

सवत् अठारै वर्ष इग्यारे, मृगसर विद दशम तिथि सार।
आसरै दोढ़ मुहूर्त्त रात्रि गयां, मुनि पहुंतो परलोक मझार॥
सवा पोहर आसरै संथारो आयो, जावजीव नो जांण॥

(राम० गु० व० ढ़ा० १ गा० २३, २४)

'आर्यादर्शन' कृति मे उल्लेख है कि उन्हे चौविहार सथारा आया :—

तीन मुनि कियो काल रे, रामो सैहर गुंदोच रो।
छठ-छठ तप गुणमाल रे, चौविहार अणसण सुखे॥

(आर्यादर्शन ढा० ३ सो० ३)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ८१ मे स्वर्गवास तिथि मृगसर वदि ८ लिखी है परन्तु उपर्युक्त दशमी तिथि ठीक है।

हेमराजजी मोदी ने मुनि श्री की अंतिम दिन बडी तन्मयता से सेवा की[1]। मृगसर वदि ११ को श्रावकों ने उनका चरमोत्सव मनाया और दाह-संस्कार

---

१. हेमराज मोदी हद चित्त सूं, दशम दिन इकधार।
सेव करी अति तन मन सेती, अंत समै अधिकार॥

(राम० गु० व० ढ़ा० १ गा० २५)

किया[1]।

मुनि श्री मोतीजी 'छोटा' (११८) और जवानजी (१२५) आदि ने उनकी तन-मन से परिचर्या की[2]।

मुनि श्री बड़े भाग्यशाली थे जिससे उन्हे आखिर समय मे जयाचार्य का सान्निध्य मिला[3]।

५. जयाचार्य ने सं० १९११ फाल्गुन सुदि ९ रविवार को उज्जैन में मुनि श्री के गुणो की एक ढ़ाल बनाई। उसमे उनकी विविध विशेपताओं का चित्रण किया है। उसके कुछ पद्य इस प्रकार हैं —

राम ऋषेसर राम मुनिश्वर, ऋषि राम बड़ो सुखदायो।
राम ऋषि हृद सरल हीया नो, राम सुजश जगत छायो।
भजो नर राम राम ॥

शासण जमावण राम ऋषीश्वर, हरष मने हूंसीयार।
धर्म धुरंधर धोरी सरीखो, तपसी अधिक उदार ॥

राम जिसा तपसी इण आरे, विरला संत विमास।
अणसण आदरै पिण न चले गण थी, दीजै तस स्यावास॥

पद आराधक पाया मुनीश्वर, शासण आसताधारी।
इम सांभल शासण सनमुख, हुवै उत्तम नर-नारी॥
(राम० गु० व० ढ़ा० १ गा० १, २८, २९, ३७)

---

१. प्रात मडाण मोछव अति कीधा, देव विमाण ज्यू देख।
ए कार्य संसार तणां छै, धर्म तो जिन आज्ञा मे पेख॥
(राम० गु० व० ढ़ा० १ गा० २६)

२. सत लघु मोती जवान आदि दे, सेव करै चित्त साचै।
(राम० गु० व० ढ़ा० १ गा० १२)

३. भाग्य वली ऋप राम मुनिश्वर, जोग मिल्यो अति जुगतो।
साधर्मी दृष्ट नीत सुसखरी, भल सतगुरु केरो भगतो॥
(राम० गु० व० ढ़ा० १ गा० २७)

१०१।३।१४ मुनि श्री पूनमचंदजी (उज्जैन)

(संयम पर्याय १८८८-१८९०)

दोहा

वासी पुर उज्जैन के, पूनमचंद अमंद।
बंधु पुंज ऋषि योगसे, मिला विरति मकरंद ॥१॥

अठ्यासी की साल में, चरण लिया दे ध्यान।
संयम में रम के किया, समता रस का पान[1] ॥२॥

कर पाये मुनि साधना, केवल तेरह मास।
अनशन करके अंत में, पहुचे है सुरवास[2] ॥३॥

१. मुनि श्री पूनमचदजी पूर्व दीक्षित मुनि श्री पुंजोजी (८८) के भाई थे (ख्यात)। वे उज्जैन (मालवा) के निवासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से चंगाणी (वैंगाणी) थे। यह मुनि पुंजोजी के प्रकरण से प्रमाणित है।

मुनि पुंजोजी की विशेप प्रेरणा से पूनमचंदजी ने दीक्षा स्वीकार की :—

पूनमचद सहोदर साचो, तास परसादे जांणी।
संजम लीधो कारजसीधो, पूर्ण प्रीत पहिछांणी॥

(पुज० गु० व० ढ़ा० १ गा० ६)

उनकी दीक्षा स० १८८८ वीठोड़ा मे हुई।

(ख्यात)

ख्यात मे लिखा है—'पूनमचंद पूजाजी रो भाई १८८८ दीक्षा वींठोड़ा मे सं० १८९० सथारो,' इस शब्दावली के अनुसार शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ८२, संत विवरणिका तथा सेठिया-सग्रह् मे उनका स्वर्गवास वीठोढ़ा मे हुआ है किन्तु वह 'वीठोड़ा' शब्द स्वर्गवास सवत् के साथ न जुड़कर दीक्षा के साथ जुड़ता है अतः उनका दीक्षा-स्थान वीठोड़ा माना है।

२. मुनि श्री अनशनपूर्वक स० १८९० मे दिवगत हुए।

(ख्यात)

उन्होने १३ महीने चारित्र का पालन किया, ऐसा जयाचार्य रचित संत-गुणमाला ढ़ा० ४ गा० ३४ मे उल्लेख है।

पूजां ऋषि नो भाई पूनमचंद कै, मास तेरह चारित्त पालियो जी।
अणसण कर नै पायो परम आणंद कै, गुरु मिलिया पूज रायचंद ऋष जी॥

१०२।३।१५ श्री फतेहचंदजी (जयपुर)

(दीक्षा सं० १८८८-१८६० में गण बाहर)

रामायण-छन्द

जयपुर वासी फतेहचंदजी कुल सरावगी था विश्रुत।
साधु बने श्रीजीद्वारा में, सुगुरु-चरण में हो प्रस्तुत[1]।
दो वर्षों तक रहे संघ मे पर न दृष्टि अनुकूल रही।
छोड़ दिया सत्पथ प्रमादवश चिंतन सच्चा किया नहीं ॥१॥

गुप्त रोग से लगे बोलने अवगुण शासन के बहुतर।
दलबंदी में फंस मुनियों को लगे फटाने गुप चुप कर।
पता चला तब गुरु ने उनको उपालंभ सह दंड लिया।
लेखपत्र भी लिखा उन्होंने पर न हृदय को शुद्ध किया ॥२॥

पृथक् हुए फिर गण से गण की निन्दा करते जो अनुचित।
साधु-कल्प के बोलों को भी लगे समझने पाप सहित।
नदी उतरना और पंचमी जाना वर्षा में कर गौर।
रात्रि समय में मल मूत्रादिक परिष्ठापन हित जाना और ॥३॥

कीडी आदिक जीव प्रमार्जन और साधु का शुद्धाहार।
इत्यादिक बोलों में की सावद्य स्थापना बिना विचार।
जनता को भी भ्रान्त किया कर पुर-पुर में विपरीत प्रचार।
शिथिल हो गये स्वयं वाद में रहे घूमते चक्राकार[2] ॥४॥

कितने वर्षों बाद कुष्ट का रोग हो गया है भीषण।
हाथ पैर की गिरी अंगुलियां करने लगे दुगंछा जन।
अन्त समय में घोर वेदना पाकर पाये मरण अकाम।
गति विचित्र कर्मों की जिससे पाते बड़े-बड़े दुःख-धाम[3] ॥५॥

१. फतेहचदजी जयपुर (ढूढाड) के निवासी और जाति से सरावगी थे। उन्होंने स० १८८८ के सावन महीने मे स्त्री को छोड़कर आचार्यश्री रायचंदजी के पास नाथद्वारा मे दीक्षा ग्रहण की। (ख्यात)

२. फतेहचंदजी सं० १८९० पाली में गण से पृथक् हुए। उनका तथा उनकी विविध चेष्टाओं का विवरण इस प्रकार है।

सं० १८८८ के नाथद्वारा चातुर्मास मे फतेहचंदजी ने तृतीयाचार्य श्री रायचन्दजी के पास दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने सं० १८८९ का चातुर्मास आचार्य श्री के साथ उदयपुर किया। वाद मे साधुओ को फटाने लगे, मन में भेद डालने लगे, छुप-छुप कर गण के अवर्णवाद वोलने लगे। 'नीवडी' ग्राम मे स्पष्ट पता चलने पर उन्हे पूछा तव उन्होंने दोप के ७ वोल पाटी पर लिखकर वताये। उनका समाधान कर उन्हे निशक कर दिया। 'नीवडी' से तीन कोस पर एक ग्राम मे उन्हे प्रायश्चित्त दिया तथा उनसे लेखपत्र भी करवाया जिसमें उन्होने साधुओ के समीप अवगुण वोलने का, परस्पर दलवंदी करने का तथा अन्य साधुओ को साथ मे ले जाने आदि का त्याग किया एवं नीचे हस्ताक्षर कर दिया। यह संवत् १८८९ चैत्र शुक्ला १० शुक्रवार की वात है।

उसके पश्चात् स० १८९० का ऋषिराय के साथ पाली चातुर्मास किया। वहां भाद्रव महीने मे गण से अलग हुए। तीन दिनो तक अवगुण वोले, गण मे ३२ दोप निकाले व पन्ने मे लिखे। वाद में खारचीया ग्राम मे मुनि श्री जीतमल जी उनसे मिले पर उनकी समझने की भावना न देखी। उन्होने मुनि श्री जीतमलजी से कहा—'रामचरित्र तो केवल रोटी के लिए है। खुशालजी (३८) (भिक्षु शासन से वहिर्भूत) फिरते है वे वस्त्र के तेल नही लगाते, भगवान मे न तो ६ लेश्या कहते है और न उन्हे चूके हुए वतलाते है। साध्वियों को किवाड वद करने का निपेध करते हैं। एक रग के पात्र रखते है। 'किवाडिया' का आहार नही लेते लेकिन भीखणजी स्वामी के गण से अलग होकर उन्होंने नई दीक्षा नही ली।

फिर उसी खारचीया गाव मे फतेहचदजी ने मुनि श्री जीतमलजी से कहा—"मैं खुशालजी से मिला था। उन्होने मुझे कहा कि यदि आप 'आलोयणा' करें तो आपका और मेरा सभोग शामिल हो सके।' तव मैने कहा—'आप वडे हो जाना, मैं छोटा हो जाऊगा पर 'आलोयणा' दोनो को करनी होगी। परन्तु उन्होने स्वीकार नही किया।'

वाद मे गण से वहिर्भूत ताखूजी (९७) नाम के साधु अकेले घूमते थे, उनसे मिलकर फतेहचदजी ने नई दीक्षा ली। ताखूजी को वडा रखा और स्वय छोटे रहे। फिर धनजी (९२, गण से वहिर्भूत) के मिलने से तीन हो गये। वे थोड़े दिन रहकर वापस आ गये। फिर उदोजी (१०६, गण से वहिर्भूत) के मिलने से

तीन हो गये। एक दिन लाडनू में मुनि श्री भीमजी (६३) के साथ चर्चा करते समय फतेहचदजी को ताखूजी ने कहा—'तुम्हारा और हमारा आहार-पानी का सवंध नही है।' इस तरह ताखूजी थोड़े महीने साथ रहकर उनसे अलग हो गये। फिर उदोजी भी उनसे अलग हो गये। फिर देशनोक मे दूसरी वार उदोजी उनके साथ शामिल हो गये। एक चातुर्मास साथ मे करके फिर उदोजी अलग हो गये।

उस समय फतेहचदजी वीकानेर मे एक महीने रहकर ७ दिन शहर के वाहर रहे और फिर एक रात शहर मे रहे। देशनोक मे एक महीने रहने के पश्चात् २ महीने होने से पहले ही २ रात रहकर नागौर चले गये। मुनि श्री जीतमलजी भी नागौर पधारे। फिर वे लाडनू आये तव मुनि कोदरजी (८९) ने उनसे पूछा—'क्या तुम पुस्तकों का प्रतिलेखन एक वार करते हो,या दो वार ?' वे वोले—'एक वार।' (तव तक वे पुस्तको का प्रतिलेखन एक वार करते थे)। स० १८९२ का चातुर्मास उन्होंने चूरू मे किया। वहा उस वर्ष मुनि श्री भीमजी (६२) का चातुर्मास था। स० १८९३ का चातुर्मास उन्होने वीकानेर किया। वहा उम वर्ष मुनि श्री जीतमलजी का वर्षावास था। वहा उन्होने साधु के विहार के समय रास्ते मे हरियाली व पृथ्वीकाय लग जाए, उसमे दोष की प्ररूपणा की। पर 'नदी उतरने मे दोष है' ऐसा सुनने मे नही आया। उनके श्रावक राजरूपजी ने मुनि श्री जीतमलजी से कहा—'नदी उतरने मे पाप नही।' रास्ते मे हरियाली व पृथ्वीकाय लगने मे प्रत्यक्ष दोष ठहराया। और भी अनेक अनहोते दोष ठहराते गये। जैसे—वैयावृत्त्य कराने मे, कारण मे नित्यपिंड लेने मे, किवाडिया का आहार आदि लेने मे, रात के समय रोगान रखने मे, पुस्तको का प्रतिलेखन एक वार करने मे, अन्य क्षेत्र मे नित्यपिंड लेने मे, साध्वियो को किवाड वद करने मे और खुले पात्र मे पानी ठडा करने मे दोष ठहराया। साधु को सूत्र पढने के लिए वर्षों की मर्यादा का कथन किया गया है पर उससे पहले भी पढने में दोष नही है तथा निर्जरा में भाव ४ कहने लगे।

तेरापथ धर्म सघ से वहिर्भूत मुनि रोडजी (१०८) तथा नंदोजी (११०) स० १८९५ मे फतेहचदजी के शिष्य वने। रोडजी दो महीने लगभग उनके साथ रहकर अलग हो गये। वे स्वेच्छा से चूरू आये तव लोगो ने पूछा—'आप उनसे अलग क्यो हुए ?' उन्होने कहा—'फतेहचदजी नदी उतरने में तो पाप मानते ही हैं पर रात मे मूत्रादिक का परिष्ठापन करने मे भी पाप समझने लगे अत. मैं उनसे अलग हो गया।' फतेहचदजी को लोगों ने रोडजी के पृथक् होने के संवन्ध मे पूछा तव वे पूरा जवाव नही दे सके। जव उन्हे नदी उतरने मे तथा रात को मूत्रादिक परठने के विषय मे पूछा तव वे वोले—जवाव देने का विचार नही है। रोडजी के अलग होने के वाद एक महीने के भीतर ही नदोजी भी उनसे पृथक् हो गये। रामगढ मे मुनि मोतीजी (७०) ने रोडजी से पूछा—'फतेहचदजी नदी

उतरने तथा रात मे मूत्रादिक परठने के विपय मे उत्तर क्यों नही देते ?' रोडजी बोले—'अगर वे उत्तर दें तो उनका ठागा प्रकट हो जाय क्योंकि इन कार्यों मे वे पाप मानते हैं।' मुनि मोतीजी ने फतेहचदजी से पूछा—'रोडजी जो बात कहते हैं वह सत्य है या झूठ ?' फतेहचंदजी बोले—'मेरा कुछ भी कहने का विचार नही है।' फिर वैशाख वदि ७ के दिन नंदोजी चूरू आये। दसमी के दिन साधुओं के पास गये तव साधुओ के पूछने पर उन्होने कहा—'फतेहचंदजी को श्रद्धा आचार के पालन मे मैं जिस प्रकार जानता था उस तरह उन्हे नही देखा।' उनकी श्रद्धा के सवन्ध मे उन्होने जितने बोल कहे वे इस प्रकार हैं :—

१. साधु को रात मे रोगान नही रखना चाहिए।
२. पगचम्पी रूप वैयावृत्त्य नही करवानी चाहिए।
३. खुले (उघाडे) पात्र मे पानी ठंडा नही करना चाहिए।
४. चोलपट्टे का मुंह नही सीना चाहिए।
५. साधुओ के स्थान पर वस्तु नही लेनी चाहिए।
६. किवाडिया का आहार नही लेना चाहिए।
७. नदी उतरने मे पाप मानते हैं।
८. रात को मूत्रादिक परठने मे पाप मानते हैं।
९. वर्षा में पचमी समिति (शौच) के लिए जाना पाप है।
१०. साध्वियो को कपाट बंद नही करना चाहिए।
११. कीडीआदिक जीवो का प्रमार्जन करने मे पाप लगता है।
१२. शरीर का प्रमार्जन कर मच्छरादिक दूर करने मे पाप लगता है।
१३. साधु के कल्प के अतिरिक्त कार्य करने का त्याग होता है इसलिए नदी आदिक हिंसा के कार्य करने मे दोष नही लगता पर पाप लगता है।
१४. जिन कल्पी साधु मच्छरादिक नही उडाते यह उनकी उत्कृष्ट विधि है अत: उन्हें प्रमार्जन की अपेक्षा ही नही पड़ती। स्थविर कल्पी साधु कीडी मच्छरादिक उडाते हैं इसलिए प्रमार्जन भी करते हैं, इसका उन्हे दोष नही लगता पर पाप तो लगता है।

उन्होंने फिर कहा—'ढूंढिये नदी उतरने मे पाप समझते हैं, यह बोल तो उनका सही है। इस तरह तेरापंथी साधुओ के भी कितने बोल ठीक है।' नंदोजी ने कहा—'मैंने उनसे (फतेहचदजी) पूछा—'भीखणजी साधु हैं या असाधु ?' तव उन्होंने कहा—'लूंका, ढूंढिया और भीखणजी ने संयम का पालन किया हो तो सव ही साधु है।' फिर नंदोजी ने कहा—'वीतराग के पैर के नीचे जीव मरने से उन्हे पाप नही लगता।' वे बोले—'एक पाठ से सर्व हिंसा की स्थाप नही की जा सकती, यह पाठ केवलीगम्य कर देना चाहिए।' साध्वी को पानी में से वाहर निकालने मे पाप है। इन सव कार्यो को वे आज्ञा में नही मानते। साधु के कल्प

के कितने बोलों में पाप समझते है पर 'उनके अतिरिक्त त्याग है' इसलिए दोष नही लगता पर पाप लगता है ।

नदोजी ने उनके (फतेहचदजी) आचार मे भी बहुत अन्तर बताते हुए कहा—

१. धारण करने योग्य हाडी (मटकी) को सिद्धमुख गांव में परठकर उन्होंने तुम्बा लिया ।

२. एक हांडी पहले भी परठी ।

३. वैयावृत्य कराने में दोष कहते है पर विहार मे मैं परीक्षा के लिए वैयावृत्य करने लगा तब वे वैयावृत्य भी करवाने लगे ।

४. खुले पात्र में पानी ठण्डा नही करना—ऐसा तो कहते है पर पात्र को रोगान लगाकर खुला सुखाया जिससे ५-६ मच्छर मर गये ।

५. गोचरी मे वैराग नही देखा, ताक-ताक कर घरो में भिक्षा के लिए जाते है ।

६. भूरट (काटा) निकालते समय अयत्ना के लिए कहने पर कहते कि हमारे मन में जंचेगा वैसा करने का भाव है ।

इत्यादिक श्रद्धा आचार के अनेक बोलों मे शिथिलता देखी । और मैंने साधुओं के अवगुण बोले उसका कारण था कि मै आपसे तोड़ना चाहता था और फतेहचंदजी के साथ मिलना चाहता था । इसलिए मैने जो बात सुनी उसका बहुत उडाह किया । उस समय मुझे मौन ही रखनी चाहिए थी । मैं ऐसा जानता तो प्रारभ से इनके साथ जाता ही नही, पर ऐसा नही जाना । इत्यादिक बहुत बार कहा । फिर कहा—'अब मेरी भाषा के तथा पहले कही गई बातों के सामने मत देखना ।' ऐसे कहकर वे अपने स्थान पर गये ।

फिर नदोजी ने कहा—'मैंने फतेहचदजी से पूछा—'केवली रात्रि के समय मूत्रादिक का परिष्ठापन करते हैं या नहीं ?' वे बोले—'केवली की अत्यधिक शक्ति है अत सभवत. वे मूत्रादिक करते ही नही ।' फिर पूछा गया कि गुरु तो छदमस्थ और चेला केवली हो तो वह गुरु के मूत्रादिक का परिष्ठापन करता है या नही ? तब वे बोले नही ।

वैशाख वदि १४ के दिन नदोजी ने कहा—'पहले तो मेरा विचार उनके साथ मे रहने का था पर जब वे हाडी परठने का प्रायश्चित्त लेते है और नदी उतरने तथा मूत्रादिक परठने आदि बोलो को केवलीगम्य करते है तब साथ मे रहने की भावना कम हो गई । पर अब तो वे नदी उतरने आदि के सबध मे भी वही पाठ दिखाते और पाप बताते है अतः साथ मे रहना बहुत मुश्किल है ।'

सं० १८९६ का नदोजी ने फतेहचदजी के साथ रामगढ़ चातुर्मास किया । फिर उनको छोडकर 'मोड़ी', 'गोगुदा' आये । वहां वे वेष को उतार कर एवं

शिर पर पगड़ी वांध कर गृहस्थ वन गये। केरिया तथा महूडे आदि वेचकर आजीविका करने लगे।

युवाचार्य श्री जीतमलजी उदयपुर पधारे तव नदोजी का एक पत्र आया जिसमे 'तिखुत्तो' के पाठ से वदना व गुणग्राम लिखे थे। वाद मे जयाचार्य "आहेड" पधारे तव वे स्वय आये और वदना करके वोले—'मैं आपको साधु समझता हूं। भिक्षु स्वामी के साधुओ के प्रति मेरी आस्था है, उन्हे उत्तम पुरुष मानता हूं। पहले मैंने साधुओं के अवगुण वोले वह बुरा काम किया, उसके लिए मैं आपसे क्षमायाचना करता हूं।' इस तरह अपने अवगुण वतलाये और साधुओं के वहुत गुणग्राम किये। श्रावक उदयचदजी ने उन्हे पूछा—'नदी उतरने मे धर्म है या पाप ?' नदोजी ने कहा—'गृहस्थ नदी उतरता है उसमे पाप और साधु नदी उतरते हैं उसमें धर्म।'

यह वात आहेड गाम मे सं० १८९६ आपाढ़ सुदी ६/७ को हुई।

(प्रकीर्णक पत्र प्रकरण ३ पत्र सं० २४ के आधार से)

जय सुजश ढाल २० गा० १५ से ढा० २१ गा० ९ तक फतेहचंदजी के संवन्ध का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

स० १८९१ मे मुनि श्री जीतमलजी ने फलौदी चातुर्मास किया। वहां वीकानेर के श्रावको का एक पत्र आया जिसमें उन्होने लिखा था कि टालोकर फतेहचंदजी सं० १८९१ का चातुर्मास देशनोक करके इधर आयेंगे और लोगों को भैक्षव शासन के प्रति शकाशील वनायेंगे अत' आप यहां पर शीघ्र पधारे। उनकी प्रार्थना पर ध्यान देकर चातुर्मास के पश्चात् जय मुनि वीकानेर पधार गये। वहा फतेहचदजी लोगो के दिलो मे शंका डाल रहे थे। जय मुनि ने न्याय-युक्ति पूर्वक लोगों को समझाकर उनकी शकाएं दूर की।

उस समय फतेहचदजी के साथ गण से वहिर्भूत साधु उदैचदजी (१०६) थे। उन्होने फतेहचदजी को छोड़कर जयाचार्य के पास आकर दीक्षा ली, जिससे लोग वहुत आश्चर्यचकित हुए।

वहां पर टिकाव न होने से फतेहचदजी विहार कर नागौर आये। मुनि श्री जीतमलजी उनके पीछे-पीछे नागौर आये, १५ दिनो तक ठहरे। फिर फतेहचदजी भदाणा आये तव जय मुनि भी 'भदाणा' पधारे। जिस पोल मे वे ठहरे थे उसी पोल मे जय मुनि पधारे। उनसे पूछा—'पहले तुमने गण मे ७ दोप निकाले फिर सुनने मे आया कि वत्तीस दोप निकाले, अव फिर अधिक दोप वता रहे हो अतः इसका निचोड निकाला जाय।' तव उन्होने जय मुनि से कहा—'जैसे-जैसे दोप देखता हू वैसे-वैसे पन्ने मे लिखता जाता हू।' फिर जय मुनि ने उन्हे कोई वात पूछी। वे वोले वताने का विचार नही है। दूसरे दिन वे डेह गाव मे आये। जय मुनि भी वहां पधारे। वे वहां कुछ दिन तक ठहरे और जय मुनि 'पानी से पहले

पाल बांधनी चाहिए' की कहावत के अनुसार पहले ही लाडनू पधार गये। उन्होंने सोचा—फतेहचंदजी लाडनू जाकर कहीं सरावगी लोगों को भ्रांत न कर दें। लाडनूं मे उस समय तक लालचंदजी पाटनी आदि के चन्द्रभाणजी की श्रद्धा थी। जय मुनि ने उन्हे समझाकर तेरापंथ की गुरु धारणा कराई। बाद में फतेहचंदजी लाडनूं आये पर उनका प्रयास सफल नही हो सका। उन्होंने लालचंदजी पाटनी से पूछा—'आप अपने पहले के गुरु (चन्द्रभाणजी) को क्या समझते है?' वे बोले —'जैसे जय मुनि समझते है वैसे ही मैं समझता हू।' इस स्पष्टोक्ति से उनकी आशा बिल्कुल टूट गई और वे दो रात वहा रहकर चूरू की तरफ विहार कर गये। फिर जय मुनि भी चूरू पधारे और लोगो को वस्तु स्थिति की जानकारी दी जिससे वहां पर भी उनके पैर नही टिक सके।

गण के कई टालोकर फतेहचंदजी के साथ शामिल हुए पर एक भी नही टिक सका।

जयाचार्य ने एक गीतिका—'टालोंकरो की ढाल' बनाई। उसके लगभग दो सौ दोहे और गाथाए हैं। उसमे फतेहचदजी द्वारा कथित बोलो का सैद्धान्तिक व मौलिक तर्कों से समाधान किया है।

३. कई वर्षों के बाद उनके शरीर मे भीषण कुष्ठ का रोग हो गया, जिससे उनके हाथ पैरों की अंगुलियां सडित-गलित हो गई। पीप आदि मे इतनी बदबू आती कि लोग देखकर दुगंछा करने लगे। अन्तिम समय मे भयकर वेदना हो गई। आखिर वे सं० १९१९ फतेहपुर मे दुःख पूर्वक मरण प्राप्त हुए।

(ख्यात)

१०३।३।१६ मुनि श्री गुलहजारीजी (नगुरा)

(संयम पर्याय सं० १८८८-१९३४)

लय—वंदना आनन्द……

गुलहजारी तपोधन का तेज शिखरों पर चढ़ा।
चमत्कारी तपोवल से सौगुना गौरव वढ़ा ॥ध्रुव०॥

प्रान्त हरियाणा पुराना ग्राम 'नगुरा' आपका ।
अग्रवाला रामधनजी नाम विश्रुत तात का।
पांच बांधव में वड़े थे नौदराम कुलाग्रणी।
गुलहजारी संग चूरू गये वन धुन के धनी ॥१॥

भ्रात दोनों लगे करने नौकरी स्थायी वहां।
भिक्षु गण के साधुओं का योग मिल पाया जहां।
रम गया वैराग्य दोनों वन्धुओं के हृदय में।
दो जगह दीक्षित हुए हैं अभ्युदय के समय मे ॥२॥

नवीन-छन्द

स्थानकवासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे उनके परिवारी।
जिससे ज्येष्ठ सहोदर ने ली दीक्षा उनमें कर तैयारी।
पर अवरज ने किया सुनिर्णय तेरापंथ में होना दीक्षित।
वीकानेर शहर में 'जय' के दर्शन कर अनुनय किया उचित ॥३॥

मुनिवर ! आप पधारे दिल्ली तारें मुझको भव सागर से।
विहरण किया उधर जय मुनि ने आज्ञा मंगवाकर गुरुवर से।
चूरू में आकर के उनको दी संयम श्री शिवकी साई।
अठ्यासी की साल विक्रमी तिथि मृगसर सित दशमी आई' ॥४॥

रामायण-छन्द

सर्वप्रथम यह हरियाणा की गण में दीक्षा हो पाई।
सर्वप्रथम यह जय मुनि कर से मुनि की दीक्षा हो पाई।
सर्वप्रथम फिर उसी वप में हरियाणा का स्पर्श किया।
सर्वप्रथम कर दिल्ली पावस जय ने अच्छा सुयश लिया ।।५।।

दोहा

नव दीक्षित मुनि का प्रथम, पावस जय के साथ।
सस्कारो में साधु के, ढलते है दिन रात[२] ।।६।।

किंतु हुआ कुछ समय से, सशय गर्भित चित्त।
जागृत हुए विवेक से, लेकर प्रायश्चित्त[३] ।।७।।

लय—वंदना……

साधनारत हो सतत गुरु शासना में जी रहे।
ध्यान से अध्ययन कर-कर ज्ञानमय रस पी रहे।
आगमों के विज्ञ अच्छे थोकड़े वहु जानते।
निपुण चर्चा वात मे धृतिमान साहसवान थे ।।८।।

लिखे लेखक वन हजारों पत्र अपने हाथ से।
सफल पल-पल कर रहे हो दूर विकथा वात से।
योग्यता से अग्रणी पद दिया गुरु ने गौर कर।
विचरते उपकार करते घूमते पुर-पुर नगर ।।९।।

प्रान्त हरियाणा प्रमुख में लौ लगाई धर्म की।
दिलाई गुरु-धारणा जो नींव मौलिक-मर्म की[५]।
वनाये हैं सुलभ वोधिक और श्रावक वहुततर।
हाथ से उन्नीस जन को किया दीक्षित यत्न कर[६] ।।१०।।

तपस्या में जुड़े ग्यारह तक चढ़े है ऊर्ध्वतर।
किये एकान्तर शुरू दो नवति वत्सर में प्रवर।
वर्ष दो चालीस लगभग चला क्रम ताजिन्दगी।
विरति की वर्चस्विनी नवज्योति मानस में जगी[७] ।।११।।

खाद्य संयम तो बड़ा ही रखा चौदह साल तक।
द्रव्य ग्यारह पारणे में, नहीं वे भी रस परक।
सुन अतुल आश्चर्य होता कांपता दुर्वल मनुज।
धन्य उनकी साधना को धन्य उनका वल तनुज ॥१२॥

सोरठा

झोंक दिया पुरुषार्थ, कर्म निर्जरा के लिए।
सत्प्रयत्न से सार्थ, संयम-जीवन कर लिया[८] ॥१३॥

दोहा

साधक फक्कड़ वृत्ति के, थी अति प्रकृति कठोर।
निर्भयता सह स्पष्टता, था वाणी में जोर ॥१४॥

मधुर कटुक संस्मरण कुछ, प्रेरक शिक्षा रूप।
प्रस्तुत करता वस्तुतः, भरता भाव अनूप ॥१५॥

कृपापात्र ऋषिराय के, पाये कितनी छूट।
हरियाणा का परगना, स्पर्शो चारों कूट ॥१६॥

अगर अपेक्षा हो अधिक, तो दे दीक्षा आप।
रख सकते हैं पास में, सम्मति मेरी साफ[९] ॥१७॥

दिया अनुग्रह से भरा, जय ने उनको पत्र।
संघ संघपति प्रेम से, प्रमुदित अति गण छत्र[१०] ॥१८॥

वैठे-वैठे वंदना, की भाई ने एक।
श्रावक साढे तीन हैं, कहा आपने देख" ॥१९॥

सामायिक में क्या किया? वैठा ज्यों असहाय।
क्या रोता था वाप को, क्यों न किया स्वाध्याय" ॥२०॥

'हियाफूट' ऐसे नहीं, ठीक वोल दे ध्यान।
मिथ्या दुष्कृत आप ले, मेरी सहज जवान" ॥२१॥

हो न सकेगी गोचरी, विना उचित व्यवहार।
यौक्तिक वल से दान के, डाले सत्संस्कार[१४] ॥२२॥

रामायण-छन्द

झूठा लाछन मूर्ख ! दे रहा संतों पर जो वहुत खराव।
पर न जानता ऐसे नर का रुक जाता वहुधा पेशाव।
सत्य वाक्य निकला मुनिवर का घोर वेदना वह पाया।
क्षमा मांगने से फिर वापस मूलभूत स्थिति में आया ॥२३॥

दोहा

सहता वच्चा भैंस का, शीतकाल में शीत।
क्या तूं उनके गा रहा, मिथ्या गौरव गीत ॥२४॥

की मुनि की अवहेलना, पाया फल तत्काल।
आने से फिर शरण में, मिटी व्याधि विकराल[१५] ॥२५॥

नवीन-छन्द

घाटा तेरे आज हजारी ! है डेढ लाख का सौदे में।
हो सकता कल वड़ा मुनाफा लाखों रुपयों का सौदे में।
पर न छोड़ना घवरा करके मुनि-संगति में आना जाना।
वर-दाता की तरह आपका मिल गया वचन सोलह आना[१६] ॥२६॥

दोहा

अन्तिम पावस काल में, डालगणी थे साथ।
योग कुदरती मिल गया, वनी अलौकिक ख्यात[१७] ॥२७॥

जय के पदाभिषेक पर, गीति वनाई एक।
लगता जिससे आपने, ढ़ालें रची अनेक[१८] ॥२८॥

लय—वंदना आनंद······

वर्ष छह चालीस पाली चरण की पर्याय कुल।
सत् क्रिया से सुकृत धन का कर लिया संचय विपुल ॥

मिल रहे कुछ आपके उल्लिखित चातुर्मास हैं।
शेष में नौ साल चूरू में किया स्थिरवास है[१९] ॥२९॥

स्व-पर का कल्याण करके लक्ष्य पूरा कर लिया।
तपोबल से संघ का ऊंचा सितारा कर दिया।
अन्त में दो दिवस अनशन आ गया सागार है।
अष्ट प्रहरी निरागारी, किया फिर धृति धार है ॥३०॥

दोहा

शतोन्नीस चोतीस की, विद बारस आसोज।
चूरू से सुरपुर गये, भर भावों में ओज[२०] ॥३१॥

गुण वर्णन की मिल रही, ढालें बहुत रसाल।
विवरण कुछ ख्यातादि में, लो नवनीत निकाल[२१] ॥३२॥

विघ्नहरण मंगलकरण, भव जल तरण निकाम।
स्मरण तपोधन का करो, सुबह शाम ले नाम ॥३३॥

१. मुनि श्री गुलहजारीजी हरियाणा प्रान्त में नगुरा के निवासी और जाति से अग्रवाल थे। उनके पिता का नाम रामधनजी और माता का 'कडिया वाई' था :—

देश हरियाणो सवमें दीपतो, गांव 'नगुरो' भारी।
पिता रामधन पुरुषां में उत्तम, कडिया मात उदारी॥
(श्रावक लिछमणजी कृत-गुण व० ढा० ५ गा० १)

श्रावक लिछमणजी द्वारा रचित ढा० १ गा० १, ढा ३ गा० १ तथा शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ८४ मे उनका गांव ऊमरा लिखा है। ख्यात मे नगुरा का ही उल्लेख है।

दो गावो का उल्लेख होने से लगता है कि गुलहजारी का जन्म ऊमरा मे हुआ हो और फिर उनके परिवार वाले नगुरा में रहने लगे हो।

ऐसा सुना जाता है कि गुलहजारी आदि पांच भाई थे। उनमें नौंदरामजी सवसे वड़े थे। नौदरामजी और गुलहजारीजी चूरू मे किसी के यहां नौकरी किया करते थे। उनके परिवार वाले स्थानकवासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे जिससे गुलहजारीजी ने पहले युवावस्था मे उनकी श्रद्धा स्वीकार की थी। वाद मे आचार्य श्री रायचदजी स० १८८६ के शेगकाल मे चूरू पधारे तव तेरापथ की गुरु-धारणा ग्रहण की ऐसा ज्ञात होता है :—

गृहस्थ पणै जोवन में समकित, वाईस पंथ्यां री धारी।
अव मिलिया गुरु रायचंद ऋषि, तेरापंथी सुखकारी।
भीखणजी री सरधा भारी, तपसी गुलहजारीजी भारी।
(गु० ढा० १ गा० ३)

स० १८८७ मे मुनि श्री जीतमलजी का चूरू चातुर्मास था। उसके वाद भी अनुमानत. साधु-साध्वियो का चूरू मे जाना हुआ हो। उनके सपर्क से दोनो भाइयो के दिल मे वैराग्य भावना उत्पन्न हुई। वड़े भाई नौंदरामजी के पारिवारिक जन स्थानकवासी होने से उन्होने स्थानकवासी सम्प्रदाय मे दीक्षा ली, परन्तु गुलहजारीजी ने तेरापंथ के मौलिक सिद्धान्तो को अच्छी तरह समझ कर तेरापंथ मे दीक्षित होने का निर्णय किया।

सं० १८८८ मे मुनि श्री जीतमलजी का चातुर्मास वीकानेर में था। वहां हरियाणा के मुमनचंदजी के साथ गुलहजारीजी ने जय मुनि के दर्शन किये और दिल्ली की तरफ पधारने की विनयपूर्वक प्रार्थना की। ऐसा भी कहा जाता है कि गुलहजारीजी ने जयाचार्य से निवेदन किया—'यदि आप दिल्ली की तरफ पधारें तो मेरा दीक्षा लेने का विचार है।'

जय मुनि ने मधुर वचनों द्वारा उन्हे आश्वासन दिया और चातुर्मास संपन्न

होने के पश्चात् दिल्ली में चातुर्मास करने की आज्ञा के लिए मुनि कोदरजी (८९) को मेवाड़ मे विहरमान आचार्य श्री रायचदजी के पास भेजा।

स्वय जय मुनि ४ साधुओं से चूरू पधारे। वहा उन्होंने स० १८८८ मृगसर शुक्ला १० के दिन गुलहजारी को दीक्षा प्रदान की :—

तिहां मुमनचंद नें गुलहजारी, हरियाणा देश ना दोय।
जय दर्शन कर दिल्ली नीं अरजी, कीधी युक्ति विनय करी जोय॥

जद कोदरजी तपसी नै मेल्या, ऋषिराय समीपे सुजोय।
दिल्ली चौमासा री आज्ञा लेवा नैं, देश मेवाड़ में अवलोय॥

ऋषि जीत चूरू आय मृगसर सुद में, वारु दशम दिन अवधार।
गुलहजारी नैं दीक्षा दीधी, धुर शिष्य थया श्रीकार॥

(जय सुजश ढ़ा० १४ गा० ६ से ८)

गुलहजारी गुण आगला रे, अग्रवान्न देश हरियाण।
गाम नगुरा ना वासिया रे, जीत हस्ते दीक्षा इठ्यासीये गहाण॥

(गु० व० ढ़ा० ९ गा० १)

उन्होंने अनुमानतः पत्नी वियोग के पश्चात् दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री जीतमलजी चूरू से विहार कर 'बिसाऊ' पधारे तब मुनि कोदरजी आचार्य श्री से दिल्ली की तरफ जाने का आदेश लेकर आ गये।

२. मुनि श्री गुलहजारी की दीक्षा हरियाणा प्रान्त की सर्वप्रथम दीक्षा थी एव मुनि श्री जीतमलजी के हाथ से साधुओ की यह सर्वप्रथम दीक्षा थी। उसी वर्ष मुनि श्री जीतमलजी का सर्वप्रथम हरियाणा प्रदेश मे पदार्पण हुआ और स० १८८९ का दिल्ली मे चातुर्मास हुआ। इस सदर्भ मे हरियाणा से प्रकाशित पत्रिका (स० १९७५ नवम्बर) मे निम्नोक्त उल्लेख है :—

हरियाणा प्रान्त के कुछ धर्मानुरागी बधुओ के दिल मे धर्म की जिज्ञासा पैदा हुई। तब उन्होने 'तुषाम' में कालवादी साधुओ से सपर्क किया। उन्होने धर्म की सही जानकारी के लिए तेरापंथ के तृतीयाचार्य रायचदजी के दर्शन का सकेत दिया।

कुछ दिनो के बाद हांसी निवासी श्री घासीरामजी (कोथ, कापडा वाले लालमन परिवार के लाला माणकचंदजी के सुपुत्र और श्री रेढचद के भाई) तथा मामनचंदजी (ऊमरिया परिवार के श्री हरसुखराय के पुत्र व अजायबसिंह के पिता) आदि भाइयो ने ऊंटों की सवारी कर कई दिनो के पश्चात् आचार्य श्री ऋषिराय के संभवत. सं० १८८७ के बीदासर चातुर्मास में दर्शन किये। तेरापथ धर्म सघ की रीति-नीति, व्यवस्था और आचार-विचार को देखकर वे अत्यधिक

प्रभावित हुए। उन्होने अनेक विषयों पर वातचीत कर अपनी शकाओं का निवारण किया। उन्हे बहुत मानसिक सतोष मिला। अभूतपूर्व आनद की अनुभूति होने लगी। उनके हृदय मे दृढ विश्वास हो गया कि ये सच्चे त्यागी साधु है, और ये ही हमारे आत्म-कल्याण के लिए प्रेरक वन सकते है।

अत मे उन्होने हरियाणा मे साधुओ को भेजने के लिए विनती की तव आचार्यवर ने फरमाया—'समय आने पर मुनि जीतमलजी तुम्हारे वहा जायेंगे।'

मुनि श्री जीतमलजी (भावी आचार्य) शरीर से कुछ दुवले पतले थे। मामनचदजी आदि उनका नाम सुनकर कुछ ऊहापोह करने लगे। सोचा—वात कुछ वनी नही। परस्पर विचार कर उन्होने ऋषिराय से कहा—'महाराज! वहां पर तो किसी अच्छे प्रभावशाली साधु को भेजें।' इस पर आचार्यप्रवर ने फरमाया—'हमारे सघ मे इससे वढकर कोई विद्वान् साधु नही है।' यह सुनकर उन्होने कहा—'महाराज! जैसा आप उचित समझे वह ठीक है।' वे वापिस हांसी आ गये।

उस वर्ष मुनि श्री जीतमलजी का दिल्ली पधारना नही हुआ। उन्होंने सं० १८८८ का वीकानेर चातुर्मास किया। उसके वाद वे चूरू पधारे। वहां मुनि गुलहजारी को दीक्षित कर राजगढ के रास्ते से हरियाणा में प्रवेश किया। जयमुनि उस समय राजगढ मे आठ दिन विराजे। वहा कालवादियो के पक्के श्रावक वालकरामजी अग्रवाल से चर्चा कर उन्हे समझाया फिर ऊमरा में १४ दिन, हांसी मे ११ दिन, जमालपुर मे ७ दिन और भिवानी में १३ दिन रहे। वहां दादरी, झज्जर, फरूकनगर और गढी होते हुए दिल्ली से एक कोश दूर पहाडी गाव मे पधारे। फिर दिल्ली मे सं० १८८९ का चातुर्मास किया। हरियाणा के सर्वप्रथम और उसी वर्ष दीक्षित मुनि श्री गुलहजारीजी भी मुनि श्री के साथ थे।

३. साधक जव तक छद्मस्थ रहता है तव तक उसके जीवन मे उच्चावच भाव भी आ जाते है। लेकिन जो जागरूक होते है वे अपनी साधना को कायम रखते हुए आत्मा की सुरक्षा कर लेते है। मुनि गुलहजारीजी ने स० १८८८ में दीक्षा लेकर स० १८८९ का चातुर्मास मुनि श्री जीतमलजी के साथ दिल्ली किया। मुनिश्री ने आचार्य श्री ऋषिराय के मेवाड़ मे दर्शन किये तव 'डीगी' गाव में मुनि गुलहजारीजी के शका पड़ गई। तव उन्होने आचार्य श्री रायचदजी से अपनी इच्छा से हर्ष सहित वार-वार कहा कि आप मुझे आजीवन तेले-तेले तप का तथा पारणे मे छहो विगय खाने का त्याग करवा दीजिए। आचार्य श्री ऋषिराय ने उन्हे उक्त त्याग करवा कर फरमाया—'कदाचित् ये त्याग निभते न दीखे, टूटते दीखें तो आचारांग सूत्र में जो कहा है वैसे करना।' यह भी आज्ञा दी।

बाद मे जब शका मिट गई तब इस प्रकार आज्ञा दी—"जब तक सघ मे साधुपना समझें, दोप की स्थाप न जाने, अच्छे साधु मानें तब तक पहले किये गये त्यागो की आज्ञा है, अर्थात् उपर्युक्त त्याग लागू नही है।' और जिस दिन गण मे साधुपना न समझें, दोष की स्थाप जानें, उस दिन से जीवन पर्यन्त छहो विगय खाने का त्याग है तथा साथ-साथ तेले-तेले की तपस्या करना अनिवार्य है। अगर तेले से अधिक तप करे तो भी छहो विगय के त्याग तो यावज्जीवन के लिए है। जबान से यह भी न कहना कि मैं गण में था तब मेरे त्याग था। अब गण से बाहर होने के बाद उक्त त्याग नही है। ऐसे कहने का भी जिन्दगी पर्यन्त त्याग है। कदाचित् कर्म योग से गण के बाहर निकले तो अन्य साधुओ को साथ मे ले जाने का त्याग है। गण के होते अनहोते अवर्णवाद बोलने का त्याग है। अगर सघ मे रहते हुए किसी बोल मे शका पड़े तो भी गण के साधुओ को असाधु नही समझना। उस बोल को जिस तरह साधु समझे उसी तरह प्रतीति करके गण मे रहते हुए पूर्वोक्त (तेले-तेले तप तथा पारणे मे छहो विगय के त्याग) नियमो का पालन करना। अन्य साधुओं को भी उनकी सेवा करना। यदि सहजतया संदेह पड़े, पर आत्मा मे विश्वास हो, गण के साधुओ को अच्छे समझे, अपनी बुद्धि (समझ) मे ही स्खलना जानें तो पूर्वोक्त त्यागो का प्रतिबन्ध नही है। अपनी इच्छा से पूर्वोक्त त्यागों का पालन करे तो आपत्ति नही।

किसी बोल की शका पड़े तो विश्वास रखना। जिस सिंघाडे मे रहे उसके अधिकारी को कहे, किन्तु अन्य साधु या गृहस्थ के सम्मुख कहने का आजीवन त्याग है। कोई बोल न बैठे तो केवली पर छोड़ दे पर उस बोल का जिम्मेदार न बनना। ये प्रत्याख्यान अनन्त सिद्धो की तथा पंच परमेष्ठी की साक्षी से जीवन पर्यन्त है। सं० १८८६ पोष वदि।

लेखक गुलहजारी—ऊपर लिखा हुआ सही है। ये त्याग मैंने मेरे मन से हर्ष सहित किये है। (प्रथम लेखपत्र की मूल प्रतिलिपि के आधार से)

उक्त लिखित रावलियां मे किया था।

कुछ महीनो बाद भिक्षु स्वामी में तथा उनके साधुओ मे साधुत्व की शका पड गई, जिससे गुलहजारी ने गण से आहार पानी का सबध विच्छेद कर लिया। सात दिन गण से अलग रहकर वापस सीहावास गांव मे मुनि कर्मचंदजी (८३) के पास स० १८८६ चैत्र शुक्ला १ को लिखित करके सघ मे सम्मिलित हुए। मुनि श्री कर्मचदजी आदि ने वहां से विहार कर वैसाख कृष्ण १३ को अजार ग्राम मे आचार्य श्री रायचंदजी के दर्शन कर सब समाचार सुनाये। आचार्य श्री ने मुनि गुलहजारीजी से पूछा—'पहले तुमने सघ से सबन्ध विच्छेद किया, फिर वापस गण में शामिल हुए। पहले भिक्षु स्वामी तथा साधुओं मे अप्रतीति हुई, फिर प्रतीति हुई। तो क्या भिक्षु शासन मे पहले स्खलना थी या अब स्खलना

है ?' उन्होंने कहा—संघ जिस प्रकार पहले निर्मल था उसी तरह अव भी है, मेरे ही कर्मो का दोप है जिससे संघ के प्रति अविश्वास पैदा हुआ। इत्यादि प्रश्नोत्तरों के वाद लेखपत्र के अन्त मे लिखा है—अव मुझे भीखणजी स्वामी तथा साधुओं के प्रति पूर्ण आस्था है। पहले मेरे मतिभ्रम हो गया था। अव सन्मति आने से वापस दृढ निष्ठा हो गई है। भविष्य मे फिर कभी शंका पड़ने पर आत्म-कल्याण करने का विचार है पर तोड़-फोड करने का विचार नही। आस्था मिटाने का भाव नही। स० १८८६ वैशाख वदि १३ वुद्धवार।

हस्ताक्षर गुलहजारी, ऊपर लिखा हुआ सही है, मेरे मुख से कहलाकर लिखा है। (द्वितीय लेखपत्र की मूल प्रतिलिपि के अनुसार कुछ उद्धृत अंश)

इसके वाद सं० १८९० माघ वदि ५ वुद्धवार को मुनि गुलहजारीजी ने आचार्य श्री के हृदय में पूर्ण विश्वास पैदा करने के लिये सहर्ष अपनी इच्छा से तीसरा लेखपत्र लिखा है। उसमे उन्होने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक शुद्ध एवं सरल दिल से भाव भरे उद्‌गार व्यक्त किये है। आत्मार्थिता की दृष्टि से वड़े-वड़े संकल्प करने की सतोले शव्दो में भावना व्यक्त की है। आखिरी पंक्ति है—
"मर खपणो पिण सूंस न भांगणा।"

इसके पश्चात् मुनि श्री गुलहजारी सघ एवं सघपति के प्रति मेरु पर्वत की तरह अडिग हो गये। उनका साधक जीवन उत्तरोत्तर प्रगति के शिखर पर चढता गया।

४. मुनि श्री संयम मे लहलीन होकर आचार्यप्रवर की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन का निर्माण करने लगे। उन्होने आगम, वोल-थोकड़े एवं विविध चर्चाओ की जानकारी कर अच्छी योग्यता प्राप्त की। लिपिकला में विकास कर हजारो पत्र लिखे। वे वड़े साहसिक, पुरुपार्थी और उत्कट तपस्वी हुए'। (ख्यात)

---

१. सेव करी ऋपि जीत की, सीख कला अभ्यास।
आज्ञा विलसत गुरु तणी, मन मे अधिक उल्लास।
साधपणो पालै निर्मलो, निर्मल चारित नेम।
मन लागो शिव रमणी थकी, परहरियो सव प्रेम॥
(गु० ढा० ६ गा० ४,५)

साधां मांही साध शिरोमणी, ज्ञान ध्यान हितकारी।
श्री जिन वचन रुच्या हृदय मे, साची वुद्ध विचारी।
भला हुआ पर उपगारी तपसी, गुलहजारीजी भारी॥
(गु० व० ढ़ा० १ गा० २)

५. आचार्य श्री रायचंदजी ने मुनि श्री का सिंघाडा किया। संवत् प्राप्त नहीं है। सर्वप्रथम उनके हाथ की दीक्षा सं० १८९८ की मिलती है। इससे लगता है कि उससे पूर्व वे अग्रणी हो गए थे।

ऋषिराय ने उनका स० १९०६ का चातुर्मास हरियाणा मे फरमाया। वे सर्वप्रथम ऊमरा होते हुए हासी पधारे। वहां उन्होंने घर-घर एवं दुकान-दुकान पर जाकर धर्म का प्रचार किया और लोगो को तेरापंथ का रहस्य समझाया। जव गुरुधारणा करने का प्रश्न सामने आया तव ऊमरा तथा हांसी वालो ने कहा—'मुनि श्री ! पहले आप सिसाय वालो को समझा कर तेरापथी वनायें तो हम भी आपके आदेश का पालन करेंगे।, मुनि श्री वहां से विहार कर सिसाय पधारे। लोगों को तेरापथ धर्म की जानकारी दी। लोगो ने कहा—'हम तेरापंथी वन तो जायेंगे पर वाद में हमारी सभाल कौन करेगा? आपकी सम्प्रदाय के साधु तो इस प्रदेश मे आते नही। तव फिर हम न इधर के रहेंगे न उधर के ही।' मुनि गुलहजारीजी ने कहा —'आपकी पूरी तरह सार-सभाल की जायेगी।' इस प्रकार उन्हे आश्वस्त किया तव सिसाय, ऊमरा तथा हासी वालो ने एक साथ तेरापंथ की श्रद्धा स्वीकार की। फिर आसपास के क्षेत्रो मे विचर कर मुनि श्री ने सैकड़ों व्यक्तियों को तेरापथ का अनुयायी वनाया। संभव है कि उनका उस वर्ष का चातुर्मास सिसाय या ऊमरा मे हुआ हो।

(अनुश्रुति के आधार से)

उक्त संदर्भ में उनके लिए लिखा है :—

सिंघाडावंध विचरया घणा रे, हरियाणा में घणो कियो उपगार।
शासण वृद्धि कीधी घणी रे, राय ऋषि थी जय लग मुरजी रही अपार ॥

(गुलहजारी गु० व० ढ़ा० ९ गा० ८)

उनका दिया गया सार-संभाल वाला वचन आचार्यो द्वारा अभी तक निभाया जा रहा है और उसी का परिणाम है कि हरियाणा और पजाव में हजारो भाई-वहिन तेरापंथी है।

६ मुनि श्री थली, मारवाड़, मालवा और अधिकांश हरियाणा प्रान्त में विचरे। उन्होंने अनेक क्षेत्रो मे धर्म की अखड लौ जलाई। सैकडो भाई-वहनो

भण गुण नै पडित थया, हिम्मत धर गण-सिणगार।
हजारां पानां लिख्या हाथ थी, सम्यक्त्व देई घणां नै दिया तार॥

(गु० व० ढ़ा ९ गा० २)

को सम्यक्त्वी और श्रद्धालु बनाया। लगभग १९ व्यक्तियों को दीक्षा प्रदान की[1]।

(क) आचार्य श्री रायचंदजी के शासनकाल में :—

१. मुनि श्री जुहारजी (१२३) 'पादू' को सं० १८९८ चैत्र वदि ८ को।

२. मुनि श्री जवानजी (१२५) 'ईडवा' को सं० १८९९ अजमेर में।

३. मुनि श्री जेतोजी (१२७) 'बीदासर' को सं० १९०० कार्त्तिक शुक्ला १५ को रतलाम में।

४. मुनि श्री प्रतापजी (१५०) 'पादू या ईडवा' को सं० १९०४ मृगसर वदि ३ को।

५. मुनि श्री हंसराजजी (१५१) 'पादू या ईडवा' को सं० १९०४ मृगसर वदि ३ को।

मुनि प्रतापजी और हंसराजजी दोनों पिता पुत्र थे। ईडवा या पादू से मुनि श्री को पहुंचाने के लिए किसी गांव में आये। वहां दोनों ने सामायिक की और सामायिक में ही संयम ग्रहण कर लिया ऐसा उनकी ख्यात में उल्लेख है।

६. रामदयालजी (१५७) 'थडक' को सं० १९०६ पौष में।

(ख) जयाचार्य के शासनकाल में :—

७. मुनि श्री सदासुखजी (१६७) 'झालरापाटण' को सं० १९१० में।

८. मुनि श्री गुलाबजी (१७६) 'बाजोली' को सं० १९१४ में।

९. मुनि श्री दीपचंदजी (१७९) 'भिवानी' को सं० १९१६ मृगसर वदि १२ को हिसार में। दीक्षा तिथि और स्थान मेरा रासी (१९९) गु० व० ढा० १ गा० २९ में है।

१०. मुनि श्री ज्ञानचंदजी (१८०) 'ऊमरा' को सं० १९१७ को कार्तिक वदि ९ को ऊमरा में।

११. मुनि श्री बीजराजजी (१८३) 'भिवानी' को सं० १९१७ भिवानी में।

१२. मुनि श्री रामरतनजी (१८८) 'सिमाय' को सं० १९१९ हरियाणा के किसी क्षेत्र में।

१३. मुनि श्री वस्तीरामजी (२०१) 'कोथ-कापड़ा' को सं० १९२१ में।

१४. मुनि श्री हजारीमलजी (२११) 'सिमाय' को सं० १९२५ कार्त्तिक शुक्ला १५ को चूरू में।

---

१. घणां नै स्हाज वलि दीक्षा देई नै, जग में यश बहु लीध।
(गु० व० ढा० ९ गा० ७)

१५. मुनि गगारामजी (२१५) 'रायपुर' को सं० १९२५ जेठ सुदि ७ को चूरू में।

१६. गोरधनजी (२२३) को स० १९२७ चूरू में। इन्होने स्थानकवासी सम्प्रदाय से आकर दीक्षा ली।

१७. मुनि श्री रामानदजी (२२५) को सं० १९२७ चूरू में। इन्होंने जुहारजी टालोकर के पास से आकर दीक्षा ली।

१८. मुनि श्री लिखमीचंदजी (२३२) 'रीणी' को स० १९२८ चूरू मे।

१९. मुनि श्री गिरधारीजी (२४९) 'हरियाणा' को स० १९३२ चूरू मे।

(इन्ही साधुओ की ख्यात के आधार से)

समीक्षा :

(क) मुनि हजारीमलजी, गगारामजी, गोरधनजी, रामानदजी और गिरधारीजी की दीक्षा का स्थान ख्यात मे नही है पर मुनि श्री उन वर्षों में चूरू मे स्थिरवास कर रहे थे, अतः इन दीक्षाओं का स्थान चूरू लिखा है।

(ख) ख्यात मे एक दीक्षा हेमोजी (१५६) अग्रवाल की सं० १९०६ मे मुनि श्री रामदयालजी (१५७) के पहले हुई लिखी है। वह सभवत: मुनि श्री के हाथ से होनी चाहिए।

(ग) ख्यात मे एक दीक्षा मुनि रामरतनजी (१७०) भिवानी की स० १९११ मे हुई लिखी है। मुनि श्री गुलहजारीजी उस वर्ष हरियाणा में थे, अत: अनुमानत· वह दीक्षा भी उनके हाथ से होनी चाहिए।

उपर्युक्त साधुओं में इस चिन्ह वाले ९ साधु गण से पृथक् हो गए थे।

७. मुनि श्री घोर तपस्वी हुए। उन्होंने उपवास से ११ तक लड़ीवद्ध तप किया। उपवास से ८ दिन तक की तपस्या वहुत वार की तथा—

$\frac{९}{२}$ $\frac{१०}{२}$ $\frac{१५}{१}$ किये।

सं० १८९२ में आजीवन एकातर तप स्वीकार किया जिसका क्रम अत तक (सं० १९३४ तक) लगभग ४२ वर्ष तक निरंतर चलता रहा।

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ८६,८७)

सेठिया संग्रह मे मुनि श्री की तपस्या के कुल दिन ८५०० लिखे हैं जो शासन मे तव तक सर्वाधिक थे।

मनि श्री के गुण वर्णन ढा० ९ गा० ४ मे ४३ वर्ष लगभग एकांतर करने का उल्लेख है।

संवत बाणवा रे टांकडे रे, जावजीव एकांतर धार।
तैयांलिस वर्ष आसरै एकान्तर किया रे,
तिण मे अगणीसै वीस थकी श्रीकार ॥

आचार्य श्री तुलसी के शब्दों मे :—

गुलहजारी भारी गुणी, नगुरा रो निर्ग्रंथ ।
हरियाणा में हर करी, साचो तपसी संत ॥
तैयांलो वरसां तप्यो, एकांतर अविराम ।
साधिक आठ सहस्र दिन, भारी दुष्कर काम ॥
(डालिम चरित्र ख० २ ढ़ा ४ दो० १७, १८)

८. मुनि श्री का खाद्य-संयम उत्कृष्ट व रोमाञ्चित करने वाला था। एकांतर तप को चालू रखते हुए भी उन्होने पारणे के दिन स० १९०२ से १९१६ तक (लगभग १४ वर्षों तक) ११ द्रव्यो के अतिरिक्त सभी द्रव्यों का त्याग कर दिया :—

तैयांलीस वर्ष आसरै एकान्तर किया रे,
तिण में उगणीसै वीये थकी श्रीकार ।
अन्य द्रव्य सहु परहरचा रे,
भोगविवा राख्या इग्यारा खंध ।
यावत् चवदा वर्ष मठेरा आसरै रे,
इग्यारा खंध भोगव्या तस नाम कथंद ॥
(गु० व० ढा० ९ गा० ४, ५ रचनाकाल १९३४)

ख्यात, शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ८७ तथा सेठिया सग्रह स० १९०२ मे भी उपर्युक्त उल्लेख है।

ग्यारह द्रव्यो के नाम इस प्रकार है :—

१. खाटा (स्कध रूप मे)
२ वडी ,,
३. आलणी ,,
४. राईता ,,
५. रंधी हुई दाल (स्कध रूप मे)
६. पापड़ (स्कध रूप मे)
७. आटा (स्कध रूप मे)
८. कच्ची चने की दाल (स्कध रूप मे)
९. आछ

१०. छाछ
११. पानी

खंध खाटा रो १ वड़ी रो २ आलणी ३ तणोरे।
राईता नो ४ रांधी दाल ५ नो खंध रखाण।
पापड़ ६ आटा नो ७ कची चणां री दाल ८ नो रे।
आछ ९ छाछ १० पाणी ११ नो खंध पिछाण ॥
(गु० व० ढ़ा० ९ गा० ६)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ८९ मे भी इन्ही द्रव्यो का उल्लेख है।

गुण वर्णन की दूसरी ढाल मे उक्त द्रव्यो मे वडी की जगह 'खल' लिखा हुआ मिलता है :—

खाटो १ आलण २ दाल ३ चोथो राईतो ४,
पापड़ ५ आटो ६ खल ७ कोरी चणा री दालो रे ८।
आछ ९ छाछ १० ने उदक ११ आगारे,
सुमता लेई नैं मेटी मन री झालो रे ॥
(गु० व० ढ़ा० २ गा० २)

गुण वर्णन की छठी ढाल मे ११ द्रव्यो मे 'खाटा' की जगह 'खल' है।

कोरी दाल चिणां[१] तणो, खल[२] पापड[३] कणक रो चून[४]।
[१]तरकारी[५] न्यारी करं, साग दाल[६] बिना सब सून ॥
वड़ी[७] रायतो वड़ां तणो[८], पाणी[९] आछ[१०] नैं[२] सीत[११]।
भारी अभिग्रह आदरचो, साची तप परतीत ॥
(गु० व० ढा० ६ गा० ८, ९ रचनाकाल १९१७)

मुनि श्री ने उक्त द्रव्यों के अतिरिक्त विगय एव रोटी आदि सभी द्रव्यो का परित्याग कर दिया। उक्त द्रव्यों में जो स्कध शब्द का प्रयोग किया गया है उसका तात्पर्य है कि जैसे—खाटा (कढी) वह चाहे चने के आटे का हो या मोठ आदि के आटे का।

मुनि श्री ने १४ वर्ष एकान्तर तप के साथ पारणे मे उपर्युक्त ११ द्रव्यो के अतिरिक्त खाने का त्याग कर आत्मार्थिता तथा वैराग्य-वृत्ति का अद्वितीय उदाहरण उपस्थित किया एवं कर्मो की महान् निर्जरा की —

गुलहजारी तपसी धारचो अभिग्रह, पंचम काल करूरो रे।
द्रव्य इग्यारै राख्या मुनीश्वर, चित्त चोखे मन रुडो रे॥

---

१. आलणी २. छाछ

तपस्या एकंतर करै निरंतर, मंढ़ियो मन मतवालो रे।
आपरो संजम जीतव धिन है मुनीश्वर, जिन मारग उजवालो रे ॥
(गु० व० ढा० २ गा० १, ३)

ए इग्यारा खंध चवदै वर्ष भोगवी, कर्म निर्जरा कीध ।
(गु० व० ढा० ६ गा० ७)

६. ऐसी अनुश्रुति है कि आचार्य श्री रायचन्दजी ने मुनि गुलहजारीजी को धर्म-प्रचार के लिए चूरू से लेकर हरियाणा तक की पट्टी (परगना) सौंपी थी जिसमे अधिकतर उनका उसी क्षेत्र मे विचरना हुआ था।

इस वात की पुष्टि प्राचीन प्रकीर्णक पत्र प्रकरण ४ पत्र संख्या २६ मे दिये गये एक संदर्भ से होती है—'मुनि श्री जीतमलजी ने आचार्य श्री रायचदजी से विठोडा गांव के वाहर तालाव के समीप वृक्ष के नीचे मुनि गुलहजारीजी को ४ साधु तथा लिखितपन्ना (पट्टी से संवधित) देने के संवंध मे वातें की। तव ऋपिराय ने फरमाया—'जीतमल ! पीछे से तुम्हारी इच्छा हो वैसा करना, यह मेरी आज्ञा है। इसकी चोटी आचार्य के हाथ में है आदि।'

ऐसी भी अनुश्रुति है कि आचार्य श्री रायचंदजी ने मुनि श्री से कहा—'अगर आपको अधिक साधु साथ मे रखने की अपेक्षा हो तो आप दीक्षा देकर अपने पास रख सकते हैं।'

१०. जयाचार्य द्वारा प्रदत्त पत्र की प्रतिलिपि इस प्रकार है—

शिष्य गुलहजारी आदि सर्व साधा नै सुखसाता वंचै और थे माथां साथे तंतु मेल्यो सो ठीक पिण एकम रै दिन वीदासर मे म्हेतो तंतु मोकलो छोडयो हो पिण थांरी तो भक्ति घणी तीखी जाणी अनै सुवनीत पणो पिण घणो तीखो, जिण दिन मोरचा ऊपर अवनीतां नै तीखा जाव दीया ए वेराजी हुवैला इसी पिण कांण न राखी तिण सूं लल-पल रा पिण जाव न दीया, सासण ऊपर घणी तीखी दृष्टि राखी, ते वाद आयां थां ऊपर घणो राजिपो आवै, कोई भोला मूर्ख अवनीत सू लल-पल राखै, निसक जाव देता संकै तिण मे मोटी भोलप जाणां छां अनै तें पका जाव दीया तो तोने घणो सैणो सुविनीत विचक्षण जाणां छा, मुरजी पिण घणी तीखी छै, घणो हरप आनंद राखणो। अनै थांरा कागद मे लिख्यो आप साध मौने दे राख्या छै सो थारी शासण ऊपर दृष्टि तीखी देखतां हरष आयो सो अै साध कांई थांरो मन मांनै सो ही साध लै, इतरा मे सर्व वात जांण लेणी। और साधु कनै है ज्यानै पिण याही सीख है, तपस्वी री मुरजी प्रमाणै रहीज्यो और वाई भायां ज्यांनै पिण याहीज सीख है सेवा भक्ति आछीतरै कीजो। संवत् १९३० रा मृगसर सुदि २।

११. चूरू निवासी वृद्धिचदजी सुराणा ने एक दिन अपने घर के वाहर

'गोखे' (गवाक्ष) पर बैठे-बैठे साधुओं को वन्दना कर ली। मुनि श्री गुलहजारीजी जिस मकान मे विराजते थे वहां से उन्होने उसे देखकर जोर से आवाज लगाते हुए कहा—'अरे विरधिया! चूरू में ३॥ श्रावक हैं।'' वृद्धिचंदजी चौककर तत्काल अन्दर आये और पूछा—'महाराज! ३॥ श्रावक कौन से है?'मुनि श्री ने कहा—'एक तो हजारीमलजी कोठारी, दूसरा सागरमलजी चौधरी, तीसरा एक वाठिया गोत्र के भाई का नाम लिया तथा आधा तू, जो साधुओ को वैठा-वैठा वन्दना करता है।' उन्होने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—'महाराज! मैं आगे से ध्यान रखूगा।'

(चूरू वासी श्रावक हुकमचन्दजी सुराणा के कथनानुसार)

१२. एक वार एक भाई मुनि श्री के सामने सामायिक करके उठा। उन्होंने उससे पूछा—'सामायिक मे क्या किया?' वह वोला—'ऐसे ही वैठा रहा।' उन्होंने कहा—'ऐसे वैठे-वैठे क्या बाप को रो रहा था? चितारना (स्वाध्याय) क्यो नही किया?' उसने मुनि श्री की हित शिक्षा हृदयंगम कर ली।

(हुकमचंदजी सुराणा के कथनानुसार)

१३. एक दिन एक भाई 'चर्चा' को दुहरा रहा था। उसने कुछ वोल उलटे सीधे वोल दिये। मुनि श्री ने सुनकर कहा—'हीयाफूट! ऐसे नही, ऐसे है।'' उसने कहा—'महाराज क्या आपको 'हीयाफूट' कहना कल्पता है?' उन्होने कहा—'मिच्छामि दुक्कड़ 'हीयाफूट'!' वह वोला—'महाराज! आपने तो फिर भी 'हीयाफूट' ही कहा।' तव वे वोले—'यह तो हमारी सहज वोली है।'

(हुकमचद सुराणा के कथनानुसार)

१४. हरियाणा मे अग्रवाल समाज मे प्राय चोके की परपरा है। वहा साधु भिक्षा के लिए जाते तो वे लोग साधओ के नगे पैर होने से रसोई के अन्दर आने मे हिचकिचाहट करते। मुनि श्री ने ऐसी स्थिति देखकर उन लोगो को युक्तिपूर्वक समझाते हुए कहा—'तुम लोग हमारे पैरो मे सिर नवाते हो तव तो यह चितन भी नही करते कि पैर कैसे हैं और जव हम गोचरी के लिए रसोई मे जाते हैं तव कौन-सी अशुद्धता आ जाती है। यदि ऐसा व्यवहार रहा तो गोचरी नही हो सकेगी।' तव सभी ने क्षमा मागी और मुनि श्री की शिक्षा को धारण की।

इस प्रकार मुनि श्री ने हरियाणा की जनता को प्रवुद्ध किया और दान के गुण भरे।

(अनुश्रुति के आधार से)

१५. (क) भिवानी की वात है। एक दिन मुनि श्री के सहयोगी मुनि वच्छराजजी (१२४) भिक्षा के लिए गये। पूनमचन्द नाम का एक व्यक्ति उनके साथ था। मुनि वच्छराज जी एक घर मे गोचरी पधारे। रोटियो के पास एक

धान का दाना पड़ा था। वह रोटियो से सटा हुआ नही था, फिर भी उन्होने वहा से आहार नही लिया और आगे चल पड़े।

पीछे से वह भाई मुनि श्री गुलहजारीजी के पास में आकर बोला—'महाराज ! आज वच्छराजजी स्वामी एक घर से 'असूझता' (अकल्पनीय) आहार ले आये है।

मुनि वच्छराजजी जब गोचरी लेकर आये तो तपस्वी मुनि ने उन्हे कड़ा उलाहना देते हुए कहा—'हमने खाने-पीने के लिए घर नही छोड़ा है, आत्म-साधना के लिए छोडा है। तुम अमुक घर से असूझता (अकल्पनीय) आहार क्यों लाये ?' मुनि श्री वच्छराजजी ने निवेदन किया—'मै उस घर से आहार लाया ही नही और यदि लाता भी तो वह असूझता नही था। आप पधारें और उसकी जाच करे।' मुनि श्री गुलहजारीजी मुनि श्री वच्छराजजी के साथ उस घर पर पधारे और धान्य के कण को रोटियो से अलग पडा हुआ देखा।

मुनि श्री वापस लौट आये। जब वह भाई आया तब उसे आड़े हाथो लेते हुए पूछा—'क्या हमने रोटियो के लिए घर छोड़ा है ? साधुओ पर झूठा कलक लगाते हुए तुझे शर्म नही आती। इस प्रकार मिथ्या आरोप लगाने वाले का बहुधा पेशाब बन्द हो जाता है।' तपस्वी मुनि के मुख से निकला हुआ सहज वाक्य सत्य हो गया। सायकाल तक उस भाई को पेशाब नही आया, वह बहुत घबराया। यह बात उसने लोगों से कही तो वे बोले—'मूर्ख ! जल्दी जाकर सतो से माफी माग।' वह मुनि श्री के चरणों में उपस्थित हुआ और पश्चात्ताप करते हुए उसने माफी मागी। मुनि श्री ने कहा—'मैंने तुमको कोई शाप नही दिया था। सहज रूप मे ही कहा था कि मुनियो पर झूठा लांछन लगाने से ऐसा हो जाता है। अच्छा ! हमारे तो 'खमत खामणा' है।' फिर वह व्यक्ति स्वस्थ हो गया। (अनुश्रुति के आधार से)

(ख) एक बार एक तेरापथी भाई ने किसी विरोधी भाई से कहा—'ये मुनि कितने त्यागी, विरागी है जो विविध तपस्या करते है और शीतकाल में सिर्फ एक पछेवड़ी (चद्दर) मे रहकर शीत सहन करते है।' वह व्यक्ति द्वेप-वश बोला—'इसमे क्या विशेपता है। मेरा 'पाडा' (भैंस का बच्चा) उनसे भी ज्यादा शीत सहन करता है, वह चद्दर भी शरीर पर नही रखता।'

इस बात की उस भाई ने मुनि गुलहजारीजी के सम्मुख चर्चा की तो वे स्वाभाविक रूप से पूर्वोक्त वचन (मिथ्या आरोप लगाने वाले का बहुधा पेशाब बद हो जाता है) बोले, उनकी वाणी यथार्थ हो गई। उसने आकर क्षमायाचना की तब वह व्याधि-मुक्त हुआ। (अनुश्रुति के आधार से)

१६. तपस्वी मुनि गुलहजारीजी के मुख से निकली हुई सहज वाणी प्रायः

फलितार्थ हो जाती थी। एक वार वे चूरू मे विराज रहे थे तव की घटना है:—

चूरू के कोठारी परिवार में हजारीमलजी प्रतिष्ठित व्यक्ति हुए। व्यापारिक क्षेत्र मे भी वे अग्रणी थे। उनकी चूरू, कलकत्ता, वम्वई, जयपुर, उज्जैन, इंदौर, मंदसोर आदि १७ नगरों मे दुकाने थीं जिनमें मुख्यत: अफीम का व्यापार ही होता था। कलकत्ता मे व्याज का कारोवार था। उन्होने अपने जीवन मे लगभग वीस-तीस लाख रुपये कमाये। सवसे उल्लेखनीय वात यह है कि सभी दुकानें मुनीमो की देख-रेख में चलती थी।

चूरू में वे अफीम का सौदा वड़े स्तर पर करते थे। एक वार उन्होने अफ़ीम की मंदी का सौदा वडे पैमाने पर कर रखा था। दूसरी तरफ अनन्तरामजी पोद्दार (जो उस समय के एक वड़े धनाढच और प्रभावशाली व्यक्ति थे) ने अपने मुनीम के माध्यम से तेजी का सौदा कर रखा था। भाव चढने से लाखो के नुकसान होने की सभावना हो गई। स्थिति ऐसी वन गई कि हजारीमलजी की प्रतिष्ठा वचनी असंभव-सी होने लगी जिससे उनके मन मे चिंता और चेहरे पर उदासी की रेखाए खिच गई।

हजारीमलजी तेरापथ धर्म-सघ के अनुयायी थे। 'साधु-वदना' की ढालों (भजनो) का नियमित रूप से पुनरावर्तन (स्वाध्याय) करते थे। घोर तपस्वी मुनि गुलहजारी जी के वडे भक्त थे। उस समय मुनि श्री वही विराज रहे थे। वे प्रतिदिन मुनि श्री के दर्शनार्थ आया करते थे। पर उपर्युक्त चिंता के कारण कई दिन दर्शनार्थ नही आ सके। एक दिन उन्होने दर्शन किये तव उन्हे उदास व चिंतातुर देखकर तपस्वी मुनि ने पूछा—'हजारी! आज इतना उदास क्यो है?' उन्होंने कहा—'मुनिवर! मैंने अफीम की मदी का सौदा कर रखा है। अनन्तरामजी पोद्दार के तेजी का सौदा है। मेरी इज्जत रहे उसकी सम्भावना वहुत कम लगती है। कहते है कि शरीर के कपड़े तक उतरवा लेंगे। मैंने वहुत प्रयत्न किया कि उचित मुनाफा लेकर सौदा सलटा लें, पर सफलता नही मिली।'

मुनि गुलहजारी जी के मुख से सहज ही शब्द निकले—'पोद्दारजी धन स्यू धाप्या कोनी के?' हजारीमल जी को सवोधित करते हुए मुनि श्री ने कहा—'व्यापार करने वालों के कभी नुकसान तो कभी लाखो का मुनाफा भी हो सकता है अत: तुम्हे धैर्य एवं साहस रखना चाहिए।' हजारीमलजी ने मुनि श्री के वचनों को दृढ़-निष्ठा से हृदयंगम कर लिया।

दूसरे दिन हजारीमलजी वाजार गये। अनन्तरामजी के मुनीम 'ली-ली' की वोली लगाने लगे। हजारीमलजी ने कहा—'कितनी ली।' मुनीमजी ने एक का अंक वैठा दिया और कहा—'इस पर चाहे जितनी विंदिया वैठा लें।'

हजारीमलजी ने एक पर तीन विंदिया वैठा दी। इस तरह हजार पेटी का सौदा हो गया। अव अफीम का भाव गिरने लगा और हजारीमलजी को लाखो

रुपयो का लाभ हुआ, पोद्दारजी को भारी नुकसान का सामना करना पडा। उस वक्त एक वारठ ने अपने शव्दो मे कहा :—

हजारी तू भारी करी, मुहट्टी एक थांरा हाड।
थांरा मारचा मर गया, अनन्तराम सा नाड़॥

(दृढधर्मी श्रावक तोलारामजी कोठारी स्मृति ग्रथ पृ०१ से ५)

हजारीमलजी मुनि श्री के चरणो मे श्रद्धावनत हो गये। इस प्रकार मुनि श्री के मुख से निकली हुई सहज वाणी यथाथ हो जाती थी जिससे लोगो में यह धारणा वन गई कि इनकी वचन सिद्धि है।

मुनि श्री ने हजारीमलजी को भविष्य मे फाटका न करने का नियम भी दिला दिया। उनके नियम लेने के पश्चात् अनेक वर्षों तक उनकी पीढी में भी प्रायः फाटका वद रहा। सिर्फ एक सदस्य ने फाटका किया, उसे काफी नुकसान उठाना पड़ा। (श्रुतानुश्रुत)

१७. स० १९३४ के चूरू चातुर्मास मे डालगणी मुनि श्री के साथ थे :—

चौंतीसे चूरू रह्या जी कांई, गुलजारी मुनि लार।

(डालिम चरित्र खंड १ ढा० ४ दो० १६)

१८. स० १९०८ माघ वदि १४ को रावलियां मे आचार्य श्री रायचदजी स्वर्ग पधार गये। उस समय मेवाड़ मे विचरण करने वाले साधु-साध्वी राजनगर मे जयाचार्य को पदासीन करवाने के लिए एकत्रित हुए। उनमे कई साधुओं की ऐसी विचारधारा थी कि हमे ऋषिराय द्वारा जो वखशीशे व पट्टी दी गई है उन्हे कायम रखने की स्वीकृति के पश्चात् मुनि जीतमलजी को पदासीन होने के लिए अनुनय करेगे। लेकिन जयाचार्य माघ शुक्ला १५ को वीदासर मे ही पट्टासीन हो गये। वाद मे मुनि गुलहजारीजी आदि ने लाडनू मे जयाचार्य के दर्शन कर उलाहना के शव्दो मे विनती की—'हम तो सव राजनगर मे आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे और आप वीदासर मे ही पदासीन हो गये, यह ठीक नही किया।'

जयाचार्य ने उनसे पूछा—'मैं वहां पदासीन होता तो आप क्या करते?' सभी ने अर्ज की कि आपको नई पछेवड़ी धारण करवाते, और ढ़ालो के द्वारा गण-गणी के गुणगान करते हुए महोत्सव मनाते। आचार्यप्रवर ने गर्दन नीचे करते हुए कहा—'लो अभी पछेवडी ओढ़ा दो।' इस तरह मधुर शव्दो मे सवको प्रसन्न कर दिया। (अनुश्रुति के आधार से)

मुनि गुलहजारीजी ने उस समय एक ढ़ाल जोड़कर गाई थी, जो वड़ी भाव पूर्ण है। उसके ४ दोहे और २५ गाथाए है जो स० १९०८ फाल्गुन शुक्ला १३ को लाडनू मे रची गई है। उस गीतिका को देखकर लगता है कि उन्होने और भी अनेक ढालो की रचना की हो।

मुनियों के आग्रह भरे अनुरोध पर जयाचार्य ने जेठ वदि ४ को वीदासर मे पुनः पट्टोत्सव का कार्यक्रम रखकर उनकी भावना को पूर्ण किया।

१९. मुनि श्री के प्राप्त चातुर्मासो की तालिका इस प्रकार है :—

स० १८८९ मे मुनिश्री ने मुनि जीतमल जी (जयाचार्य) के साथ दिल्ली मे पहला चातुर्मास किया।

(जय० सु० ढ़ा० १८ गा० १)

अग्रणी अवस्था मे

स० १९०० मे रतलाम चातुर्मास किया। वहा कार्तिक शुक्ला १५ को मुनि जेतोजी (जीतमलजी १२७) वीलावास को दीक्षा दी।

(ख्यात)

स० १९०४ का चातुर्मास सभवतः ईडवा या पादू मे था। वहां से विहार कर एक गांव मे मृगसर वदि ३ को मुनि श्री ने मुनि प्रताप जी (१५०) और उनके पुत्र हसराजजी (१५१) को दीक्षा दी, ऐसा उल्लेख मुनि प्रतापजी और हंसराजजी की ख्यात मे है।

सं० १९०५ मे चूरू। (चातुर्मास विवरण पुस्तक से)

सं० १९०६ मे सिसाय या ऊमरा। (श्रुतानुश्रुत)

सं० १९११ मे सिसाय।

गांव सिसाय सुहामणों, श्रावक सव सिरदार।
तेरापंथी भाई भला, सगलाई इकसार॥

गुलजारी रिष समोसरचा, एक ध्यान धर चावै।
अव दर्शण करवा पूज ना, दिन-दिन अधिक उम्हावै॥

उगणीसै इग्यारह समै, मोई इग्यारस (कार्त्तिक सुदि ११) धर प्रेम।
पूज तणा दरसण विना, नवकारसी नो नेम॥

(अप्रकाशित गु० व० ढा० गा० १ से ३)

'चातुर्मास विवरण' पुस्तक मे उक्त वर्ष का चातुर्मास चूरू लिखा है जो उक्त ढाल के प्रमाण से सही नही है।

स० १९१२ में ४ ठाणो से वीकानेर।

(श्रावको द्वारा लिखित चातुर्मास तालिका से)

स० १९१३ मे ४ ठाणो से वकाणी।

(मुनि जीवोजी (८६) रचित चातुर्मासिक विवरण ढा० १ गा० ५)

स० १९१५ मे ४ ठाणो से भिवानी।

(सेरां सती (१९९) गु० व० ढा० १ गा० १ के आधार से)

चातुर्मास के बाद का विवरण

(क) इस चातुर्मास मे मुनि श्री ने अनेक भाई-बहनो को प्रतिबोध देकर धर्म के अनुरागी व श्रद्धालु बनाये। आसपास के गावों के काफी लोग वहां मुनि श्री के दर्शनार्थ आये। चातुर्मास के पश्चात् जब मुनि श्री ने जयाचार्य के दर्शनार्थ भिवानी से विहार किया तब अनेक भाई सेवा मे थे। मुनि श्री क्रमशः विहार करते हुए रीणी पधार कर एक उपाश्रय मे विराजे। वहा रामजणजी, जैरामजी भिवानी वाले तथा ऊमरा, तुपाम, सिसाय और हांसी के लोग रास्ते की सेवा करने के लिए आये। वहा से मुनि श्री ने चूरु की तरफ विहार किया। चूरू में सात साधुओ से विराजित मुनि श्री स्वरूपचंदजी (६२) के दर्शन किये। वहां पर पता चला कि जयाचार्य चाडवास मे विराज रहे है तब उन्होंने उस ओर विहार किया और जयाचार्य के दर्शन किये। मुनि श्री तो गुरुसेवा मे आकर परम प्रसन्न हुए ही पर गुरुदेव की मोहनी मूर्ति व अद्भुत रचना को देखकर हरियाणा के भाइयो के मन मे उमंग का पार नही रहा।

(सेरा० गु० व० ढा० १ गा० १ से ७ के आधार से)

(ख) लाडनूं निवासी शिवजीरामजी, मगनीरामजी दुगड़ द्वारा पचपदरा के श्रावको को दिये गये एक पत्र मे लिखा है—सं० १९१५ चैत्र वदि १४ को मुनि गुलहजारीजी ने ४ ठाणो से बीदासर मे जयाचार्य के दर्शन किये। साथ मे भिवानी के ११ भाई पहुचाने के लिए आये।

(ग) स० १९१५ मृगसर सुदि १० को मुनि श्री सिसाय मे थे।

(अप्रकाशित गु० व० ढाल के आधार से)

सं० १९१५ चेत वदि १४ को बीदासर मे थे। (उपर्युक्त)

सं० १९१५ जेठ वदि मे रीणी (तारानगर) मे थे। साथ मे मुनि श्री बच्छराजजी (१२४), रामरतनजी (१७०), गुलाबजी (१७६) थे।

(गु० व० ढा० ८ गा० १०)

स० १९१६ मे मुनि श्री का चातुर्मास हरियाणा (अनुमानत. हिसार, हांसी या ऊमरा) मे था। चातुर्मास के पश्चात मृगसर वदि १२ को हिसार मे मुनि श्री ने मुनि दीपचंदजी (१७९) 'भिवानी' को दीक्षा प्रदान की।

(सेरां० गु० व० ढा० १ गा० २९ से ३१)

सं० १९१७ मे सिसाय चातुर्मास किया। वहां कार्त्तिक वदि ९ को सिसाय के ज्ञानीरामजी (१८०) को दीक्षा दी।

(गु० व० ढा० ६ गा० १३ से १५)

सं० १९१८ मे चूरू।

(चातुर्मास विवरण पुस्तक से)

सं० १६१६ में भिवानी।

(गु० व० ढ़ा० ७ गा० १२)

स० १६२१ मे चूरू।

(चातुर्मास विवरण पुस्तक से)

सं० १६२५ से स०१६३४ तक चूरू मे स्थिरवास रहे।

(चातुर्मास विवरण पुस्तक से)

सं० १६३४ के चातुर्मास मे ७ साधु थे।

(प्राचीन चातुर्मास तालिका)

२०. मुनि श्री ने अंतिम समय में सागारी अनशन किया। उसमे केवल दो दिन दवा ली, और कुछ नही लिया, ऐसा ख्यात मे उल्लेख है।

गुण वर्णन ढाल तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ६३ मे लिखा है—दो दिन का सागरी अनशन आया। उसमे औपध भी नही ली :—

दोय दिन लग सागारी रह्यो, पिण औषध न लिवाय लिगार।

(गु० व० ढा० ६ गा०१०)

उन्हे आठ प्रहर से कुछ कम समय का तिविहार सथारा आया, इसका ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ६३ तथा गु० व० ढ़ा० ६ गा० १० मे उल्लेख है:—

'आठ प्रहर मठेरो जावजीव आवियो।'

इस प्रकार उनको दो दिन का सागारी और आठ प्रहर का तिविहार सथारा आया।

सं० १६३४ आसोज वदि १२ को चूरू मे मुनि श्री ने समाधि-मरण प्राप्त किया[1]। (ख्यात)

२१. मुनि श्री के गुण वर्णन की ६ गीतिकाए 'कीर्तिगाथा' मे प्रकाशित है। उनमें ५ ढ़ाले श्रावक लिछमणजी मथेरण द्वारा समय-समय पर वनाई गई है। दो ढ़ाले अन्य श्रावको एव एक ढ़ाल रामचन्द्रजी महात्मा द्वारा तथा १ ढाल सख्या ६ हुलासजी यति द्वारा रचित शासनप्रभाकर से उद्धृत है। कुछ अकाशित ढालें और भी है।

---

१. ·· ·········· ···सवत् उगणीसै चोतीसे श्रीकार।
आसोज वदि बारस काम समारिया, गुलहजारी गुणवत।
नाम लिया भव निस्तरै, सुर शिव सुख पावत॥
(गु० व० ढा० ६ गा० १०, ११)

१०४।३।१७ मुनि श्री कृष्णचंदजी (दिल्ली)

(संयम पर्याय सं० १८८९-१८९८)

गीतक-छन्द

शहर दिल्ली के निवासी जाति से माहेश्वरी।
पढी भाषा फारसी बहु वजी यश की झल्लरी।
जानकारों में प्रमुख ज्यों दीखता मुख देह में।
कृष्णचन्द्र सुनाम पाया संपदा बहु गेह में ॥१॥

मूल स्थानकवासियों की मान्यता मन भा रही।
तनिक मंदिर-मार्गियों की झलक उन पर छा रही[1]।
सुदृढ़ स्थानकवासियों में चतुर्भुजजी थे वहां।
साथ उनके गये जयपुर हेम-जय पावस जहां ॥२॥

लाभ दर्शन का लिया लौ तत्त्व-चिन्तन की जली।
हेम के सान्निध्य में 'जय' से विविध चर्चा चली।
प्रश्न पूछे आगमों के गहन विषयों पर वहुत।
प्रभावित वे हुए उत्तर 'जीत' से सुन युक्तियुत ॥३॥

की सही स्वीकार श्रद्धा उभय ने ही उस समय।
पुनः दिल्ली लौट आये रहे है दृढ़ कुछ समय।
कृष्णचन्द वयाग्रणी जो मूर्त्तिपूजक-अग्रणी।
संग से उनके गंवाया कृष्ण (लघु) ने श्रद्धा-मणी[2] ॥४॥

नयासी की साल पुनरपि योग जय का मिल गया।
हृदय का मुरझित कमल फिर सलिल पाकर खिल गया।
जमी आस्था तत्त्व समझा की शुरू धार्मिक-क्रिया।
लाभ प्रवचन-श्रवण का उत्साह से नियमित लिया ॥५॥

रग गहरा लग गया है विरति नस-नस में रमी।
ऋद्धि बहु तज तनुज-आज्ञा से बने ध्रुव संयमी।
है बड़ा विस्तार जिसका जय-सुयश आख्यान में।
मनन सह अध्ययन कर कर लीजिए सब ध्यान में[३] ॥६॥

सुगुरु के निर्देश में साधुत्व का पालन किया[४]।
अन्त में अनशन-ग्रहण कर पंथ सुरपुर का लिया।
साधना दश वर्ष करके सफलता पाई बड़ी।
भिक्षु-गण के साधकों मे जोड़ दी अपनी कड़ी[५] ॥७॥

१. मुनि श्री कृष्णचदजी दिल्ली शहर के निवासी और जाति से माहेश्वरी थे। वे वड़े समझदार और सुप्रख्यात व्यक्ति थे। उन्होने 'फारसी' भापा पढ़ी थी। समाज मे उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। वे मूलत: स्थानकवासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। कुछ-कुछ मूर्ति-पूजा की तरफ भी उनका झुकाव था :—

हिवे दिल्ली शहर मांहि तदा, कृष्णचंद लघु होय।
जात तणो ते महेसरी, जाणवीण वहु जोय।
वलि संसार माहि दीपतो, पढ्यो फारसी फेर।
श्रद्धा वावीसटोलां तणी, कांई मंदिर नी ल्हेर॥

(जय सुजश ढ़ा० १५ दो० १, २)

उक्त पद्यो मे 'कृष्णचद' लघु देने का कारण है कि मूर्ति-पूजक कृष्णचंदजी नाम के वय में वड़े एक व्यक्ति वहां पर और थे जिनके संपर्क से कृष्णचदजी (लघु) ने सम्यकत्व-रत्न खो दिया था।

२. स० १८८१ मे मुनि श्री हेमराजजी आदि साधुओ का जयपुर चातुर्मास था। मुनि श्री जीतमलजी उनके साथ थे। कृष्णचंदजी (लघु) और चतुर्भुजजी वहां गये। उन्होने मुनि श्री हेमराजजी के दर्शन कर जय मुनि से सूक्ष्म-सूक्ष्म सैद्धान्तिक प्रश्न पूछे। जय मुनि ने उनका सम्यक् प्रकार से उत्तर दिया जिससे वे वहुत प्रभावित हुए और उन्होंने तेरापंथ की श्रद्धा स्वीकार कर ली[1]।

कृष्णचंदजी (लघु) माहेश्वरी वापस दिल्ली लौट आने के पश्चात् कुछ वर्ष तो श्रद्धा मे मजवूत रहे फिर वय से वडे कृष्णचदजी ओसवाल (मदिरमार्गी समुदाय के प्रमुख श्रावक) की सगति से वे शुद्ध श्रद्धा को खो वैठे[2]।

---

१. वावीस टोला मे पक्को, चतुरभुज ओसवाल।
सवत् अठारै इक्यासीये, विहु जयपुर आया चाल॥
तिहा हेम जीत मुनि साध ना, दर्शन करी तिहकाल।
हेम मुख आगल जय थकी, चरचा करी विशाल॥
झीना झीना वहु समय ना, सूक्ष्म प्रश्न विचार।
पूछ्या जय उत्तर दिया, छै तसु वहु विस्तार॥
कृष्णचद ने चतुरभुज विहु, निर्णय करी सुविचारी जी रे।
इक्यासीयें जयपुर चौमासे, शुद्ध श्रद्धा दिल धारी रे॥

(जय सुजश ढा० १५ दो० ३ से ५ गा० १)

२. पछै दिल्ली जाय नै किता वर्ष तो, श्रद्धा मे रहयो सेठो जी रे।
पछै ओसवाल पुजेरा मे अगवाणी, किशनचद जे जेठो रे॥

वड़े कृष्णचदजी ने छोटे कृष्णचदजी के हाथ मे पूजा का थाल दिया और उनको आगे कर वहुत लोगों के साथ (उनमे एक तरफ चतुर्भुजजी और एक तरफ सरदारमलजी थे) वाजार के रास्ते से स्थानकवासियो के स्थानक के पास से होते हुए मदिर मे ले जाकर प्रतिमा को नमस्कार कराया। वड़े कृष्णचदजी वोले—'आज कृष्णचदजी (लघु) माहेश्वरी ने मिथ्यात्व का विसर्जन कर दिया है।' इम प्रकार वड़े कृष्णचदजी ने छोटे कृष्णचदजी को भ्रान्त कर दिया।

स्थानकवासी तथा मूर्त्ति-पूजक समाज मे पहले से परस्पर विरोध चल रहा था, जिससे स्थानकवासी लोग कृष्णचंदजी (लघु) के मूर्ति-पूजक वन जाने से वहुत नाराज हुए। इस तरह लघु कृष्णचदजी मदिर-मार्गी वने पर जयपुर के सपर्क से उत्पन्न जो जयाचार्य के प्रति आन्तरिक प्रीति थी वह मिट नही सकी।

(जय सुजश ढा० १५ गा० ४ से ८ के आधार से)

३. स० १८८८ के शेपकाल मे जव मुनि श्री जीतमलजी दिल्ली की तरफ पधारे और पास के पहाडी गाव मे तीन दिन विराजे तव तक तो कृष्णचदजी वहां नही गये। चौथे दिन प्रभात के समय नौ व्यक्तियो को साथ लेकर वे वहां पहुचे। मदिर-मार्गियो मे दृढ मान्यता वाले हो जाने के कारण हाथ तो नही जोडे पर दोनो हाथ वरावर कर नमस्कार किया और प्रसन्न मुद्रा मे वोले—'जिस दिन जयपुर मे आपके दर्शन किये थे उस दिन से आपकी मूर्त्ति हृदय मे वसी हुई है। अव आप शहर मे पधारिये।' मुनि श्री जीतमलजी ने कहा—'ठहरने के लिए जगह कहा है?' उन्होने कहा—'जगह मिल जायेगी।' यह कहकर उन भाइयो के साथ मुनि श्री को दिल्ली शहर मे लाकर उन्होने वाजार के वीच एक दुकान के ऊपर की जगह वताई। वहां पडोस मे वेश्याओ का वास देखकर मुनि श्री ने कहा—'यह जगह साधुओ के लिए उपयुक्त नही है।' वे वोले—'स्थानकवासी जोगराजजी के टोले के साधु तो यहा रहते थे।' मुनि श्री ने कहा—'वे रहते होगे पर हमारे नही जच रही है।' फिर उपकरण तथा सतों को वहा छोड़कर जय मुनि ऋषि कोदरजी को साथ लेकर दूसरी जगह देखने के लिए गये, लेकिन वह भी पसंद नही आई। तव कृष्णचदजी ने कहा—'तीसरी वड़ी जगह रोशनपुरा मे सेठ गगारामजी कश्मीरी की अच्छी और रमणीय है, उसे आप देखिए।' वह जगह देखते ही पसंद आ गई। मुनि श्री ने उसकी आज्ञा लेने के लिए मुनि कोदरजी को कृष्णचदजी के साथ भेजा और स्वय वहां ठहरे।

ते धूता नो धूत मे अति कुवुद्धि, तसु सगत कर वैठो जी रे।
तिण विविध कुयुक्ति सू श्रद्धा फेरी, लग्यो कुसगत लेठो रे।।

(जय सुजश ढा० १५ गा० २, ३)

इसका कारण था कि कहीं कोई इस जगह में सचित्त वस्तु न बिखेर दे या कोई इस मकान का दरवाजा बंद न कर दे। मुनि कोदरजी जिस ओसवाल भाई को उस जगह की संभाल दी हुई थी उसकी आज्ञा लेकर वापिस आये। फिर सभी साधुओं को बुलाकर वहां विराज गये।

कृष्णचंदजी (लघु) वहां मुनि श्री का प्रात:कालीन व्याख्यान सुनने के लिए आने पर वंदना नहीं करते। वे कहते—'आपकी और हमारी श्रद्धा में बहुत अन्तर है पर आपको सूत्रों की तथा अन्य बोलों की गहन धारणा है इसलिए उन्हें धारने (समझने) के लिए मैं आता हूं।'

कृष्णचंदजी (लघु) का बड़े कृष्णचंदजी (ओसवाल) से बहुत प्रेम था। उन्होंने लघु कृष्णचंदजी को अपनी मान्यता में कायम रखने के लिए मुनि श्री जीतमलजी को ३२ आगमों की मान्यता के विषय में तथा मिथ्या दृष्टि की करणी के संबंध में अनेक प्रश्न पूछे। मुनि श्री ने युक्तिसंगत उत्तर देते हुए कहा—'आगम तीन प्रकार के होते हैं—१. सूत्रागम—सूत्रों के मूलपाठ। २. अर्थागम—सूत्रों से मिलती हुई वार्त्तिका, वह चाहे टीका या टब्बे में हो। ३. तदुभयागम—सूत्र पाठ तथा उससे मिलते हुए अर्थ को तदुभयागम कहा जाता है।' वे बोले—'तब तो आगम चार मानने चाहिए—तीन तो उपरोक्त और चौथा 'मिलतागम'। मुनि श्री ने समाधान की भाषा में कहा—जो तीन आगम हैं वे सब 'मिलतागम' ही हैं पर अनमिलतागम एक भी नहीं है। वर्त्तमान में जो हमारी बत्तीस आगमों की मान्यता है वह इन्हीं के आधार पर है। इनसे जिनकी संगति नहीं बैठती वे संख्या में कितने ही अधिक क्यों न हों वे मान्य कैसे हो सकते हैं। इसी तरह मिथ्यात्वी की शुद्ध करणी के विषय में लम्बी चर्चा चली। मुनि श्री ने कहा—'मिथ्यात्वी होते हुए भी मेघकुमार ने हाथी के भव में सुसले (खरगोश) की दया का पालन कर तथा मनुष्य का आयु बांध कर परित्त संसार किया था। इसलिए मिथ्यात्वी की शुद्ध करणी भगवान् की आज्ञा में है। और पहले गुणस्थान वाले मिथ्यादृष्टि को भी आगम में देश (थोड़ा) आराधक कहा है। अत: उसकी शील, संतोष, सत्य, दया और क्षमादिक शुद्ध क्रियाएं भगवान् की आज्ञा में ही हैं। इस पर बड़े कृष्णचंदजी बोले—'ये सब भंगी (महत्तर) के घर की खीर के समान है।' मुनि श्री ने कहा—'इसे भंगी के घर की खीर न कहकर भंगी के घर का रुपया कहना चाहिए जो सर्वत्र समान रूप से चलता है।'

इस प्रकार विस्तृत चर्चा चली। उसमें बड़े कृष्णचंदजी तो नहीं समझे और लघु कृष्णचंदजी के दिल में यह श्रद्धा पक्की बैठ गई कि मिथ्यात्वी की शुद्ध करणी आज्ञा में है। इस तरह श्रद्धा में अन्तर पड़ने से छोटे कृष्णचंदजी का बड़े कृष्णचंदजी के साथ गठबंधन टूट गया।

मुनि श्री कुछ दिन वहां ठहरे। फिर दिल्ली के उपनगरों को स्पर्श कर

वापिस दिल्ली शहर मे स० १८८६ का चातुर्मास करने के लिए उसी स्थान मे पधार गये। चातुर्मास मे जन सम्पर्क, वार्तालाप एवं तात्त्विक विषयो पर चर्चा आदि का क्रम चलता रहा। स्थानकवासी और मूर्तिपूजक समाज के अनेक भाई व्याख्यान सुनने के लिए आते और प्रभावित होते। बहुत लोगो ने समझकर तेरापथ की गुरु धारणा ली। भैक्षव शासन की अच्छी प्रभावना हुई। लघु कृष्णचदजी प्रतिदिन सपर्क मे आते थे। उनको मुनि श्री ने कर्म ग्रथ टीकाओ मे जो विरुद्ध बाते थी, वे बतलाई जिससे उनकी वृत्तिकारो की विषम बातो के प्रति अनास्था और आगम वाक्यो के प्रति दृढतम आस्था हो गई। वे सामायिक करने लगे। हाड और हाड की मज्जाओ मे धर्म का गहरा रग लग गया। कुछ ही दिनो मे वैराग्य भावना जागृत हुई एवं दीक्षा के लिए तैयार हो गये। फिर बड़ी मुश्किल से पुत्र की आज्ञा प्राप्त कर स० १८८६ मृगसर वदि १ को पत्नी वियोग के पश्चात् पुत्र, पुत्र वधू, बहुत धन और गुमास्तो को छोड़कर मुनि श्री जीतमलजी के पास दिल्ली से एक कोश दूर पहाड़ी ग्राम मे दीक्षित हुए।

जय सुजश ढ़ा० १५ से १८ तक के प्रकरण मे उपर्युक्त वृत्तान्त विस्तार-पूर्वक है।

मुनि श्री जीतमलजी जब दिल्ली पधारे तब कई स्थानकवासी एव मूर्तिपूजक सज्जनो ने उनसे कहा—'जीतमलजी ! यहा पर तो दो ही झडे फहरेगे, आपका झडा यहा नही फहरेगा।' मुनि श्री ने कहा—'मैं यहा झडा फहराने के लिए नही, सत्य धर्म का प्रसार-प्रचार करने के लिए आया हूं।'

जय मुनि ने वहां चातुर्मास कर जन-जन को धर्म का सदेश दिया। तत्त्वचर्चा करके अनेक व्यक्तियो को समझाया तथा कृष्णचंदजी (लघु) को समझाकर दीक्षित किया। इस प्रकार बहुत उपकार कर जय मुनि ने जब वहा से विहार किया तब लोगो को दातो के नीचे अगुली दबाकर कहना पडा कि तेरापथ का झडा भी यहां फहर गया। (अनुश्रुति के आधार से)

४. मुनि कृष्णचंदजी ने दीक्षित होते ही मुनि श्री जीतमलजी के साथ आचार्य श्री रायचदजी के दर्शन किये तथा उनके साथ मे गुजरात, कच्छ की तरफ विहार किया। आचार्य श्री ने मुनि श्री कर्मचंदजी (८३) का स० १८६० का चातुर्मास वेला (कच्छ) फरमाया तब मुनि मोतीजी 'बडा' (७७) तथा मुनि कृष्णचदजी को उनके साथ भेजा[1]।

---

१. जद कर्म ने सत मोती, वलि कृष्णचंदजी नै तदा।
एं तीनू नै चौमास वेले, ठहराय नै गणपति मुदा॥
(जय सुजश ढा० १६ गा० १२)

५. मुनि श्री ने अनशन पूर्वक केलवा में स्वर्ग-प्रस्थान किया।

ख्यात में उनका स्वर्गवास सवत् नहीं है केवल १८ लिखकर छोड़ दिया है। सं० १८९८ जेठ वदि १४ के दिन जयाचार्य द्वारा रचित सतगुणमाला ढा० ४ मे तब तक दिवगत साधुओं मे उनका नाम है,[१] इससे उनका स्वर्गवास सं० १८९८ मे हुआ ऐसा प्रतीत होता है।

शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ९५ मे स्वर्गवास सवत् १९१८ लिखा है जो उपर्युक्त ढाल के प्रमाण से गलत है।

---

१. किसनचंदजी वासी दिल्ली रा जांण कै, दिल्ली थी संजम लियो जी।
अणसण कर पाया परम किल्याण कै, जन्म सुधारचो जश लियो जी॥
(संतगुणमाला ढ़ा० ४ गा० ३६)

१०५।३।१८ मुनि श्री रामसुखजी (सूरवाल)

(संयम पर्याय सं० १८८६-१८९६)

लय—भिक्षु ! म्हांरी आतमा पुकारै……

ध्याऊं-ध्याऊं-ध्याऊं रे रामसुख ध्याऊं,
मैं पल पल ध्यान लगाऊं जीओ।
गाऊं-गाऊं-गाऊं रे भाव सुमन लाऊं,
हो तन्मय अलख जगाऊं जीओ ॥ध्रुव॥

ग्राम सूरवाल तात 'दयाचंद' पोरवाल,
माता रूपां कहलाई जीओ। ध्याऊं…।
सात बांधवों में बड़े 'रामसुख' सुख ज्यों,
शादी उनकी हो पाई जीओ ॥१॥

भाग्य से मिला है योग उन्हें मुनि जन का,
श्रद्धा की नींव लगाई।
श्रावक बने हैं व्रत धार के खुलासा,
रुचि अध्यात्मिक उमड़ाई ॥२॥

शील की दलील बड़ी देकर तारुण्य में,
आदर्श रखा है भारी।
सामायिक पौषध और करते तपस्या,
व्रत पाल रहे धृतिधारी ॥३॥

पचासी की साल सित दशमी आसोज की,
जयपुर में संयम पाया।
छोड़े मां बाप पत्नी और छहों भाई,
अन्तर चैतन्य जगाया ॥४॥

सोरठा

उसी वर्ष सोल्लास, रहे आप जय-चरण में ।
छह ही वर्षावास, कर पाये जय-शरण में ॥५॥

दोहा

सोलह दीक्षाएं हुई, राम वंश की भव्य ।
व्रतिवर हीरालाल के, प्रकरण से ज्ञातव्य' ॥६॥

लय—भिक्षु ३ म्हांरी आतमा पुकारै…

विनय-विवेक-शील त्याग-तप अग्रणी,
रुचि लेखन मे भी अच्छी ।
आस्था अपार प्रभु-वाणी में उनकी,
सघीय भावना सच्ची ॥७॥

तप की तो चढ़े ऊंची मेरु की चूलिका,
सुन-सुनकर सिर डोलाता ।
पंचमार में भी दर्शन चौथे का करके,
जन-जन का मन चकराता ॥८॥

सोरठा

किया कल्पनातीत, कुछ वर्षों में तीव्र तप ।
ली आत्मा को जीत, घनीभूत पुरुषार्थ से ॥९॥

लय—भीखणजी स्वामी रा चेला…

तरुण तपस्या का दिग्दर्शन करिये सब नर नारी जी ।
धन्यवाद की ध्वनि से भरिये अम्बर-क्यारी जी ॥ध्रुव॥

पहला वालोतरा दूसरा शहर फलौदी पावस जी ।
चंदेरी में किया तीसरा भरा शान्त रस जी ।
चौविहार इक्कीस दिवस में एक दिवस तिविहारी जी ॥१०॥

चौथा बीकानेर नगर में वर्षाकाल विताया जी।
तेसठ में बारह दिन जल का स्वाद चखाया जी ।।
कठिन साधना देख स्व-पर मत जन में अचरज भारी जी ।।११।।

पाली में पंचम चौमासा तप अड़सठ दिन ऊंचा जी।
जिनमें ग्यारह दिन ही पानी पिया समूचा जी।
प्रगति उत्तरोत्तर करते है प्रबल पराक्रम-धारी जी ।।१२।।

छठा वर्षावास लाडनूं शुरू किये एकान्तर जी।
एक बार फिर भोजन करना समता धर कर जी।
पीछे बेले-बेले तप की बहु दिन चली फुवारी जी ।।१३।।

उभय प्रहर के बाद पारणा, करना मुनि ने ठाना जी।
व्यंजन और विगय भिक्षा में नही मंगाना जी।
घी का था आगार एक जो चक्षु-सुरक्षाकारी जी ।।१४।।

रूखा-सूखा विरस अशन जो बचा खुचा मुनियों का जी।
प्रहर तीसरे में कर भरते देह-झरोखा जी।
रसना वश कर दमी इन्द्रियां मन की ममता मारी जी ।।१५।।

खखर की काया को सूखी लकड़ीवत् तप करके जी।
खीच लिया नवनीत साधना में खप करके जी।
विहरण करते आये चूरू अप्रतिबध-विहारी जी ।।१६।।

ग्रीष्मकाल का समय भयकर व्यथा हुई कुछ तन में जी।
फिर भी ध्यान तपस्या का ही था क्षण-क्षण में जी।
एकान्तर करते करते ही चढे ऊर्ध्व सुविचारी जी ।।१७।।

पैंतालीस दिनों का तप कर ताना लम्बा सीना जी।
उग्र-उग्र वह जेठ और आषाढ़ महीना जी।
साथ-साथ आतापन लेते वीर पुरुष अवतारी जी ।।१८।।

सब मनाह करते मुनि श्रावक कहते गर्मी भीषण जी।
करो पारणा अवसर देखो तपो-विभूषण ! जी।
नस-नस दीख रही पंजर की विल्कुल न्यारी-न्यारी जी ॥१९॥

अत्याग्रह से शुक्ल तीज को मुनि ने किया पारणा जी।
चोथभक्त फिर किया चोथ को कर विचारणा जी।
सूख रही है क्रमश. दिन दिन उनकी तन-फुलवारी जी ॥२०॥

दोहा

छह वर्षों तक प्रायश., सहन किया बहु शीत।
कर्म-निर्जरा की परम, रहती दृष्टि पुनीत[२] ॥२१॥

लय—भीषणजी स्वामी रा चेला…

आत्मालोचन स्पष्ट अष्टमी तिथि को कर हरपाये जी।
क्षमायाचना द्वारा मैत्री रस भर पाये जी।
महाव्रतारोपन कर पुनरपि फूले आत्म-पुजारो जी ॥२२॥

चढते है परिणाम बड़े ही प्रमुदित समुदित सुख से जी।
नही मृत्यु का भय है मुझको कहते मुख से जी।
इतने में तो हुई असाता गतिविधि वदली सारी जी ॥२३॥

पूछा जय ने कहो तपोधन ! सोच न कोई मन में जी ?
करता फिक्र वही जिसके भ्रम प्रभु-प्रवचन में जी।
आस्था दृढ है मेरी प्रभुवर ! रास्ता निर्भयकारी जी ॥२४॥

रुकी जीभ इतने में अनशन सागारी करवाया जी।
वोल न पाये वापस किंचित् समय विताया जी।
पहुंचे है सुरलोक जीत के पद में मंगलकारी जी ॥२५॥

साधुवाद देते सव शत-शत जय-जय-घोप सुनाते जी।
मुक्त-स्वर स्तुति गाकर रोम-रोम विकसाते जी।
श्रद्धांजलि अर्पित कर भरते श्रद्धा-रस की झारी[३] जी ॥२६॥

दोहा

विघ्नहरण की ढ़ाल में, 'राम' नाम अभिराम।
अ-भी-रा-शि-को पद्य का, रटन करो हरयाम[४] ॥२७॥

लय—भिक्षु ३ म्हांरी आतमा पुकारै…

गरिमा बताकर कुछ रामसुख मुनि की,
दीपक की शिखा दिखाई।
'जय' ने दिखाया तेज तेजस्वी सूर्य का,
रच गीति चार मन भाई ॥२८॥

रत्नाकरतुल्य शासन गहरा है भिक्षु का,
वह रत्न भरे अनमोले।
मेरुदंड वाली वड़ी धरणी तुला में,
वे नहीं जा रहे तोले[५] ॥२९॥

१. मुनि श्री रामसुखजी माधोपुर के निकटवर्ती सूरवाल (ढूढाड) ग्राम के निवासी जाति से पोरवाल और गोत्र से ओछला (यशलाह) थे। उनके पिता का नाम दयाचदजी और माता का रूपांजी था। वे सात भाई थे। रामसुखजी का यथासमय विवाह हो गया। साधु-साध्वियो के सम्पर्क से उनके दिल मे धर्म के प्रति गहरी निष्ठा उत्पन्न हुई। उन्होने स० १८८१ मे पत्नी सहित आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया। वे गृहस्थावस्था मे रहते हुए वहुत वर्षो तक श्रावक धर्म का पालन करते रहे। साथ-साथ सामायिक, पोषध तथा तपस्या के द्वारा उत्तरोत्तर अध्यातम भावना को वढाते रहे।[1]

उन्होने माता, पिता, छह भाई तथा स्त्री को छोडकर स० १८८९ आसोज सुदि १० (दशहरा) के दिन वडे वैराग्य से दीक्षा स्वीकार की। (ख्यात)

उनकी दीक्षा जयपुर में हुई :—

जैपुर सैहरे जुगत सू, निव्यासीये निकलंक।
दशरावे लीधी दिख्या, मेटचो आतम वंक॥

(रामसुख गु० व० ढा० १ दो० ५)

उन्होने दीक्षा किसके द्वारा ली इसका उल्लेख नही मिलता। परन्तु जय सुयश मे ऐसा लिखा है कि स० १८८९ के चातुर्मास के पश्चात् वे (रामसुखजी) मुनि जवानजी (५०) और जीवोजी (४६) के साथ झारोल (मेवाड़) गये। तीनों मुनि वहां विराज रहे थे तव मुनि श्री जीतमलजी ६ ठाणो से आचार्य श्री राय-चदजी के साथ गुजरात यात्रा करने के लिए जाते हुए 'झारोल' पधारे। उस समय मुनि रामसुखजी ने जय मुनि को साथ ले चलने के लिए कहा तव जय मुनि ने उन्हे साथ लेकर सात ठाणो से गुजरात की तरफ विहार किया :—

जीवो मुनि ने जवान स्वामी, हुंता त्यां कनै उमही।
रामसुख मुनि कह्यु हूं पिण, तुझ संगे आवूं सही॥
हिवे सप्त ठाणे जय महामुनि, गुर्जर देश दिशि चाल्या गुणी।

(जय सुयश ढा० १९ गा० ४, ५)

---

१. देश ढूढाड जाणियै, सूरवाल सुखदाय।
माधोपुर थी ढूकड़ो, ग्राम मनोहर ताय॥
दयाचद रूपां त्रिया, पुत्र रामसुख सार।
इक्यासीये सील आदरचो, भामण ने भरतार॥
वहु वर्षा श्रावक पणै, तपस्या कीधी ताम।
सामायिक पोषा करै, पालै वरत तमाम॥

(गु० व० ढ़ा० १ दो० २ से ४)

इस संदर्भ से लगता है कि मुनि जवानजी (५०) का सं० १८८९ का चातुर्मास जयपुर था और मुनि जीवोजी (४४) उनके साथ थे। उस चातुर्मास में मुनि जवानजी ने मुनि रामसुखजी को दीक्षित किया हो।

दीक्षा के बाद झारोल में जब से मुनि रामसुखजी जय मुनि के साथ हुए तब से अन्त तक उनके साथ मे ही रहे।

मुनि रामसुखजी के परिवार की आचार्य रायचदजी तथा जयाचार्य के शासनकाल मे १६ दीक्षाएं हुईं। उनका पूरा विवरण मुनि श्री हीरालाल (१२६) के प्रकरण मे पढ़े।

२. मुनि श्री उच्चकोटि के त्यागी, विरागी और तपस्वी हुए। उनके तप आदि का विवरण इस प्रकार है :—

१. स० १८९० का प्रथम चातुर्मास जय मुनि के साथ बालोतरा किया।

२. स० १८९१ का द्वितीय ,, ,, ,, ,, फलौदी ,,

३. स० १८९२ का तृतीय ,, ,, ,, ,, लाडनूं ,,

वहां उन्होने लगातार १९ दिन का चौविहार तप किया, २०वें दिन पानी पिया और २१वे दिन फिर चौविहार रखा। २२वे दिन पारणा किया। साधुओ मे उनका यह तप सर्वोत्कृष्ट था।

४. स० १८९३ का चतुर्थ चातुर्मास जय मुनि के साथ बीकानेर किया।

वहां उन्होने ६३ दिन का तप किया। उसमे केवल १२ दिन पानी पिया—(१) तीसरे दिन (२) सातवे दिन (३) बारहवे दिन (४) उन्नीसवें दिन (५) बाइसवे दिन (६) पच्चीसवे दिन (७) इक्तीसवे दिन (८) अड़तीसवे दिन (९) चौवालीसवें दिन (१०) पचासवे दिन (११) छप्पनवें दिन (१२) इकसठवे दिन। शेष ५१ दिन चौविहार किये।

(गु० व० ढा० १ गा० ५ से १० के आधार से)

५. स० १८९४ का पांचवा चातुर्मास जय मुनि के साथ पाली किया।

वहा उन्होने ६८ दिन का तप किया। उसमे केवल ११ दिन जल पिया—(१) चौथे दिन (२) दशवे दिन (३) सोलहवें दिन (४) बीसवें दिन (५) छव्वीसवे दिन (६) बत्तीसवे दिन (७) पैंतालिसवें दिन (८) इकावनवे दिन (९) अठावनवें दिन (१०) बासठवे दिन (११) छयासठवे दिन। शेष ५७ दिन चौविहार किये।

(गु० व० ढा० १ गा० ११ से १५ के आधार से)

६. सं० १८९५ का छठा चातुर्मास युवाचार्य श्री जीतमलजी के साथ लाडनूं किया।

वहां उन्होंने पहले एकान्तर तप किया और पारणे के दिन केवल एक बार आहार करते। बाद मे बहुत दिनो तक बेले-बेले तप किया। पारणा

केवल एक बार तीसरे प्रहर मे करते। उसमे भी पारणे के लिए विगय (दूध आदि) तथा व्यजन (साग, सब्जी) मगाने का त्याग था। सिर्फ आखों की सुरक्षा के लिए घी का आगार था। इस प्रकार अनेक दिनो तक रुखा-सूखा भोजन करके अपने शरीर को अस्थिपंजर की तरह कृश कर लिया :—

> छठै चौमासे वली लाडणू जी, एकंतर एक टक आहार।
> पछै वेले वेले किया घणां दिनां जी, तीजे पोहर पारणे धार॥
>
> पारणे विगै व्यंजण तणा जी, मंगावण रा पचखाण।
> एक सपी रो आगार मुनि राखियोजी, निजर दिरया भणी जांण॥
>
> उतरतो आहार साधां तणो जी, तीजे पहर एक टक ताय।
> घणां दिनां तांइ जाणियैजी, खखर कर दीधी काय॥

(रामसुख गु० व० ढा० १ गा० १६, १७, १८)

सं० १८९५ के शेषकाल मे वे जयाचार्य के साथ चूरु पधारे। वहां उन्होंने कुछ दिन तो एकान्तर तप किया। फिर ग्रीष्म ऋतु एव शरीर मे अस्वस्थता होने पर भी ४५ दिन का तप किया। यह तपस्या द्वितीय जेष्ठ और आषाढ महीने मे उष्ण पानी के आधार से की। उसमे फिर आतापना भी लेते थे।

> विचरत-विचरत आवियाजी, सैहर चूरू मांहे सोय।
> एकंतर दिवस केतां लगै जी, चढ़तै परिणाम सुध जोय॥
>
> कांयक असाता वाइ (वायु) तणी जी, ग्रीष्म काल विकराल।
> पिण ध्यान तपसा करिवा तणोजी, किया दिवस पैतालिस भाल॥
>
> जेठ मासे अति आकरो जी, आधो] आषाढ़ दिन जोय।
> ए उष्ण पांणी रा आगार सू जी, वलि आतापन अवलोय॥

(राममुख गु० व० ढ़ा० १ गा० १९, २०, २१)

सं० १८९५ आषाढ़ शुक्ला ३ को साधु और श्रावको ने अत्यधिक आग्रह किया तव मुनि श्री ने पारणा किया। चोथ के दिन फिर उन्होंने चौविहार उपवास कर लिया:—

> जवरी सू करायो पारणो जी, आषाढ़ सुदि तिथ तीज।
> चौथ चौविहार कीधो वली जी, पिण शरीर निपट गयो छीज॥

(रामसुख गु० व० ढा० १ गा० २३)

मुनि श्री द्वारा किये गये वड़े थोकड़ों की कुल संख्या इस प्रकार है :—

$\frac{२१}{१}$ $\frac{६३}{१}$ $\frac{६८}{१}$ $\frac{४५}{१}$।

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० ९८ मे दो वार पैंतालिस के थोकड़े का उल्लेख है जो भूल से किया गया है।

इस प्रकार मुनि श्री चातुर्मासो मे विशेष तपस्या करते, उष्णकाल मे आतापना लेते और शीतकाल मे शीत सहन करते थे ।

वे छह साल शीत ऋतु में केवल एक चोलपट्टे मे रहे, पछेवडी भी नही ओढी :—

पट सीयाले वहु सी सह्यो जी पछेवड़ी नो परिहार ।
एक चोलपटा रा आधार सू जी, कष्ट वहु सह्यो तिणवार ॥
(गु० व० ढ़ा० १ गा० ३१)

३. पैंतालिस दिन की तपस्या करने के पश्चात् मुनि श्री का शरीर अत्यधिक दुर्वल हो गया था फिर भी उनका मनोवल प्रशंसनीय था। उन्होंने आषाढ़ शुक्ला ८ के दिन आत्मालोचन, महाव्रतारोपन एवं सभी के साथ क्षमायाचना की। निर्भयता पूर्वक वार्तालाप कर रहे थे। अकस्मात् उनके शरीर मे कुछ अस्वस्थता हुई। उस समय युवाचार्य ने पूछा—'आपके मन मे किसी प्रकार की चिंता तो नही है।' मुनि श्री तपाक से उत्तर देते हुए वोले—'जिसके मन मे श्रद्धा-आचार के विषय मे संशय होता है अथवा जो कायर होता है वही चिंताग्रस्त होता है।'
(गु० व० ढा० १ गा० २४ से २७ के आधार से)

कुछ ही क्षणो वाद वोलते-वोलते मुनि श्री की जवान वद हो गई। युवाचार्यश्री ने अन्तिम समय देखकर उन्हे सागारी सथारा कराया। वे वापस कुछ भी नही कह सके। एक घडी (२४ मिनिट) के वाद स० १८९५ आषाढ शुक्ला ८ के दिन पश्चिम प्रहर मे चूरु मे वे समाधि-मरण प्राप्त हुए :—

इतला मांहे जिभ्या थक गई जी, पचखायो सागारी संथार ।
वचन पाछो नहीं वागरचो जी, आसरै घड़ी अवधार ॥

संवत् अठारै पचाणूए जी, आसाढ़ सुदि आठम जोग ।
दिन पाछिलो पोहर रै आसरै जी, ऋष रामसुख पोहतो परलोग॥
(गु० व० ढा० १ गा० २८, २९)

मुनि श्री का कुल साधना काल पौने सात साल का रहा।

४. विघ्नहरण की ढाल मे जयाचार्य ने मुनि श्री का स्मरण किया है। अ-भी-रा-शि-को-पद्य मे 'रा' अक्षर से रामसुखजी के नाम का सकेत है। वहा उनके संवंध मे लिखा है :—

रामसुख रलियामणो, तेसठ उदक आगारी हो ।
अडसठ पंतालिस भला, वलि उगणोस चौविहारी हो ।
वड़ तपसी तपधारी हो ।

मन दृढ़ वच दृढ़ महामुनि, शील दृढ़ सुविचारी हो।
परम विनीत पिछाणियो, सरधा दृढ़ सुधारी हो।
समरण सुख दातारी हो॥
(संतगुणमाला ढा० ८ (विघ्नहरण ढा) गा० ९, १०)

सं० १८९८ जेठ वदि १४ को जयाचार्य द्वारा रचित दिवगत साधुओं के स्मरण की ढाल मे उनका नाम है :—

रामसुखजी चौविहार उगणीस कै, ऋषिराय तणा प्रताप थी जी।
उदक आगारे तेसठ अडसठ पैंतालिस कै, तप कर कार्य सुधारियो जी॥
(सतगुणमाला ढा० ४ गा० ३७)

५. जयाचार्य विरचित मुनि श्री के गुण वर्णन की चार ढाले हैं। ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० ९६ से १०० मे भी उनमे संबधित वर्णन है।

जयाचार्य ने उनके प्रति जो भाव भरे उद्‌गार व्यक्त किये है, उनकी संक्षिप्त झांकी निम्नोक्त पद्यो मे है :—

विनीत घणों आज्ञा पालवा जी, निज छांदो रुंवणहार।
विकट तपसी गुण आगलो जी, महा निरलोभी नें लिखणदार॥
सरधा में अडिग संठो घणो जी, पकी देव गुरां री परतीत।
संत ऋष रामसुख सारिखा जी, विरला छै तपसी विनीत॥
(गु० व० ढा० १ गा० ३३, ३४)

चौथा आरा सारिखो, तप कीधो खड्‌गधार।
जन्म सुधारचो आपरो, भजन करो नर-नार॥
(गु० व० ढा० २ गा० १२)

तू कीधा उपगार नो जांन, तैं जीतो मन्मथ नै मांन।
सुगुरु तणो तू वड़ो सुविनीत, तैं हद पाली पूरण प्रीत॥
वचन तणो तू सूर उदार, निर्मल वुद्धि तुम ऊंडो विचार।
याद आयांड हीयो हरकत, तो सम जग में विरला संत॥
तू प्रतीतकारी गुणवान, आणंदकारी चित तू सुख स्थांन।
गुण ग्राहक तूं गिरवो गभीर, वचन निभावण तू वडवीर॥
(गु० व० ढा ३ गा० ३, ४, ६ से ९)

पूरण तुझ, मुझ आसता, पूरण तुझ परतीत।
वयण विमल उभय वागरचा, चित आवै मुज चीत॥
(गु० व० ढा० ४ गा० ३)

१०६।३।१६ श्री उदोजी (वरहावाड़ा)

(दीक्षा सं० १८८९, ऋषिराय युग में गणवाहर)

रामायण-छन्द

एक-चक्षु थे उदयचदजी 'वरहावारा' के वासो।
हेम हाथ से ली है दीक्षा आया संवत् नय्यासी[1]।
कर्म योग से गण को छोड़ा मिले फतहचंदजी साथ।
फिर आये ले नूतन दीक्षा पर न टिके ज्यादा दिन रात[2] ॥१॥

१. उदोजी वरहावाडा (ढूढाड) के वासी थे। उन्होंने सं० १८८६ में श्री हेमराजजी के पास दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

सेठिया-संग्रह तथा सत विवरणिका मे उनका गांव बोरावड़ लिखा है जो वरहावाडा के स्थान पर भूल से लिख दिया गया है।

२. वे कुछ दिन पश्चात् गण मे अलग होकर गण से बहिर्भूत फतहचंदजी (१०२) के साथ मिले। स० १८९१ का एक चातुर्मास उनके साथ देशनोक मे किया।

सं० १८९१ के चातुर्मास के पश्चात् फतहचंदजी को छोड़कर वे जयाचार्य के पास बीकानेर मे नई दीक्षा लेकर सघ मे आये :—

तिहां फतेहचंदजी मग उदैचंद थो, ते तसु छोड़ नं तिहवारो रे।
श्री जय पास आवी ली दीक्षा, जद पाम्या जन चिमत्कारो रे ॥

(जय सुयश ढा० २० गा० १८)

दूसरी वार फिर ऋषिराय के शासनकाल में ही गण से पृथक् हो गये।

१०७।३।२० श्री हजारीजी (पींपाड़)

(दीक्षा सं० १८६०, १८६० तीसरे दिन गणवाहर)

रामायण-छन्द

वासी थे पींपाड़ ग्राम के नाम हजारीमल गाया।
पिता जीतमल गोत्र चौधरी योग सुगुरु का मिल पाया।
दीक्षा ली वैराग्य-भाव से तात भ्रात की अनुमति से[1]।
फिर भी ज्ञाति ले गये घर में दिवस तीसरे दुष्कृति से ॥१॥

मोह-शृंखला से निगडित हो रचा उन्होने वड़ा प्रपंच।
खोल मुखपती उन्हे डाल गाड़ी मे लाये करके खंच।
रुदन कर रहे जोर-जोर से और झर रहे अश्रु अपार।
किया घोरतम पाप कुटुम्बी जन ने हा! हा! बिना विचार ॥२॥

दोहा

हो गृहस्थ फिर वाद में, कर मुनि-संग सुजान।
जानकार श्रावक वने, सीखा तात्त्विक ज्ञान[2] ॥३॥

१. हजारीमलजी पीपाड़ (मारवाड़) के निवासी जीतमलजी चौधरी (ओसवाल) के पुत्र थे। उन्होंने स० १८९० मृगसर वदि २ को पिता, भाई आदि की आज्ञा लेकर दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

उन्होंने दीक्षा किसके द्वारा ली इसका ख्यात मे उल्लेख नही है। किन्तु स० १८९० का मुनि श्री हेमराजजी (३६) का चातुर्मास पीपाड़ में था अतः बहुत सभव है कि मुनि श्री ने उन्हे दीक्षित किया हो।

२. दीक्षित होने के तीन दिन बाद स० १८९० मृगसर वदि ५ को उनके सबंधी छल पूर्वक उन्हे पकड़ कर एव रोते हुए को मुहपती खोलकर बलात् गाडे मे विठाकर ले गये। उन्होंने यह घोरतम पाप किया।

हजारीजी बाद मे वडे जानकार श्रावक हुए[1]।

---

१. ख्यात मे लिखा है—'न्यातीला आय परपंच करी पकड़ नै ले गया, रोंवता ने, मुहपती खोल नै गाडा मे घाल नै ले गया, मोटो पाप कीयो।' पछै वड़ो श्रावक जाणपणा वालो हुवो।

शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १०२ मे भी यही उल्लेख है।

१०८।३।२१ श्री रोड़जी (कानोड़)

(दीक्षा सं० १८६०, ऋषिराय युग में गणवाहर)

रामायण-छन्द

'रोड' नाम कनोड़ ग्राम था मेदपाट की धरणी पर।
शहर उदयपुर में ली दीक्षा धूमधाम से सजधज कर[1]।
कितने वर्ष रहे शासन मे फिर तो नाता तोड़ लिया।
शामिल हुए फतहचंद के उनको भी फिर छोड़ दिया[2] ॥१॥

१. रोडजी मेवाड में कानोड़ के वासी थे। उन्होंने उदयपुर में दीक्षा-महोत्सव के साथ दीक्षा ली।

(ख्यात)

दीक्षा किस वर्ष और किसके द्वारा ली इसका उल्लेख नही मिलता। उनके पूर्व की दीक्षा सं० १८६० और बाद की सं० १८६१ की है अत. उनकी दीक्षा संभवत: १८६० में हुई।

सेठिया संग्रह तथा संत विवरणिका में उनकी दीक्षा सं० १८६० मृगसर वदि २ की लिखी है, जो हजारीजी (१०७) की दीक्षा तिथि के भ्रम से लिख दी गई मालूम देती है।

२. वे थोड़े वर्षों बाद गण से अलग होकर गण से बहिर्भूत फतहचंदजी (१०२) के शामिल हो गये। फिर उनसे भी अलग हो गये।

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ६ सो० १०३)

उनके गण से अलग होने का संवत् नही मिलता पर वे ऋषिराय युग में गण से पृथक् हुए।

१०६।३।२२ मुनि श्री कपूरजी (जसोल)

(संयम-पर्याय सं० १८६१—१६३२)

नवीन-छन्द

मरुधरणी में पुर जसोल था बोरड़ कुलगोत्र स्वजन जन का।
पितृवर हुक्मचंदजी सुविदित था नाम कपूर नन्दन का।
अविवाहित वय में ली दीक्षा मां वाप वधु जन तज करके।
अष्टादश शत नवति एक में वैराग्य हृदय में भर करके[1] ॥१॥

शैशव वय मे बुद्धि विचक्षण पढने मे ध्यान लगाया है।
गाथा साठ हजार कठस्थित कर नूतन नाम कमाया है।
पर कर्मो की गति विचित्र है जिससे फसकर दलवंदी में।
गण नंदन वन की खुशबू तज पड़ गये भूमिका गदी में ॥२॥

निकले शतोन्नीस तेरह में मुनि जीव साथ मे कर परिचय।
वापस तीन मास के पीछे आये ले प्रायश्चित्त उभय[2]।
फिर बीस साल मे अलग हुए कर चतुर्भुज्ज से गठबंधन।
समझाने से हस व्रती के तत्क्षण स्वीकारा गुरु-शासन ॥३॥

फिर कुछ दिन से वार तीसरी संवंध श्रमण-गण से तोडा।
जिल्लाबंदी कर अन्दर में अविनीतों से तांता जोड़ा।
कव ही निन्दा कव ही स्तवना करते गण की जन परिषद में।
हो हैरान स्थान पर आये ले दीक्षा नई सुगुरु पद मे[3] ॥४॥

कुछ वर्षो के वाद आ गया फिर कर्म उदय मे वह चौथा।
उलटा चक्र चला कुग्रह का वा लगा चंद्रमा वह चौथा।
चौथी बार दूर हो गण से दर-दर में भटके दुःख पाये।
फिर छेदोपस्थाप्य चरण ले शासन के आश्रय में आये[4] ॥५॥

लय—जब तुम ही चले…

कर अत्मादमन भरपूर, सूर सिन्दूर कपूर कहाया ।
भवसिन्धु किनारा पाया ॥
तूफान कर्म का है भारी, खाते उफाण सब नर-नारी ।
ज्योति मंद से होती धुंधली छाया । भव…६॥

खिलता कब ही मुरझाता है, मिलता कब ही बिछुड़ाता है ।
अजब गजब का इसने जाल बिछाया ॥७॥

साधक-योगी भी बड़े बड़े, इस अंधड़ से तरुवत् उखड़े ।
विधि के आगे सबने शीश झुकाया ॥८॥

बहु उदाहरण आगम में हैं, मुनि कपूर उस ही क्रम में है ।
पर धन्यवाद आखिर उन्माद मिटाया ॥९॥

गिरना न अश्व से बात बड़ी, गिरकर उठना भी बात बड़ी ।
पुरुषोत्तम की गणना में वह आया ॥१०॥

दोहा

शतोन्नीस बत्तीस में, हो गण में स्वर्गस्थ ।
काम सुधारा अन्त में, पाया पद ऊर्ध्वस्थ[५] ॥११॥

दीक्षा मिलती ख्यात में, इनके द्वारा एक[६] ।
चातुर्मास अनूप सह, करने का उल्लेख[७] ॥१२॥

है जय कृत लघु रास में, इनका घटना-चक्र ।
कैसे वापस हो गये, होकर वक्र अवक्र ॥१३॥

१. कपूरजी मारवाड़ मे जसोल या वालोतरा के वासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से वोरड़ थे। उनके पिता का नाम हुकमोजी था। उन्होने माता-पिता, भाई-भोजाई आदि परिवार को छोड़कर अनुमानत अविवाहित (नावालिग) वय में सं० १८९१ मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

शासनप्रभाकर आदि मे उनका ग्राम जसोल लिखा है।

दीक्षा कहा और किसके द्वारा ली इसका उल्लेख नही मिलता।

सेठिया सग्रह और सत विवरणिका मे दीक्षा सवत् १८९० लिखा है पर वह उक्त प्रमाण से गलत है।

सेठिया सग्रह मे उल्लेख है कि वे अविवाहित वय मे दीक्षित हुए।

२. मुनि कपूरजी की मुनि जीवोजी (११३) के साथ अन्तरंग गुटवंदी थी। वाह्य रूप मे वे उसे व्यक्त नही होने देते थे। सं० १९१० मे मुनि जीवोजी (११३), धनजी (९२) और हमीरजी (१४१) के साथ मुनि श्री मोतीजी (७७) के सिंघाड़े से डवोक (मेवाड़) गाव मे अलग हुए थे। जीवोजी वहा से मजेरा गांव मे गये तव राजनगर के श्रावक लिखमीचन्दजी उन्हें समझाकर एवं दंड स्वीकृत कराकर वापस गण मे ले आये। उन्होंने वह चातुर्मास मोतीजी स्वामी के साथ मे किया। चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य के दर्शन कर उन्होने अपनी आत्मनिन्दा करते हुए गण गणि के गुणगान किये और विधिवत् लेख-पत्र लिखा दिया।

उस समय जयाचार्य ने सभी साधुओं से पूछा—'जीवराज को क्या दंड आना चाहिए?' तव मुनि कपूरजी ने अपने को निस्पृह एव निर्लेप दिखाने के लिए कहा—'इन्हे दसवा प्रायश्चित आना चाहिए, क्योकि इन्होने शासन एव शासन-पति के वहुत अवगुण वोले हैं।' कपूरजी ने अपना विश्वास उत्पन्न करने के लिए इस सवध का एक लेख पत्र लिखकर जयाचार्य के चरणो मे प्रस्तुत किया।

(लघु रास के आधार से)

परन्तु कपूरजी का जीवोजी के साथ गठवधन था जिससे स० १९१३ की साल जीवोजी के साथ कपूरजी गुप्त रूप मे पहली वार गण से अलग हुए .—

तेरा रे वर्षं विहुं मिल भेला, निकल ने करी गुरु नी हेला।

(लघु रास)

दोय थया गण वार रे, कपूर ने जीवो ऋषी।
आई कुमति अपार रे, विण पूछै चलता रह्या।

(आर्यादर्शन ढा० ५ सो० ५)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर मे उनका गण से पृथक् होने का सवत् १९१४ लिखा है पर 'लघु रास' तथा 'आर्या दर्शन' का उल्लेख ही सही है।

अलग होने के बाद दोनों ने गण-गणपति के बहुत अवर्णवाद बोले। श्रावक-श्राविकाओं द्वारा कुछ प्रोत्साहन न मिलने पर तीन महीनो के बाद सं० १९१४ में दंड लेकर वापस गण में आ गये :—

छूटा तेरे वास रे, दोय मुनि कर्म करी।
जुदा रह्या त्रिण मास रे, ते चवदे गण आविया।

(आर्या दर्शन ढा० ७ गो० ४)

३. स० १९२० माघ शुक्ला १३ को जयाचार्य कसुंबी (जो सुजानगढ और लाडनू के बीच है, वहा उस समय श्रद्धा के घर थे) से विहार कर लाडनू पधार रहे थे। तब चार संत १. कपूरजी (स्वयं), २. जीवोजी (११३), ३. सतोजी (१६२ जो कपूरजी के बहनोई थे) और ४. लघु छोगजी (१७७) पीछे रह गये। सध्या तक लाडनू नही आये तब जयाचार्य ने समझा कि वे गण से अलग हो गये है :—

हिवे कसुंबी के दिवस रहि, विहार करी करि महर।
महा सित पुष्प दिन पूजजी, आया लाडनू शहर॥

कपूर जीवोजी संत जी, लघु छोग पिण लार।
तिण दिन छाने निकल्या, ए च्यारूं अविचार॥

आथण लग आया नहीं, जब जाण्यो मुनिराय।
पूठे रहिवा नूं नही पूछियो, निकल्या एह जणाय॥

(जय सुजश ढा० ४८ दो० १, २, ३)

लघुरास मे भी इसका उल्लेख है।

इस तरह इनके दूसरी बार निकलने के तीन दिन बाद ही फाल्गुन वदि १ को जयाचार्य के आदेश से चतुर्भुजजी (१३७) और मुनि हमराजजी (१५१) इनसे मिले। पर चतुर्भुजजी की उनके साथ पहले से साठ-गाठ थी जिससे वे उनके सम्मिलित हो गये। मुनि हमराजजी ने उन सबको समझाया तब वे पांचों (चतुर्भुजजी ३ दिन, कपूरजी आदि ६ दिन) गण से बाहर रहे उसका दंड स्वीकार कर फाल्गुन वदि ३ को गण मे आ गये। फिर ९ दिन बाद फाल्गुन वदि १२ या १३ को कपूरजी उन सबके साथ तीसरी बार अलग हो गये।

स० १९२१ का चातुर्मास चतुर्भुजजी (१३७), कपूरजी (१०९), जीवोजी (११३), संतोजी (१६२) और छोगजी (१७७) छोटा ने जसोल किया। उस वर्ष मुनि तेजपालजी (१२९) का जसोल और मुनि हरखचंदजी (१४४) का बालोतरा चातुर्मास था।

कपूरजी ने सवा छह महीने वीत जाने पर सोचा—"अव अधिक दिन निकल जायेगे तो नई दीक्षा के विना पुन गण मे सम्मिलित नही करेंगे । अतः अभी से मैं पच पद वदना मे गुरु का नाम लेना प्रारंभ कर दू और मुनि तेजसी को इसकी साक्षी के लिए तैयार कर लू तो मेरी मूल स्थिति रह सकेगी ।" ऐसा सोचकर कपूरजी ने मुनि तेजसीजी को संवत्सरी के दिन कहा—'मैं पच पद वदना मे गुरु का नाम लेता हू और उसी दिशा मे 'तिक्खुत्तो' के पाठ सहित वदना करता हू ।' मुनि तेजसी ने सोचा—'यदि इनका दृष्टिकोण अव ही ठीक हो जाये तो अच्छा है ।' लेकिन उनकी अन्तर भावना मे अह और स्वच्छदता थी । उन्होने एक भाई के द्वारा मुनि श्री हरखचदजी (जिनका चातुर्मास वालोतरा था) को कहलाया—'मेरी पांच वातें स्वीकार कर ले तो मैं गण मे आ जाऊ ।'

१. मुझे प्रायश्चित्त मे तप दे, पर छेद न दे ।
२. मेरे पुस्तक पन्नो को नही लें ।
३. स्वामीजी वहुत साधुओ के सग दो दिन से अधिक मुझे साथ मे न रखे ।
४. पहले जो वखशीश की वह कायम रखें ।
५. वापस मेरा गण से वहिष्कार न करे ।

मुनि श्री हरखचदजी ने उस गृहस्थ से कहा—चार वातो के लिए तो गुरुदेव ही विचार सकते हैं, किन्तु इतना तो मैं कह सकता हूं कि वे दोप के विना तुम्हें गण से अलग नही करेंगे । इस तरह कपूरजी गण मे आने के लिए उद्यत हुए ।

चातुर्मास मे एक वार किसी गृहस्थ के द्वारा अधिक प्रयत्न करने पर जयाचार्य के आदेश से मुनि श्री तेजपालजी ने चतुर्भुजजी और छोटे छोगजी को दड देकर गण मे लिया था, पर उसी चातुर्मास मे वे फिर अलग हो गये । फिर उन पाचो मे भी दो गुट हो गये । एक तरफ चतुर्भुजजी, कपूरजी, छोगजी और दूसरी तरफ जीवोजी और सतोजी ।

कार्त्तिक शुक्ला ४ को कपूर जी मुनि हरखचदजी के पास वालोतरा मे आकर वोले—'मैं वहुत दिनो से पच पद वदना मे गुरु का नाम ले रहा हूं और सदैव लेता रहूगा ।' इस तरह उन्होने साधुओ के दिल में कुछ विश्वास पैदा किया ।

चातुर्मास के पश्चात् चतुर्भुजजी, कपूरजी और छोगजी 'छोटा' ने गण मे आने के लिए जयाचार्य की तरफ विहार किया । पर रास्ते मे वाव निवासी श्रावक मूलजी कच्छी मिले, उनके सामने उन्होने अनेक अनर्गल वाते कही । उसने सव वृत्तांत जयाचार्य को सुनाया तव जयाचार्य ने उनको नई दीक्षा दिये विना गण मे लेने का त्याग कर दिया ।

ये समाचार सुनकर वे वहुत उदास हो गये और वापस विहार कर पोप वदि मे पचपदरा चले गये । जयाचार्य वहां पधारे तव कपूरजी आये और विविध प्रकार की वहस कर निरुत्तर होकर चले गये ।

कुछ समय वाद चतुर्भुजजी, कपूरजी तथा छोगजी (लघु) को छोड़कर चले गये। वे दोनो—कपूरजी, छोगजी (लघु) माघ वदि १२ को जयाचार्य के पास आये और संघ मे लेने के लिए नम्रतापूर्वक प्रार्थना करने लगे। जयाचार्य ने फरमाया—'नई दीक्षा के विना गण मे नही लेंगे।' कपूरजी वोले—'आपके इसका त्याग है, पर मुनि सरूपचदजी के नही है, अत. वे तो ले सकते है। आचार्यप्रवर ने कहा—'गण के सभी साधुओं को नई दीक्षा दिये विना गण में लेने का त्याग है।' माघ शुक्ला ६ तक इस तरह वार्त्तालाप चलता रहा।' भावना सफल न होने पर दोनों वापस चले गये। गृहस्थों के सामने स्वार्थ भरी वातें करते रहे।

स० १९२२ का पाली चातुर्मास कर जयाचार्य वाजोली पधारे तव माघ वदि ८ को किस्तूरजी (१८५) (जो मुनि श्री हरखचंदजी के साथ थे, उन्हे चतुर्भुजजी ने फटाकर अपने साथ शामिल कर लिया था) नई दीक्षा लेकर गण मे आये। कुछ दिन वाद वैशाख वदि ७ को छोगजी (लघु) (१७७) नई दीक्षा लेकर संघ मे सम्मिलित हो गये।

स० १९२३ का मुनि श्री तेजपालजी का चातुर्मास जोधपुर था। चातुर्मास के वाद मुनि श्री पाली होते हुए 'दुंदाडा' पधारे। वहा माघ सुदी २ को अत्यत विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करने पर मुनि श्री तेजपालजी ने जीवोजी (११३) को साध्वियों को वदना करवाकर एव नई दीक्षा देकर माघ सुदी २ के दिन संघ मे लिया क्योंकि जयाचार्य ने चतुर्भुजजी और जीवोजी को नई दीक्षा के साथ साध्वियो को वदना किये विना गण मे लेने का परित्याग कर दिया था।

मुनिश्री तेजपालजी ने जीवोजी को साथ लेकर थली प्रदेश मे जयाचार्य के दर्शन किये। उस वर्ष कपूरजी भी मुनि श्री के साथ-साथ जयाचार्य के पास आये और सघ में लेने के लिए नम्र निवेदन करने लगे। जयाचार्य मे फरमाया—अगर तुमने चतुर्भुजजी मे शामिल होने के लिए उस दिशा मे विहार भी कर दिया है तो फिर तुम्हे जीवन भर गण मे लेने का त्याग है, तथा मेरे उत्तराधिकारी मघराज के भी आजीवन त्याग है :—

तूं अधिक अवनीत तणो दिलधार, जो तिण दिशि कियो विहार।
तो शासण माँहि लेवा रा जाण, जावजीव पचखाण।
मझ पट ए मघराज महाभाग, जावजीव तिण रै पिण त्याग।

(लघु रास)

उन्होने सव वातें स्वीकार की एवं आभ्यतर ग्रन्थि को खोलकर हृदय को सरल वनाया तव चैत्र वदि १३ को साध्वियों को वंदना करवाकर जयाचार्य ने उन्हे छेदोपस्थापनीय चारित्र (नई दीक्षा) देकर गण में सम्मिलित किया। संघ मे आकर उन्होने अपने द्वारा किये गये दुष्कृत्यो की भूरि-भूरि निंदा की और गण-गणपति के गुणगान करते हुए महान् आभार प्रदर्शित किया।

उक्त वर्णन स० १६२३ मे जयाचार्य द्वारा रचित 'लघुरास' के आधार से दिया गया है।

४. भावी वलवान होती है जिससे मुनि कपूरजी चौथी वार फिर गण से अलग हो गये। कुछ वर्षों वाद फिर गण मे आने की भावना हुई तव मुनि श्री पृथ्वीराजजी (२१६) ने आसीद मे सं० १६३२ के शेपकाल में उन्हे नई दीक्षा देकर सघ मे लिया।

५. वे स० १६३२ मे शासन मे स्वर्गस्थ हुए। अन्त मे अपना काम सुधार लिया। "दिन भर का भूला हुआ आदमी सायंकाल तक घर पर आ जाय तो भी अच्छा" वाली कहावत को चरितार्थ कर दिया।

६. स० १६०४ पार्ली मे उन्होंने साध्वी श्री मगनांजी (२३८) को दीक्षा दी, ऐसा ख्यात मे लिखा है पर उनके अग्रगण्य होने का उल्लेख नही मिलता।

७. पचपदरा के श्रावकों के प्राचीन पत्रों में लिखा है कि मुनि कपूरचदजी (१०६), अनूपचदजी (११४), घणजी (१३१) इन तीन ठाणों का चातुर्मास जोधपुर में था। सिंघाड़ वध मुनि अनूपचदजी थे।

८. ख्यात, शासन-प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १०४ से १०८ में सक्षिप्त तथा जयाचार्य विरचित 'लघुरास' में उनका विस्तृत घटना प्रसंग मिलता है।

११०।३।२३ श्री नंदोजी (गोगुन्दा)

(दीक्षा सं० १८९१, ऋषिराय युग में गणवाहर)

रामायण-छन्द

मेदपाट में गोगुदा के थे नंदोजी खोखावत ।
अष्टादश-शत एक-नवति में दीक्षित हो पाये प्रभु-पथ[1] ।
लेकिन कुछ वर्षों के पीछे छोड़ दिया शासन-प्रासाद ।
रहे अकेले धर्म-सघ के वोले भरसक अवगुणवाद ।।१।।

मिले फतहचंदजी में जा फिर उनसे भी हुए अलग ।
वने गृहस्थ वाद में तव तो द्वेप मिटा कुछ हुए सजग ।
कठिन चलाना गृहि का जीवन रहना मुश्किल इज्जत से ।
आम महूडे वेच-बेचकर भरते पेट मुसीवत से ।।२।।

दर्शन करते साधु-वर्ग के चरण चढाते श्रद्धा-फूल ।
दृष्टिकोण अनुकूल हुआ है लगे मानने अपनी भूल ।
जयाचार्य के दर्शन करके सविनय क्षमायाचना कर ।
की निज दुष्कृत्यों की निन्दा, गणि-गुण गाये मुक्त-स्वर[2] ।।३।।

१. नदोजी मेवाड़ मे गोगुदा (मोटाग्राम) के निवासी और गोल्र से (ओसवाल) थे। उन्होने सं० १८९१ मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

दीक्षा कहां और किसके द्वारा ली इसका ख्यात मे उल्लेख नही है। सेठिया-संग्रह तथा संतविवरणिका मे दीक्षा संवत् १९९० लिखा है जो उपर्युक्त प्रमाण से सही नही है।

२. नदोजी कुछ वर्षो वाद भिक्षु-शासन से अलग हो गये। कुछ समय तक अकेले घूमते रहे और संघ के वहुत अवर्णवाद वोले।

(ख्यात)

फिर सं० १८९५ मे गण से वहिर्भूत मुनि फतहचदजी (१०२) के साथ शामिल हो गये। स० १८९६ का चातुर्मास उनके साथ रामगढ मे किया। फिर उनको छोडकर मोड़ी गोगुंदा आये। वहां साधु वेप को उतार कर एवं सिर पर पगड़ी वाधकर गृहस्थ वन गये। केरियां तथा महूडे आदि वेचकर आजीविका चलाने लगे।

गृहस्थ वनने के वाद उनका द्वेप-भाव मिट गया और धर्म-सघ के सम्मुख हो गये।

युवाचार्य श्री जीतमलजी उदयपुर पधारे तव नंदोजी का एक पत्र आया जिसमें 'तिक्खुत्तो' के पाठ से वदना व गुणग्राम लिखे थे। वाद मे जयाचार्य 'आहेड' पधारे तव वे स्वय आये और वदना करके वोले—'मैं आपको साधु समझता हू, भिक्षु स्वामी के साधुओ के प्रति मेरी श्रद्धा है, उन्हे उत्तम पुरुप मानता हूं। पहले मैंने साधुओ के अवगुण वोले वह वुरा काम किया, उसके लिए मैं आपसे क्षमायाचना करता हूं।'

इस तरह अपने अवगुण वतलाये और साधुओ के वहुत गुणगान किये। यह वात आहेड गांव मे स० १८९६ आपाढ सुदि ६/७ को हुई।

(प्राचीन पत्र प्रकरण ३ सख्या २४ के आधार से)

ख्यात में उक्त वर्णन सक्षिप्त रूप मे है।

१११।३।२४ मुनि श्री नाथूजी (केलवा)

(संयम-पर्याय सं० १८९१-१८९८ के पूर्व)

गीतक-छन्द

केलवा के थे निवासी नाम 'नाथू' आपका ।
गोत्र चोरड़िया सुधार्मिक कुल मिला मां वाप का ।
विरत हो ऋषिराय गुरु के हाथ से संयम लिया ।
नवति-एकाधिक हयन में काम तो उत्तम किया[1] ॥१॥

तपोमय जीवन विताया जोड़ पौरुष से कड़ी ।
वेदना के समय में दृढ़ता दिखाई है वड़ी[2] ।
स्वल्प वार्पिक अवधि में अरमान सारे फल गये ।
मांगलिक सद्भावना से दीप मंगल जल गये[3] ॥२॥

१. मुनि श्री नाथूजी मेवाड़ में केवला के वासी थे। उन्होने आचार्य श्री रायचंदजी के हाथ से दीक्षा ग्रहण की :—

शहर केलवा रो नाथू सत सुजाण कै, ऋषिराय पास संजम लियो जी।

(सतगुणमाला ढा० ४ गा० ४८)

केलवा के महात्मा सहसमलजी के पास लिखित चोरडिया परिवार की वंशावली मे लिखा है कि नाथूजी केलवा के निवासी और जाति से चोरड़िया (कोठारी) थे। उनके पिता का नाम गुमानचदजी कोठारी था। उन्होने स० १८९१ मे आचार्य श्री रायचदजी द्वारा उत्कृष्ट वैराग्य से दीक्षा स्वीकार की।

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ११० आदि मे उनका ग्राम 'लावा' और दीक्षा मुनि जवानजी के हाथ से स० १८९१ मे होने का उल्लेख है किन्तु जयाचार्य ने उपर्युक्त 'सतगुणमाला' के पद्य मे उनका गांव केलवा और उनकी दीक्षा आचार्य श्री रायचदजी द्वारा होने का उल्लेख किया है अत. वह अधिक प्रमाणित है। उपर्युक्त वशावली के उल्लेख से भी इसकी पुष्टि होती है।

२. मुनि श्री अपने जीवन को सफल बनाने के लिए साधनारत हो गये। उन्होंने चोले बहुत किये और वेदना के समय बड़ी दृढ़ता का परिचय दिया :—

दशम भक्त बहु किया सूरपणो आण कै, वेदन में मुनि दृढ रह्यो जी।

(सतगुणमाला ढा० ४ गा० ४८)

३. उन्होंने कुछ वर्ष संयम-पर्याय का पालन कर पडित-मरण प्राप्त किया।

ख्यात आदि मे उनका स्वर्गवास संवत् नही मिलता किन्तु सं० १८९८ जेठ वदि ४ के दिन जयाचार्य द्वारा रचित संतगुणमाला ढ़ाल ४ मे तब तक के दिवंगत साधुओं में उनका नाम है इससे यह निश्चित हो जाता है कि वे सं० १८९८ की उक्ति तिथि के पूर्व दिवगत हो चुके थे।

११२।३।२५ मुनि श्री नेमजी (कानोड़)

(संयम पर्याय स० १८९१-१९३०)

लय—याद कालू की आवै…

'नेम' की महिमा गाएं, हो चुन-चुन कर सद्गुण सुमनों का हार वनायें।

मेदपाट-कानोड़ ग्राम में, जन्म लिया अनुकूल धाम में।
हो स्वजन गोत्र 'नरसिंहपुरा' उनका वतलाएं ॥१॥

एक नवति में पाकर शिक्षा, अमीचन्द मुनि से ली दीक्षा।
हो संयम का सर्वोत्तम सुख पाकर हुलसाये' ॥२॥

विद्याभ्यास किया हितकारी, सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाएं धारी।
हो वर व्याख्यानादिक विविध कला-कोविद कहलाये ॥३॥

अति अभिरुचि आगम-वाचन में, सह स्वाध्याय ध्यान चिंतन में।
हो वहुश्रुती मुनियों की परिगणना में आये ॥४॥

एक वार तो एक वर्ष मे, पढ़े सूत्र वत्तीस हर्ष मे।
हो वहु वर्षो तक इस क्रम मे तन्मयता लाये ॥५॥

सर्व गोचरी जिम्मे उनके, करते सेवा सक्रिय वनके।
हो वैयावृत्त्य 'राय ऋषिवर' की वहु कर पाये ॥६॥

दोहा

विधि की प्रायश्चित्त की, उन्हें धारणा सत्य।
गुरुगम से मिलते रहे, उन्हें अनेकों तथ्य ॥७॥

लय—याद कालू की आवै……

तप उपवासादिक कर वहुतर, दस तक ऊर्ध्व चढ़े हैं मुनिवर[१]।
हो पूर्ण साधना कर पुर से सुरपुर पहुंचाये[२] ॥८॥

१. मुनि श्री नेमजी मेवाड़ मे 'कानोड़' के निवासी और गोत्र से 'नरसिंहपुरा' (ओसवाल) थे। उन्होने स० १८९१ मे मुनि श्री अमीचदजी (८०) 'कोचला' द्वारा दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

दीक्षा-स्थान का उल्लेख नही मिलता।

२. मुनि श्री साधु-क्रिया मे तन्मय वनकर विनयपूर्वक विद्याभ्यास करने लगे। उन्होंने गुरुगम से सैद्धान्तिक एवं तत्त्व-चर्चा की गहन धारणा की। सूत्रो के वाचन की उन्हे विशेष अभिरुचि थी। प्रति वर्ष ३२ सूत्रो का पारायण करते। अनेक वर्षो तक उनका वह क्रम चलता रहा। उन्होने स्वाध्याय वहुत किया। आचार्य श्री रायचंदजी की वडी निकटता से वैयावृत्त्य की। गोचरी का हवाला उनके जुम्मे था, उसकी सारी व्यवस्था वे करते। प्रायश्चित विधि की भी उन्हे अच्छी जानकारी थी।

उन्होने सैकड़ो उपवास किये। वेले तेले आदि से १० दिन तक की तपस्या अनेक वार की।

(ख्यात)

३. स० १९३० कार्त्तिक वदि ८ को पुर में समाधि-मरण प्राप्त किया।

(ख्यात)

शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० १११ से ११४ में ख्यात की तरह ही वर्णन है।

संतविवरणिका मे लिखा है कि वे सिंघाड़वंध हुए, पर अन्यत्र इसका उल्लेख नही मिलता।

११३।३।२६ मुनि श्री जीवोजी (सवलपुर)

(संयम पर्याय सं० १८९२-१९३० के बाद)

लय— गम गई ढूंढणी.........

शासन नौका मे, चढ पहुंचे भव जल पार । शासन......
अंधड़ आये बहु वार । शासन...। पर आखिर बेड़ा पार । शा...ध्रुव ।

मारवाड की भूमि पर था एक सवलपुर ग्राम ।
वंशज गोत्र कुचेरिया था जीव यथोचित नाम ॥१॥

वैराग्यांकुर खिल गये पा शिक्षा सलिल उदार ।
संयम प्यारा लग रहा, खारा सारा संसार ॥२॥

जननी जनक सहोदरादिक छोडा सब परिवार ।
बीदासर में ले लिया, जय पद में संयम भार[१] ॥३॥

पढें लिखे तप भी तपा, बीते अष्टादश साल ।
फिर तो प्रकृति प्रकोप से, गूंथा मायावी जाल ॥४॥

शतोन्नीस दल साल में, गण बाहर पहली वार ।
कुछ दिन से फिर आ गये, कर लिया दंड स्वीकार[२] ॥५॥

पुनरपि तेरह हयन में, हो गये संघ से दूर ।
सह कपूर को ले गये, कर दलबंदी भरपूर ॥६॥

तीन मास के बाद में, फिर आये लेकर छेद ।
आत्मिक निन्दा की बड़ी, पुर-पुर में तजकर द्वैध[३] ॥७॥

वापिस विंशति साल में, फिर छोडा गण-उद्यान ।
गठबंधन में फंस गये, भटके होकर बेभान ॥८॥

रास्ते आये शेष में, जब उतरा मोहोन्माद।
कर सतियों को वंदना, ली नव दीक्षा अविवाद ॥६॥

चार बार पदच्युत हुए, पर लिया अन्त में श्रेय।
जय विरचित 'लघुरास' से, है घटना सारी ज्ञेय[४] ॥१०॥

दोहा

अनशन करके आखिरी, सिद्ध कर लिया कार्य।
धन्य-धन्य कहला गये, गण में रहकर आर्य[५] ॥११॥

मुनि गुलाब के साथ में, मिलता पावस एक[६]।
ख्यात और लघुरास में, है प्रायः उल्लेख[७] ॥१२॥

१. मुनि जीवोजी (जीवराजजी) मारवाड़ मे सवलपुर के निवासी और गोत्र से कुचेरिया (ओसवाल) थे। उन्होने माता-पिता, भाई आदि परिवार को छोड़कर स० १८९२ मृगसर वदि ६ को मुनि श्री जीतमलजी (जयाचार्य) द्वारा बीदासर में दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

जय सुजश में उल्लेख है कि उन्होंने 'खालड' से आकर दीक्षा ली :—

हिवै चउमासो उतरयां चित्त धार, वीदासर मे आया सुविचार।
तिहां 'खालड़' सूं जीवोजी आय, मृगसर कृष्ण छठ तिथि ताय।
जीवोजी नै देई संजम भार, वीदासर सू करी नै विहार॥

(जय सुजश ढा० २१ गा० ११, १२)

इससे प्रश्न होता है कि क्या 'खालड' का दूसरा नाम सवलपुर या खालड़ नामका दूसरा गांव है जहां वे उस समय निवास करते हों।

२. जीवोजी स० १९१० मे धनजी (९२) और हमीरजी (१४१) के साथ मुनि श्री मोतीजी (७७) के सिघाड़े से 'डवोक' गांव में पहली वार गण से पृथक् हुए। वहा से वे 'मजेरा' गाव में गये तव कुछ ही दिनों वाद राजनगर के श्रावक लिखमीचंदजी उनको समझाकर तथा दड स्वीकृत कराकर वापस गण मे ले आये। उन्होने वह चातुर्मास मोतीजी स्वामी के साथ मे किया। चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य के दर्शन कर उन्होने आत्म-निन्दा वहुत की तथा गणपति के गुणगान करते हुए विधिवत् लेखपत्र भी लिखा।

(लघुरास)

अन्य स्थलो मे इसका उल्लेख इस प्रकार है :—

शहर कानोड़ पधारतां, वडा मोती मुनि लार।
गांव डवोक मे डूवियो, तीन मुनि भव वार॥

थयो जीवराज लघु कर्म वस, कर्म जवर जोधार।
धनजी नै दीधो धको, हमीर गयो भव हार॥

राजनगर वासी जवर, लिखमीचंद जई लार।
दंड दराय समझाय नै, लियो लघु जीव नै तार॥

(जय सुजश ढ़ा० ४० दो० १, २, ३)

चेतन टली अलीक रे, फिर गण आवी डंड लियो।

(आर्या दर्शन ढा० २ सो० ८)

३. स० १९१३ में वे मुनि कपूरजी (१०९) के साथ गुटवंदी कर प्रच्छन्न रूप

में संघ से दूसरी वार अलग हो गये —

"तेरा रे वप विहुं मिल भेला, निकलनें करी गुरु नी हेला"।

(लघु रास)

दोय थया गण चार रे, कपूर नें जीवो ऋषि।
आई कुमति अपार रे, विण पूछै चलता रह्या ॥

(आर्या दर्शन ढा० ५ सो० ५)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ११७ मे उनका गण से पृथक् होने का सवत् १९१४ लिखा है पर वह 'लघुरास' के उल्लेख से सही नही है।

उन्होने शासन एवं शासनपति के वहुत अवगुण वोले पर जव श्रावक श्राविकाओ द्वारा कुछ भी प्रोत्साहन नही मिला तव तीन महीनो के वाद स० १९१४ मे प्रायश्चित्त लेकर वापिस गण मे आये :—

छूटा तेरे वास रे, दोय मुनि कर्म करी।
जुदा रह्या त्रिण मास रे, ते चवदे गण आविया ॥

(आर्या दर्शन ढा० ७ सो० ४)

४. सं० १९२० माघ शुक्ल १३ को जयाचार्य कसुंवी से विहार कर लाडनू पधार रहे थे। उस दिन चार सत—१ जीवोजी (आप), २ कपूरजी (१०९), ३. सतोजी (१६२) और ४. लघु छोगजी (१७७) पीछे रह गये। सध्या तक लाडनू नही आये, तव जयाचार्य ने समझा कि वे गण से अलग हो गये है।

(जय सुजश ढा० ४८ दो० १ से ३)

इस तरह जीवोजी के तीसरी वार गण से अलग होने के तीन दिन वाद ही फाल्गुन वदि १ को चतुर्भुजजी (१३७) और मुनि श्री हसराजजी (१५३) उन सव (टालोकरो) से मिले। पर चतुर्भुजजी की उनके साथ पहले से साठ-गाठ थी, जिससे वे उनके साथ शामिल हो गए। मुनि हसराजजी ने उन सवको समझाया तव वे पाचो गण से वाहर (चतुर्भुजजी ३ दिन जीवोजी आदि ६ दिन) रहे, उसका दड स्वीकार कर फाल्गुन वदि ३ को गण मे आ गए। फिर नौ दिन वाद फागुन वदि १२ या १३ को जीवोजी सवके साथ चौथी वार गण से पृथक् हो गए।

स० १९२१ का चातुर्मास पाचो ने जसोल मे किया। उस वर्ष मुनि श्री तेजपालजी (१२९) का जसोल और मुनि श्री हरखचन्दजी (१४४) का चातुर्मास वालोतरा था।

चातुर्मास मे एक वार किसी गृहस्थ द्वारा अधिक प्रयत्न करवाने पर जयाचार्य के आदेश से मुनि श्री तेजपालजी ने चतुर्भुजजी और छोगजी 'छोटा' को दड देकर गण मे ले लिया। परन्तु चातुर्मास मे ही वे फिर अलग हो गये। फिर उन पाचो

१. मुनि जीवोजी (जीवराजजी) मारवाड़ मे सवलपुर के निवासी और गोत्र से कुचेरिया (ओसवाल) थे। उन्होंने माता-पिता, भाई आदि परिवार को छोड़कर स० १८९२ मृगसर वदि ६ को मुनि श्री जीतमलजी (जयाचार्य) द्वारा बीदासर मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

जय सुजश मे उल्लेख है कि उन्होने 'खालड़' से आकर दीक्षा ली :—

हिवै चउमासो उतरचां चित्त धार, बीदासर में आया सुविचार।
तिहां 'खालड़' सूं जीवोजी आय, मृगसर कृष्ण छठ तिथि ताय।
जीवोजी नै देई संजम भार, बीदासर सू करी नै विहार॥

(जय सुजश ढा० २१ गा० ११, १२)

इससे प्रश्न होता है कि क्या 'खालड़' का दूसरा नाम सवलपुर या खालड़ नामका दूसरा गाव है जहां वे उस समय निवास करते हो।

२. जीवोजी स० १९१० मे धनजी (९२) और हमीरजी (१४१) के साथ मुनि श्री मोतीजी (७७) के सिघाड़े से 'डवोक' गाव में पहली वार गण से पृथक् हुए। वहां से वे 'मजेरा' गांव मे गये तव कुछ ही दिनो वाद राजनगर के श्रावक लिखमीचंदजी उनको समझाकर तथा दंड स्वीकृत कराकर वापस गण में ले आये। उन्होने वह चातुर्मास मोतीजी स्वामी के साथ मे किया। चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य के दर्शन कर उन्होने आत्म-निन्दा वहुत की तथा गणपति के गुणगान करते हुए विधिवत् लेखपत्र भी लिखा।

(लघुरास)

अन्य स्थलो मे इसका उल्लेख इस प्रकार है :—

शहर कानोड़ पधारतां, वडा मोती मुनि लार।
गांव डवोक में डूवियो, तीन मुनि भव वार॥

थयो जीवराज लघु कर्म वस, कर्म जवर जोधार।
धनजी नै दीधो धको, हमीर गयो भव हार॥

राजनगर वासी जवर, लिखमीचंद जई लार।
दंड दराय समझाय नै, लियो लघु जीव नै तार॥

(जय सुजश ढा० ४० दो० १, २, ३)

चेतन टली अलीक रे, फिर गण आवी डंड लियो।

(आर्या दर्शन ढ़ा० २ सो० ८)

३. सं० १९१३ में वे मुनि कपूरजी (१०९) के साथ गुटवंदी कर प्रच्छन्न रूप

मे संघ से दूसरी वार अलग हो गये :—

"तेरा रे वर्ष विहुं मिल भेला, निकलनें करी गुरु नी हेला" ।

(लघु रास)

दोय थया गण वार रे, कपूर नें जीवो ऋषि ।
आई कुमति अपार रे, विण पूछै चलता रह्या ।।

(आर्या दर्शन ढ़ा० ५ सो० ५)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ११७ मे उनका गण से पृथक् होने का संवत् १९१४ लिखा है पर वह 'लघुरास' के उल्लेख से सही नही है ।

उन्होंने शासन एवं शासनपति के वहुत अवगुण वोले पर जव श्रावक श्राविकाओं द्वारा कुछ भी प्रोत्साहन नही मिला तव तीन महीनो के वाद सं० १९१४ मे प्रायश्चित्त लेकर वापिस गण मे आये :—

छूटा तेरे वास रे, दोय मुनि कर्मे करी ।
जुदा रह्या त्रिण मास रे, ते चवदे गण आविया ।।

(आर्या दर्शन ढ़ा० ७ सो० ४)

४. सं० १९२० माघ शुक्ल १३ को जयाचार्य कसुंवी से विहार कर लाडनूं पधार रहे थे । उस दिन चार संत—१ जीवोजी (आप), २. कपूरजी (१०९), ३. संतोजी (१६२) और ४. लघु छोगजी (१७७) पीछे रह गये । सध्या तक लाडनू नही आये, तव जयाचार्य ने समझा कि वे गण से अलग हो गये हैं ।

(जय सुजश ढ़ा० ४८ दो० १ से ३)

इस तरह जीवोजी के तीसरी वार गण से अलग होने के तीन दिन वाद ही फाल्गुन वदि १ को चतुर्भुजजी (१३७) और मुनि श्री हसराजजी (१५३) उन सव (टालोकरो) से मिले । पर चतुर्भुजजी की उनके साथ पहले से सांठ-गांठ थी, जिससे वे उनके साथ शामिल हो गए । मुनि हसराजजी ने उन सवको समझाया तव वे पाचो गण से वाहर (चतुर्भुजजी ३ दिन जीवोजी आदि ६ दिन) रहे, उसका दड स्वीकार कर फाल्गुन वदि ३ को गण मे आ गए । फिर नौ दिन वाद फागुन वदि १२ या १३ को जीवोजी सवके साथ चौथी वार गण से पृथक् हो गए ।

स० १९२१ का चातुर्मास पांचो ने जसोल में किया । उस वर्ष मुनि श्री तेजपालजी (१२९) का जसोल और मुनि श्री हरखचन्दजी (१४४) का चातुर्मास वालोतरा था ।

चातुर्मास में एक वार किसी गृहस्थ द्वारा अधिक प्रयत्न करवाने पर जयाचार्य के आदेश से मुनि श्री तेजपालजी ने चतुर्भुजजी और छोगजी 'छोटा' को दंड देकर गण मे ले लिया । परन्तु चातुर्मास मे ही वे फिर अलग हो गये । फिर उन पांचों

में भी दो गुट हो गए। एक तरफ—चतुर्भुजजी, कपूरजी, छोगजी 'छोटा' और दूसरी तरफ जीवोजी और सतोजी। फिर लगभग तीन वर्ष तक जीवोजी कभी किसी के सम्मिलित और कभी किसी के सम्मिलित होकर रहे। कभी गण से अनुकूलता और कभी प्रतिकूलता दिखाते।

स० १९२३ का मुनि श्री तेजपालजी का चातुर्मास जोधपुर था। चातुर्मास के पश्चात् मुनि श्री 'दुदाडा' पधारे। वहां माघ सुदि २ के दिन विनम्रतापूर्वक बहुत प्रार्थना करने पर मुनि श्री तेजपालजी ने जीवोजी को साध्वियों को वंदना करवाकर एव नई दीक्षा लेकर सघ मे ले लिया। क्योंकि जयाचार्य ने चतुर्भुजजी, कपूरजी और जीवोजी को नई दीक्षा के साथ साध्वियों को वदना किये बिना गण मे लेने का परित्याग कर दिया था।

मुनि श्री तेजपालजी ने जीवोजी को साथ लेकर थली प्रदेश मे जयाचार्य के दर्शन किये। जीवोजी ने गुरुदेव के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता एव मुनि श्री तेजपालजी के प्रति बहुत आभार प्रदर्शित किया। उन्होंने अन्य मत की एक गाथा का सदर्भ प्रस्तुत करते हुए एक गाथा जोड़कर कही वह इस प्रकार है।

अन्यमत गाथा (लय—दलाली लालन की)

"हरिदास नै हर मिल्या रे, आडे रसते आय।
खावण दीधी मोठ बाजरी, पीवण दीधी गाय।
लजा हर राख लही।"

जोड़कर कही हुई गाथा (लय—पूर्वोक्त)

ज्यूं तेज ऋषि मुझ नै मिल्या रे, आडै रसते आय।
मुंह मांग्या पासा ढल्या रे, चरण दियो चित्त ल्याय।
चरण जुग गणपति नां जी, हूं तो वांदू वे कर जोड़॥ चरण···॥"

उक्त वर्णन सं० १९२३ मे जयाचार्य द्वारा रचित 'लघुरास' के आधार से दिया गया है।

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० ११८ मे एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक गण से बाहर रहकर वापस गण मे आने का उल्लेख है, वह गलत है। 'लघुरास' के अनुसार वे तीन वर्ष लगभग गण बाहर रहे।

५. उन्होने आखिर मे गण में दृढ रहकर अनशनपूर्वक समाधिमरण प्राप्त किया, ऐसा ख्यात मे लिखा है पर स्वर्गवास सवत् नही है।

मुनि मोतीजी (११८) 'दूधोड़' के गुणो की ढाल गा० १६ में उल्लेख है कि उनकी सेवा मे मुनि गुलाबजी (१४३), बीजराजजी (१८३) और जीवोजी (११३) थे :—

"संत तीन सेवा मझै, गुलाब बींजराज जीवोजी कांई॥"

वह बात सं० १९३० की थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मुनि श्री जीवोजी सं० १९३० तक विद्यमान थे। मुनि जीवोजी की सं० १९२३ मे नई दीक्षा होने से वे मुनि गुलावजी और बीजराजजी से दीक्षा मे छोटे हो गए इसीलिए उक्त ढ़ाल मे उनका नाम बाद मे आया है।

सेठिया-संग्रह तथा सत विवरणिका में उनका स्वर्गवास सवत् १९२१ लिखा है वह उपर्युक्त प्रमाण से गलत है।

६. सं० १८९४ मे मुनि श्री गुलावजी (५३) ने ५ ठाणो से 'पुर' मे चातुर्मास किया, तव वे उनके साथ थे। अन्य साधु मुनि ईशरजी (६०), उदैरामजी (८४) और रामोजी (१००) थे। गुलावजी जव गण-गणी के अवगुण वोलने लगे तव मुनि रामोजी आचार्य श्री रायचदजी के पास नाथद्वारा चले गए। आचार्य श्री जव पुर पधार रहे थे तव एक कोश सामने जाकर जीवोजी ने ऋषिराय के दर्शन किये एवं सेवा मे साथ हो गये :—

जद च्यांरू मांही एक साध तो, जीवराज मुनिरायो रे।
एक कोस आसरे स्हामो, आई नै पगां लागो रे॥

(जय सुजश ढा० २४ गा० १२, १३)

७. ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० ११५ से ११९ मे सक्षिप्त तथा 'लघुरास' मे आपसे सवधित विस्तृत वर्णन है।

११४।३।२७ मुनि श्री अनोपचंदजी (नाथद्वारा)

(संयम पर्याय सं० १८९२-१९२९)

लय—लो लाखो अभिनंदन······

देखो रूप अनूप संत का कर सज्जन सब गौर।
विकसित होगी तन की कलियां
पुलकित मन का मोर ॥ देखो······॥ध्रुव॥

मेदपाट में नाथद्वारा सुप्रसिद्ध पुर एक।
राज्य गुसांईजी करते थे रहते वश अनेक।
थे तलेसरा नंदलालजी, निरुपम नन्द किशोर ॥देखो···॥१॥

तरुणावस्था में परिजन ने उनका किया विवाह।
फिर भी अनासक्त हो रहते रखते धर्मोत्साह।
शील-व्रत स्वीकार किया है कर दिल वज्र-कठोर ॥२॥

था धार्मिक परिवार वड़ा ही श्रद्धा में मजवूत।
लघु भगिनी चंपा ने साध्वी वन दी वड़ी सबूत।
फिर अनूप की हुई भावना पकड़ लिया है जोर ॥३॥

अभिभावक जन से ली आज्ञा करके पूर्ण प्रयत्न।
मुनि स्वरूप से जन्मभूमि में पाया सयम रत्न।
साल नवति-दो की आई है लाई मगल भोर[1] ॥४॥

विनयी त्यागी वडे विरागी तपोमूर्ति साकार।
नीति निपुण गुण के अनुरागी वड़भागी अणगार।
संयम-जीवन को चमकाने ली सब शक्ति वटोर ॥५॥

प्रतिलिपि करने में थी द्रुतगति लिख पाये वहु ग्रंथ।
चार-चार पन्नो तक वहुधा लिख लेते निग्रंथ।
'चिड़ी खोजिए' अक्षर, रखते ध्यान शुद्धि की ओर[२]।।६।।

लय—पीलो रंगाद्यो……

तरुण तपस्वी-तरुण तपस्वी,
संत अनूप कहाये, साधक जन में। तरुण……।

परम यशस्वी-परम यशस्वी,
स्थान ऊर्ध्वतम पाये, साधक जन में।। तरुण…।। ध्रुव।।

कलयुग में सतयुग-सी सचमुच,
तप की धारा खोली।।…साधक…।।

साहस रस नस-नस में भरकर,
शक्ति तुला में तोली।।साधक…।।७।।

वज्र ऋषभ नाराचसंहनन, नही इस समय होता।
किन्तु श्रमण ने कर दिखलाया, उससे भी समझौता।।८।।

तप की श्रुति से अथवा स्मृति से, सबका शिर डोलाता।
अथ से लेकर इति तक सारी, संख्या सम्मुख लाता।।९।।

चोथ भक्त से तीन वीस तक, लडी वद्ध कर पाये।
चौदह दिन का एक छोडकर, क्रमशः ऊर्ध्व चढाये।।१०।।

चार साल तक लगातार तप, किया वड़ा मुनि श्री ने।
तीन छहमासी, एक वार तो साधिक सात महीने।।११।।

उनमें पहली एक साथ में, चालू की छहमासी।
नौ की संवत् कोशीथल में, पाई है शावाशी।।१२।।

किया तीसरी छहमासी का, पुण्य 'पारणा' भारी।
योग मिला श्री जयाचार्य का, मेला लगा प्रियकारी।।१३।।

चंदेरी में की है चालू, एक साथ छहमासी।
मालव में जा किया पारणा, फहरा ध्वज आकाशी ॥१४॥

पत्र चार सौ संग लिये फिर, लेखन स्याही काली।
प्रतिदिन लिखते पथ में केवल, गया एक दिन खाली ॥१५॥

उष्ण छाछ का नितरा पानी, 'आछ' नाम से नामी।
सेर पच्चीस के लगभग दिन में, पी सकते गुणधामी ॥१६॥

दु:षह परिषह शीतादिक के, सहन किये है भारी।
कर्म निर्जरा कर कर भरली, सुकृत सुधा रस क्यारी[३] ॥१७॥

दोहा

विचरे होकर अग्रणी, दी है दीक्षा एक।
चातुर्मासिकक्षेत्र का, मिलता कुछ उल्लेख[४]॥१८॥

लय—लो लाखों अभिनंदन……

चौविहार पन्द्रह दिन करके पिया एक दिन नीर।
तन में कृशता आई फिर भी मन के बड़े वजीर।
रम समाधि में वढे भाव से होकर हर्ष-विभोर ॥१९॥

सप्ताधिक दशवें दिन पहुंचे अकस्मात् सुरलोक।
देवरिया में चरमोत्सव का छाया नव आलोक।
शतोन्नीस उनतीस साल में पाये भवजल-छोर ॥२०॥

धन्य धन्य वे हुए धरा पर संत साधनाशील।
कलियुग मे तेजस्वी तप की दी है वड़ी दलील।
श्रद्धानत संसार झांकता क्षण-क्षण उनकी ओर ॥२१॥

जय-जय भैक्षव-शासन जय-जय शासन के शृंगार।
जय-जय तरुण तपोधन जिनका निर्मल तप आचार।
जन-जन मुख से जय-जय ध्वनियां उठती चारों ओर[५] ॥२२॥

गुण वर्णन की युगल गीतिका ख्यात आदि में ख्यात।
स्वर्णाक्षर में लिखी पंक्तियां गाती यश दिन रात।
पढ़िये सुनिये मुनि गुण-गरिमा बनकर चतुर चकोर[६] ॥२३॥

१. मुनि श्री अनोपचदजी मेवाड़ प्रदेश मे नाथद्वारा (श्रीजीद्वारा) के निवासी जाति से ओसवाल और गोत्र से तलेसरा थे। उनके पिता का नाम नदलालजी और माता का नाम दोलांजी था[1]।

धार्मिक परिवार मे जन्म लेने से अनोपचदजी वचपन से ही सत्सस्कारों के ढांचे मे ढलते गये। यथासमय उनकी शादी कर दी गई। विपुल सम्पति व परिजन आदि की अनुकूल सुख-सुविधा उपलब्ध होने पर भी वे उसमे आसक्त नही हुए। साधु-साध्वियो के सम्पर्क से देव गुरु के प्रति आस्था और धर्म भावना को उत्तरोत्तर विकसित करते गये।

उन्होंने यौवन के प्रथम चरण मे ही सपत्नी आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया और अपना जीवन धर्म-ध्यान मे विताने लगे।[2]

उनकी लघु भगिनी कुवारी कन्या साध्वी चंपाजी (१४०) ने उनसे पहले स० १८६१ मे दीक्षा स्वीकार की।[3]

(चपाजी की ख्यात)

क्रमश. अनोपचंदजी के दिल मे वैराग्य भावना उत्पन्न हुई। वे दीक्षा की स्वीकृति के लिए प्रयत्न करने लगे। एक दिन उन्होने अपने चाचा कुसालचंदजी से कहा—'आप मुझे माता-पिता के द्वारा दीक्षा लेने की अनुमति दिलवाएं तो मैं आपका वहुत उपकार मानूगा। मुझे यह सारी सासारिक माया स्वप्न की तरह लग रही है, मैं जल्दी से जल्दो सयम लेना चाहता हूं, मेरा एक-एक दिन वर्ष के वरावर जा रहा है। जव तक दीक्षा की आज्ञा न मिलेगी तव तक मेरे—१. खुले मुह बोलने का २ घर का काम करने का ३. व्यापार करने का ४. कच्चा

---

१. जनक नदोजी नीको श्रावक, श्रीजीदुवारै रे।
माता दोला अगज अनोपचदजी, वश उद्धारै रे॥
(मुनि जीवोजी (८६) कृत—गुण वर्णन ढ़ा० १ गा० २)

२ वासी श्रीजीद्वार ना हो गुणिजन, नदराम नो नद कै।
जाति तलेसरा जेहनी हो गुणिजन, अनोप नाम गुण वृंद कै॥
(मघवागणि रचित ढ़ा० ३ गा० १)

चढता जोवन मे सुंदर जीवत, सील आदरियो रे।
एक चारित चित्त माहै वसियो, वैरागी तप स्यू तिरियो रे॥
(मुनि जीवोजी कृत—गु० व० ढा० १ गा० १७)

३. चतुर विचक्षण भगिनी चपा, वालक वय मे रे।
सती सजम लीधो वहिन भायां री, कीरत मही मे रे॥
(मुनि जीवोजी कृत—गु० व० ढ़ा० १ गा० २०)

जल पीने का त्याग है।' चाचा ने कहा—'तुम धैर्य रखो, मैं वचन देता हूं कि अगर तुम्हारा पक्का मन है तो कोशिश करके मैं तुम्हे दीक्षा दिलाऊंगा।' उन्होने मुनि श्री अनोपचंदजी के पिता नदरामजी को शांतिपूर्वक समझाया तव वे सहमत हो गये।

अनोपचदजी के माता-पिता एव पारिवारिक लोगों ने बडी धूमधाम से उनका दीक्षा महोत्सव मनाया। वे साधु वेप पहनकर मुनि श्री के चरणो में प्रस्तुत हुए और फिर नदरामजी ने हर्प सहित अपने पुत्र को दीक्षा प्रदान करने के लिए मुनि श्री से निवेदन किया।

(मुनि जीवोजी कृत ढ़ा० १ गा० ३ से १२ के आधार से)

इस प्रकार स० १८६२ चैत्र वदि ८ गुरुवार को नाथद्वारा मे पत्नी वियोग के वाद भरापूरा परिवार एव वहुत ऋद्धि को छोड़कर मुनिश्री सरूपचदजी (६२) द्वारा दीक्षा ग्रहण की।

चैत मास मे चूप सू, श्रीजीद्वारे आय।
अनोप नैं चारित दियो, वड तपस्वी मुनिराय॥

(सरूप-नवरसो ढा० ७ दो० ४)

समत अठारै वाणुवे हो, चेत शुक्ल श्रीकार कै।
अष्टमी संयम आदरयो हो, तजी ऋद्धि परिवार कै॥

(मघवा गणि विरचित ढा० ३ गा० ४)

स० १८६२ चैत्र सुदि ८ को मुनि श्री सरूपचंदजी द्वारा दीक्षा ली।

(ख्यात)

सवत् अठारै वाणुवे, चैत वदि आठम ताय।
राय ऋषि रै आगले, सजम लियो सुखदाय॥

(श्रावक द्वारा रचित ढाल २ दो० २)

समत अठारै वरस वांणूंग्रे, चेत मास विध रे।
तिथि आठम नै गुरवार, अनोपजी चारित लै सुध रे॥

(मुनि जीवोजी कृति ढा० १ गा० १)

उक्त सदर्भो के अन्तर्गत 'सरूप-नवरसा' मे मुनि श्री की दीक्षा केवल चैत्र महीने मे लिखी है। वाद मे मघवागणि रचित ढाल तथा ख्यात मे चैत्र शुक्ला ८ है। उसके पूर्व की किसी श्रावक द्वारा कृत ढाल मे चैत्र वदि ८ है तथा मुनि जीवोजी (८६) द्वारा निर्मित ढ़ाल मे चैत्र वदि ८ के साथ वार भी गुरुवार लिखा है। मुनि जीवोजी द्वारा रचित ढाल सवसे प्राचीन और दीक्षा के दिन ही वनाई

हुई है[1] और उसमे दीक्षा से संबंधित पूरा विवरण है अतः उसे ही प्रमाणित मानना अधिक संगत होगा।

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि उनकी दीक्षा तिथि चैत्र वदि ८ थी। ख्यात तथा मघवागणि रचित ढ़ाल मे दीक्षा तिथि चैत्र शुक्ला ८ भूल से लिखी गई मालूम देती है।

मुनि जीवोजी कृत ढ़ाल मे एक विशेष विवरण और भी प्राप्त होता है कि उन्होंने भर यौवन के समय स्त्री की विद्यमानता में ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार कर लिया था।

इससे प्रमाणित होता है कि वे विवाहित थे, कही कही (सेठिया संग्रह आदि मे) जो ऐसा उल्लेख मिलता है कि वे अविवाहित थे, वह उक्त आधार से सही नही है।

मुनि जीवोजी कृत ढ़ाल तथा अन्य कृतियो मे भी ऐसा उल्लेख नही पाया जाता कि मुनि श्री ने पत्नी के जीवित काल में दीक्षा ली। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे पत्नी वियोग के वाद ही दीक्षित हुए।

इस तरह सभी प्रकार की भौतिक सामग्री को छोड़कर दीक्षित होने से जनता अत्यधिक प्रभावित हुई। सभी का सिर उनके उत्कट त्याग, वैराग के प्रति श्रद्धावनत हो गया। हृदय मे हर्ष की लहरें उमड़ने लगी। मुख-मुख पर यशोगान की ध्वनियां गूंजने लगी।

(जीवोजी कृत ढ़ा० १ गा० १३ से १६ के आधार से)

वास्तव मे मुनि श्री ने दशवैकालिक सूत्र अ० २ गा० ३ के उल्लेखो को सार्थक कर दिया :—

'जेयकते पिए भोए, लद्धे विपिठिकुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ॥'

२. मुनि श्री संयम में लहलीन, ज्ञानी-ध्यानी, विनय शिरोमणि, गुरु आज्ञा

---

१. समत अष्टादस (१८) वरस, नारायण (६) नयण (२) सुस्वर में।
जोर कीधी चैत विद अष्टमी रैं दिन, कुष्टांनपुर में॥

(मुनि जीव कृत अनूप गु० व० ढ़ा० १ गा० २२)

उक्त कुष्टांनपुर से कोठारिया समझना चाहिए। मुनि स्वरूपचदजी नाथद्वारा मे मुनि अनोपचदजी को दीक्षित कर उसी दिन कोठारिया (२ कोश लगभग) पधारे और वहां जीवोजी ने यह गीतिका वनाई ऐसा प्रतीत होता है।

के प्रति जागरुक और उत्कृष्ट श्रेणी के तपस्वी हुए[1]।

उन्होने लिपिकला का अभ्यास किया और लाखों पद्य लिखे :—

'वलि लाखां ग्रथ लिख्यो मुनि हो, वारु उद्यम अधिक उदार के।'

(मघवा कृत ढा० ३ गा० ३)

उनकी लेखनी वहुत द्रुत गति से चलती थी। दिन मे ४,५ पन्नों तक लिख लिया करते थे। उनके अक्षर 'चीड़ी खोजिए' (टेढे-मेढे) थे पर अशुद्धिया विशेप नही आती थी। उनकी लेखन गति के विषय में जयाचार्य एक पद्य फरमाते थे :—

'एक पानो रगड्यो, दोय पाना रगड्या तीजो पानो रगड़े रे।
चोथो पिण कर देवै त्यार, पछै पांचवां सू झगड़े रे॥
अनोपचद अणगार उठ्यो कर्मा ने रगड़े रे॥'

६. मुनि श्री की तपश्चर्या का वर्णन वडा रोमाचकारी है। पढने से लगता है कि वे तपस्या मे एकरस हो गये। खाने पीने आदि मे रुचि नही रही। एक श्रावक द्वारा रचित गीतिका में वर्षों के क्रम से उनकी तपस्या का विवरण इस प्रकार मिलता है :—

सं० १८९२ मे—२१ दिन ९ दिन का आछ के आगार से तप किया।
सं० १८९६ मे—६३ दिन का आछ के आगार से तप किया।
स० १८९७ मे—८ दिन पानी के आगार से तप किया।
सं० १८९८ मे—३७ दिन आछ के आगार से किये।
स० १९०३ मे—८ दिन आछ के आगार से किये।
स० १९०५ मे—१०९ दिन आछ के आगार से किये।
स० १९०६ मे—४ दिन पानी के आगार से किये।
स० १९०७ मे—७७ दिन आछ के आगार से किये।

---

१. सुमति गुप्ति ना गुण भला, धरता ऋप श्रीकार।
वलि ज्ञान ध्यान वहु विध कियो, निर्मल चरण नी नीत।
(मघवा कृत गु० व० ढा० ३ गा० ३,१२)
सुवनीतां शिर सेहरो, आज्ञाकारी सुखदाय।
(श्रावक रचित ढा० २ दो० ३)
अनोप ऋषि अति दीपतो, तपसी गुणां री खाण।
(श्रावक रचित ढा० २ दो० १)
ख्यात में लिखा है—मुनि श्री शासन के प्रति दृढनिष्ठ, नीतिमान और वहुत वड़े तपस्वी हुए।

सं० १९०८ मे—१३ दिन आछ के आगार से किये।
सं० १९०९ मे—१८७ दिन आछ के आगार से किये।
सं० १९१० मे—१९३ दिन आछ के आगार से किये।
सं० १९११ मे—१८१ दिन आछ के आगार से किये।
स० १९१२ मे—२१८ दिन आछ के आगार से किये।
स० १९१३ में—५३ दिन पानी के आगार से किये।
सं० १९१४ मे—४८ दिन पानी के आगार से किये।
सं० १९१५ मे—१९३ दिन आछ के आगार से किये।
स० १९१६ मे—३०,७ दिन पानी के आगार से किये।
सं० १९१७ मे—३८,४,५,७,१७ और ५ दिन पानी के आगार से किये।
स० १९१८ मे—१० दिन चौविहार, ११,१२ पानी के आगार से किये। १२ मे तीन दिन पानी पिया।
स० १९१९ मे—२१ दिन मे १० दिन चौविहार किये। ७ दिन मे दो दिन पानी पिया एव ४ थोकड़े और किये।
स० १९२० मे—१६ दिन मे ९ दिन चौविहार किये तथा १५,१४,१८,१९ दिन पानी के आगार से किये।
सं० १९२१ मे—२०,२२, २३ दिन पानी के आगार से किये।
स० १९२२ मे—४१ दिन पानी के आगार से किये।
स० १९२३ मे—३५ दिन पानी के आगार से किये।
सं० १९२४ मे—फुटकर तप किया।
स० १९२५ मे—फुटकर तप किया।
स० १९२६ में—फुटकर तप किया।
स० १९२७ में—५ दिन चौविहार किया।
सं० १९२८ में—५७ दिन गर्म पानी के आगार से किये।
स० १९२९ में—१५ दिन चौविहार किये फिर सोलहवे दिन पानी पिया, १७वे दिन तपस्या मे दिवंगत हुए।

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० १२२ से १२९ मे उनकी तेले से ऊपर की तपस्या का विवरण इस प्रकार है :—

४/२, ५/२, ६/२, ७/२, ८/२, ९/२, १०/३, ११/३, १२/१, १३/१, १५/३, १६/३, १७/१,

१८/१, १९/१, २०/१, २१/२, २२/२, २३/२, ३०/२, ३५/१, ३७/१, ३८/२

४१/१, ४२/१, ४५/१, ४८/१, ५३/१, ५५/१, ५७/१, ६३/१, ७७/१, ६४/१,

६५/१, १०६/१, १८१/१, १८७/१, १९३/२, २१८/१ ।

उपवास से तेले तक की तपस्या वहुत की पर सख्या उपलब्ध नहीं है।

उपर्युक्त ढ़ाल तथा ख्यात में तप के आकड़ों में कुछ भिन्नता है :—

ख्यात	ढाल
६४	नही
६५	नही
३८ के २	३८ का १
३० के २	३० का १
२३ के २	२३ का १
२२ के २	२२ का १
१६ के ३	१६ का १
१५ के ३	१५ के २
११ के ३	११ का १
१० के ३	१० का १
८ के २	८ का १
६ के २	६ का १
५ के २	५ के ३

ढाल मे चार थोकडे करने का उल्लेख और है।

ख्यात तथा उपर्युक्त ढाल मे स० १९०९ में उनकी तपस्या १८७ दिन की लिखी है पर जय सुयश मे १९१ दिन का एक साथ संकल्प करने का उल्लेख है :—

त्यां तपसी अनोप सुतंत, आय अरज करी ।
दिन एक सो इकाणू भदंत, पच्चखावो हित धरी ॥

जल आछण आगार, रीत मुनिवर तणी,
पचखायो तप सार, मनुहार कर गण घणी।

(जय सुयश ढा० ३८ गा० ३)

मघवा गणी रचित ढाल ३ गा० ६ से १४ मे उनकी वडी तपस्या का वर्णन ख्यात के अनुसार है।

मुनिश्री ने उपवास से लेकर २३ (१४ को छोड़कर) तक क्रमबद्ध तप कीया :—

चौथ भक्त थी लेइ करी हो गुणी०, तेवीस लग सुविचार कै।
एक चवदै विना मुनि तप कियो हो, केई एक वार वहु वार कै॥

(मघवा गणि रचित ढा० ३ गा० ५)

मुनि श्री ने कुल चार छहमासियां एवं एक सवा सातमासी की। उसमें तीन छहमासिया और एक सवा सातमासी लगातार सं० १९०९ (१८७ १९१ दिन), सं० १९१० (१९३ दिन), सं० १९११ (१८१ दिन) और स० १९१२ (२१८ दिन) मे की।

चार छहमासियो मे पहली छहमासी (१८७ या १९१) सं० १९०९ में कोशीथल मे जयाचार्य द्वारा एक साथ स्वीकार की। इस संबंध में जय सुयश ढ़ा० ३८ की गा० ३ ऊपर दे दी गई है।

सं० १९१० में की गई दूसरी छहमासी का स्थान प्राप्त नही है।

स० १९११ में मुनिश्री ने तीसरी वार जो छहमासी (१८१ दिन) की, उसका पारणा जयाचार्य ने झखनावद मे पोष वदि ५ को करवाया :—

ऋषि अनोपम अणगार ने, कराय पारणो आप।
लाभ लियो अति धर्म नो, जसु रह्यो जगत जश व्याप॥

हिवे पोह विद पंचम दिने, झखणावदे गण इंद।
आछ आगार षट मास नो, रव हाथ धर आनंद॥

(जय सुयश ढ़ा० ४२ दो० ३,४)

मुनि श्री की उक्त छहमासी के पारणे के अवसर पर मुनि श्री शिवजी (७८) पेटलावद चातुर्मास कर झखणावद आ गये थे। वहां उन्होंने भी ८ दिन का तप किया था। इसका उनके गुण वर्णन की ढ़ाल मे उल्लेख मिलता है :—

मुनि थे तो चरम चौमासो अमंद, कियो पटलावद रा। तपसीजी।
मुनि थे तो विहार करी सुखदाया, जखणावदे आया रा। तपसीजी।
मुनि तिहां अनोपचद सुविमासी, करी षटमासी रा।
मुनि तिहां थे पिण करी अठाई, पारणो संग लाई रा।
मुनि तिहां अनोप नें पारणो करायो, जीत ऋषि आयो रा।
मुनि तिहां संत सत्यां रा थाट, अति गहघाट रा।

(शिव मुनि गु० व० ढा० १ गा० ४९ से ५४ तक)

प्राचीन चातुर्मासिक तालिका के अनुसार म० १९१२ मे मुनि श्री का चातुर्मास राजनगर था, चातुर्मास के पश्चात् वे नाथद्वारा गये। जयाचार्य ने वहां

पधार कर उनको सवा सातमासी (२१८ दिन) का पारणा करवाया :—

श्रीजीद्वार पधारिया रे, तिहां तपसी काकडाभूत ।
अनोपचंद वे सो अठारा आछ नां रे, पारणो करायो अद्भूत ॥
(मघवा सुजश ढ़ा० ५ गा० ६)

जय सुयश ढ़ा० ४३ गा० २७, २८ मे भी इसका उल्लेख है।

मुनि श्री की स० १९१५ की चौथी—अन्तिम छहमासी का (१९३ दिन) संस्मरण बड़ा रोचक है—स० १९१४ के शेपकाल मे जयाचार्य लाडनूं विराज रहे थे। तपस्वी मुनि ने गुरुदेव से प्रार्थना की—'कल से मैं एक महीने की तपस्या करना चाहता हूं।' आचार्यश्री ने प्रवल भावना देखकर उनको स्वीकृति दे दी। उन्होंने सायंकाल का भोजन (धारणा) भी कर लिया। वे पचमी समिति के लिए जाने लगे तव साध्वी प्रमुखा सरदाराजी ने उनसे कहा—'आज कुछ घी आ गया है, उसे आपको उठाना (खाना) है।' वे बोले—'मैंने आहार कर लिया है, अव मुझे भूख नहीं है।' महासती ने कहा—'आप जैसे तपस्वी संतो के क्या पता लगता है, किसी कोने मे पडा रहेगा।' अच्छा! आपकी जैसी इच्छा हो। साध्वी प्रमुखा ने एक सेर लगभग घी उनको दिया और वे उसे कढ़ी आदि मे मिलाकर पी गये। समय की वात थी कि रात मे अपच हो गया, जिससे उनको काफी दस्त लगे। शरीर वहुत अस्वस्थ और कमजोर हो गया। प्रात.काल जव उन्होने जयाचार्य के दर्शन किये तव आचार्यप्रवर ने फरमाया—"तपस्वी! अव वह मासखमण करने का विचार मत रखना, क्योंकि रात में तुम्हारे वहुत अस्वस्थता रही।" तपस्वी ने कहा—'गुरुदेव! मैंने वह विचार छोड़ दिया है। अव तो आप कृपाकर मुझे छहमासी पचखा दीजिए।' तपस्वी के पुरुपार्थ भरे वचन सुनकर सव देखने वाले तथा स्वयं जयाचार्य विस्मित हो गये। आखिर तपस्वी ने आग्रह भरे शव्दो मे अनुनय किया तो जयाचार्य ने उनको आछ के आगार से एक साथ छहमासी का संकल्प दिला दिया। वे वड़े प्रसन्न हुए।

जयाचार्य ने उनसे पूछा—'तुम्हे किसी प्रकार की चाह हो तो कहो। उन्होंने कहा—'मुझे दो सौ, तीन सौ कोश लम्वे विहार करने के लिए आदेश दें।' तपस्वी की इस माग को सुनकर सभी आश्चर्य-चकित हो गये। सोचा तो यह गया था कि तपस्वी मनोनुकूल क्षेत्र, अपनी सेवा मे रखने के लिए विशेप साधुओं के लिए निवेदन करेंगे, पर तपस्वी की तो मांग निराली ही रही। आचार्यवर ने फरमाया—'तपस्या मे इतना लम्वा विहार कैसे होगा?' वे वोले—'मुझे आहार तो करना नही है, चलता रहूंगा।' तव आचार्य श्री ने उनको मालव प्रान्त मे जाने का आदेश दिया।

गुरुदेव ने मुनि श्री को दूसरी मांग के लिए फिर कहा तो उन्होने कहा—

मुझे ४०० पन्ने लिखने के लिए दे दीजिए।' आचार्यश्री बोले—'इतने लम्बे विहार मे इतना लिखना कैसे मभव होगा। तपस्वी ने कहा—'भगवन्! मेरे काम क्या है? खाना तो है नही, यथासमय सुवह शाम चलता जाऊंगा और दिन मे आलस न आये इसलिए लिखता रहूगा।' तपस्वी की दूसरी मांग भी पूरी की। उन्होने वहां से विहार किया। रास्ते मे निरंतर लिखना चालू रहा। कभी-कभी ४-५ पन्नो तक लिख लेते थे। इस प्रकार लगभग ४०० पन्ने लिखे एवं मालव प्रदेश मे जाकर १९३ दिन का पारणा किया। कहा जाता है कि पारणे के दिन उन्होने १६६ घरों की गोचरी की। मुनि श्री रास्ते मे प्रतिदिन लिखते थे। केवल एक दिन खाली गया।

(अनुश्रुति के आधार से)

मुनि श्री आछ के आगार से की गई तपस्या के एक दिन मे अधिक से अधिक २५ सेर लगभग आछ का पानी पी लेते थे।

(चामत्कारिक तप विवरण संग्रह)

मुनि श्री ने तप के साथ शीतादिक परिषह सहन कर विशेष रूप से कर्मों की निर्जरा की।[1]

(ख्यात)

४. मुनि श्री अग्रणी होकर विचरे। उनके सिंघाडबध होने का संवत् नहीं मिलता। स० १९०५ मे मुनि श्री के हाथ की एक दीक्षा मुनि ज्ञानजी (१५२) की ख्यात मे मिलती है। इससे अनुमान किया जाता है कि वे उससे पूर्व अग्रगण्य हो गये थे। उनके प्राप्त चातुर्मास इस प्रकार हैं :—सं० १९११ में झकणावद ठाणा ५।

जय-सुयश ढा० ४१ दो० २,३ तथा ढा० ४२ दो० ३, ४ के उल्लेखानुसार उस वर्ष उनका चातुर्मास झकणावद था और वहां उन्होने छहमासी (१९१ दिन) तप किया तथा जयाचार्य ने पोष महीने मे वहां पधार कर छहमासी का पारणा कराया था।

सं० १९१२ में राजनगर ठाणा ५।

श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मास तालिका मे इस प्रकार उल्लेख है :—

स० १९१६ मे जोधपुर ठाणा ३।

पचपदरा के श्रावको द्वारा सकलित प्राचीन पत्रो मे इसका उल्लेख मिलता है। उस वर्ष उनके साथ मुनि कपूरजी (१०९) और घणजी (१३१) थे।

---

१. शीतादिक परिपह वहु सही, कीध सफल जमवार।

(शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० १२९)

सं० १९२३ में वे जयाचार्य के साथ बीदासर चातुर्मास में थे। वहां उन्होंने ३५ दिन का तप किया :—

> **अनोपचंद तपसी अमल, थोकड़ो तप पणतीस ।**
> **उदक आगार चउविहार के, वर तप विसवावीस ।।**
>
> (जय सुयश ढ़ा० ५१ दो० ३)

शेष चातुर्मास प्राप्त नही है।

५. मुनि श्री ने स० १९२९ देवरिया मे (ख्यात मे नयाशहर देवरिया लिखा है) १५ दिन का चौविहार तप किया। सोलहवे दिन पानी पिया। सतरहवे दिन अकस्मात् आयुष्य पूर्ण कर आराधक पद प्राप्त किया। मुनि श्री ने लगभग ३६ वर्ष संजम का पालन किया एवं दुष्कर तप के द्वारा अपने जीवन का कल्याण किया[1]।

मुनि श्री के उत्कट एवं विशाल तप की स्व-परमती लोगो में बड़ी प्रभावना फैली। भिक्षु शासन की बहुत प्रख्याति हुई। जन-जन के मुख पर जय-जयकार एवं धन्य-धन्य की आवाजे गूंजने लगी।

६. मुनि श्री के गुणानुवाद की तीन गीतिकाएं उपलब्ध होती है।

पहली गीतिका मुनि जीवोजी (८६) द्वारा सं० १८९२ चैत्र वदि ८ (उनकी दीक्षा तिथि के दिन) को कुष्टानपुरा (कोठारिया) मे बनाई गई है जिसके ३ दोहे और २५ गाथाएं है।

दूसरी गीतिका किसी श्रावक द्वारा बनाई गई मालूम देती है। उसका रचनाकाल स० १९३५ कार्त्तिक कृष्णा १३ बुद्धवार और स्थान चूरू है। ढ़ाल के ३ दोहे और २४ गाथाएं है।

---

१. पछै समत उगणीसै सही, गुणतीसे गुणकार ।
पनरै दिन लागतो सही, तप कीधो चौविहार ।।
सोलमे दिन अल्प जल लियो, सतरमे दिन श्रीकार ।
तपसी तपस्या नै विषै, चाल्या जन्म सुधार ।।
शहर देवरियो दीपतो, पडित मरण उछाह।
अनोप तपसी हद लियो, पद आराधक लाह ।।
वारु वर्ष बतीस ने ऊपरै, पाल्यो संजम भार।
दुक्कर तप-कारक भलो, सरल हृदय सुखकार ।।

(मघवा कृत ढ़ा० ३ गा० १३ से १६)

तीसरी गीतिका पंचमाचार्य मघवागणी द्वारा रचित है। उन्होने अपने सं० १९४५ के सरदारशहर चातुर्मास मे उसकी रचना की। उसकी १७ गाथाए हैं।

मुनि श्री का गुण-वर्णन करते हुए गीतिका के रचयिता अपनी हर्षानुभूति और भावाभिव्यक्ति प्रकट करते हुए लिखते है :—

गुण गाया तपसी तणां, हुवो चित्त हुलास।

(मघवा कृत—ढा० ३ गा० १७)

गुण गातां मन गहगहैं, हर्ष उत्कृष्टे एय।
गुणवंत रा गुण गावतां, तीर्थंकर पद लेय॥

(श्रावक कृत—ढा० २ गा० २०)

११५।३।२८ मुनि श्री शंभूजी (पादू)

(संयम-पर्याय सं० १८९५-१८९९)

गीतक-छन्द

ग्राम पादू के निवासी गोत्र चोरड़िया विदित।
बाल वय में विरति के नव हुए अंकुर पल्लवित।
चरण ले ऋषिराय गुरु से भिक्षु-गण मे आ गये।
पंक्ति में मुनि-मोतियों की स्थान 'शभू' पा गये[१] ॥१॥

विनय आदिक गुणों का बहु कर लिया सुविकास है।
सुयश पाया संघ मे गुरु-हृदय में विश्वास है[२]।
वर्ष साधिक चार की है ध्यान पूर्वक साधना।
कृष्णगढ़ में हो गई है फलित वांछित भावना[३] ॥२॥

दोहा

जय ने स्मृति में श्रमण के, गाये बहु गुणगान।
भाव-भरी शब्दावली, पढ़िये देकर ध्यान[४] ॥३॥

१. मुनिश्री शंभूजी मारवाड़ में पादू के निवासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से चोरड़िया थे। (ख्यात)

शंभू गुण वर्णन ढाल में उनका गोत्र ब्रह्मेचा लिखा है :—

प्रगट्यो पादू शहर नो वासी रे, ब्रह्मेचा जाति विमासी रे।
ओसवंस उत्तम गुणरासी रे ॥

(शंभू गु० व० ढ़ा० १ गा० ३)

उन्होने सं० १८९५ के वैशाख महीने में सतरह साल की अविवाहित (नावालिग) अवस्था मे आचार्य श्री रायचदजी द्वारा संयम ग्रहण किया :—

मुनि ओ तो वालपणै वुद्धिवंतो, महाजशवंतो रा।

(मोती गु० व० ढ़ा० २ गा० ८)

दीक्षा-महीने का ख्यात में उल्लेख है। दीक्षा स्थान का उल्लेख नही मिलता।

२. मुनिश्री वुद्धिमान्, यशस्वी, विनयी, विवेकी और सेवा भावी थे। उनकी मनोहर मुद्रा और शांत प्रकृति सवको सुहावनी लगती थी। उन्होंने गण में शोभा और गुरु के हृदय में अच्छा स्थान प्राप्त किया।

(निम्नोक्त गुण वर्णन ढ़ालों के आधार से)

३. मुनिश्री लगभग सवा चार वर्ष संयम का पालन कर सं० १८९९ वैशाख वदि ८ को कृष्णगढ़ में स्वर्ग प्रस्थान किया :—

सवा चार वर्ष जाझा सोयो रे, कृष्णगढ़े पौंहता परलोयो रे।
हीमत कलावंत मुनि जोयो रे ॥

(शभू गुण ढा० १ गा० ५)

४. जयाचार्य ने मुनिश्री के गुणो की एक ढाल वनाई तथा मुनि मोतीजी 'लघु' (९६) की गुण वर्णन ढाल २ के अन्तर्गत उनके सवध मे प्रकाश डाला।[1] उन दोनो स्थानो में उनकी विशेपताओ पर यथार्थ चित्रण किया है। पढिये कुछ निम्नोक्त पद्य :—

संभू संत वड़ो सुखकारी रे, हद सूरत गणहितकारी रे।
जग कीरत महा जशधारी रे ॥
उद्यमी मुनि अधिक उदारु रे, वचनामृत वलभ वारु रे।
समता रस सागर सारु रे ॥

---

१. मुनि मोतीजी के गुण वर्णन की दूसरी ढ़ाल 'कीर्ति गाथा' मे प्रकाशित नहीं है, भूल से छूट गई है।

ज्यानै याद करे नर नारो रे, सुगुणो संभू अणगारो रे।
परवींण मुनिजन प्यारो रे॥
सूक्ष्म वुद्धिकरी शंभू परख्यो रे, गुणी जांण घणू मन हरख्यो रे।
तिण रो मरणसुणी चित धरक्यो रे॥
(शभू गु० व० ढ़ा० १ गा० १, २, ६, ७)

मुनि ओ सत शंभू सुखकारी, गण हितकारी रा।
मुनि ओ तो वालपणै बुद्धिवंतो, महा जशवंतो रा।
मुनि ओ तो विनय विवेक में रचियो, वर व्यावचियो रा।
मुनि थांरी शोभा गण में भारी, भल इकतारी रा।
मुनि थांरी सूरत महासुखकारी, मुद्रा प्यारी रा।
मुनि थे तो जीत नगारो दीधो, जग जश लीधो रा।
मुनि थांनै हरष धरी म्है रटिया, उपद्रव मिटिया रा।
(मोती गु० व० ढ़ा० २ गा० ७ से १३ तक)

संत गुणमाला ढाल ४ मे स्वर्गीय साधुओ की स्मृति करते समय जयाचार्य ने मुनि शभूजी के सवंध मे लिखा है कि वे देव को प्रत्यक्ष नजरों से देखा करते थे :—

सैहर पादू रो शंभू संत वहु जाण कै, सुर प्रत्यक्ष निजरां देखतो जी।
वर्ष निनाणुवे परभव कियो पयाण कै, वल्लभ तीरथ चार नैं जी॥
(संत गुणमाला ढ़ा० ४ गा० ४६)

११६।३।२६ मुनि श्री टीलोजी (चित्तोड़)

(संयम पर्याय सं० १८९५-१९१०)

गीतक-छन्द

निवासी चित्तोड़ के थे शहर जो सुप्रसिद्ध था।
जाति से माहेश्वरी मूंहाल गोत्र समृद्ध था।
हाथ से ऋषिराय गुरु के चरण 'टीला' ने लिया।
नवति-पंचाधिक हयन मे काम तो उत्तम किया ॥१॥

दोहा

भगिनी 'गगा' आपकी, दीक्षित इस ही वर्ष।
दोनों के ही हृदय में, हुआ विरति का स्पर्श[1] ॥२॥

गीतक-छन्द

साधुचर्या में कुशल अति वने विनयी उच्चतम।
संघ के प्रति अटल निष्ठा प्रीति सद्गुरु से परम।
कला थी व्याख्यान की वहु साहसिक चर्चा-रसिक।
तपस्या स्वाध्याय में भी सतत रस लेते अधिक ॥३॥

जान करके योग्य गुरु ने सिंघाड़ा उनका किया।
विचरकर मुनि ने धरा पर वोध जन-जन को दिया[2]।
आ गये वागौर पुर में विचरते मुनि एकदा।
किया वहु उपकार जिससे गा रहे यश जन सदा ॥४॥

दोहा

दस्तों का कारण हुआ, गये अचानक स्वर्ग।
तन चेतन का पलक में, छूट गया संसर्ग ॥५॥

सोरठा

शतोन्नीस दस साल, उष्णकाल आपाढ़ में।
सुयश चढ़ाया भाल, पाकर के पंडित मरण[४] ॥६॥

१. मुनि श्री टीलोजी चित्तोड़ (मेवाड) के निवासी, जाति से माहेश्वरी और गोत्र से मुहाल (नूवाल) थे :—

कुल मेसरी जाति मुंहाल, छोड्यो परिग्रह जंजाल।

(टीलो गु० व० ढ़ा० १ गा० २)

पचाणुवे व्रत न्हाल रे, टीलो ऋष कुल मेसरी।
चित्तोड़ गोत नूवाल र, परलोके आषाढ़ में ॥

(आर्यादर्शन ढ़ा०२ सो० ६)

उन्होंने सं० १८९५ के जेठ महीने मे आचार्य श्री रायचदजी के हाथ से दीक्षा प्राप्त की[1]। (ख्यात)

उनकी वहन साध्वी गंगाजी (१५९) ने भी सं० १८९५ मे दीक्षा ली थी पर दीक्षा तिथि एव दीक्षा उनके साथ मे लेने का कही उल्लेख नही है :—

गगा टीला री भगिनी, संयम लीधो सुभ लगनी हो।
बिहुं जीतव्य जन्म सुधारचा, अणसण कर कार्य सारचा हो ॥

(टीलो० गु० व० ढ़ा० १ गा० २२)

२. मुनि श्री साधुचर्या में कुशल, परम विनयी, सघ के प्रति निष्ठावान और आचार्यों के प्रति पूर्ण समर्पित हुए[2]।

वे वड़े साहसिक, व्याख्यान-कला व चर्चा-वार्ता मे विचक्षण हुए। तप, स्वाध्याय आदि मे भी अच्छी रुचि रखते थे।

(ख्यात)

३. उनकी विनम्रता, शासन-निष्ठा एव गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर आचार्य प्रवर ने उनको अग्रणी वनाकर सम्मानित किया :—

तसुं तोल वधायो तीखो, निर्मल चित्त जांणी नीको हो।
तसुं सुगुरु सिंघाड़ो कीधो, मुनि जग मांहे जश लीधो हो ॥

(गु० व० ढा० १ गा० ११)

---

१. पचांणुए चारित्र लीधो, ऋषिराय स्वहथ प्रसीधो हो।

(टीलो० गु० व० ढा० १ गा० २)

२. भली दृष्टि चरण नी भारी, सतगुरु सू इकतारी।
मुनि सुमति गुप्ति धर ग्यानी, धुन व्यावचियो वर ध्यांनी।
सुखदायक ने सुविनीत, निर्मल व्रत पालण नीत।
संगत अविनीत नी टाली, मुनि आतम नै उजवाली ॥

(टीलो० गु० व० ढ़ा० १ गा० ३, ४)

४. उन्होने ग्रामानुग्राम विहार कर जन-जन को प्रतिबोध दिया। सं० १६१० मे वे विचरते-विचरते ४ ठाणो से बागौर पधारे। वहां उन्होंने व्याख्यानादिक के माध्यम से बहुत अच्छा उपकार किया। जनता प्रभावित होकर उनका यशोगान गाती। एक दिन उनको दस्त बहुत लगे, जिससे अकस्मात् स्वर्ग पधार गये। उस समय उष्णकाल एवं आषाढ़ का महीना था।

(टीलो० गु० ढ़ा० १ गा० १३ से १७ तक के आधार से)

जयाचार्य ने एक गीतिका बनाकर मुनि श्री के गुणों का प्रतिपादन किया है।

शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १३५ से १३७ मे ख्यात की तरह ही वर्णन है।

११७।३।३० मुनि श्री शिवलालजी (कुंदवा)

(संयम-पर्याय १८९५-१९२४)

रामायण-छन्द

मुनि शिवलाल 'कुदवा' वासी विरति हृदय में लाये है।
मुनिश्री मोजीराम पास में पंच-महाव्रत पाये है[1]।
प्रकृति सरल मृदु, कंठ सुरीले व्याख्यानी चर्चावादी।
तपोधनी आत्मार्थी साधक समता-रस के आस्वादी ॥१॥

सोरठा

कम से कम उपवास, अधिकाधिक मासत्रयी।
किया कर्म का ह्रास, भर करके पौरुष प्रवल[2] ॥२॥

उष्णकाल मे आतापन वहु सही शीत में शीत सवल।
तीन वीस वर्षो तक लगभग एक पटी ओढ़ी केवल[3]।
अंत समय में हुई वेदना, किन्तु रखी अति मजबूती।
मुनि स्वरूप से अनशन लेकर वड़ी दिखाई रजपूती ॥३॥

सात प्रहर में सिद्ध हो गया चदेरी की धरती पर।
विद वैसाख पंचमी तिथि शुभ चार वीस का संवत्सर।
रम उनतीस साल सयम मे आराधक पद पाये है।
स्मृति मे नूतन स्तवन वनाकर जय ने मुनि-गुण गाये है[4] ॥४॥

१. मुनिश्री शिवलालजी 'कुंदवा' (मेवाड़) के वासी थे।

(ख्यात)

उन्होने सं० १८९५ में मुनिश्री मोजीरामजी (५४) के हाथ से दीक्षा स्वीकार की :—

ऋषि शिवलाल सुहामणो रे, सुमति गुप्त सुखकार।
मोजीरामजी स्वामी कने, लीधो सयम भार॥

(शिवलाल मुनि गु० व० ढा० १ गा०१)

दीक्षा तिथि और स्थान उपलब्ध नही हैं।

२. मुनिश्री प्रकृति से कोमल, सरस व्याख्यानी, चर्चावादी और बड़े तपस्वी हुए। उन्होंने उपवास, वेले आदि बहुत किये। ९ से ऊपर की प्राप्ति संख्या इस प्रकार है :—

९	१६	२०	२१	२२	२५	२६	३०	३३	४१	५०
१	१	१	१	१	१	१	२	१	१	१

५१	५३	६०	९०	
१	१	१	१	(आछ के आगार से)।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १३८ से १४०)

गुण वर्णन ढाल में उक्त तपस्या प्राय. समान ही है, केवल ५१ दिन के तप का दो बार उल्लेख है :—'एकावन वे वार ही।'

ख्यात मे उनके वर्णन मे १०८ दिन की तपस्या लिखी है जो मुनि मोतीजी (११८) के भ्रम से लिखी गई प्रतीत होती है क्योकि मुनि मोतीजी ने ही १०८ दिन का तप किया था।

२. मुनिश्री ने उष्णकाल में बहुत वर्षो तक आतापना ली। शीतकाल में लगभग २३ वर्ष केवल एक पछेवड़ी मे रहकर शीत परिषह सहन किया[१]।

(ख्यात)

१. वर्ष तेवीस रै आसरै रे, एक पछेवड़ी उपरंत।
ओढ़ी नही मुनीस्वरू रे, शीतकाल मे तंत॥

(ग० व० ढ़ा० १ गा० ५)

४. मुनिश्री अन्तिम दिनों में अस्वस्थ हो गये। फिर भी उन्होने बड़ी दृढता और समता भाव से वेदना को सहन किया।

सं० १६२४ वैशाख वदि ५ को लाडनूं में दिवंगत हो गये। उन्हे सात प्रहर का अनशन आया। (ख्यात)

वे उस समय मुनिश्री सरूपचदजी के साथ थे और उनके द्वारा अनशन कर अपना कल्याण किया[1]।

जयाचार्य ने उनकी स्मृति मे एक गीतिका बनाई।

शासन-प्रभाकर ढ़ाल ६ गा० १३८ से ४२ मे ख्यात की तरह ही वर्णन है।

---

१. स्वाम सरूप रे आगले रे, सप्त पोहर सथार।
चौवीसे वैशाख मे रे, कर गयो खेवो पार॥
(गु० व० ढा० १ गा० ६)

११८।३।३१ मुनि श्री मोतीजी (दुधोड़)

(सं० १८६५-१६३०)

लय—राजा की मति चकराई…

मोती की छवि चमकाई, चमकाई भविक मन भाई।ध्रुव०।

मारवाड़ की भूमि में था 'दुधोड़' लघु ग्राम।
सोनी ताराचन्दजी, प्रमुख पिता का नाम रे ॥१॥

चार नंद उनके हुए, 'मोती' उनमें एक।
उसने भी तो चार सुत, लिए नजर से देख रे ॥२॥

धन संपद वहु गेह में, हरा भरा परिवार।
सुकृत वगीचा खिल रहा, सुख सुविधा संचार रे ॥३॥

पर पीछे संयोग के, जुड़े वियोगी तार।
सुख दुख सहचर हैं सदा, देखो नयन पसार रे ॥४॥

क्रमशः चारों पुत्र ही, पहुंचे हैं परलोक।
अलख रूप संसार का, भरा शोक ही शोक रे ॥५॥

इस घटना से हो गया, मोती हृदय विरक्त।
संयम लेने के लिए, निर्णय किया सशक्त रे ॥६॥

मां बांधव आदेश ले, भेंट गुरु ऋपिराय।
पंच नवति की साल में, चरण लिया सदुपाय रे[1] ॥७॥

सुगुरु-शुक्ति-संयोग से, मोती जो जल विन्दु।
मोती वनकर वस्तुतः, चमका ज्यों शरदिन्दु रे ॥८॥

पंच महाव्रत-साधना, समिति गुप्ति में लीन।
सेवाभावी संघ में, बने तपस्वी पीन रे ॥९॥

पावस में तप आचरण, हिम में सहते शीत।
गर्मी में आतापना, लेते धर कर प्रीत रे[२] ॥१०॥

उपवासादिक से चले, बड़े पढ़ लिये पाठ।
माला के मणिये किये, पूरे इक सौ आठ रे ॥११॥

पानी के आगार से, तप यह सर्वोत्कृष्ट।
शासन के इतिहास में, लिखे सुनहरे पृष्ठ रे ॥१२॥

किया पारणा आपने, इधर समय पर ठीक।
राणा ने अनुनय किया, उधर समय पर ठीक रे ॥१३॥

घूणाक्षरवत् मिल गया, मणिकांचन का योग।
सुन मन हर्षित भूप का, पाये अचरज लोग रे[३] ॥१४॥

सेवा हेम, स्वरूप की, की है तन मन झौंक।
'उत्तम' मोती दीर्घ की, परिचर्या अस्तोक रे[४] ॥१५॥

दीक्षा मुनि के हाथ की, मिलती है दो एक।
भैक्षव-गण की ख्यात में, लिखे हुए है लेख रे[५] ॥१६॥

पुत्र-वधू थी आपकी, जेठां जिनका नाम।
पाई पहले आप से, संयम का शुभ धाम रे[६] ॥१७॥

क्षीण शक्ति वार्धक्य में, तन में व्याधि-प्रवेश।
परिचर्या हित 'जीत' ने, भेजे संत विशेष रे[७] ॥१८॥

मुनि जन के सहयोग से, चित्त समाधि महान्।
'मोती' ने गुरुदेव का, माना अति अहसान रे ॥१९॥

शतोन्नीस पर तीस का, आया है मधु मास।
श्रेणी चढ़ शुभ भाव की, पाया है सुरवास रे[८] ॥२०॥

गुण-मोती चुन-चुन रची, एक 'जीत' ने ढ़ाल।
चमकी जगमग ज्योति से, मोती की गुणमाल रे[९] ॥२१॥

१. मुनि श्री मोतीजी मारवाड में दूधोड़ (सोजतरोड़ के पास) के निवासी जाति से ओसवाल और गोत्र से सोनी थे।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम ताराचंदजी था :—

'ताराचंद सुत गावियो'

(मोती० गुण वर्णन ढ़ा० १ गा० २१)

वे चार भाई थे और उनके चार पुत्र थे। घर मे ऋद्धि संपत्ति भी बहुत थी :—

पयवर (दुधोड़) नो वासी पको, मोती नाम कहिवायो रे।
चिहु सुत चिहुं बांधव भला, घर में ऋद्धि अधिकायो रे॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० १)

विधि की लीला विचित्र होती है। सयोग के पीछे वियोग और सुख के पीछे दु:ख के तार जुड़े हुए रहते हैं। अशुभ कर्म के योग से मोतीजी के एक-एक करके चारों पुत्र काल-कवलित हो गए। चौथे पुत्र की मृत्यु से तो उनके हृदय मे वैराग्य की धारा उमड़ पड़ी। ससार की नश्वरता को देखकर वे दीक्षा लेने के लिए उतावले हो गए :—

प्रथम पुत्र परभव गयो, दूजो पिण कर गयो कालो जी।
तृतीय सुत नै पिण तदा, काल लपेटयो न्हालो जी॥

मरण तूर्य सुत नो तदा, देखी आयो वैरागो जी।
चरण लेवा सू चित्त हुवो, संसार सूं मन भांगो जी॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० २, ३)

उन्होने पत्नी वियोग के पश्चात् मां तथा तीनों भाइयों की आज्ञा लेकर एव बहुत ऋद्धि परिवार छोड़कर सं० १८९५ के जेठ महीने मे तृतीयाचार्य श्री रायचंदजी के पास चारित्र ग्रहण किया :—

मांई तणी लेई आगन्या, पूछी बंधव तीनो जी।
ऋषिराय आचार्य आगले, धारयो चरण सुचीनो जी॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० ४)

२. मुनि श्री सेवार्थी एवं तपस्वी साधक हुए। शीतकाल मे शीत सहना, उष्णकाल में आतापना लेना और वर्षा ऋतु में तपस्या करना उनके जीवन का

क्रम था :—

शीतकाल वहु सी सह्यो, उष्णकाल आतापो जी।
चउमासे तपसा करी, काट्या बहुला पापो जी॥

(मोती गु० ढ़ा० १ गा० ६)

३. मुनि श्री ने उपवास, वेले, तेले तथा चोले आदि वहुत थोकड़े किये। ऊपर में १६०१ की साल मुनि श्री सरूपचदजी (६२) के साथ उदयपुर में केवल पानी के आधार से १०८ दिन का तप किया, जो भैक्षव शासन मे सर्वोत्कृष्ट है :—

उगणीसै एके समै, उदियापुर सैहर मझार।
एक सौ आठ मोती किया, वर तप उदक आगार॥

(सरूप नवरसो ढ़ा० ७ गा० ७)

इस तप की सपन्नता के समय उदयपुर के महाराणा ने कहलाया कि अव आपको पारणा कर लेना चाहिए। मुनि श्री उस दिन पारणा करने वाले ही थे। मुनि श्री सरूपचदजी ने उनको पारणा करवाया। महाराणा सुनकर वहुत हर्षित हुए कि मेरे कहने से सतो ने पारणा कर लिया :—

उदक आगारे महामुनि, एक सौ आठ उदारो जी कांई।
छाछ आछ छांडी करी, कीधो हरख अपारो जी कांई॥

तपसा रे छेहड़े तदा, हिंदूपति तिहवारो जी कांई।
समाचार कहिवाविया, हिवै पारणो कीजै सारो जी कांई॥६॥

ताम करायो पारणो, सरूपचंद मुनिरायो जी कांई।
तंतोतंत मिल्यो इसो, ए अचरज अधिकायो जी कांई।

राणांजी रो कहिवावणो, पारणो रो वलि टांणो जी कांई।
मोती कीधो पारणो, सांभल हरण्यो रांणो जी कांई॥

(मोती गु० व० ढा० १ गा० ८ से ११ तक)

४. उन्होने मुनि श्री हेमराजजी (३६), सरूपचंदजी (६२), उत्तमचदजी (१८६) तथा मोतीजी (७७) 'वड़ा' की वहुत परिचर्या की।

(मोती० गु० ढा० १ गा० १३, १४ के आधार से)

इससे लगता है कि वे पहले मुनि हेमराजजी के, पीछे स्वरूपचंदजी के और उसके वाद वड़े मोतीजी स्वामी के सिंघाड़े मे रहे।

५. उन्होने स० १६०७ मृगसर वदि ७ को मुनि लघु भवानजी (१६०) को तथा सं० १६०७ आपाढ़ शुक्ल १५ को मुनि संतोजी (१६२) को दीक्षा दी।

ख्यात मे मुनि भवानजी की दीक्षा तो मुनि मोतीजी स्वामी 'दुधोड़' (आप) द्वारा लिखी है, पर संतोजी की दीक्षा लघु मोतीजी के हाथ से लिखी है। वे लघु मोतीजी (११८) ये ही हैं, क्योकि दूसरे छोटे मोतीजी (९६) सं० १८९६ में दिवंगत हो गए थे, बडे मोतीजी (७७) विद्यमान थे, अतः लघु मोतीजी स० १९०७ में संतोजी को दीक्षा देने वाले ये ही है।

६. उनके पुत्र की वहू साध्वी श्री जेठांजी (१५७) ने उनसे पूर्व सं० १८९४ मे दीक्षा ग्रहण की थी।

(जेठांजी की ख्यात)

७. स० १९२९ मे मुनि मोतीजी 'वड़ा' के स्वर्ग पधारने के वाद मोतीजी के शरीर मे अस्वस्थता वहुत हो गई एवं शक्ति घट गई। उस समय उनकी सेवा मे तीन सत—१. मुनि श्री गुलावजी (१४३), २. वीजराजजी (१८३) और ३. जीवोजी (११३) थे।

जयाचार्य ने उनकी वीमारी के समाचार सुन दूसरे दो सत—माणकजी (१६१) तथा रामलालजी (१९३) को उनकी सेवा मे भेजा। पहले वाले तीनो साधुओ का वहां से विहार करवा दिया।

(मोती० गु० ढ़ा० १ गा० १६, १७ के आधार से)

८. मुनि श्री की शारीरिक शक्ति प्रतिदिन घटती गई। साथ के सतो ने उनकी अच्छी परिचर्या की। मुनि रामलालजी ने उनकी विविध प्रकार से सेवा कर अच्छा यश प्राप्त किया।

सं० १९३० के चैत्र महीने मे वालोतरा गांव मे उन्होने चढ़ते भावो से स्वर्गगमन किया।

(मोती० मुनि गु० व० ढ़ा० १ गा० १८ से २० के आधार से)

शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १४४ मे उनको अनशन आने का उल्लेख है, पर ख्यात तथा गुण वर्णन ढ़ाल मे उल्लेख न होने से वह यथार्थ नही लगता।

९. जयाचार्य ने मुनि श्री के गुणो की एक ढ़ाल वनाकर उनके जीवन-प्रसगों का उल्लेख किया।

११९।३।३२ श्री ताराचंदजी

(१८९६ ऋषिराय युग मे गणबाहर)

रामायण-छन्द

स्थानकवासी सम्प्रदाय मे दीक्षित पहले पुत्र पिता।
ताराचन्द भवान नाम से मिलो ज्ञान-मय मधुर सिता।
छोड रत्नजी के टोले को आये पावन प्रभु पथ मे।
पाली में गुरु रायचन्द के पास चढे सयम रथ मे[1] ।।१।।

दोहा

अशुभ कर्म के योग से, छोड़ दिया है सघ।
मुश्किल चढ़ना शिखर पर, जब हो दुर्बल अंग[2] ।।२।।

१. ताराचन्दजी और उनके पुत्र भवानजी पहले स्थानकवासी साधु रत्नजी के टोले मे दीक्षित हुए थे। वाद मे दोनों ने सं० १८९६ आसोज सुदी १० पाली में आचार्यश्री ऋपिराय के हाथ से दीक्षा ली।

(ख्यात)

ताराचन्दजी पत्नी वियोग के वाद और भवानजी अनुमानतः अविवाहित वय में दीक्षित हुए थे। ऋपिराय सुयश मे गुमानजी के टोले से आकर दीक्षा लेने का उल्लेख है।

पिचाणुवै वर्ष पूज्यजी, उदियापुर अधिकार।
पाली प्रगट छिन्नुवे, चौमासो गुणकार॥

गुमानजी रा गण थकी, चरण लियो पूज्य पास।
तात सहित ऋष भवानजी, छिन्नुवे वर्ष चौमास॥

(ऋपिराय सुजश ढा० ११ दो० १२)

समीक्षा

भिक्षु दृष्टांत ७ मे उल्लेख है कि स्थानकवासी आचार्य जयमलजी के टोले से गुमानजी, दुर्गादासजी, प्रेमजी और रत्नजी आदि १६ साधु अलग हुए, इससे लगता है कि पहले गुमानजी पूज्य वने है और पीछे रत्नजी। सभवत. इसीलिए ऋषिराय सुजश मे गुमानजी के टोले से अलग होने का तथा ख्यात मे रत्नजी के टोले से अलग होने का उल्लेख कर दिया है।

२. ताराचन्दजी वाद मे गण से अलग हो गये पर उनके गण से पृथक् होने का संवत् प्राप्त नही है। परपरा के वोल (२) सख्या २२४ मे उल्लेख है कि जीवराजजी(८६) स्वामी और ताराचन्दजी ने एक वार नागौर से विहार किया। ताराचन्दजी रास्ते मे उन्हे छोड़कर चले गए।

मुनि जीवोजी 'खालड' मे २७ दिन अकेले रहे। वहां साध्वी श्री नगांजी (७६) विराज रही थी।

यह घटना स० १८९६ के पश्चात् एवं १९०१ के पहले की होनी चाहिए क्योकि उनकी दीक्षा सं० १८९६ मे तथा नगांजी का स्वर्गवास १९०१ मे हुआ, अतः इसके वीच की अवधि मे वे गण से अलग हुए।

१२०।३।३३ मुनि श्री भवानजी 'बड़ा'

(संयम पर्याय सं० १८९६-१९४७)

गीतक-छन्द

तात साथ 'भवान' ने संयम लिया गुरु-पास में।
रम गये साधुत्व में ज्यों मधुप पुष्प-सुवास मे[1] ॥
किया विद्याभ्यास अच्छा सूत्र वतीसी पढ़ी ।
उद्यमी ज्ञानी व ध्यानी की सतत प्रतिभा वढ़ी ॥१॥

कला लेखन चित्र की वहु हस्त-लघुता-चतुरता।
सुगुरु-सेवा-भक्ति मे रखते बड़ी अनुरक्तता ।
अधिकतर तप किया ऊंचे विना जल दश तक चढ़े।
हर समय गतिशील होकर प्रगति के पथ पर वढ़े[2] ॥२॥

योग्यता क्रमशः बढ़ाकर अग्रणी वे हो गये ।
विचर कर जनमेदिनी में बीज धार्मिक वो गये[3]।
पांच दीक्षा हाथ से दी किया वहु उपकार है।
संघ का गौरव वढ़ाया लिया सुयश अपार है[4] ॥३॥

सोरठा

चरण इकावन साल, पालन कर फूले फले ।
सैतालीस विशाल, सवत् में सुरपुर गये[5] ॥४॥

१. मुनि भवानजी ने अपने पिता ताराचन्दजी के साथ सं० १८९६ आसोज सुदि १० को पाली मे आचार्य श्री ऋषिराय के पास दीक्षा ली। इसका विस्तृत वर्णन ताराचन्दजी (११९) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

२. मुनि भवानजी साधु-क्रिया मे जागरूक होकर विद्याभ्यास करने लगे। क्रमशः पढ-लिखकर तैयार हुए। उन्होने कई वार ३२ सूत्रों का वाचन किया। वे वड़े उद्यमी, हाथ के चतुर, लेखन तथा चित्रकाल मे निपुण हुए। उन्होने चित्रादिक व पटादिक वहुत वनाये। आचार्य श्री रायचन्दजी की सेवा भक्ति अच्छी की। उपवास से दस तक चौविहार तपस्या की तथा और भी वहुत तप किया। (ख्यात, शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १४७)

३. मुनि श्री ने अग्रणी होकर ग्रामानुग्राम विहार किया। उनके चातुर्मास स्थान इस प्रकार प्राप्त होते है :—

सं० १९१३ वगडी ठाणा २

इसका उल्लेख मुनि जीवोजी (८६) कृत चातुर्मासिक ढाल १ गा० २ में है।

स० १९३५ सरसा (पजाव) ठाणा ४

स० १९३७ वालोतरा ठाणा २

स० १९३८ वीकानेर ठाणा ३

स० १९४३ पाली ठाणा ३

(श्रावकों द्वारा लिखित चातुर्मासिक तालिका)

४. मुनि श्री ने पाच दीक्षाए दी :—

१. मुनि श्री कालूजी 'वडा' (१६३) 'रेलमगरा' को सं० १९०८ मृगसर वदि ६ को रेलमगरा में दीक्षा दी।
२. मुनि श्री अमरचन्दजी (२८२) 'लावा' को स० १९४० माघ सुदि १३ को दीक्षा दी, जो वाद में गण से पृथक् हो गए।
३. साध्वी श्री वगतूजी (मुनि कालूजी की माता क्रमाक २६६) 'रेलमगरा' को स० १९०८ मृगसर वदि ६ को उनके पुत्र कालूजी के साथ रेलमगरा मे दीक्षा दी।
४. साध्वी श्री प्राणाजी (४७३) 'उदयपुर' को सं० १९३६ मृगसर वदि १३ को उदयपुर मे दीक्षा दी।
५. साध्वी श्री गोराजी (४९१) 'पचपदरा' को सं० १९३७ में दीक्षा दी, जो वाद मे गण से अलग हो गई।

(उक्त साधु-साध्वियों की ख्यात)

५. मुनि श्री ने लगभग ५१ वर्ष सयम पर्याय मे रम कर स० १९४७ मे समाधि-पूर्वक पडित-मरण प्राप्त किया। (ख्यात)

१२१।३।३४ श्री नंदरामजी (पादू)

(१८६७-१६१० में गण वाहर हुए)

रामायण-छन्द

नंदरामजी का जन्म स्थल मारवाड़ में पादू ग्राम।
नवति सात में भीम हाथ से लिया स्वपुर में चरण ललाम।
किया भीम ने भेंट उन्हे तब वापस गुरु ने सौंप दिया।
फूला तन मन भीम व्रती का व्यक्त बड़ा आभार किया' ॥१॥

कुछ वर्षो तक रहे संघ में फिर तो छोडा शासन-वन।
भावी का वल अटल विश्व में भटक रहे जिससे जन जन।
होने पर भी पृथक् रहे वे लज्जालू गण के सम्मुख।
श्रद्धा के क्षेत्रों में प्रायः नही दिखाया अपना मुख ॥२॥

अन्य मत.वलम्वियों ने की चेष्टा उन्हे मिलाने की।
लेकिन उनमें नही गये है रखी विचारों में एकी।
व्याधिग्रस्त तनु हुआ अन्त में फिर भी रखी वहुत दृढता।
मरणासन्न समय में की है आमंत्रित पुर की जनता ॥३॥

वोले वचन सतोले मुख से 'जीत गणी' मेरे गुरुदेव।
और तुम्हारे भी वे गुरु है सुखकर उनका शरण सदैव।
पुस्तकादि ये तेरापथी साधु-साध्वियों को देना।
अथवा रखना पास स्वयं के पढकर लाभ उठा लेना ॥४॥

जोर वडा कर्मो का मेरे जिससे तोडा गण-नाता।
गुरु चरणो में गिर जाता तो मेरा जन्म सुधर जाता।
अवतो आयु निकट है जिससे चल न सकेगा वल अस्तोक।
'पर उनका ही शरण मुझे है'—यो कहकर पहुंचे परलोक' ॥५॥

१. नंदोजी मारवाड़ मे पादू के निवासी थे।

(ख्यात)

मुनि श्री भीमजी (६३) ने सं० १८९७ का अपना अन्तिम चातुर्मास वाजोली मे किया। चातुर्मास के पश्चात् पादू मे आकर उन्होंने नदोजी को समझाकर दीक्षा प्रदान की :—

पछै चरम चौमासो श्रीकार, वाजोली मे करचो जी।
तठै कियो घणो उपकार, सुमता रस थी भरचो जी॥
चौमासो उतरयां ताम, भीम पादू आय नै जी।
नंदोजी नै दिख्या तिण ठांम, दीधी समझाय नै जी॥

(भीम विलास ढा० ४ गा० ७, ८)

दीक्षा मृगसर वदि ३ को दी।

(ख्यात)

मुनि भीमजी ने आचार्य श्री रायचन्दजी के दर्शन कर नव दीक्षित मुनि को भेंट किया। गुरुदेव ने महती कृपा कर नंदोजी को वापस मुनि भीमजी को ही सौप दिया जिससे उन्हे अधिक प्रसन्नता हुई :—

पूज्य दयाल कृपाल गुर, जाण्यो भीम नो मन्न।
नंदो सूप्यो भीम नै, तन मन थयो प्रसन्न॥

(भीम विलास ढ़ा० ५ दो० १)

२. नदोजी सं० १९१० में गण से पृथक् हुए परन्तु वे लज्जाशील थे जिससे प्राय श्रद्धा के क्षेत्रो मे नही गये और शासन के प्रति अनुकूल रहे। अन्य मताव-लम्वियो ने अपने मत में सम्मिलित करने के अनेक उपाय किये पर वे उनमे नही गए।

अन्तिम समय मे रोगग्रस्त होने पर भी दृढ़ रहे एव मरणासन्न समय मे गृहस्थो को वुलाकर कहा—'मेरे गुरु पूज्य जीतमलजी स्वामी हैं और तुम्हारे भी वे ही गुरु है। मेरी निश्राय मे जो पुस्तक पन्ने हैं वे सव तेरापंथी साधु तथा साध्विया यहां आये तव उन्हे दे देना अथवा तुम लोग इनका वाचन करना। मेरे अशुभ कर्म का अधिक योग था जिससे मैं सघ से अलग हुआ। अगर उस समय आचार्यप्रवर के पैरो मे गिरकर आत्म-समर्पण कर देता तो मेरा जन्म सफल हो जाता। किन्तु अव तो आयु निकट है अत किसी प्रकार का वल नही चलता। उनका ही शरण है उनका ही आधार है।' इस प्रकार वे शुभभावना में मृत्यु को प्राप्त हो गये।

(ख्यात)

आर्यादर्शन कृति मे भी स० १९१० में गण से पृथक् होने वाले साधुओ में उनका नाम है :—

तीन थया गण बार रे, धनो (९२) हमीर (१४०) नंदजी।
विण पूछं हुवा खुवार रे, अजेस पाछा नाविया ॥
(आर्यादर्शन ढ़ा० २ सो० ७)

१२२।३।३५ मुनि श्री लालजी (चंदेरा)

(सयम पर्याय सं० १८९७-१९१५)

रामायण-छंद

मेदपाट में पुर 'चंदेरा' ओसवंश कहलाया है।
ईटोदिया गोत्र परिजन का जन्म 'लाल' ने पाया है।
प्राक्तन संस्कारों से जागृत हुई भावना दीक्षा की।
पत्नी बांधव पुत्रादिक तज पुस्तक पढ़ी समीक्षा की ॥१॥

युवाचार्यश्री जय से दीक्षित जन्म-भूमि में हो पाये।
नवति सात मृगसर विद छठ को संयम के पथ पर आये[1]।
सरल स्वभावी और उद्यमी विनयवान मुनि सुखकारी।
वोध-प्रधान चित्र दिखला कर समझाते वहु नर-नारी ॥२॥

गीतक-छंद

हजारों ही व्यक्तियों को कराई गुरु-धारणा।
स्व-पर के कल्याण की थी एकमात्र विचारणा[2]।
ले बड़ी तलवार तप की वार कर्मो पर किया।
गगन में पुरुपार्थ वल से विजय-ध्वज फहरा दिया ॥४॥

सोरठा

अधिकाधिक उपवास, वेले तेले आदि भी।
पांचवार कर मास, लाये वड़ा निखार वे ॥४॥

सर्दी में वहु शीत, गर्मी में आतापना।
रखते हरदम प्रीत, स्मरण जाप स्वाध्याय से[3] ॥५॥

दोहा

विश ऋषिवर की शेष में, की सेवा सुखकार।
साथी मुनि जयचन्द के, बन पाये साकार[४] ॥६॥

श्रोजीद्वारा शहर में, अन्तिम वर्षावास।
टोकम ऋषि सान्निध्य में, पहुंचे हैं सुरवास[५] ॥७॥

१. मुनि श्री लालजी मेवाड मे 'चदेरा' के वासी और गोत्र से ईंटोदिया ओसवाल थे। (ख्यात)।

उन्होने अपनी पत्नी, दो पुत्र तथा पुत्रवधू आदि को छोड़कर स० १८९७ मृगसर वदि ६ को युवाचार्य श्री जीतमलजी के हाथ से चदेरा मे दीक्षा स्वीकार की :—

दिक्षा दे हिवं विहार करी, पंचम गाम चंदेरे गुणकारी जी।
आवी मुनि दियो लालजी नें तव, चरण रयण महा यशधारी जी ॥

दोय पुत्र ने दोय वधव फुन, तज दीधी मुनि वलि नारी जी।
विद छठ चरण देइ पछै आया, गोगुदे जय जशधारी जी ॥

(जय सुजश ढ़ा० २८ गा० १२, १३)।

जयाचार्य स० १८९७ मृगसर वदि ४ के दिन उदयपुर में सरदारसती को दीक्षा देकर मृगसर वदि ५ को चंदेरा पधारे थे और वहा मृगसर वदि ६ को उन्होंने लालजी को दीक्षा दी थी :—

वासी चंदेरा तणो, लाल ऋषेस्वर जांन ।
सुत त्रिय सुत नी वहु तजी, चरण लियो गुणखांन ॥

सताणूंए मृगसर विद, चौथ चरण सिरदार ।
लाल महोछव चरण छठ, विहुं जय पै सुविचार ॥

(लाल मुनि गु० व० ढा० १ दो० १,२)।

२. मुनि श्री प्रकृति से सरल और वहुत परिश्रमी थे। उन्होने प्रेरणाप्रद चित्रो के माध्यम से हजारो व्यक्तियो को समझाकर गुरुधारणा कराई[1]।

(ख्यात)।

वे समिति गुप्ति की साधना मे वड़े सावधान, विनयशील और सघ के प्रति पूर्ण निष्ठावान थे[2]।

३. मुनि श्री वड़े तपस्वी हुए। उन्होने उपवास, वेले, तेले आदि अनेक वार

---

१. वहुजन नै समझावण केरो, लाल तणै अति प्रेमो।
गणपति नामे गुरु धारणा, हर्ष लाल चित्त हेमो ॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० ३)।

२. समिति गुप्ति मे सावचेत मुनि, विनयवंत सुखकारो।
निर्मल सासण नी आसता राखी, जीत नगारो दीधो ॥

(गु० व० ढा० १ गा० १, ५)।

किये। शेष तप की तालिका इस प्रकार है :—

४	५	७	६	११	१२	१३	१६	मासखमण
१	१	१	१	१	१	१	१	५

(ख्यात, गु० व० ढ़ा० १ गा० २)

उन्होंने शीतकाल में शीत और उष्णकाल मे उष्ण परिषह बहुत सहन किया। जप स्वाध्याय मे भी वे विशेष रुचि रखते थे[1]।

४. उन्होंने स० १६११ मे मुनि श्री जयचन्दजी (१३५) के साथ मुनि श्री शिवजी (७८) की अन्तिम समय मे सेवा की।

(शिव मुनि गु० व० ढ़ा० १ गा० ७२)

५. मुनि श्री ने सं० १६१५ का अन्तिम चातुर्मास मुनि श्री टीकमजी (७३) के साथ नाथद्वारा में किया। वहां सावण महीने मे अनशन कर स्वर्ग-प्रयाण कर दिया। मुनि टीकमजी भी उसी चातुर्मास मे दिवगत हो गये :—

चरम चौमासो श्रीजीदुवारे, टीकम ऋषि पै जांणो जी रे।
उगणीसै पनरे श्रावण में, परभव कियो प्रयांणो रे॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० ४)

चंदेरा नो लाल रे, टीकम माधोपुर तणो।
संत विहू सुविशाल रे, अणसण श्रीजीदुवार में॥

(स० १६१५ के वर्णन की 'आर्यादर्शन' ढ़ा० ८ सो० ३)

शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० १५१ से १५४ मे ख्यात की तरह ही वर्णन है परन्तु दोनो स्थानो मे मुनि श्री का स्वर्गवास सवत् १६१६ लिखा है, जो उप-र्युक्त प्रमाणो से गलत है।

---

१. सीत उष्ण तप जप समचित्त सूं, आणी हरष अपारो।

(गु० व० ढ़ा० १ गा० १)

१२३।३।३६ श्री जुहारजी (पादू)

(दीक्षा सं० १८९८, १९१६ में गण बाहर)

रामायण-छंद

खींमेसरा (खींवेसरा) गोत्र परिजन का मारवाड़ में पादू ग्राम।
नवति आठ संवत् में दीक्षा ली 'जुहार' ने तज धन धाम[1]।
सतरह साल रहे शासन में फिर तो खाखा बिगड़ गया।
अलग हो गये तेरापथ से जीवन सारा उजड़ गया[2] ॥१॥

अवगुण बोले बहुत द्वेषवश झूठे-झूठे दिये कलंक।
बुरे काम का बुरा नतीजा आखिर होता है निशंक।
रहे अकेले बहु वर्षों तक शिष्य किया फिर जो न रहा।
बुरी तरह जंगल में मरकर पाये दुर्गति दुःख महा[3] ॥२॥

१. जुहारजी मारवाड में पादू के वासी और गोत्र से खीवेसरा (ओसवाल) थे। उन्होने सं० १८९८ चैत्र वदि ८ को मुनि श्री गुलहजारीजी (१०३) के हाथ से दीक्षा ली।

(ख्यात)

दीक्षा स्थान प्राप्त नही है।

२. वे सं० १९१६ मे गण से पृथक् हुए :—

छूटचो इक जुहार रे, मानव रो भव हारियो।
नीत न देखी सार रे, काढ़ दियो गण वारणैं ॥

(आर्यादर्शन ढ़ा० ९ सो० ५)

ख्यात तथा सत विवरणिका मे उनका गणवाहर होने का सवत् १९१५ लिखा है किन्तु उपर्युक्त जयाचार्य द्वारा रचित 'आर्यादर्शन' का उल्लेख सही लगता है।

जुहारजी ने अलग होने के वाद द्वेपवश सघ के वहुत अवर्णवाद वोले और मिथ्या आरोप लगाये। अनेक वर्पो तक अकेले घूमते रहे फिर एक चेला किया किन्तु वह उनके साथ नही रहा सका।

आखिर जुहार जी जगल मे वुरी तरह मृत्यु को प्राप्त हुए।

(जुहारजी की ख्यात)

जुहारजी ने उपर्युक्त जो चेला किया उनका नाम रामानंदजी था। वाद मे रामानदजी उन्हे छोडकर स० १९२७ मे तेरापंथ मे दीक्षित हुए। थोडे दिन वाद वे गण से पृथक् हो गये।

(रामानदजी की ख्यात)

१२४।३।३७ मुनि श्री बच्छराजजी (इन्दौर)

(संयम पर्याय सं० १८६८-१९३९)

रामायण-छन्द

प्रान्त मालवा पुर इंदौर निवासी वच्छराज मुनिवर।
थी सरावगी जाति समय से हुए विरत मुनि-संगति कर।
नवति आठ में ली है दीक्षा धारी गुरु-शिक्षा सुदर[१]।
गुलजारी मुनि के सहयोगी रह पाये है वहु वत्सर[२] ॥१॥

गीतक-छंद

प्रकृति कोमल नीति निर्मल प्रगति की है ज्ञान की।
कुशल चर्चा धारणा में कला थी व्याख्यान की[३]।
किया है तप भी वहुत पर नही मिलती तालिका[४]।
साल उनचालीस में ली स्वर्ग की अट्टालिका[५] ॥२॥

१. मुनि श्री वच्छराजजी मालव प्रान्त में इंदौर शहर के निवासी और जाति से सरावगी (गोत्र-सेठी) थे। उन्होंने स० १८९८ मे दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

दीक्षा कहां और किसके द्वारा ली इसका उल्लेख नही मिलता।

२. वे मुनि श्री गुलहजारीजी (१०३) के साथ में अनेक वर्षो तक रहे। उनसे सबधित घटनाएं मुनि गुलहजारीजी के प्रकरण मे दे दी गई है।

३. मुनि श्री ने ज्ञानार्जन कर सैद्धान्तिक एवं तात्विक रहस्यों की अच्छी जानकारी की। वे चर्चावादी, नीतिमान् और प्रकृति से कोमल थे।

(ख्यात)

४. उन्होने तप भी बहुत किया।

(ख्यात)

५. वे सं० १९३९ मे दिवगत हुए।

(ख्यात)

१२५।३।३८ मुनि श्री जवानजी (ईडवा)

(संयम पर्याय सं० १८६६-१६१६)

गीतक-छन्द

मरुधरा पर ईडवा जनु-धाम नाम जवान था।
गोत्र चोरडिया स्वजन-जन का बड़ा संस्थान था।
छोड़कर पुत्रादि वैभव मुनि बने उल्लास में।
बखतगढ़ में गुलहजारी तपस्वी के पास में[1] ॥१॥

साधना में लगे विनयी विनय सेवा साथ में।
साहसिक समयज्ञ थे निष्णात चर्चा बात में।
ज्ञान तात्त्विक श्रावकों को बहु सिखाया यत्न कर।
कला दानादिक प्रमुख की भी बताई श्रेष्ठतर ॥२॥

बोध दे बहु व्यक्तियों को दिलाई गुरु-धारणा।
चरण लेने के लिए दी बहुजनों को प्रेरणा।
दृष्टि शासन में बड़ी गुरु भक्ति थी शुभ भावना।
लक्ष्य तरने तारने का एक निष्ठा से बना[2] ॥३॥

दोहा

रामव्रती के साथ में, थे ग्यारह की साल।
सेवा उनकी आखिरी, की रख पूर्ण खयाल[3] ॥५॥

गीतक-छंद

चरम पावस सुगुरु पद में हुआ तन अस्वस्थ है।
सहन करते वेदना को हो गये आत्मस्थ है।

लाडनूं फिर आ गये गुरु-संग मृगसर मास में।
संत 'छोटू' सुखद सेवा कर रहे उल्लास मे ॥५॥

दोहा

दर्शन देकर जय सदा, भरते मन में पोप।
विदा हुए है वाद में, उपजा कर संतोप ॥६॥

पुनरपि फाल्गुन में गणी, आकर ठहरे मास।
फिर विहरण गुरु ने किया, है छोटू मुनि पास ॥७॥

तीज कृष्ण वैशाख की, देख व्याधि विस्तार।
'छोटू' ने करवा दिया, अनशन-व्रत सागार ॥८॥

भावों की श्रेणी चढ़े, भर अन्तर आलोक।
साधिक एक मुहूर्त्त से, पहुंचे हैं परलोक ॥८॥

साधक संत जवान ने, किया आत्म-उत्थान।
जय ने रचकर गीतिका, गाये हैं गुणगान' ॥१०॥

१. मुनि जवानजी मारवाड़ मे ईड़वा के वासी और गोत्र से चोरड़िया (ओसवाल) थे। उन्होने पत्नी वियोग के वाद पुत्रादिक परिवार को छोड़कर स० १८९९ वखतगढ में तपस्वी मुनि गुलहजारीजी (१०३) द्वारा दीक्षा ली, ऐसा ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १५८ में लिखा है।

जयाचार्य विरचित उनके गुणों की ढाल मे दीक्षा संवत् १८९७ है :—

लघु जवान मरुधरा, जाति चोरड्या ताय।
ईडवा रा वखतगढ़ में, चरण लियो सुखदाय॥

पुत्र सुतन वहु नें तजी, संवत् अठारैं जांण।
सताणुंए संजम लियो, महोछव चरण मंडाण॥

(जवान मुनि गु० व० ढा० १ दो० १,२)

मुनि गुलहजारीजी का स० १९०० का चातुर्मास रतलाम मे था। इससे यह अनुमान लगता है कि उन्होंने चातुर्मास के पूर्व स० १८९९ मे मुनि जवानजी को दीक्षा दी। जयाचार्य रचित ढाल में सवत् १८९७ है वहां १८९९ होनी चाहिए।

२. मुनि श्री साधना निष्ठ, विनयी, सेवाभावी, नीतिमान्, साहसिक और चर्चा मे वड़े निपुण थे। उन्होने अनेक व्यक्तियो को समझाकर गुरु-धारणा कराई तथा सयम के लिए प्रेरित किया। शासन की गरिमा वढाने मे वे हर समय प्रयत्नशील रहते थे।

(गु० व० ढा० १ गा० १ से ३ के आधार से)

ख्यात में लिखा है कि मुनि श्री ने अनेक व्यक्तियो को तत्त्वज्ञान सिखाया तथा दानादिक की कला सिखाकर श्रावक के गुणो की अभिवृद्धि की।

३. सं० १९११ मे वे मुनि श्री रामजी (१००) के साथ थे। उनकी अन्तिम समय में उन्होंने और लघु मोतीजी (११८) ने अच्छी परिचर्या की :—

संत लघु मोती जवान आदि दे, सेव करै चित्त साचै।

(राम गु० व० ढा० १ गा० १२)

४. सं० १९१६ के सुजानगढ चातुर्मास मे मुनि श्री जयाचार्य के साथ थे। वहां वे अस्वस्थ हो गये, फिर भी मृगसर वदि १ को विहार कर गुरुदेव के साथ लाडनूं आ गये। वहा मुनि श्री छोटूजी (१४८) उनकी सहर्ष सेवा करते। आचार्य श्री भी उनको हमेशा दर्शन देते। कुछ दिन वाद जयाचार्य ने उनको सान्त्वना देकर तथा मुनि छोटूजी को उनकी सेवा मे रखकर विहार कर दिया। फाल्गुन महीने मे फिर आचार्यप्रवर ने आकर उनको एक महीने तक सेवा कराई और फिर मुनि छोटूजी को संभाल देकर विहार कर दिया। वैशाख वदि ३ को अधिक

वेदना देखकर मुनि श्री छोटूजी ने उनको सागारी अनशन करा दिया। एक मुहूर्त्त के कुछ समय पश्चात् चढ़ते भावों से वे स्वर्ग पधार गये।

(जवान मुनि गु० व० ढा० १ गा० ४ से ११ के आधार से)

इस प्रकार मुनि श्री सं० १९१६ वैशाख वदि ३ को दिवंगत हुए।

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १६० मे स्वर्गवास तिथि वैशाख सुदि २ लिखी है किन्तु उपर्युक्त ढ़ाल के प्रमाण से सही नही है।

आर्यादर्शन ढ़ाल ९ सो० ४ मे भी उनके पंडित-मरण का उल्लेख है :—

'पंडित मरण इक जाण रे, ईडवा नो वासी कह्यो।
जाति चोरड्या जाण रे, लघु जवान सुजाणज्यो॥'

जयाचार्य ने मुनि श्री के गुणो की एक ढाल वैशाख शुक्ला ३ को वीदासर मे वनाकर उनकी विशेपताओ का उल्लेख किया।

१२६।३।३९ मुनि श्री हीरालालजी (सूरवाल)

(संयम पर्याय सं० १९००-१९२७)

लय—ऊभी जोऊं वाटडली······

सूरवाल ढूंढाड भूमि पर, था छोटा सा ग्राम।
पोरवाल कुल गोत्र 'ओछला' हीरालाल सुनाम।
थे दयाचंद के लाल।

शासन उपवन में, आये मुनि हीरालाल। शासन···
लाये हैं भाव रसाल। शासन···॥१॥

लम्बा चोडा परिकर जिनका, घर में बहु धन्य-धान्य।
बढी चढी थी ख्याति स्वाति ज्यों नक्षत्रों में मान्य।
फूटे हैं पुण्य प्रवाल ॥२॥

जन्मान्तर के संस्कारों से, खिले विरति के फूल।
हलुकर्मी धर्मी ने पाया, तत्त्व धर्म का मूल।
मुनि जन बन गये दलाल ॥३॥

पत्नी 'जेतां' सहित लिये हैं, पंच महाव्रत धार।
जयपुर में ऋषिराय चरण में, बने सही अणगार।
छोडा परिजन धन माल ॥४॥

दोहा

सित नवमी आसोज की, शतोन्नीस की साल।
भाग्योदय से हो गई, दशों दिशाएं लाल ॥५॥

लय—मूल…

सगे सहोदर चार, उभय चाचा के वेटे भ्रात।
एक भतीजा एक कुटुम्बी-भाई था प्रख्यात।
पाये प्रभु पंथ विशाल ॥६॥

तीन बंधुओं की वहुएं थी, एक वधू भ्रातृव्य।
थी भतीजियां तीन एक तो दौहित्री ज्ञातव्य।
ले संयम हुए निहाल ॥७॥

दोहा

दो बांधव परिवार के, दीक्षित सोलह जीव।
भैक्षव गण में आ गये, है आश्चर्य अतीव[१] ॥८॥

लय—मूल…

यथा नाम गुण तथा श्रमण का, प्रमुख रत्न में स्थान।
हीरा हीरा कहलाया है, लाया चमक महान।
फैली है सुयश गुलाल ॥९॥

संयम यात्रा सकुशल करते, भरते ज्ञान-निधान।
श्लोक हजारों सूत्रादिक के, सीखे देकर ध्यान।
चलती क्रम की घड़ियाल ॥१०॥

सुन्दर अक्षर शुद्ध सफाई, चित्र वनाते भव्य।
लिखी भगवती मूल पाठ की, सोलह प्रतियां नव्य।
कर पाये काम कमाल[२] ॥११॥

अगग्रण्य वन विचरे-निखरे, कर-कर यत्न विशेप।
धर्म भावना भर नर-नर में, लाये भावोन्मेप।
की दृढ़ आस्था दीवाल[३] ॥१२॥

शतोन्नीस इक्कीस साल में, तेजपाल मुनि संग।
पावस करने का जसोल में, आया सहज प्रसंग।
की क्षेत्रों की संभाल[४] ॥१३॥

दीक्षाएं दी तीन हाथ से देखो 'ख्यात' निकाल।
जिनमें 'डाल' एक थे भावी जो सप्तम गणपाल।
की प्रस्तुत बड़ी मिशाल' ॥१४॥

जयपुर में जय चरण शरण में, सहसा आमयग्रस्त।
चंद क्षणों में ऊपर पहुंचे, पाकर मरण प्रशस्त।
सुर शय्या में सुकूमाल ॥१५॥

तेरस सितापाढ की आई, संवत् सत्ताईश।
शुभाराधना की संयम की, वत्सर सत्ताईश।
पाई विजयी वरमाल' ॥१६॥

१. मुनि श्री हीरालालजी सूरवाल (ढूंढाड) के निवासी, जाति से पोरवाल और गोत्र मे 'ओछल्या' (यशलाह) थे। उन्होंने स० १९०० आसोज सुदि ९ को भरे पूरे परिवार को छोड़कर अपनी पत्नी जेताजी (२०१) के साथ जयपुर मे आचार्यश्री रायचंदजी के हाथ से दीक्षा ली। (ख्यात)

ऋषिराय सुजश ढ़ा० ११ गा० ४ में भी इसका उल्लेख है :—

"उगणीसै जयनगर में, सत सत्यां सूं हो स्वामी कियो चौमास।
तिहां स्त्री सहित हीरालालजी, आसोज मांहे हो संजम लियो सुखवास॥"

मुनि श्री हीरालालजी की दीक्षा मुनि शिववगसजी (१२८) के वाद मे हुई परन्तु ख्यात मे पहले नामोल्लेख होने से क्रम सख्या वही रखी है।

अनुमानत मुनि हीरालालजी की वड़ी दीक्षा पहले (७ दिनो से) और शिववगसजी की वडी दीक्षा वाद मे (छह महीनो से) होने से मुनि हीरालालजी और जेतोजी का नाम ख्यात मे पहले और शिववगशजी का वाद मे लिखा गया है।

मुनि हीरालालजी के पिता दयाचदजी और चाचा हेमराजजी थे। उन दोनों के परिवार की सं० १८८९ से १९२७ तक सोलह दीक्षाएं हुईं। उनका उल्लेख ख्यात के अनुसार इस प्रकार है :—

चार सगे भाई

१. मुनि श्री रामसुखजी (१०५) दीक्षा सं० १८८९।
२. ,, हीरालालजी (१२६) १९००।
३. ,, शिवचदजी (१३६) १९००।
४. ,, पन्नालालजी (१६८) १९१०।

दो चाचा के वेटे भाई

५. मुनि श्री चिमनजी (१४७) दीक्षा सं० १९०३।
६. ,, चैनसुखजी (१८७) ,, १९१८।

एक भतीजा

७. मुनि श्री वृद्धिचदजी (१८४) दीक्षा सं० १९१७।

एक कुटुंवी भाई

८. मुनि श्री गणेशीलालजी[1] (२२०) दीक्षा स० १९२७।

---

१. मुनि गणेशीलालजी (२२०) यद्यपि कौटुम्बिक भाई थे। फिर भी उनको ख्यात मे दो भाईयो के परिवार मे गिन लिया गया है।

तीन भाइयों की बहुएं

९. साध्वी श्री जोतांजी (२०१) दीक्षा सं० १९०० । (मुनि हीरालालजी की पत्नी)
१०. „ बगतूजी (२३०) „ १९०३ । („ चिमनजी की पत्नी)
११. „ रामांजी (२२४) „ १९०२ । (अन्य भाई की पत्नी)

एक भतीजे की बहू

१२. साध्वी श्री भूराजी (३३३) दीक्षा सं० १९१७ । (मुनि वृद्धिचंदजी की पत्नी)

तीन भतीजियां

१३. साध्वी श्री वृद्धाजी (२९३) दीक्षा सं० १९११ । (मुनि चैनसुखजी की पुत्री)
१४. „ हरखगसांजी (२९४) „ १९११ । (मुनि चिमनजी की पुत्री)
१५. „ नोहंदांजी (३३४) „ १९१८ । (मुनि चैनसुखजी की पुत्री)

एक दौहित्री

१६. साध्वी पारवतांजी (३३५) दीक्षा सं० १९१८ । (साध्वी नोहदांजी की पुत्री)

उक्त सोलह दीक्षाओं का उल्लेख पंचमाचार्य मघवागणि ने जय सुयश मे इस प्रकार किया है :—

होजी माधवपुर सूरवाल, वासी इक घर तणा हो लाल ।
होजी वे बन्धव परिवार, चारित्र लीधो घणां हो लाल ॥
होजी रामसुख पमुह चिहु बंधु, चिमन चैखसुख सही हो लाल ।
होजी सुत त्रिय पुत्री पमुह, चरण लियो सोलह ही हो लाल ॥
होजी केयक लीधो चरण, ऋषिराय हाथ ही हो लाल ।
होजी केयक श्री जय हाथ, कही चैन प्रसंग ए वात ही हो लाल ॥

(जय सुयश ढ़ा० ४६ गा० १७,१८)

ख्यात मे उपर्युक्त १६ दीक्षाओं मे ११ दीक्षाए तो सूरवाल की और ४

दीक्षाएं—मुनि श्री वृद्धिचंदजी (१८४) एवं साध्वी श्री रामांजी (२२४), नोहदांजी (३३४), पारवतांजी (३३५) की माधोपुर की तथा एक दीक्षा—मुनि श्री चैनसुखजी (१८७) की माधोपुर सूरवाल की लिखी है पर वास्तव में ये सूरवाल के दो भाइयों के परिवार की ही १६ दीक्षाए हैं। माधोपुर मे निवास करने से उपर्युक्त तीन दीक्षाएं माधोपुर व माधोपुर सूरवाल की लिखी है। मघवागणि ने भी उपर्युक्त जयसुयश की गाथा मे 'माधोपुर सूरवाल वासी' का उल्लेख किया है।

माधोपुर के अग्रवाल परिवार की एक दीक्षा साध्वी श्री सरुपांजी (३८) की आचार्य भिक्षु के समय सं० १८४८-१८५२ के बीच हुई। पोरवाल परिवार की एक दीक्षा मुनि श्री टीकमजी (७३) की सं० १८७२ में तथा दो दीक्षाएं साध्वी श्री चदणाजी (७६) केशरजी (८०) की सं० १८७० मे भारीमालजी स्वामी के समय मे हुई।

माधोपुर के अग्रवाल परिवार की एक दीक्षा मुनि श्री शिववगसजी (१२८) की आचार्य श्री रायचंदजी के समय में हुई।

आचार्य श्री रायचंदजी तथा जयाचार्य के शासनकाल मे सूरवाल, माधोपुर व आसपास के गावों की कुल २२ दीक्षाए हुई।

इस प्रकार भिक्षु शासन मे सं० १९३५ तक उस परगने की कुल २७ दीक्षाएं हुई तथा एक दीक्षा माणकगण के समय साध्वी श्री वरजूजी (५८७) की सं० १९५२ मे हुई। उन सबकी तालिका आगे दिये गए यत्र के द्वारा जाननी चाहिए।

ख्यात मे मुनि श्री के लिए लिखा है—वे बड़े धैर्यवान और हाथ के चतुर थे। उन्होंने हजारो श्लोक कंठस्थित किये एवं हजारों गाथाए लिखी। उनकी लिपि सुंदर और शुद्ध थी। (सेठिया-संग्रह मे लिखा है कि उन्होंने भगवती सूत्र मूलपाठ की सोलह प्रतिया लिखी। पट्टादिक (जम्बूद्वीप आदि के) यन्त्रादिक बहुत बनाते।

आचार्य श्री तुलसी के शब्दों मे मुनि श्री की विशेषता :—

जयाचार्य रो शिष्य जागतो, हीरालाल हठीलो।
जी! शानदार शासण भूषण, चांदे ज्यू चमकीलो॥
सरवाल रो साचो साहू, पत्नी साथ पतीज्यो।
जी! संवत् उगणीसं ऊंचे मन, संजम में रंगीज्यो॥
लेखन कला निपुण लाखीणो, वर हुन्नर हुसियारी।
जी! सूत्र धारणा बड़ी सजोरी, अति ऊचो आचारी॥

(डालिम चरित्र ढा० २ गा० ६ से ८)

३. मुनि श्री बहुत वर्षो तक अग्रणी रूप में विचरे एव धर्म का अच्छा प्रचार-प्रसार किया। उनके अग्रगण्य होने का सवत् प्राप्त नही है। उनके कुछ चातुर्मास इस प्रकार मिलते है :—

स० १९१२ में ३ ठाणो से इदौर चातुर्मास था।

(प्राचीन चातुर्मासिक तालिका)

स० १९१३ मे जोधपुर „ ।
सं० १९२३ मे इदौर „ ।

(जीव मुनि कृत० चातुर्मासिक ढा० १ गा० ६)

वहां डालगणी को दीक्षा दी।

सं० १९२४ मे ४ ठाणो से जयपुर चातुर्मास था। वहां डालगणी मुनि श्री के साथ थे।

(कालूगणी कृत—डालगणी गु० व० ढा० १ गा० ५,६)

सं० १९२७ में ४ ठाणों से माधोपुर चातुर्मास था। वहा मुनि गणेशीलालजी (२२०) को दीक्षित किया। (मुनि गणेश० ख्यात)

४. स० १९२१ में वे मुनि श्री तेजपालजी (१२९) के साथ जसोल चातुर्मास मे थे (लघुरास)। गण से वहिर्भूत चतुर्भुजजी (१३७) आदि का चातुर्मास उस वर्ष वहां था अत: जयाचार्य ने सिंघाडबध होते हुए भी मुनिश्री को विशेष लक्ष्य से वहा भेजा हो, ऐसी सभावना है।

५. मुनि श्री द्वारा तीन दीक्षाएं हुई :—

१. मुनि श्री रामलालजी (१९३) ने स० १९२० जोधपुर मे दीक्षा ली।

मुनि श्री रामलालजी की ख्यात मे लिखा है कि वे पहले हुकमचंदजी के टोले मे दीक्षित हुए थे। फिर जोधपुर मे मुनि श्री हीरालालजी के पास सूत्रों के पाठ देखे एवं दया, दान आदि तत्त्वों को समझने से तेरापथ की श्रद्धा हृदय मे बैठ गई और मुनि श्री हीरालालजी से दीक्षा ग्रहण कर ली।

२. मुनि श्री डालचंदजी (२०४) 'डालगणी' ने संवत् १९२३ भादवा वदि १२ को इंदौर मे दीक्षा ली।

३. मुनि श्री गणेशीलाल (२२०) ने सं० १९१७ भादवा सुदि १३ को माधोपुर मे दीक्षा ली। (उक्त साधुओ की ख्यात)

मुनि गणेशीलालजी के सबध मे 'जय छोग सुजश-विलास' में इस प्रकार उल्लेख है कि सं० १९२७ वैशाख वदि १५ को जयाचार्य जयपुर पधारे और सरदारमलजी लूनियां के बाग मे विराजे। वहां मुनि श्री हीरालालजी ने ७ ठाणों से जयाचार्य के दर्शन किये और नव दीक्षित मुनि गणेशीलालजी को भेंट किया :—

सिरदारमल रै बाग विराज्या, वैशाख अमावसी आई रे।
देशन सुण नै दुनियां हरखी, तिहां इक आई वधाई रे॥
हीरालालजी हीमत धारी, भारी भेटणो ल्यायो रे।
गणेशजी बालक बुधवंतो, प्रणम्या पूज ना पायो रे॥
हीरालालजी आदिज हुंता, संत सात तिहां देखो रे।
अष्टादस गणि संगे आया, पचीस संत थया पेखो रे॥
(जयछोग सुयश विलास ढा० १ गा० २९ से ३१)

६. मुनि श्री स० १९२७ आषाढ़ सुदि १३ को जयपुर मे जयाचार्य के पास दिवंगत हुए.—

जयपुर शहर पधारिया, चउमास करण सुविख्यातो जी।
हीरालाल मुनिवर तणे, कारण अचिन्त्यो आयो जी कांई॥
असाढ़ सित तेरस चल्या, दियो साहज सखर गणिरायो रे।
(जय सुयश ढा० ५४ गा० ४,५)

ख्यात मे उनकी स्वर्गवास तिथि आषाढ सुदि १४ लिखी है।

शासन प्रभाकर मे संथारे मे स्वर्गवास हुआ लिखा है पर ख्यातादि मे उल्लेख नहीं है।

जय छोग सुजश विलास ढ़ा० ५ दो० ३ से ८ मे मुनिश्री के स्वर्गगमन एवं शोभा यात्रा का वर्णन इस प्रकार मिलता है :—

'हीरालालजी स्वाम नें, उपनों कारण अपार।
सटको साभी चल गया, अहो २ धिग् संसार॥

मांडी विणाइ श्रावकां, झिगमग २ जोत।
देव विमाणसी दीसती, करतो अति उद्योत ॥
कोतल चाले कूदता, वाजंत्र झिणकार॥
गयवर आगे घूमतो, चाल्या लेइ तिवार ॥
फूल रूपा सोना तणा, उछाल्या अति पेख।
जन व्रंद वेस जलूस नूं, दाग मर्भ गया देख ॥
ए ओछव सहु संसार ना, तिण में नहीं अंस धर्म।
वीती वात वखाणतां, लागे नहीं पाप कर्म ॥
असाढ सुदि तेरस दिने, पंडित मरणज पाय।
जवर साहज जय गणि दियो, थट छठो इहां थाय ॥

१२७।३।४० मुनि श्री जेतोजी (बीलावास)

(सयम पर्याय १९००-१९०३)

गीतक-छन्द

मरुधरा पर जन्म पाया ग्राम बीलावास में।
लूनियां था गोत्र दीक्षित गुलहजारी पास में[1]।
साधना वर्ष-त्रयी की रमे तप-आचरण में[2]।
स्वर्ग जयपुर में गये ऋषिराय गुरुकी शरण में[3]॥१॥

१. मुनि जेतोजी बीलावास (मारवाड़) के वासी और गोत्र मे लूनियां (ओसवाल) थे। उन्होंने सं० १९०० कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को मुनि श्री गुलहजारीजी (१०३) के हाथ से रतलाम में दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

मुनि जेतोजी की दीक्षा मुनि शिववगसजी (१२८) के बाद में हुई पर ख्यात मे उनका नाम पहले होने से क्रम संख्या वही रखी है।

अनुमानतः मुनि जेतोजी की बडी दीक्षा पहले (सात दिनो से) और शिववगसजी की बाद में (छह महीनो से) होने से मुनि जेतोजी का नाम ख्यात मे पहले और शिववगसजी का बाद मे लिखा गया है।

२. मुनिश्री ने ३६ तथा ४० दिन का तप किया—ऐसा सतगुणमाला ढा० ४ गा० ५० मे उल्लेख है। अन्य तप का वर्णन नही मिलता।

३. मुनिश्री का स्वर्गवास स० १९०३ जयपुर मे आचार्यश्री रायचंदजी के सान्निध्य मे हुआ :—

> मालव देशे जेतो ऋष चरण धार कै,
> छतीस चालीस दिन तप कियो जी।
> उगणीसै तीये जयपुर सैहर मझार कै,
> ऋषिराय पास कार्य सारिया जी॥

(संतगुणमाला ढा० ४ गा०५०)

उनके स्वर्गवास के महीने का उल्लेख नही मिलता परन्तु सं० १९०३ मे आचार्य श्री रायचदजी का चातुर्मास जयपुर मे था तथा तत्पश्चात् भी अस्वस्थता के कारण वे चैत्र महीने तक वहां विराजे थे। अत. सावन से चैत्र महीने की मध्यावधि मे मुनि जेतोजी दिवंगत हुए ऐसा प्रतीत होता है।

१२८।३।४१ मुनि श्री शिववक्सजी (माधोपुर)

(संयम पर्याय सं० १८९९-१९४७)

लय—हवा में उड़ती जाए...

संयम का लिया सहारा, जीवन को खूब संवारा है।
वाह्याभ्यंतर तप द्वारा, जीवन को खूब निखारा है ॥ध्रुव॥

हे जन्म धाम ढूढाड धरा पर, माधोपुर सुखकारी।
हे था शिववक्स सुनाम जाति से, अग्रवाल परिवारी ॥१॥

सत्सगति से भर यौवन में, खुली विरति रस क्यारी।
स्त्री को तज ऋषिराय हाथ से, बने महाव्रत धारी[1] ॥२॥

विनयादिक गुण विविध बढ़ाये, ज्ञान ध्यान में रमकर।
लगे स्व पर कल्याण कार्य में, तन मन से उद्यम कर ॥३॥

बने तपस्वी उच्च उच्चतम, खोली तप की नाली।
दमी इन्द्रियां मन को जीता, कर ली वश में लाली ॥४॥

चार विगय आजीवन छोड़ी, वस्तु सेलडी सारी।
दिवाली पर तेला करना, नियम लिया यह भारी ॥५॥

वेले चार मास में करना, नियम लिया आजीवन।
एकान्तर तप चालू फिर तो वेले-वेले पावन ॥६॥

जितना मिलता उतना तप का विवरण सारा गाता।
तपोधनी की तेज रश्मियां, जन-जन सम्मुख लाता[2] ॥७॥

शीतकाल में शीत सहा वह, एक पटी में रहकर।
लिये निर्जरा के कर्मों की, लगे निरन्तर मुनिवर[3] ॥८॥

केवल सूती वस्त्र पहनते, वह भी नया न प्रायिक।
ऊनोदरी विछोनादिक की, करते थे अधिकाधिक[४] ॥९॥

छयालीस की साल आखिरी, रोपा स्थायी स्तंभा।
होने से बीमारी तन में, किया थोकड़ा लम्बा ॥१०॥

सैंतालीस साल की कृष्णा तीज भाद्रवी आई।
किया पारणा चोले का फिर, भाव-वृद्धि हो पाई ॥११॥

थोड़ा भोजन कर वेले का झट संकल्प किया है।
प्रवर पंचमी तिथि को मुनि ने परिचय बड़ा दिया है ॥१२॥

मुनियों ने पृच्छा कर अनशन करवाया सागारी।
फिर मध्यंदिन में करवाया, संथारा तिविहारी ॥१३॥

तृषा लगी भीषणतम तो भी, नहीं पिया है पानी।
पहर सवा छह रहे जूझते, पौरुष धर सेनानी ॥१४॥

अड़तालिस वर्ष तक साधक, पद पर शोभा पाये।
आराधक बन गड़ सुजान से, सुरपुर में पहुंचाये[५] ॥१५॥

१. मुनिश्री शिववक्सजी माधोपुर (ढूढाड) के निवासी और जाति से अग्रवाल थे। उन्होने भर यौवन मे पत्नी को छोडकर स० १८९९ आषाढ कृष्णा ३ को आचार्यश्री रायचदजी द्वारा वडे वैराग्य से किसनगढ मे दीक्षा स्वीकार की। पारिवारिक जन ने बडे उत्साह से उनका दीक्षा-महोत्सव मनाया[1]।

ख्यात मे प्राय ऐसा ही उल्लेख है किन्तु शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० १६९ तथा संत विवरणिका मे उनका दीक्षा सवत् १९०० लिखा है वह संभवत विक्रम् संवत् (चैत्रादिक्रम) की अपेक्षा से है।

मुनि हीरालालजी (१२६) तथा जेतोजी की दीक्षा मुनि शिववगसजी के वाद मे हुई थी परन्तु ख्यात मे उन दोनो का नाम पहले और इनका नाम वाद में होने से क्रम संख्या वही रखी गई है।

अनुमानत मुनि हीरालालजी और जेतोजी की वडी दीक्षा पहले (सात दिनो से) और शिववगसजी की वाद मे (छह महीनो से) होने से मुनि हीरालालजी और जेतोजी का नाम ख्यात मे पहले और शिववगसजी का वाद मे लिखा गया है।

२. मुनिश्री वडे त्यागी, विरागी और घोर तपस्वी हुए। उन्होने हृदय-सरलता, शात प्रकृति तथा विनयादिक विविध गुणो से चतुर्विध सघ मे अच्छी शोभा प्राप्त की[2]। साधना रूपी अग्नि मे प्रवेश कर अपने जीवन को सोने की तरह चमकाया। उनके वलिदानी जीवन की सक्षिप्त झाकी इस प्रकार है।

उन्होने स० १९०४ के शेपकाल में जीवन पर्यन्त चार विगय (दूध, दही, तैल, मिष्ठान) का त्याग कर दिया।

स० १९२९ मे औपध के अतिरिक्त आजीवन सेलडी की वस्तु (जिसमे गुड़, शक्कर, चीनी मिली हुई हो) का परित्याग कर दिया :—

उगणीसै चौके शेषेकाल थी, च्यार विगय मुनि तज दीधी।
दूध दही मिष्टान्न तेल ए, जावजीव त्यागन कीधी।

---

१. शिववगस तपसी सखर, अगरवाला जात।
वासी माधोपुर तणा, जोवन वय सुविख्यात॥
सवत् अठारै निनाणुवे, ऋपिराय महाराज।
तास हाथ लीधो चरण, करवा सिद्ध निज काज।
आपाढ विद वर तीज दिन, सैहर हरिगढ माह।
वहु मोछव लीधो चरण, आणी मन ओछाह॥
(मघवागणी कृत-शिववक्स गु० व० ढा० १ दो० १ से ३)

२. सरल भद्र सुवनीत मुनि हद, भद्र प्रकृति अति ही भारी।
क्रोध मानादि छा तसु पतला, गावै गुण वहु नर-नारी॥
(गु० व० ढा० १ गा० २४)

धिन-धिन तपसी शिववगसजी, जबरी तपस्या ज्यां कीधी।
विनयादि गुण विविध आराधी, जग में सोभा बहु लीधी ॥ ध्रुव ॥
उगणीसै गुणतीस वर्ष थी, जावजीव लग सुविचारी।
सेलड़ी नी वस्तु सहु त्यागी, ओषधि विण मुनि कीधी भारी ॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० १, ४)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १७० में उल्लेख है कि उन्होंने उक्त चार विगय तथा सेलड़ी की वस्तु का परित्याग सं० १६०४ में कर दिया था।

स० १६०८ मे उन्होने आजीवन दीपावली के समय तेला करने का नियम लिया:—

फुन आठै वर्ष थी दिवाली नां, लिया थेट सीम अठम धारी।

(गु० व० ढ़ा० १ गा० ३)

स० १६१८ के आषाढ़ महीने से प्रत्येक महीने मे चार वेले करने का संकल्प किया :—

सवत् उगणीसै अठारे रा, अषाढ़ मास मे सुविचारी।
जावजीव इकमासे छठ चिहुं, करणां धारचा गुणकारी ॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० १)

ख्यात में १६२० से उक्त नियम करने का उल्लेख है।

सं० १६४२ वैशाख सुदी ३ को सुजानगढ़ मे एकान्तर तप प्रारंभ किया :—

वर्ष बयांले सुजानगढ़ में, तीज बैशाख नी तंतसारी।
तिण दिन थी एकंतर तप मुनि, करणो धारचो गुणकारी ॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० १२)

ख्यात मे १६४१ के जेठ (प्रथम) महीने से एकान्तर चालू करने का लिखा है।

उनका एकान्तर तप स० १६४४ के कार्त्तिक वदि १५ तक चला जिसमें प्रतिमास चार वेले तो होते ही थे फिर कार्त्तिक शुक्ला १ से निरन्तर वेले-वेले तप शुरू किया :—

चम्मालीसे काती विद लग, तप कीधो मुनि धर हुंशियारी।
वर्ष अढाई तणै आसरै, तिण में मास मास छठ चिहुं भारी।
हिवै सुद पक्ष थी छठ छठ निरंतर, तप करणो मांड्यो जशधारी ॥

(गु० व० ढा० १ गा० १३,१४)

मुनिश्री द्वारा की गई उत्कट तपस्या की तालिका गुण वर्णन ढ़ाल के अनुसार

इस प्रकार है :—

उपवास	वेले	३	४	६	८	९
अनेक बार	१६२१	४६	९ (८+१)	१	७	३

१०	१३	१४	१५	१६	१७	१८	२१	२६	३१
१	१	२	३	४	२	२	२	१	१

।

ढाल मे तेलो की सख्या नही है, ख्यात के आधार से दी गई है।

ख्यात के अनुसार तप की तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	वेले	तेले	४	६	८	९	१०	१३
अनेक बार	१६२१	४६	९	१	५	२	१	२

१४	१५	१६	१७	१८	२१	२६	३१
१	२	४	२	१	१	१	१

।

ख्यात तथा शासनप्रभाकर मे अठाई आदि वड़े थोकड़ो की सख्या सवत् १९४३ तक की है जिससे ढाल के उल्लेखानुसार ख्यात मे कुछ थोकड़ो की सख्या कम है।

उक्त तप मे ३१ दिन (जिसमे ८ दिन चौविहार) तथा २१ दिन स० १९३३, ३४ के लाडनू चातुर्मास मे जयाचार्य के सान्निध्य मे किये।

३१ दिन की तपस्या :—

मासखमण इकतीसो मनोहरु, कियो शिववगस उदक आगारो रे।

(जय सुजश ढा० ५७ गा० ८)

वरस तेतीसे इकतीसो वर, मासखमण कियो श्रीकारी।
तिण में आठ दिवस चौविहार लगोलग, तेवीस दिन तप तिविहारी॥

(गु० व० ढा० १ गा० ९)

२१ दिन की तपस्या —

शिववगस तपस्वी तप सखरो, इकवीस उदक आगारो रे।

(जय सुजश ढा० ५८ गा० ३)

३. मुनिश्री ने दीक्षित होने के पश्चात् जीवन पर्यन्त शीतकाल मे एक पछेवडी मे रहकर शीत सहन किया :— (ख्यात)

एक पछेवड़ी उपरंत न ओढ़ी, शीतकाल में श्रीकारी।

(गु० व० ढा० १ गा० १०)

४. मुनिश्री प्राय: अन्य मुनियों के काम मे लिया हुआ पुराना तथा सूती वस्त्र पहनते ओढ़ते थे। (ख्यात)

घणां वर्ष पिण सूती तंतू, उपरत कियो मुनि परिहारी।
ते पिण पर नो ओढ्यो मेलो, धार्यो निरजरा दिलधारी।
कर्म काटण री दृष्टि घणी तसू, मन सुमता ग्रही मुनि भारी॥
(ढ़ा० १ गा० १०, ११)

५. मुनि श्री ने स० १६४८ कार्त्तिक शुक्ला १ को वेले-बेले तप प्रारंभ किया था। उसका क्रम सं० १६४६ पोप सुदि ६ तक निरतर चलता रहा[1]। बीच मे दो चोले और ६ तेले भी किये। फिर शरीर मे अस्वस्थता होने पर भी लम्बा तप चालू किया। पोप सुदि ६ से माघ सुदि ४ तक २६ दिन का तप किया। उसमे अल्प मात्र पानी पिया। माघ सुदि ५ को पारणा करके सुदि ६, ७ को वेला किया। सुदि ८ से छह दिन लगातार भोजन किया। फिर माघ सुदि १४ से शेप तक प्राय: चौविहार वेले-बेले तप चला। (ख्यात)

पछै छयांलीसे कारण तनु उपना, करी तपस्या अति भारी।
माघ मास वर दिवस छवीस नू, कियो थोकड़ो अति तीखो।
तिण में अल्प उदक लीधो अरु कीधो, पारणो सुद पंचमी नीको॥
पारणो कर छठ अठम (अष्टमी) सू मुनि,
कियो षट् दिन लग लगतो आहारी।
पछै माह सुद चवदस थी तप, करणो धार्यो श्रीकारी॥
(गु० व० ढा० १ गा० १४ से १६)

मुनिश्री ने कठोर तप के द्वारा शरीर सुखाकर अस्थिपजर की तरह कर लिया। स० १६४७ भाद्रव कृष्णा ३ को उन्होने चोले की तपस्या का पारणा किया। उस दिन थोडा आहार लेकर वेला करने का सकल्प कर लिया। भाद्रव कृष्णा ५ को वेले के दिन सवा प्रहर दिन चढने के वाद शारीरिक स्थिति कमजोर देखकर साधुओ ने उन्हे पूछकर सागारी अनशन कराया। मध्याह्न के तीसरे प्रहर मे पुन. उन्हे पूछकर आजीवन अनशन (जल मागने पर तिविहार और न मांगने पर चौविहार) करवा दिया, फिर प्यास लगने पर भी उन्होने पानी नही मांगा। लगभग सवा छह प्रहर से अनशन सानद संपन्न हुआ। कुल ८ प्रहर का अनशन

---

१. गुण वर्णन ढाल १ गा० १७ मे लिखा है कि उन्होने प्राय· वेले चौविहार किये ·—

वहुपणै पिण छठ-छठ तप, कियो मुनीसर चौविहारी।

आया। मुनि श्री अन्त तक पूर्ण सावचेत थे। मुनियो द्वारा चार शरण आदि मंगल पद्य सुनते रहे।

इस प्रकार ४८ वर्ष दो महीने संयम पर्याय का पालन कर वे सं० १९४६ भाद्रव कृष्णा ६ को सुजानगढ मे दिवंगत हुए। गृहस्थो ने २१ खंडी मंडी बनाकर उनकी शोभायात्रा निकाली एवं उनके चरमोत्सव पर सैकड़ो रुपये खर्च किये।

(ख्यात गु० व० ढ़ा० १ गा० १९ से २३, २५, २६ के आधार से)

मुनिश्री ने उक्त सलेखना तप और अनशन सुजानगढ मे किया था :—

धिन धिन तपसी शिववगसजी, सुजानगढ़ में सुविचारी।
संलेखणा तप अणसण प्रमुख, करी आराधना हद भारी॥

(गु० व० ढा० १ गा० १२)

मुनि चिमनजी (१४७) 'सूरवाल' तथा अमरचंदजी (२८२) आदि मुनियों ने तपस्वी मुनि की अनेक वर्षों तक परिचर्या कर उन्हे विविध प्रकार से सुख-समाधि पहुचाई[1]।

पचमाचार्य मघवागणी ने सं० १९४७ मृगसर सुदि मे सुजानगढ़ मे मुनि श्री के गुणो की एक ढाल बनाकर उनके तप: प्रधान संयमी जीवन का विश्लेषण किया है।

शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १६९ से १८६ मे प्राय: ख्यात की तरह ही वर्णन है।

---

१. चिमन अमरचद आदि मुनि हद, सेव बहु वर्ष कीधी॥
काम वियावच्च भक्त करी नैं, विविध परैं साता दीधी॥

(गु० व० ढ़ा० १ गा० २५)

१२६।१४२ मुनि श्री तेजपालजी (लाडनूं)

(संयम पर्याय सं० १६००-१६३५)

लय—कसुंबो······

जन्मभूमि चंदेरी नगरी सीमा में मरुधर की रे। सुरंगी।
ओसवाल गोलेछा वंशज, थी अच्छी स्थिति घर की रे।
तेजस्वी मुनि तेजपाल की गरिमा गण में फैली रे॥१॥

वाल्यावस्था में वैरागी जन्मान्तर संस्कारी रे।
मुनि सतियों का योग भाग्य से मिल पाया सहकारी रे॥२॥

युवाचार्य श्री जीत मुनीश्वर, शहर लाडनू आये रे।
जय वाणी सुन तेजपाल अति, विरति भावना लाये रे॥३॥

प्रखर बुद्धि थी गृह वय में भी, वहुत थोकड़े सीखे रे।
याद हजारों गाथाएं की, चढ़ उद्यम के छीके रे॥४॥

भाव प्रवल दीक्षा लेने के, रस संवेग वहाया रे।
अनुमति मांगी तव परिजन में, सन्नाटा सा छाया रे॥५॥

दिये कष्ट अभिभावक जन ने, वंद कुटी में करके रे।
भृकुटि चढ़ाई आंख दिखाई, रोश जोश में भर के रे॥७॥

पर न भावना-वेग रुका है, उनकी कडी नजर से रे।
वंद कोठडी में भी लुंचन, किया तेज ने कर से रे॥७॥

उनकी समता वल विक्रमता, देख सभी चकराये रे।
मां वापों को युक्ति सूक्ति से, जय गुरु ने समझाये रे॥८॥

लय—खमा खमा खमा रे……

देवो ३ रे गोद तुम हमको, नंदन यह वैरागी जी हो।
लेवो ३ रे लाभ अवसर का, कुछ चिंतन करो दिमागी जी हो ।।ध्रुव।।

दुनियां में देखो वेटे होते वहुएक के, है एक न आत्मज वाला जो।
देते लेते गोद मोद धर के परस्पर, हो एक वंश की शाला जी ।।९।।

आपका हमारा गोत्र एक है गोलेछा, जिससे हमको सुविचारी जी।
पांच में से एक पुत्र गोद दिया समझो, यह मानो वात हमारी जी ।।१०।।

हृदय को छूने वाली वाणी सुन जय की, उन सवका मन वदलाया जी।
आज्ञा सहर्ष दी है जननी जनक ने, उत्सव का रंग लगाया जी ।।११।।

लय—कसुंबो……

शत उन्नीस ह्यन की आई, मृगसर कृष्णा एकम रे।
युवाचार्य जय कर से पाई, संयम-निधि सर्वोत्तम रे[1] ।।१२।।

सतत साधना पथ पर चलते, सावधान हो मुनिवर रे।
जय चरणों में रहकर करते, शिक्षाभ्यास निरन्तर रे ।।१३।।

हेतु, कथा, व्याख्यानादिक की, सीखी कला सतोली रे।
निपुण वने चर्चा वार्त्ता में, थी मनमोहक वोली रे ।।१४।।

किये पांच कंठाग्र जिनागम, पढ़ी प्राय वत्तीशी रे।
सूक्ष्म २ कर विविध धारणा, भरी ज्ञान रस शीशी रे ।।१५।।

निज दर्शन सह परदर्शन का भी, वोध किया है वहुतर रे।
दया दान आदिक समझाने, की शैली सुन्दरतर रे ।।१६।।

वार-वार सुनने से संस्कृत-प्राकृत-भाषा गुम्फित रे।
वहु ग्रथो की हुई धारणा, वर विचारणा विकसित रे[3] ।।१७।।

वहु वर्षो तक जयाचार्य की, की सेवा सुखकारी रे।
परम प्रीति गणपति से रखते, गण के प्रति इकतारी रे ।।१८।।

विनयी, गुणी, विवेकी साधक, अटल लक्ष्य मे निष्ठा रे।
विधि विधान मर्यादा में चल, पाई वड़ी प्रतिष्ठा रे ।।१९।।

मोती दीर्घ श्रमण सह कितने, चतुर्मास कर पाये रे।
वने अग्रणी अष्टादश में, शहर जोधपुर आये रे ॥२०॥

विचर-विचर उपकार किया वहु, समझाये नर-नारी रे।
गण-प्रभावना वढ़ा चढ़ाकर, नाम कमाया भारी रे[3] ॥२१॥

अन्तरंग वहु कार्य संघ के, किये सुगुरु-आज्ञा से रे।
उलझी हुई गुत्थियां कितनी, सुलझाई प्रतिभा से रे[4] ॥२२॥

ज्ञान-ध्यान स्वाध्याय साथ में, तप में चरण वढ़ाये रे।
व्रत वेले वहु वार ऊर्ध्वतः, अष्टाह्निक कर पाये रे[5] ॥२३॥

दोहा

पुर पाली में कर दिया, अन्तिम वर्षावास।
वीते हैं सकुशल वहां, सावन भाद्रव मास ॥२४॥

आश्विन में अस्वस्थता, तन में चढ़ा वुखार।
शोथ-वृद्धि कार्त्तिक्य में, सहचर श्वास विकार ॥२५॥

धृति से सहते वेदना, वनकर सुभट सधीर।
विमल भावना भा रहे, कर दिल स्वच्छ समीर ॥२६॥

कार्त्तिक विद एकादशी, रजनी पश्चिम याम।
अनशन एक मुहूर्त का, कर पहुंचे सुरधाम ॥२७॥

मंडी इकसठ खंड की, मानो देव-विमान।
मृत्यु-महोत्सव का रचा, जन ने वहु मंडाण ॥२८॥

लय—कसुंवो........

संयम की पैंतीस साल तक, कर भरसक रखवाली रे।
पाली में रस प्याली भर ली, फूली सुर तरु डाली रे[6] ॥२९॥

दोहा

गुण वर्णन की गीति में, है सामग्री खास।
ख्यात आदि में मिल रहा, कितना ही इतिहास[7] ॥३०॥

१. मुनिश्री तेजपालजी लाडनू (मारवाड़) के निवासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से गोलेछा थे। उनके पिता का नाम शाह डूंगरसीजी था। डूगरसीजी के पांच पुत्रो मे एक तेजपालजी थे। उनके जन्मान्तर संस्कारों एवं साधु-साध्वियो के सम्पर्क से बाल्यकाल मे धर्म के प्रति अच्छी अभिरुचि हो गई और हृदय मे वैराग्याकुर प्रस्फुटित होने लगे। एक बार युवाचार्य श्री जीतमलजी का लाडनू मे पदार्पण हुआ उनके व्याख्यान-श्रवण से तेजपालजी परम सवेग को प्राप्त कर साधु-व्रत ग्रहण करने के लिए तैयार हो गए। ज्ञान-ध्यान में तन्मय होकर अनेक थोकड़े तथा गीतिकाए आदि हजारो पद्य कठस्थ कर लिए। घर वालों के सम्मुख उन्होंने अपनी भावना रखी तो उनके पिता दीक्षा-स्वीकृति के लिए इन्कार हो गए[1]।

अभिभावक जन उन्हे विचलित करने के लिए विविध कष्ट देने लगे। एक दिन घर वालो ने आवेश में आकर उन्हें एक कोठरी मे बद कर ताला लगा दिया। लेकिन उनके दिल मे सच्चा वैराग्य था और साधु-जीवन से लौ लगी हुई थी अतः कोठरी मे बैठे-बैठे ही उन्होने अपने सिर का केश-लुचन कर लिया। बाद में परिवार वालो ने देखा तो सभी आश्चर्य-चकित हुए। तेजपालजी ने अपनी विचार-धारा स्पष्ट शब्दो मे अभिव्यक्त कर दी।

(श्रुतानुश्रुत)

युवाचार्य श्री जीतमलजी को जब इस घटना का पता चला तब उन्होने समय देखकर तेजपालजी के पिता डूगरसीजी को विविध प्रकार से समझाते हुए कहा—'देखो तुम्हारा और हमारा एक ही गोत्र (गोलेछा) है, अतः तुम अपने पाच पुत्रो में से एक पुत्र को हमे गोद दिया ही समझकर इसे दीक्षा की आज्ञा दे दो।'

---

१. शहर लाडनू मे वसै, जाति गुलेछा जान।
शाह डूंगरसी शोभता, सुतन पच सुविधान॥
बालक वय वैराग्य अति, समण तणी बहु सेव।
तेजपाल अति उद्यमी, धर्म करण स्वयमेव॥
तिण अवसर ऋषिराय शिष्य, जबर जीत युगराज।
शहर लाडनू समवसरया, पूज्य भवोदधि पाज॥
जय वचनामृत हिय धरि, तेजपाल तिहवार।
परम सवेग लेई हुवा, संयम लेण सुत्यार॥
ग्रन्थ हजारां सीखिया, गृहस्थ पणै रै मांय।
चरण लेण चित्त चूप अति, पिण पिता आण दे नांय॥
(तेज मुनि गु० व० ढा० १ दो० १ से ५)

इस प्रकार युक्ति पूर्वक वचनों को सुनकर पिताजी ने सहर्ष अनुमति दे दी :—

युगराजा जे जनक नैं, समझाया बहु भांत।
गोत गोलेछा बेहुं तणो, तुझ मुझ एक ही बात॥
समझाया इम युक्ति सूं, पुत्र पांच तुझ जोय ।
(जाणी) एक पुत्र मुझ नें दियो, खोले ही अवलोय॥

(तेज गु० व० ढा० १ दो० ६, ७)

तत्पश्चात् तेजपालजी ने धन-सपत्ति, माता-पिता, ४ भाई तथा बहिन को छोड़कर अविवाहित वय मे स० १९०० मृगसर वदि १ को लाडनू मे युवाचार्य श्री के हाथ से दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात)

२. मुनि श्री दीक्षित होने के पश्चात् युवाचार्य श्री के सान्निध्य मे रह कर साधु-क्रिया मे कुशल बने और ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होने पांच सूत्र – आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नंदी और बृहत्कल्प कंठस्थ किये। आगम-बत्तीसी का अनेक बार वाचन किया[2]। युवाचार्य के द्वारा सूत्रो की गहन-गहन धारणा की। हेतु, दृष्टान्त, कथा एवं व्याख्यान कला में अच्छी प्रगति की। संस्कृत एव प्राकृत-प्रधान प्रकरण पईन्ना आदि अनेक ग्रथो को बार-बार सुनने से उनको तद्विपयक अच्छी जानकारी हो गई और साथ-साथ संस्कृत, प्राकृत भापा का भी कुछ-कुछ ज्ञान बोध हो गया[3]।

---

१. सूरिजन रे! तेजपाल अति दीपतो रे, सवत् उगणीसै जाण हो लाल।
मिगसर वदि एकम दिने रे, चरण लियो शुभ ध्यान हो लाल॥
मात पिता नै परिहरया रे, तजि चिहु बधव आथ हो लाल।
चरण लियो चित्त चूप सू रे, जुगराजा जय हाथ हो लाल॥

(तेज० गु० व० ढा १ गा० १, २)

२. सूत्र पांच मुख सीखिया रे, आवसग्ग अवलोय हो।
दशवैकालिक, उत्तराध्ययन ही रे, वलि नदी बृहत्कल्प जोय हो॥
सूत्र बत्तीसू बहु वार ही रे, वांच्या ऋषि तेजपाल हो।
सज्झाय करण अति घणो रे, उद्यमी मुनि गुणमाल हो॥

(गु० व० ढा० १ गा० ७, १२)

३. जय पासे सीख्या भण्या, समय सार सुविचार।
सूत्र तणी बहु धारणा, करता अधिक उदार॥

मुनि श्री तात्त्विक-चर्चा मे बड़े चतुर थे। प्रश्नो का जवाव देने की उनमें ऐसी युक्ति थी कि जिससे स्व-परमती लोग वहुत प्रभावित होते[1]।

ख्यात में लिखा है कि मुनि श्री को अन्य मतावलम्वियो की मान्यता संवंधी जानकारी तथा दयादान, सावद्य-निरवद्य आदि तत्त्वो को समझाने की अच्छी कला थी। यति सवेगी ढूढिया (स्थानकवासी) तथा अन्य-तीर्थियो मे उनकी महिमा वहुत थी।

३. स० १६०८ के माघ शुक्ला १५ को जयाचार्य के पदासीन होने के वाद भी अनेक वर्षो तक मुनि तेजपालजी ने उनकी सेवा का परम लाभ लिया। वे विनयी, विवेकी, नीतिज्ञ, गण और गणपति के प्रति पूर्ण एकीभाव रखते थे। सघीय मर्यादाओ का सम्यग् प्रकार से पालन करते थे[2]।

कई चातुर्मास उन्होने आचार्यप्रवर के आदेशानुसार मुनि श्री मोतीजी (७७) के साथ किये। स० १६१८ मे जयाचार्य ने उनका सिंघाड़ा वनाया और सं० १६१६ का प्रथम चातुर्मास जोधपुर मे फरमाया[3]।

जुगराजा पासे सही, हेतु दृष्टत अवलोय।
कथा वखाणादि नी कला, सीख्या सखर सुजोय॥
वार-वार सुणता थकां, सस्कृत प्राकृत जोय।
प्रकरण पईन्ना वहु ग्रन्थ नी, वहुत धारणा होय॥
(गु० व० ढा० १ गा० ३, ४, ८)

१. चरचा करण अति चातुरी, वचन कला अधिकाय।
अन्यमति स्वमति साभली, हृदय-कमल हुलसाय॥
(गु० व० ढा० १ गा० १३)

२. उगणीसै आठे माह महीने रे, श्री जयगणि पद धार।
जठे पछै पिण तेजसी रे, करी सेव श्रीकार॥
परम प्रीति अति गणी थकी रे, हद नीत चरण हुशियार हो।
रीत मर्याद शुद्ध पालता रे, सुविनीत सुगुण श्रीकार हो॥
(गु० व० ढा० १ गा० ५, ६)

वर्ष घणा गणिराज री, सेवा करी शुभ ध्यान।
चरण पुष्ट निज हियै धरया, जय वचनामृत पान॥
(गु० व० ढा० १ गा० ११)

३. केइक चौमासा मुनि किया, दीर्घ मोती मुनि पास।
जय गणपति आणा थकी, आणी चित हुलास॥
तेजपालजी मुनि तणो, उगणीसै अष्टादश वास।
कियो सिंघाडो गणपति, फुन प्रथम जोधाणे चौमास॥
(गु० व० ढा० १ गा० ६, १०)

मुनि श्री ने १७ वर्ष अग्रणी रूप मे विचर कर बहुत उपकार किया। अनेक भाई-बहनो को सुलभबोधि सम्यक्त्वी और श्रद्धालु बनाया। उनके हाथ की निम्नोक्त एक दीक्षा भी मिलती है।

मुनि श्री के चातुर्मासो की प्राप्त तालिका इस प्रकार है :—

१. सं० १९१९ मे जोधपुर।

(गुण वर्णन ढाल १ गा० १०)

२. सं० १९२? मे ३ ठाणो से जसोल।

साथ मे मुनि बीजराजजी (१३५) और हीरालालजी (१२६) थे।

(लघुरास)

३. सं० १९२३ मे जोधपुर। (लघुरास)

मुनि श्री सं० १९२७ के माघ व फाल्गुन महीने मे सरदारशहर थे। उस समय उनके साथ मुनि श्री भानजी (१६०) और गुलाबजी (१७६) थे। वहां उन्होंने धर्म का अच्छा प्रचार किया। कई भाइयों को श्रद्धालु बनाया। ऐसा उल्लेख श्रावक लिछमणजी (लक्ष्मीरामजी) मथेरण द्वारा रचित मुनि श्री के गुणवर्णन की दो ढ़ालो (संख्या २, ३) मे मिलता है। लिछमणजी वहां मुनि श्री के दर्शनार्थ आये थे और उन्होने अपने ग्राम रीणी (तारानगर) मे चातुर्मास की मुनि श्री से प्रार्थना भी की थी।

सरदारशहर से विहार करते हुए मुनि श्री उदयपुर (मेवाड़) पधारे। वहां से गोगुंदा पधारकर उन्होंने चैत्र शुक्ला दशमी को गोगुंदा के मुनि श्री पन्नालालजी (२२४) को दीक्षा प्रदान की। फिर जेठ महीने में जयपुर (घाट) में जयाचार्य के दर्शन कर नव दीक्षित मुनि को भेंट किया :—

उदियापुर में उद्योत कियो अति देख जो,
गोगुंदा थी भेटणो भारी ल्याविया रे लोय।
तेज ऋषीसर पन्नालाल सुपेख जो,
घाट मझै घणै थाट पूज्य दर्श पाविया रे लोय॥

(जय० छोग० सुजश विलास ढ़ा० ३ गा० १३)

मुनि श्री को कुछ दिन गुरुसेवा का लाभ मिला। फिर जयाचार्य ने उनका सं० १९२८ का चातुर्मास राजलदेसर फरमा दिया। उनके सहयोगी मुनि भवानजी (१६०) का सिंघाड़ा कर उन्हे गंगापुर मे चातुर्मास करने का आदेश दिया और उसी दिन विहार करवा दिया :—

तेज ऋषि रे राजलदेशर तंत जो, लघु भांन नै गंगापुर भोलावियो रे लोय।
प्रथीराज तो हरीगढ़ पावंत जो, त्रिहुं २ ठांणे इक दिन विहार करावियो रे लोय॥

(जय छोग सुजश विलास ढ़ा० ३ गा० १८)

स० १९२८ का मुनि श्री ने ३ ठाणो से राजलदेसर चातुर्मास किया। उसके बाद लाडनू मे पीरजी के स्थान पर माणकगणी की दीक्षा के समय फाल्गुन शुक्ला ११ को जयाचार्य के दर्शन किये :—

त्रिहुं ठाणा सुं तेज ऋपीस्वर आवीया रे, राजलदेशर चोमासो कर चंग रे।
पीरांजी कनै आवी पगे लागीया रे, मांणक मोहछव में आव्या धरी उमंग रे॥

(जय छोग सुजश विलास ढ़ा० ९ गा० ५१)

स० १९३३ मे ४ ठाणों से पचपदरा।

साथ मे मुनि श्री गोविन्दजी (२००), प्रभवोजी (२२१) और कपूरजी (१०९) थे।

(पचपदरा से प्राप्त प्राचीन पत्र के आधार से)

स० १९३४ मे ३ ठाणो से जोधपुर।

सं० १९३५ मे ४ ठाणो से पाली।

(श्रावकों द्वारा लिखित चातुर्मासिक तालिका से)

४. स० १९२० मे चतुर्भुजजी आदि साधु गण से अलग हुए। स० १९२१ मे उन्होंने जसोल मे चातुर्मास किया। जयाचार्य ने मुनि श्री तेजपालजी का उस वर्ष चातुर्मास जसोल करवाया। वहां उन टालोकरो के साथ मे मुनि श्री का जो वार्तालाप हुआ उसका विस्तृत विवरण 'लघुरास' से जानना चाहिए तथा उन सबके चतुर्भुजजी (१३७), जीवोजी (११३), कपूरजी (१०९), सतोजी (१६२), छोगजी 'छोटा' (११७), किस्तूरजी (१८५) सबध की घटना विशेष का वर्णन उनके प्रकरण मे पढ़े।

वास्तव मे मुनि श्री ने उस समय जयाचार्य की दृष्टि के अनुसार शासन का अतरग कार्य बडी सूझबूझ से किया था। अनेक शंकाग्रस्त लोगो को समझाकर सदेह-मुक्त किया।

५. मुनि श्री ज्ञान-ध्यान एव स्वाध्याय आदि के साथ तपस्या में भी विशेप रुचि रखते थे। उन्होने उपवास, वेले, तेले अनेक वार किये। चोला, पचोला तथा ८ दिन का तप भी किया।

(ख्यात)

६. मुनि श्री ने सं० १९३५ का ४ ठाणो से पाली चातुर्मास किया। वहा सावन और भाद्रव महीना तो सानंद संपन्न हुआ। आश्विन महीने के शुक्ल पक्ष में उनके शरीर मे बुखार आ गया। फिर कार्त्तिक महीने मे अस्वस्थता अधिक वढ गई और शरीर मे शोथ व श्वास का प्रकोप हो गया। फिर भी मुनि श्री ने सम-भावो से वेदना को सहन किया। कार्त्तिक कृष्णा ११ के दिन वेदना अधिक रही। एक मुहूर्त दिन अवशेप रहा तब मुनि श्री ने चारो आहारो का परित्याग कर

दिया। रात्रि के पश्चिम प्रहर मे मुनियो ने उन्हे अनशन के लिए पूछा तो उन्होंने अपनी स्वीकृति प्रकट की। तव उन्हें आजीवन अनशन करवा दिया गया। एक मुहूर्त के पश्चात् वे समाधि-पूर्वक पडित-मरण को प्राप्त हो गए। दूसरे दिन श्रावक लोगों ने ६१ खडी मंडी वनाकर उनका मृत्यु-महोत्सव मनाया और दाह सस्कार किया।

इस प्रकार ३५ वर्ष सयम-पर्याय का पालन कर सं० १६३५ कार्त्तिक वदि ११ को पाली मे वे दिवंगत हुए।

(गु० व० ढा० १ गा० १५ से २३)

मुनि श्री की गुण वर्णन ढ़ाल मे उनको उक्त एक मुहूर्त का संथारा आया लिखा है। ख्यात मे तीन प्रहर के अनशन का उल्लेख है।

शासनप्रभाकर मे २३ प्रहर के अनशन का उल्लेख है जो भूल से लिखा गया है।

७. मुनि श्री के गुणानुवाद की एक गीतिका है जिसके ७ दोहे और २३ गाथाए है। उसमे रचना संवत् और रचयिता का नाम नही है। अनुमानतः वह गीतिका साधुओ द्वारा वनाई गई मालूम देती है।

श्रावक लिछमणजी द्वारा रचित गुण वर्णन की दो ढ़ाले और है।

वे तीनो गीतिकाएं कीर्तिगाथा पृ० ४५३ से ५६ मे प्रकाशित है।

ख्यात एव शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० १८७ से १६३ में भी मुनि श्री से सवधित कुछ विवरण मिलता है।

'१३०।३।४३ श्री धन्नोजी (सणवाड़)

(दीक्षा सं० १९००, १९०० एक महीने बाद गणबाहर)

रामायण-छन्द

जन्म-धाम मेवाड़ भूमि में था 'सणवाड' ग्राम का नाम।
शतोन्नीस मधु सित एकम को पाया संयम का सुख धाम।
लेकिन एक महीने तक ही रह पाये वे मुनि-पद में।
धक्का लगा कर्म का जिससे अलग हुए झखणावद में' ॥१॥

१. धन्नोजी 'सणवाड' (मेवाड़) के वासी थे। सं० १९०० चैत्र शुक्ला १ को दीक्षित हुए और एक महीने गण मे रह कर वापस १९०० वैशाख सुदि में झखणावद में गण से पृथक् हो गये।

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ सो० १९४)

१३१।३।४४ मुनि श्री घणजी (आरज्यां)

(संयम पर्याय सं० १९०० स्वर्गवास १९१६ के बाद)

गीतक-छन्द

ग्राम 'आर्या' नाम का मेवाड़ में था आपका।
चौधरी था गोत्र धार्मिक कुल मिला मां वाप का।
बोध पाकर बने साधक धर्म-पत्नी साथ में[1]।
भाग्य-बल से आ गया है भिक्षु-शासन हाथ में ॥१॥

दोहा

संयम पाला भाव से, रखकर दृढ़ विश्वास।
पहुंचे सुर-आवास में, करके आत्म-विकास[2] ॥२॥

१. मुनिश्री घणजी मेवाड़ मे 'आर्या' नामक ग्राम के निवासी और गोत्र से चौधरी (ओसवाल) थे। उन्होने अपनी पत्नी रोड़ाजी (२०७) सहित स० १९०० माघ शुक्ला १४ को आचार्य श्री रायचदजी के हाथ से दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

दीक्षा तिथि रोडांजी की ख्यात मे लिखी हुई है।

२. मुनि घणजी सकुशल साधुत्व का पालन कर आराधक पद को प्राप्त हुए। उनका स्वर्गवास सवत् प्राप्त नही है परन्तु जोधपुर से पचपदरा दिये गये एक प्राचीन पत्र मे उल्लेख है कि स० १९१६ मे मुनि कपूरजी (१०९), तपस्वी अनोपचदजी (११४) का चातुर्मास जोधपुर मे था। अग्रगण्य मुनि अनोपचंदजी थे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मुनि घणजी स० १९१६ के बाद दिवगत हुए।

१३२।३।४५ मुनि श्री जयचंदजी (रावलियां)

(संयम-पर्याय सं० १६०१-१६२१)

लय—धर्म की जय हो······

मुनिजन परिषद् में, आये मुनि जयचन्द । मुनि······
पाये अमितानंद । मुनि···। ध्रुव ।।

रावलियां मेवाड़ धरापर, परिकर का 'परमाल' गोत्रवर ।
भर यौवन में मिला बोधवर, हटा मोह प्रतिबंध ।।१।।

श्रीऋषिराय हाथ से उत्तम, लिया छोड़ महिला को संयम ।
एक साल मृगसर विद एकम, पाया सुख का स्कंध[1] ।।२।।

साहसवान् महान् तपस्वी, परिचारक गण में वर्चस्वी ।
स्थविरोपम बन गये यशस्वी, दे सहयोग अमंद ।।३।।

रामायण-छन्द

मुनि प्रताप की कर पाये बहु सेवा सेवार्थी बनकर ।
जिसकी जयाचार्य ने चर्चा की है पद्यो मे रचकर ।
संत तपस्वी शिव की सेवा अन्त समय में की भरसक ।
धर कधो पर उन्हें उठाकर लाये बनकर सुसहायक[2] ।।४।।

लय—धर्म की जय हो······

उपवासादिक ऊर्ध्व इकावन, तप के उन्नत चढ़े निकेतन[3] ।
कुछ वर्षो तक अग्रगण्य बन, विचरे अप्रतिबंध[4] ।।५।।

शतोन्नीस इक्कीस उच्चतर, चैत्र शुक्ल तेरस का वासर ।
निर्मल भावों का श्रेयस्कर, भरा मधुर मकरंद ।।६।।

सवा प्रहर का अनशन आया, मुनि ने आराधक पद पाया ।
जन-जन ने गुण-गौरव गाया, फैली सुयश-सुगंध[5] ।।७।।

१. मुनि श्री जयचदजी रावलिया (मेवाड़) के निवासी और गोत्र से परमाल (ओसवाल) थे। उन्होने पत्नी को छोडकर सं० १६०१ मृगसर वदि १ को तृतीयाचार्य श्री रायचंद के हाथ से नाथद्वारा मे दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ मुनि झूमजी (१३२) की भी दीक्षा हुई :—

उगणीसै एके श्रीजीदुवार में, कियो चोमासो हो संत सत्यां सहित।
जैचदजी झूमजी संयम लियो, मृगसर विद हो एकम धर पीत॥
(ऋषिराय सुजश ढा० ११ गा० ५)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० १६६ मे दीक्षा-स्थान का उल्लेख नही है पर उपर्युक्त पद्य के अनुसार आचार्यश्री रायचदजी का नाथद्वारा मे चातुर्मास होने से वह स्वतः सिद्ध हो जाता है।

२. मुनि श्री साहसिक और बडे सेवाभावी हुए। उन्होंने 'कडाई स्थविर'[1] की तरह अनेक साधुओ की परिचर्या की एवं उन्हे भरसक सहयोग देकर उनकी नैय्या को पार पहुंचाया। (ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० १६७)

सं० १६०७ मे आचार्य श्री रायचदजी ने मुनि जयचंदजी को मुनि प्रतापजी (१५०) की सेवा में जोवनेर रखा। उन्होने तनमन झोककर उनकी जो वैयावृत्य की उसका जयाचार्य ने बड़े मार्मिक शब्दों में उल्लेख किया है :—

कारण प्रतापजी रै ऊपनो, पूज कीधी सार।
साहज दियो अति आकरो, राख्यो संत उदार॥

व्यावचियो मन बालहो, जैचंद ऋष जश लीध।
वारु विविध प्रकार नी, सेवा तन मन कीध॥

वस्तु मंगावै प्रतापजी, तो ना कहिवा रो नेम।
खप कर आपै आंण नै, तसु गुण कहिणी आवै केम॥

पूजण परठण अशन री, व्यावच विविध प्रकार।
जैचंद ऋष कीधी घणी, शीतकाल कष्ट धार॥

मुख सू प्रसंसै प्रतापजी, जैचंदजी नै जांण।
जोमनेर जन हरषिया, सेवा सखर पिछांण॥

नर-नारी धिन-धिन करै, जैचंद ऋष धिन-धिन।
इण विण इसडी कुंण करै, हुवा लोक प्रसन्न॥

---

१. जो सेवाभावी साधु रोगी व ग्लान की सेवा मे विशेष रूप से नियुक्त होते है वे 'कड़ाई-स्थविर' कहलाते है। वे सब कामों को गौणकर रोगी की परिचर्या को प्राथमिकता देते है।

शीतकाल अति सी पड़ै, रात्रि वार अनेक ।
कारण दस्त तणो पड़ै, परठे हरष विशेष ॥

(प्रताप मुनि गु० व० ढा० १ गा० ६ से १२)

सं० १९११ मे तपस्वी मुनि शिवजी (७८) राजगढ़ (मालवा) में बहुत अस्वस्थ हो गये तब मुनि जयचदजी उन्हे उठाकर बखतगढ़ लाये और उनकी सेवा-शुश्रूषा की। साथ मे दूसरे मुनि लालजी (१२२) थे :—

मुनि थांनै जैचंद संत उठाया, बखतगढ़ लाया रा।
मुनि थारी सेव जैचद ऋष 'लाल' करै खुशाल रा ॥

(शिव० गु० व० ढा० १ गा० ६३,६७)

३. मुनि श्री ने उपवास से लेकर ऊपर मे ५१ दिन का तप किया। उनके कुल तप की तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९
१४०	१३१	२१	१९	१०	२	४	४	३

१०	१८	२१	२२	२३	५१
१	१	२	१	१	१

इनमें अधिक तप पानी के आधार से और थोड़ा तप आछ के आधार से किया।

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० १९८ से २०१)

४. वे अग्रगण्य विचरे। उनका स० १९१३ का ४ ठाणो से गोगुंदा में चातुर्मास था।

(मुनि जीवोजी कृत चातुर्मासिक तप विवरण ढ़ा० १ गा० ५)

शेष चातुर्मास प्राप्त नही है।

५. मुनिश्री सं० १९२१ चैत्र शुक्ला १३ को समदरडी मे दिवंगत हुए। उन्हें लगभग सवा प्रहर का अनशन आया।

(ख्यात)

१३३।३।४६ मुनि श्री झूमजी (गंगापुर)

(संयम पर्याय सं० १९०१-१९२५)

गीतक-छन्द

'झूम' गगापुर निवासी साथ में जयचद के ।
हुए दीक्षित सुगुरु कर से रसिक परमानंद के[1] ।
रहे है चौबीस वत्सर साधु की पर्याय मे ।
व्याधि तन में हुई आखिर गये सुर-समुदाय में[2] ॥१॥

१. झूमजी गगापुर (मेवाड) के निवासी थे। उन्होंने सं० १९०१ मृगसर वदि १ को नाथद्वारा मे आचार्य श्री रायचंदजी के हाथ से दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ मुनि जयचदजी (१३२) की दीक्षा भी हुई।

(ख्यात)

सबधित पद्य मुनि जयचदजी के प्रकरण मे दे दिया गया है।

२. उन्होने लगभग २४ वर्ष सयम-पर्याय का पालन किया। आखिर 'विरावा'[1] की बीमारी होने से वे स० १९२५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को दिवंगत हो गये।

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० २०२)

---

१. विरावा—खारा पानी पीने से आकुल-व्याकुल होना।
इसका अधिक वेग बढने से मनुष्य प्रायः मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

१३४।३।४७ मुनि श्री रूपचंदजी (करेड़ा)

(संयम पर्याय स० १९०१-१९१२)

गीतक-छंद

करेडा मेवाड़ में मुनि रूप का जनु धाम था।
गोत्रडूंगरवाल (मारू) घर में सव तरह आराम था।
मुड़ा मुख संसार-सुख से जुड़ा सयम-तार में।
स्वजन स्त्री को छोड़ आये संयमी-परिवार में ॥१॥

दोहा

दीक्षित पुर रतलाम में, ईशर मुनि के पास।
एक साल की फाल्गुनी, दूज फुलरिया खास[1] ॥२॥

सरल प्रकृति धृति युक्त हो, तप जप में आसीन।
यात्रा कर पाये सफल, अनशन युक्त प्रवीण[2] ॥३॥

१. मुनि श्री सरूपचंदजी मेवाड़ में करेड़ा के वासी जाति से ओसवाल और गोत्र से डूगरवाल (मारू) थे। उन्होंने १६०१ फाल्गुन शुक्ला २ (फुलरिया दूज) को माता, भाई, पुत्र और पत्नी को छोड़कर मुनि श्री ईशरजी (६०) द्वारा रतलाम मे संयम ग्रहण किया।

(ख्यात)

२. मुनिश्री प्रकृति से सरल थे। तप जप मे तत्पर होकर उन्होंने अपने संयमी जीवन को निखार लिया। आखिर सं० १६१२ नाथद्वारा में अनशन पूर्वक स्वर्ग-प्रस्थान किया। (ख्यात)

पंडित मरण वे पाय रे, मारू वासी करेला तणा।
रूपचंद मुनिराय रे, एके चरण लियो हुंतो॥

(आर्यादर्शन ढा० ४ सो० ३)

शासनप्रभाकर ढ़ा० ६ गा० २०३,२०४ मे ख्यात की तरह ही वर्णन है।

मुनिश्री जीवोजी (८६) द्वारा रचित—साध्वी नवलांजी (२८५) की गु० व० ढ़ा० १ गा० ९ के अन्तर्गत दोहे के अनुसार मुनि रूपचंदजी सं० १६१३ के नाथद्वारा चातुर्मास मे मुनि श्री स्वरूपचंदजी के साथ थे। इससे लगता है कि वे उनके सान्निध्य मे चातुर्मास के समय या शेपकाल के समय दिवंगत हुए।

१३५।३।४८ मुनि श्री वींजराजजी (वाजोली)

(संयम पर्याय सं० १९०१-१९४७)

लय—मांड…

अच्छा नाम कमाया जी, शासन में निष्काम ।
नाम कमाया काम जमाया, कर-कर श्रम हर ग्राम।
रम संयम में रस उपशम में, पाया अति आराम ।।ध्रुव।।

वीजराज का मरु धरणी में, था वाजोली ग्राम ।
सिणगारां जननी भूरोजी-शाह जनक का नाम ।।१।।

गोत्र वछावत युक्त वोथरा, ओसवंश अवदात।
शैशव वय में हुई सगाई, वीत रहे दिन रात ।।२।।

मुनि संगति विरति जगी है, मातु श्री के संग।
मिली प्रेरणा जय की तत्क्षण, चढा मजीठी रंग ।।३।।

समझाकर काका काकी को, लिया चरण-आदेश।
युवाचार्य जय पद मे आये, पाये हर्ष विशेष ।।४।।

माघ कृष्ण तिथि वारस मंगल, साल एक की उच्च ।
हरिगढ़ मे जननी नंदन ने, पाया संयम गुच्छ' ।।५।।

साधु क्रिया मे तत्पर होकर, करते विद्याभ्यास।
वाल्यावस्था मेधा स्वस्था, चलता फिर सुप्रयास ।।६।।

जय-सेवा का मधुर कलेवा, मिला वर्ष इक्कीस।
सूत्र पांच कंठाग्र किये है, सूत्र पढ़े वत्तीस ।।७।।

याद करलिये व्याख्यानादिक वहु, श्लोक सहस्रों और।
बोल तीन सो छह की हुंडी, सीखी करके गौर[२] ॥८॥

विनयी, त्यागी और विरागी, चिन्तनशील दिमाग।
उद्योगी, उपयोगी अति ही, गण-गणि से अनुराग ॥९॥

दोहा

छटा अजब व्याख्यान की, सिंह-गर्जना तुल्य।
मधुरी वाणी में भरा, शिक्षा रस बाहुल्य[३] ॥१०॥

लय—मांड……

किया सिघाड़ा पचपदरा में, एक बीस की साल।
विचरे पुर-पुर देश-देश में, लेकर ज्ञान-मशाल ॥११॥

धर्म-क्रांति कर दिया शान्ति से, जन-जन को प्रतिबोध।
तिन्नाणं वा तारयाणं बन, गये सींचते पौध ॥१२॥

समझाये हैं लोग हजारों, तत्त्व बताकर सार्थ[४]।
दी दीक्षाएं पन्द्रह लगभग, की गण वृद्धि यथार्थ[५] ॥१३॥

प्राक्तन सूची पत्रादिक मे, करके पूर्ण तलाश।
बतलाता मुनिश्री के कितने, वर्षावास प्रवास[६] ॥१४॥

गये आप गुजरात कच्छ मे, लिख आये नव ख्यात।
समझाये मुनि हंसराज को करके चर्चा बात ॥१५॥

जिससे 'नानी पक्ष' व तेरापथ-संत व्यवहार।
प्रायः मिलता जुलता अब भी, है आचार विचार[७] ॥१६॥

दोहा

उपवासादिक से चले, एक पक्ष पर्यन्त।
सार निकाला है बड़ा, दम आत्मा दुर्दंत ॥१७॥

सोलह वर्षों तक सहा, आतप परिषह घोर।
वीर वृत्ति धर कर लिया, मन को वज्र कठोर[८] ॥१८॥

लय—मूल…

अन्तिम पावस पचपदरा में, तप अष्टान्हिक ख्यात।
जानु-व्यथा ज्वर आदिक का फिर, हो पाया उत्पात ॥१९॥

समता मे रम समभावों से, सहा वेदना ताप।
आत्मा लोचन क्षमा याचना, की है अपने आप ॥२०॥

करवाया पूनम मुनिवर ने, अनशन व्रत सागार।
दिवस दूसरे करवाया है, पूर्ण भक्त-परिहार ॥२१॥

भर मुहूर्त्त मे ऊर्ध्व भाव से, सिद्ध किया सब काम।
शुक्ल सप्तमी थी कार्तिक की, रजनी पश्चिम याम ॥२२॥

वर्ष सात चालीस चखा है, सरस साधना-स्वाद।
उनकी गौरव भरी कहानी, संघ कर रहा याद ॥२३॥

रामायण-छन्द

पूनम मुनि ने पास आपके तीन साल सुखवास किया।
हो प्रसन्न ऋषि बीजराजने उनको ज्ञान प्रकाश दिया।
बीज व्रती का मुनि पूनम ने माना है आसान बहुत।
स्मृति मे एक गीतिका द्वारा जीवन-वृत्त किया प्रस्तुत[10] ॥२४॥

१. मुनि श्री बीजराजजी मारवाड में वाजोली के वासी, जाति से ओसवाल और गोत्र मे बोथरा (ख्यात मे बछावत, बोथरा) थे। उनके पिता का नाम शाह भूरोजी और माता का सिणगारांजी था। बीजराजजी जब पांच साल के थे तब उनकी सगाई कर दी गई थी। साधु-साध्वियों के सम्पर्क से धीरे-धीरे उनके हृदय मे धर्म की लौ लगी और वैराग्य भावना उत्पन्न हुई :—

> शहर वाजोली अति भलो, जात बोथरा जाण।
> शाह भूरोजी गुणनिला, सुत बीजराज शुभ ध्यान ॥
> पांच वर्ष रे आसरै, करी सगाई ताम।
> समणी तणी सेवा करी, वैराग्य चित्त पाम ॥

(पूनम मुनि रचित-बीजराज० गु० व० ढा० १ दो० १, २)

स० १९०१ के जयपुर चातुर्मास के पश्चात् युवाचार्य श्री जीतमलजी वाजोली पधारे। उनके प्रेरणादायी उपदेश से माता-पुत्र दोनो दीक्षा के लिए तैयार हो गए। फिर अपने चाचा-चाची को समझाकर उन्होंने दीक्षा-स्वीकृति प्राप्त कर ली।

(गु० व० ढा० १ दो० ३ से ५)

फिर उन्होने अविवाहित (नाबालिग) वय मे माता सिणगारां (२१७) सहित सं० १९०१ माघ वदि १२ को किसनगढ़ मे दीक्षा ली। ऐसा उनकी ख्यात तथा पूनम मुनि रचित गुण वर्णन ढ़ाल गा० १ से ३ मे उल्लेख है।

जय सुजश ढाल २९ गा० १५ तथा सरदार सुजश ढ़ा० १० गा० ३३, ३४ में दोनो की दीक्षा साथ मे होने का उल्लेख है पर वहां दीक्षा तिथि नही है। सिणगारांजी की ख्यात में दीक्षा तिथि माघ सुदि ११ है पर वहां साथ में दीक्षित होने का उल्लेख नही है। इससे ऐसी संभावना की जाती है कि मुनि बीजराजजी की दीक्षा पहले माघ वदि १२ को और सिणगारांजी की दीक्षा बाद मे माघ सुदि ११ को हुई। सरदारसती ने उसी वर्ष पोष शुक्ला ३ को फलौदी में साध्वी श्री उमेदांजी (२१५) को दीक्षा दी तथा वहां से विहार कर किशनगढ़ मे युवाचार्य श्री जीतमलजी के दर्शन किये। फलौदी से किशनगढ की सौ कोश लगभग दूरी होने से उनको रास्ते में संभवत. एक महीना लगभग लग गया होगा और उसके बाद साध्वी श्री सिणगारांजी की दीक्षा हुई होगी अत: मुनि बीजराजजी की दीक्षा पहले माघ वदि १२ को और साध्वी श्री सिणगारांजी की दीक्षा पीछे माघ सुदि ११ को मानने मे कोई आपत्ति नही लगती। १५ दिन के अन्दर-अन्दर दीक्षा होने से दोनो के साथ दीक्षित होने का उल्लेख कर दिया गया हो, ऐसा प्रतीत होता है।

२. मुनि श्री ने दीक्षित होने के पश्चात् लगभग २१ साल तक जयाचार्य

की सेवा मे रहकर ज्ञान, ध्यान का अच्छा विकास किया :—

मुनि थे तो ज्ञान ध्यान गुण भरिया, विनय गुण आदरिया ।
स्वामी थे तो जीत तणी सेवा जगीसं, करी वर्ष इकवीसं ॥

(गु० व० ढा० १ गा० ४, ५)

एक वार जयाचार्य ने उनको तत्काल रचित एक सोरठा के माध्यम से शिक्षा दी थी :—

सखरी मुनिवर सेव, पुद्गल प्यासा परहरी ।
भण नव तत्त्व सुभेव, वर समकित धर वीजिया ॥

(जय सुजश ढा० ५० सो० ८)

ख्यात मे मुनि श्री के लिए लिखा है कि वे पढ़ लिखकर तैयार हुए तथा उन्होंने ५ सूत्र—१. आवश्यक २. दशवैकालिक ३. उत्तराध्ययन ४. अनुत्तरोपपातिक ५. वृहत्कल्प याद किये एव कुछ अश अतगढ सूत्र का सीखा । इनके अतिरिक्त ३०६ वोलों की हुण्डी और अन्य हजारो गाथाए कंठस्थ की । ३२ सूत्रो का वाचन किया ।

३. मुनि श्री वड़े त्यागी, विरागी, विनयी, चिन्तनशील और गण-गणी के प्रति पूर्ण आस्थावान थे । उनका व्याख्यान तात्त्विक एव वैराग्य प्रधान था । मघवागणी फरमाते कि हम प्रवचन मे देर से जाए तो भी कोई आपत्ति नही क्योंकि पहले मुनि वीजराजजी, कालूजी (१६३) तथा मोतीजी (१७४) 'लक्खासर' व्याख्यान देने के लिए गए हुये हैं । इनका व्याख्यान प्रामाणिक है ।

४. मुनि श्री ने स० १६०२ से १६२० तक के चातुर्मास जयाचार्य की सेवा मे किये । स० १६२१ में वे मुनि श्री तेजमालजी (१२६) के साथ जसोल चातुर्मास मे थे । उसी वर्ष उनका सिघाडा हुआ :—

मुनि थांरो इकवीसे कियो सिंघाडं, पंचभद्रा सुखकारं ।

(वीज० गु० व० ढा० १ गा० १६)

मुनि श्री ने मारवाड़, मेवाड, कच्छ, गुजरात, मालवा, हरियाणा (भिवानी) ढूढाड और थली देश मे विचरण कर धर्म का अच्छा प्रचार किया । धर्मोपदेश के द्वारा तेरापथ के मौलिक तत्त्वों को वतलाकर अनेक व्यक्तियो को सुलभवोधि तथा श्रावक वनाये ।

(गु० व० ढा० १ गा० ३३ से ३६ के आधार से)

५. मुनि श्री ने अनेक व्यक्तियो को दीक्षित किया :—

मुनि थे तो चारित्र दियो वहु जन नैं, नाम कहूं गिण नै ।

(गु० व० ढा० १ गा० १७)

मुनि श्री द्वारा दी गई दीक्षाओं की सूची इस प्रकार है :—

साधु—

१. मुनिश्री नाथूजी (१९९) को सं० १९२१ फाल्गुन वदि १३ को दीक्षा दी। वे पहले स्थानकवासी संप्रदाय मे दीक्षित थे। वहां से आकर तेरापंथ में दीक्षित हुए।

(ख्यात)

गुण वर्णन ढाल मे इसका उल्लेख नहीं है।

२. मुनि गोविन्दजी (२००) 'वाघावास' को सं० १९२१ फाल्गुन वदि १३ को दीक्षा दी जो वाद मे गण से अलग हो गये।

(ख्यात, गु० व० ढा० १ गा० १९)

३. मुनि श्री सिरेमलजी (२०६) 'जोधपुर' को स० १९२४ कार्तिक वदि ८ को सभवत: जोधपुर मे दीक्षा दी।

(ख्यात, गु० व० ढ़ा० १ गा० २०)

४. मुनि चतुर्भुजजी (२१२) 'खीवाड़ा' को स० १९२५ माघ शुक्ला ५ को दीक्षा दी।

(ख्यात, गु० व० ढा० १ गा० २१)

५. मुनि प्रभवोजी (२२१) 'आगोलाई' को स० १९२७ कार्तिक शुक्ला ३ को वालोतरा मे दीक्षा दी।

(ख्यात, गु० व० ढ़ा० १ गा० २२)

मुनि श्री वीजराजजी ने सं० १९२८ पोप वदि २ को जयाचार्य के जयपुर मे दर्शन कर मुनि प्रभवोजी को गुरु-चरणो मे भेंट किया। इसका जय छोग सुजश विलास मे इस प्रकार उल्लेख मिलता है :—

वींजराज वड गयो गुजरात मझार,
भेटणो इक ल्यायो परभवो देखियै रे लोय।
पंच संता सूं आयो कर उपगार,·········॥

(जय छोग सुजश विलास ढ़ा० ८ गा० ११)

गुजरात जाय चौमास गोगुंदे कर, वींजराज वड आयो।
आगोलाइ रो वासी परभवो, ल्याई पगै लगायो ॥

(लघु जय छोग सुजश विलास ढा० ३ गा० १५)

उक्त ख्यात के उल्लेख तथा गाथाओ का यह तात्पर्य है कि मुनि श्री ने सं० १९२७ का ४ ठाणो से वालोतरा चातुर्मास किया और वहां उन्होंने कार्तिक शुक्ला ३ को प्रभवोजी को दीक्षा दी। चातुर्मास के पश्चात् वे गुजरात पधारे,

वहां शेषकाल में विचरकर सं० १६२८ का चातुर्मास उन्होंने गोगुदा मे किया। फिर ५ ठाणो से जयपुर मे जयाचार्य के दर्शन कर प्रभवोजी को गुरु-चरणो मे सर्मपित किया।

६. मुनि दुलीचन्दजी (२३७) 'गोगुंदा' को स० १६२६ फाल्गुन शुक्ल ११ को उदयपुर मे दीक्षा दी।

(गु० व० ढ़ा० गा० २४)

ख्यात मे इसका उल्लेख नही है।

७. मुनि ताराचन्दजी (२३६) 'ईडवा' को सं० १६३० मृगसर वदि ६ को दीक्षा दी। वाद मे वे गण से वाहर हो गये।

(ख्यात, गु० व० ढ़ा० गा० २५)

८ मुनि फौजमलजी (२४२) 'लोटोती' को सं० १६३० मृगसर वदि १२ को दीक्षा दी।

(गुण व० ढ़ा० गा० २६).

ख्यात मे इसका उल्लेख नही है।

६. मुनि हीरालालजी (२५१) 'मेडता' को सं० १६३४ मे वाजोली मे दीक्षा दी।

मुनि गुण ढाल गा० २८ मे इसका उल्लेख है पर ख्यात मे उनकी दीक्षा मुनि सिरेमलजी (२०६) के हाथ से लिखी है।

मुनि सिरेमलजी मुनि हीरालालजी के मामा थे, अतः मुनि श्री वीजराजजी ने अपने सान्निध्य मे मुनि सिरेमलजी द्वारा हीरालालजी की दीक्षा करवाई हो ऐसा प्रतीत होता है जिससे ढाल मे उक्त दीक्षा वीजराजजी के हाथ से और ख्यात मे सिरेमलजी के हाथ से लिखी है।

ढ़ाल मे हीरालालजी का नाम ऋषभदासजी (२५७) से वाद मे है। इसका कारण यही लगता है कि ये प्रथम वार गण से वाहर होकर नई दीक्षा लेकर वापस गण मे आये तव उनसे छोटे हो गए। फिर स० १६३८ जयपुर मे दूसरी वार अलग हो गए।

१०. मुनि श्री ऋषभदासजी (२५७) 'वीठोडा' को स० १६३४ फाल्गुन वदि १ को जोधपुर में दीक्षा दी।

(ख्यात, गु० व० ढ़ा० गा० २७)

११. मुनि सदासुखजी (२६३) 'पचपदरा' को स० १६३५ जेठ सुदि ११ को वीठोडा मे दीक्षा दी।

(ख्यात, गुण व० ढ़ा० गा० २६)

बींज मुनि गुण वर्णन ढा० गा० ३० मे ११ साधुओं की दीक्षा का वर्णन है—"मुनि थे तो संत किया इग्यारं।" पर उक्त ग्यारह में मुनि नाथूजी (१६६) का नाम नही है। ढाल की गा० २३ में एक नाम फकीरचन्दजी (२०३) का और है पर ख्यात मे उनकी दीक्षा मुनि छजमलजी (१७५) के हाथ से लिखी है। इसका कारण यह लगता है कि फकीरचन्दजी ने पहली दीक्षा मुनि छजमलजी से ली थी। फिर वे दो वार गण से अलग होकर वापस दोनो वार नई दीक्षा लेकर आये थे। दूसरी वार सं० १९२७ जेठ महीने मे मुनि वीजराजजी ने उनको नई दीक्षा दी ऐसा ढ़ाल मे दिये गए नामो के क्रम से प्रतीत होता है। फिर स० १९२८ मृगसर महीने मे वे अलग हो गए।

इसी प्रकार ढाल की गाथा ३० से ३२ मे चार साध्वियो की दीक्षा मुनी श्री के हाथ से लिखी है—'**समणी वलि चारं**'।

साध्वियां—

१. साध्वी श्री तीजांजी 'वड़ा' (४३०) 'खाटू'।

२. साध्वी श्री जयकवरजी (४५५) 'चांदारुण।

३. साध्वी श्री सिरेकवरजी (४५६) ,, ।

४. साध्वी श्री तीजांजी 'छोटा' (४६५) 'वाजोली'।

इनमे तीजांजी 'वड़ा' (४३०) की दीक्षा जयाचार्य के हाथ से हुई ऐसा ख्यात, जय सुजश ढ़ा० ५६ गा० १७ में उल्लेख है अतः मुनि श्री के हाथ से भूल से लिखी गई लगती है।

साध्वी जयकंवरजी (४५५), सिरेकंवरजी (४५६) 'चादारुण' की दीक्षा साध्वी श्री चन्नणाजी (१६५)' वगड़ी' द्वारा सं० १९३४ फाल्गुन सुदि १० को हुई, ऐसा ख्यात मे लिखा है।

साध्वी तीजाजी (४६५) छोटा 'वाजोली' की दीक्षा पन्नांजी (१२६) 'चूरू' द्वारा स० १९३५ पोष वदि मे हुई ऐसा ख्यात मे लिखा है।

ये तीनो दीक्षाए मुनि श्री के हाथ से सभव हो सकती है क्योंकि स० १९३४ का चातुर्मास पचपदरा और स० १९३५ का चातुर्मास जोधपुर करने के लिए आते-जाते समय उनका उन क्षेत्रो मे जाना हुआ था तव उन्होंने उन तीनो वहिनो को दीक्षा दी और उक्त साध्वियो ने केश-लुचन किया।

ख्यात मे एक दीक्षा साध्वी श्री छोटाजी (३७१) 'मेड़ता' की स० १९२३ वैशाख वदि ४ को मुनि श्री के हाथ से लिखी है, पर गुण वर्णन ढाल मे उसका उल्लेख नही है।

६. मुनि श्री के प्राप्त चातुर्मासो की सूची इस प्रकार है :—

सं० १६२४ ठाणा जोधपुर

वहां मुनि सिरेमलजी (२०६) को दीक्षा प्रदान की।

(ख्यात)

स० १६२७, ४ ठाणा वालोतरा।

वहां मुनि प्रभवोजी (२२१) को दीक्षा प्रदान की।

(ख्यात)

सं० १६२८, ५ ठाणा गोगुंदा।

(लघु जय छोग सुजश विलास ढ़ा० ३ गा० १५)

स० १६२६, ३ ठाणा उदयपुर।

(जय छोग सुजश विलास ढा० ६ गा० २६)

स० १६३४, ३ ठाणा पचपदरा।

साथ में मुनि प्रभवोजी, दुलीचदजी (२३७) थे, ऐसा पचपदरा की चातुर्मास तालिका मे लिखा है।

सं० १६३५, ३ ठाणा जोधपुर।

सं० १६३७, ३ ठाणा रतलाम।

सं० १६३८, ३ ठाणा झखणावद।

(श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मासिक तालिका के आधार से)

सं० १६३६ वाव।

वाव के बुजुर्ग श्रावकों की ऐसी धारणा है तथा डालिम चरित्र मे भी उक्त चातुर्मास का उल्लेख है :—

वींजराज गुणचालिए, वाव प्रथम आवास।

(डालिम चरित्र ढा० ५ दो० ७)

स० १६४० या ४१ ३ ठाणा जसोल।

सं० १६४३ ३ ठाणा पीपाड। (पचपदरा के प्राचीन पत्र से)

(श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मासिक तालिका के आधार से)

स० १६४५ चूरू।

स० १६४६ खाटू।

सं० १६४७ पचपदरा।

(पूनम मुनि आख्यान ढ़ा० २ गा० ५, ६)

६. आचार्य भिक्षु के प्रमुख श्रावक गेरूलालजी व्यास (जोधपुर) ने कच्छ प्रदेश मे सर्वप्रथम तेरापथ की ज्योति प्रसारित की थी। उन्होंने वहां 'मांडवी वंदर'

निवासी टीकम डोसी को समझाया था। टीकम डोसी ने उस समय भिक्षु स्वामी को गुरु रूप में स्वीकार किया था '—

टीकम डोसी देश कच्छ में, तिण नै व्यास गुरुलाल मिलिया रे।
पूज दिदार देख्यां विण डाहे, ज्ञान सुणी गुरु करिया रे ॥
(श्रावक शोभजी कृत पूज गुणी ढा० १४ गा० २८)

बाद मे डोसीजी स्वामीजी के दर्शन कर विविध प्रश्नों का समाधान प्राप्त कर तत्त्वज्ञ श्रावक बने। उन्होंने उस तत्त्व ज्ञान से कच्छ के अनेक व्यक्तियो को लाभान्वित किया। भिक्षु दृष्टांत १८० और १९४ मे उनके सवध का वर्णन मिलता है।

स० १८८९ के शेपकाल में तेरापथ के तीसरे आचार्य श्री रायचन्दजी मुनि श्री जीतमलजी आदि साधुओ सहित सर्वप्रथम गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ मे पधारे थे। अनेक क्षेत्रो मे विचरकर स्वय आचार्य श्री वापस मारवाड़ पधार गए। स० १८९० का चातुर्मास उन्होने पाली मे किया। मुनि श्री जीतमलजी का बालोतरा करवाया। कच्छ के भाइयों की प्रार्थना पर मुनि श्री कर्मचन्दजी (८३) का ३ ठाणो से बेला तथा मुनि ईशरजी (९०) का ३ ठाणो से वीरमग्राम (सौराष्ट्र) चातुर्मास करवाया। इसका विस्तृत विवरण जय सुजश ढाल १९ मे है।

उसके बाद सं० १९२७ का बालोतरा चातुर्मास कर मुनि श्री बीजराजजी (आप) ५ ठाणो से गुजरात पधारे। शेषकाल मे वहां अनेक क्षेत्रो मे विचरकर वापस मेवाड़ मे आकर स० १९२८ का चातुर्मास गोगुंदा किया। इसका प्रमाण टिप्पण सख्या ५ मे दे दिया गया है।

मुनि श्री बीजराजजी उस समय कच्छ भी पधारे थे। वहां आठ कोटि पूज्य हसराजजा से सपर्क एव वार्तालाप हुआ, उसका सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

वि० स० १७७२ के पूर्व कच्छ प्रदेश मे केवल सवेगी साधुओं का गमनागमन होता था। स० १७७२ मे स्थानकवासी मुनि इंदरजी अपने प्रथम शिष्य मुनि सोमचन्दजी के साथ कच्छ गये। लगभग चार वर्ष वहां विचरते रहे। जब वे अपने पाटनगर 'भुज' मे आये तब देहरावासी श्रावको ने द्वेपवश वहां के महाराजा को यह कहकर भ्रान्त कर दिया कि 'ये साधु समग्र प्रजा को साधु बना लेगे अत इन्हे शहर मे नही रहने देना चाहिए।" महाराजा द्वारा मनाह होने पर वे दोनों साधु वहा से विहार कर गए।

उसके बाद ४० वर्ष तक स्थानकवासी साधुओ का कच्छ में जाना नही हुआ। सं० १८१६ में थोभणजी पारख नामक श्रावक (राज्य के अधिकारी) द्वारा

समझाने पर महाराजा ने साधुओ को कच्छ मे आने का निर्देश दे दिया। तब से स्थानकवासी साधुओ का पुन. कच्छ मे गमनागमन प्रारभ हुआ।

स० १८४४ मे मुनि करशनजी कच्छ मे विहार कर रहे थे। उस समय झालावाड मे विचरने वाले मुनि अजरामलजी ने मुनि करशनजी को कहलाया कि हमारे साधुओ मे शिथिलता आ गई है इसलिए २१ बोलो की मर्यादा बनाई गई है उसे मान्य करना चाहिए। पर मुनि करशनजी ने यह स्वीकार नही किया तब से उनके दो पक्ष हो गये। मुनि अजरामलजी का छह कोटि और करशन जी का आठ कोटि।

स० १८५५ मे छह कोटि पक्ष के आचार्य अजरामलजी ने अपने शिष्य मुनि देवराजजी को कच्छ भेजा। उन्होने संवत् १८५६ का चातुर्मास माडवी शहर मे किया। वहा उन्होने सर्वप्रथम शाह हसराज जी की पत्नी वाहीराम बाई को छह कोटि सामायिक का प्रत्याख्यान करवाया[1]। उनका दूसरा चातुर्मास मुद्रा और तीसरा चातुर्मास अजार मे हुआ। इस प्रकार कच्छ मे छह कोटि पक्ष की श्रद्धा चालू हुई।

आठ कोटि पक्ष के क्रमश आचार्य डाह्याजी स्वामी हुए। उनके दो शिष्य (१) मूलचदजी (२) जसराजजी हुए। मूलचदजी के शिष्य मुनि देवजी हुए।

वि० स० १८८० मे मुनि जसराजजी ने मुनि देवजी के साथ विविध चर्चा कर साधुओ मे आई हुई शिथिलता को रोकने के लिए ३२ बोलो की मर्यादा बनाई। पर मुनि देवजी ने उन्हे स्वीकार नही किया। तब से आठ कोटि साधुओ के दो पक्ष हो गये—१. मुनि देवजी का आठ कोटि मोटी पक्ष और २. मुनि जसराजजी का आठ कोटि नान्ही पक्ष।

मुनि जसराजजी के दो-चार पदाधिकारियो के बाद मुनि वस्ताजी आचार्य हुए। उनके शिष्य मुनि नथूजी के पास मांडवी शहर निवासी हसराजजी ने १५ वर्ष की अवस्था मे सं० १९०३ मे दीक्षा ली। वे आचार्य वस्ताजी के सान्निध्य मे १० वर्ष तक रहे। उनके तथा मुनि पुजाजी के पास शास्त्रो का ज्ञान किया। स० १९१३ का अग्रणी रूप मे उन्होने अजार (अथवा रापट) मे चातुर्मास किया।

---

१. 'छह कोटि, आठ कोटि पक्ष' सामायिक व्रत के प्रत्याख्यान की विधि से सबन्धित है। छह कोटि मान्यतानुसार सामायिक मे दो करण तीन योग से सावद्य प्रवृति के त्याग होते है—अर्थात् मन, वचन और शरीर से सावद्य प्रवृत्ति न करूगा और न कराऊगा (३ × २)। आठ कोटि मान्यतानुसार उक्त प्रत्याख्यान के अतिरिक्त सावद्य प्रवृत्ति के अनुमोदन का भी वचन और काया से त्याग करवाया जाता है।

सं० १६१४ और १६१५ के चातुर्मास वर्द्धमाण तथा राजकोट में किये।

सं० १६१६ मे मुनि हसराजजी पुनः कच्छ मे गये। वहां पर उन्होंने साधु-साध्वियों को कच्छ से बाहर जाने का निषेध कर दिया। उसके बाद नान्ही पक्ष का स्थायी प्रवास कच्छ में ही है। अतः कच्छ के लोग प्राय: पूज्य हंसराजजी को ही आदि प्रवर्त्तक रूप में मानते है। पूज्य हंसराजजी काफी क्रिया पात्र और जिज्ञासु मनोवृत्ति वाले थे।

(बम्बई निवासी जेठा भाई द्वारा संकलित निबंध के आधार से)

स० १६२७ मे मुनि श्री बीजराजजी का पूज्य हंसराजजी से मिलना हुआ एव काफी बातचीत हुई। मान्यताओ के संबंध मे भी चिन्तन-मन्थन चला। मुनि श्री बीजराजजी द्वारा दया, दान आदि विषयों का सैद्धान्तिक युक्तियों से समाधान पाकर पूज्य हंसराजजी बहुत प्रभावित हुए। उन्होने मुनिश्री से कहा—'आप कच्छ मे ही चातुर्मास करे, जिससे वार्तालाप का विशेष अवसर मिल जायेगा। अगर आपके साथ पूर्णतया वैचारिक एकता हो गई तो हम भी मारवाड़ की तरफ चले जायेगे।' पर मुनि श्री का विचार उसी वर्ष मारवाड की तरफ आने का एव गुरु दर्शन का था अत. मुनि श्री ने वहां से विहार कर स० १६२८ का चातुर्मास गोगुंदा में किया जिससे उनके साथ सपर्क छूट गया। पूज्य हसराजजी वहा विचरते रहे, उनको भी कष्ट बहुत सहना पडा, लेकिन उसी क्षेत्र के होने के कारण काफी लोग उनके अनुयायी बन गये। इसीलिए कई गावो मे स्थानको के बीच दीवार खीची हुई है, मानो कोई दो भाई अलग हुए हों। धीमे-धीमे एक संप्रदाय का रूप बन गया। साप्रदायिक अभिनिवेश हो जाने के बाद जो बोल जैसे थे वैसे ही रह गये। फिर भी उस सम्प्रदाय की क्रिया व मान्यता तेरापंथ से काफी नजदीक है। साधु-साध्वी थोडे होने के कारण इनका विहार क्षेत्र कंठी प्रदेश ही रहा। सौ वर्ष बीत जाने के बाद भी इधर अजार और उधर माडवी तक ही प्रायः सीमित है। कोई-कोई गांव मांवडी से आगे है। अब भी इस सप्रम्दाय मे लगभग १७ साधु और २३ साध्वियां हैं। संप्रदाय मे प्राय सैद्धातिक ज्ञान पर जोर देते हैं, पर अन्य ज्ञान के अभाव मे उसका भी विकास नही है। थोकडे सीखते तो बहुत है, पर अर्थ विस्तार का अभाव है। इनमे भी आचार्य एक होते हैं। वर्ष मे दो बार इनका सम्मेलन होता है। चातुर्मास आदि की नियुक्ति आचार्य ही करते है।

(अनुश्रुति के आधार से)

स० १६३८ का मुनि बीजराजजी ने झखणावद एवं स० १६३६ का वाव चातुर्मास किया था। उस समय भी वे सभवतः गुजरात तथा कच्छ के क्षेत्रों मे पधारे हो पर उपर्युक्त मुनि हसराजजी से मिलन सं० १६२७ में ही हुआ था, क्योकि मुनि हसराजजी स० १६३८ मे विद्यमान नही थे, उनका स्वर्गवास स० १६२५ मे हो चुका था। उनके उत्तराधिकारी मुनि बीजपालजी हुए। इनके

आगे की परम्परा का विवरण जेठा भाई द्वारा लिखित कॉपी मे सुरक्षित है।

स० १६४१ मे मुनि वीजपालजी के साथ डालगणी (मुनि अवस्था) की चर्चा हुई थी जिसका विवरण डालगणी की ख्यात तथा डालिम चरित्र खड १ ढ़ाल ५ मे है।

८. मुनि श्री ने उपवास से लेकर पन्द्रह दिन तक लड़ीवद्ध तप किया। उनके स० १६४६ माघ शुक्ला १५ तक के कुल तप की तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१२५०	४२	५८	२०	२१	४	५	१४	३	३

११	१२	१३	१५
१	३	१	१

(गु० व० ढा० १ गा० ८ से १५)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २१० से २१२ मे प्रायः ऐसा ही उल्लेख है केवल १० दिन की तपस्या दो वार करने का तथा अठाईयां १३ करने का उल्लेख है।

उन्होंने उक्त तप कुछ तो चौविहार एवं कुछ तिविहार किया।

उन्होंने १६ वर्ष उष्णकाल में आतापना ली :—

मुनि थे तो उष्ण तप भल लीधो, वर्ष सौलह कीधो।

(गु० व० ढा० १ गा० ७)

९. मुनि श्री ने स० १६४७ का चातुर्मास पचपदरा मे किया। वहां उन्होने आठ दिन का तप किया। सावन महीने तक प्राय उनके शरीर मे स्वस्थता रही। फिर एक महीने तक घुटने मे भयकर पीडा रही। आसोज महीने मे उनको 'उदरी' (मोतीझरा की तरह होने वाला रोग विशेष) निकली। फिर सत्ताईस दिन लगातार बुखार का प्रकोप रहा जिससे शक्ति वहुत घट गई। फिर भी उनकी अन्तश्चेतना इतनी जागृत थी कि उन्होने उक्त सभी वेदना को समभावों से सहन किया। अन्तिम दिनों मे आराधना की १० ढालें सुनी। आत्मालोचन व क्षमायाचना कर समाधि भाव मे लीन हो गये।

कार्त्तिक शुक्ला ६ को रात्रि के प्रथम प्रहर मे मुनि श्री पूनमचंदजी ने मुनि श्री को पूछकर सागारी अनशन कराया। लगभग पौने ग्यारह प्रहर के पश्चात् कार्त्तिक शुक्ला ७ के दिन पश्चिम प्रहर में आजीवन चौविहार अनशन कराया। एक मुहूर्त के वाद वे सानद पडित-मरण को प्राप्त हो गये।

इस प्रकार स० १६४७ कार्त्तिक शुक्ला ७ को पश्चिम रात्रि के समय

पचपदरा मे दिवगत हो गये । उनका संयम काल लगभग ४७ वर्षों का रहा।

दूसरे दिन श्रावक लोगों ने २६ खंडी मंडी बनाकर उनका मृत्यु-महोत्सव मनाया एवं पौद्गलिक शरीर का दाह-संस्कार किया ।

(गु० व० ढा० १ गा० ३७ से ५६ के आधार से)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २१३ से २१५ में भी उक्त वर्णन सक्षिप्त रूप मे है ।

१० मघवा गणी ने मुनि श्री पूनमचदजी (१६३) 'पचपदरा' को दीक्षित होने के पश्चात् मुनि खुशाल जी (२४५) को सौपा । उन्होंने उनके साथ सं० १६४४ का चातुर्मास पचपदरा किया । उनके स्वर्ग-गमन के पश्चात् मुनि श्री बीजराजजी के साथ मे दे दिया । वे उनके साथ विनय पूर्वक रहे । कई महीने बीतने पर भी मुनि श्री बीजराजजी ने उनको जब विशेष अध्ययन-अध्यापन नही करवाया तब एक दिन मुनि पूनमचदजी ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा—'अभी मैं तुम्हे पढ़ा-लिखा कर तैयार कर दू और तुम किसी अन्य सिंघाड़े के साथ चले जाओ तो मेरी बुढापे मे परिचर्या कौन करे ?' उन्होंने कहा—'आचार्यप्रवर अपनी इच्छा से अन्य सिंघाडे के साथ मे भेज दें तो बात अलग है, अन्यथा मैं आपकी सेवा मे पूर्णत. समर्पित होकर रहूगा । यहा तक की चोलपट्टे की तरह अनुकूल वर्त्ताव करूगा । आप किसी तरह का विचार न करके मुझे आगमादिक ज्ञान से लाभान्वित करें ।'

इसके बाद मुनि श्री बीजराजजी ने मुनि पूनमचंदजी को परम विनीत एवं योग्य समझकर खुले दिल से विद्याध्ययन कराया जिससे थोड़े समय में ही मुनि पूनमचंदजी सैद्धान्तिक व तात्त्विक ज्ञान मे निपुण बन गये । उन्होंने इसके लिए मुनि श्री के प्रति बहुत-बहुत आभार प्रदर्शित किया है :—

स्वामी थे तो मोसूं उपकार कियो भारी, केणी नहीं आवै इकसारी ॥
मुनि म्हानै नव तत्त्व ज्ञान भणाया, वले सूत्र वंचाया ॥

मुनि थांरा कोड जीभ कर गुण गाऊं, पार नहीं पाऊं ॥
मुनि नाम याद आयां तन हुलसै, समरूं रात दिवसै ॥
मुनि थांनै शहर अजमेर में रटिया, उपद्रव मिटिया ॥

(बीज मुनि गु० व० ढा० १ गा० ६० से ६४)

मुनि श्री पूनमचंदजी ने मुनि श्री बीजराजजी के गुणानुवाद की सं० १६४७ वैशाख शुक्ला ८ शनिवार के दिन एक ढाल बनाई। उसके ५ दोहे और ६६ गाथाएं हैं। उसमे उनके जीवन प्रसंग पर संक्षिप्त रूप मे प्रकाश डाला है ।

१३६।३।४६ मुनि श्री शिवचंदजी (सूरवाल)

(संयम पर्याय सं० १६०२-१६२३)

रामायण-छन्द

सूरवाल के वासी शिव मुनि पोरवाल बहु परिवारी।
श्रमण रामसुख, हीरा, पन्ना, सगे सहोदर सुखकारी।
छोड पुत्र पत्नी परिजन को सुगुरु-चरण में चरण लिया।
शतोन्नीस दो पुर पाली में शिव ने जन्म कृतार्थ किया[1] ॥१॥

शिव-सुख के सम्मुख हो करते सतत साधना हो तन्मय।
लेखन पठन और वाचन का उद्यम करते हो चिन्मय।
जीवन-औषध मान दीर्घतर ली तप-औषध की मात्रा[2]।
संवत्सर इक्कीस धैर्य धर की सकुशल संयम-यात्रा[3] ॥२॥

१. श्री शिवचदजी सूरवाल (ढूढाड) के वासी, जातिसे पोरवाल (गोत्र ओछल्या) थे। उनके पिताका नाम दयाचदजी और माता का नाम रूपांजी था। वे प्राग्दीक्षित मुनिश्री रामसुखजी (१०५), हीरालालजी (१२६) और पन्नालालजी (१६८) के सगे भाई थे। उन्होने पत्नी एव पुत्रादिक परिवार को छोड़कर स० १६०२ के सावन १४ को आचार्य श्री रायचदजी के हाथ से पाली मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

उगणीसै वीए पाली शहर में, संत सत्यां सू हो चौमासो सुखकार।
माधोपुर थी शिवचन्दजी आवी करी, त्रिया छांडी हो लीधो सयम भार॥

(ऋषिराय सुजश ढ़ा० १ गा० ७)

उनके परिवार की १६ दीक्षाए हुई, उनका विस्तृत वर्णन मुनिश्री हीरालालजी (१२६) के प्रकरण में दे दिया गया है।

यद्यपि शिवचंदजी की दीक्षा चतुर्भुजजी (१३७) छोगजी (१३८) के वाद मे हुई पर ख्यात मे शिवचंदजी का नाम पहले होने से क्रम सख्या वही रखी है। शिवचंदजी की बड़ी दीक्षा पहले और चतुर्भुजजी, छोगजी की वाद में होने से शिवचंदजी बडे हो गये ऐसा भी संभव है।

२. मुनि श्री साधनारत होकर लिखने-पढ़ने तथा आगमादिक वाचन का अच्छा उद्यम करते। उन्होंने तप भी बहुत किया।

(ख्यात)

३. मुनि श्री ने लगभग २१ वर्ष की संयम यात्रा संपन्न कर सं० १६२३ मे स्वर्ग प्रस्थान किया।

(ख्यात)

शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० २१६, २१७ मे ख्यात की तरह ही वर्णन है।

१३७।३।५० श्री चतुरभुजजी (रतनगढ़)

(दीक्षा सं० १९११, १९२० मे गण बाहर)

रामायण-छन्द

थली देश मे ग्राम रत्नगढ़, वोरड गोत्र चतुर्भुज नाम।
'रुकमा' माता छोग भ्रात लघु धार्मिक कुल पाया अभिराम।
एक साल विद माधव दशमी, को तीनो ने चरण लिया।
शरण ग्रहण कर रायशशी की गण-उपवन में रमण किया[1] ॥१॥

विद्या विनय विवेक तीन है जीवन उन्नति के साधन।
अहंकार अज्ञान और अविवेक पतन के हैं कारण।
समुचित साधन मिलने पर भी चला कर्म का चक्र विषम।
अविनयकारी हुई वृत्तियां बढ़ता गया विमुखता-क्रम ॥२॥

जयाचार्य ने उपालंभ दे उनको सजग विशेष किया।
तव तो छुप-छुप गुटवंदी कर प्रत्युत उलटा मार्ग लिया।
शत उन्नीस वीस सवत् की माघ शुक्ल तिथि वारस को।
अलग चार मुनि हुए वसुम्वी में छोड़ा गण-पारस को ॥३॥

था इनका भी उन चारों से गुप्त रूप से गठ बधन।
फाल्गुन विद एकम का गण से पृथक् हुए कर छद्म गहन।
उनसे मिले एक मजिल पर शामिल दो दिन रह पाये।
'हंस' श्रमण के समझाने से वापस सब गण मे आये ॥४॥

नौ दिन पीछे दूर हुए फिर गये थली पश्चिम मे चल।
चातुर्मास इक्कीस साल का पुर जसोल मे किया विफल।
तेजपाल मुनि का जसोल मे वालोतरा 'हरख' का वास।
जिससे हो न सका है उनका अल्प मात्र भी फलित प्रयास ॥५॥

बोले अवगुण गण के पहले फिर आ गये दंड लेकर।
फिर किस्तूर व्रती को लेकर निकले है दो मासान्तर।
क्या घटना उस समय घटी क्या किया गया उनके द्वारा।
जय विरचित 'लघुरास' खास मे जिसका चित्रण है सारा' ॥६॥

तरफ थली की चतुर्भुज्जजी एकाकी चल आये है।
देशनोक बावीस साल का चातुर्मास कर पाये हैं।
आसकरणजी क्षत्री को फिर अपना शिष्य बनाया है।
पुर फतेह मे तीन-बीस का वर्षावास विताया है ॥७॥

किया विरुद्ध प्रचार शहर सरदार आदि मे जाकर के।
लगा कुयुक्ति बनाई हुण्डी भाव अन्यथा लाकर के।
चन्द्रभाणजी पहले पीछे फतचन्दजी टालोकर।
उनके पक्षाश्रित लोगो को किये स्वमत मे बहकाकर ॥८॥

अपना रोब जमाने खातिर चार मास का छेद लिया।
बात यथार्थ पूछने पर तो पल में पलडा पलट दिया।
श्रद्धापात्र चतुर्भुजजी के जीतरूपजी आंचलिया।
एक बार पटुगढ में आये जय ने उनसे प्रश्न किया ॥९॥

जय बोले—तुम साधु न हमको, उन्हें मानते साधु महान्।
निर्णय किया स्वयं मति से क्या अन्य किसी ने खींचा ध्यान।
नहीं चतुर्भुजजी ने ली है नव दीक्षा हो गण बाहर।
तब कैसे वे मुनि, तुम श्रावक ? उत्तर दो कुछ चिंतन कर ॥१०॥

ऐसे बहु विध न्याय युक्ति से, समझाने से वे बोले।
'इतके रहे न उतके हम तो' भाव सरल दिल के खोले।
आकर के सरदार शहर में कहा उन्हें करके तकरार।
ज्ञात हो गई बात सभी को फैला ऊहापोह अपार ॥११॥

तब छेदोपस्थापनीय चारित्र लिया हो अधिक दबेल।
ऐसे लगभग सोलह वत्सर रहे खेलते नाना खेल।
निकले फिर छत्तीस साल में 'छोग' अनुज इनके गण से।
कर सलाह सरदार शहर में मिले चतुर्भुजजी उनसे ॥१२॥

कहा चतुर्भुजजी ने अपने अनुयायी जन को दिल खोल।
काम चलाया इतने दिन तो हमने करके गोलमटोल।
क्योकि भिक्षु गणिवर से लेकर वीस साल तक शासन में।
और हमारे मे भी तव तक साधुपना समझा मन मे ॥१३॥

ऊपर से हीं साधु नहीं वे ऐसा कहते थे तुमको।
पर अन्दर की आत्मा तो न गवाह दे रही थी हमको।
चन्द्रभाणजी फतहचदजी को न मानते मुनि मन मे।
अपना पथ वढाने खातिर साधु उन्हें कहते जान में ॥१४॥

वात दुतरफी यों करने से हुए अधिक द्वेषी पुर-नर।
निन्दा हुई वहुत हो उनकी अपयश फैला मुख-मुख पर।
फिर सैंतीस साल की सावन कृष्णा चौदस को मिलकर।
छोग चतुर्भुज आदिक ने ली दीक्षा नई सज्ज होकर ॥१५॥

तीन महीने रहे साथ मे फूट पड़ी फिर आपस मे।
अलग छोग से हुए चतुर्भुज देखो उस ही पावस मे।
सामायिक चारित्र पुनः ले मृगसर कृष्णा एकम को।
वोले—पहले श्रद्धा-संयम नही छू सका था हमको ॥१६॥

असंवद्ध की वह प्ररूपणा दृष्टिकोण प्रतिकूल रहा।
स्थानच्युत होने से मानव कृत्य-कार्य को भूल रहा।
जैसा-जैसा हो प्राणी के प्रकृति शुभाशुभ का संयोग।
वैसा-वैसा प्रतिफल होता है विधि का यह नियम अमोघ[३] ॥१७॥

दोहा

ख्यात और लघु रास मे, घटना का विस्तार।
प्रश्नोत्तरगत पंक्तिया, वनती कुछ आधार[४] ॥१८॥

१. चतुर्भुजजी रतनगढ (थली) के निवासी और गोत्र से वोरड़ (ओसवाल) थे। उनकी माता का नाम रुकमाजी था। उनके एक छोटे भाई थे जिनका नाम छोगजी था।

साध्वी श्री जीवूजी (१२३) द्वारा प्रतिवोध पाकर माता एव दोनों पुत्रों के दिल मे वैराग्य भावना जागृत हुई। फिर चतुर्भुजजी ने अपनी माता रूकमाजी (२१८) तथा छोटे भाई छोगजी (१३८) के साथ स० १६०१ वैशाख कृष्णा १० को आचार्य श्री रायचदजी के हाथ से नाथद्वारा मे दीक्षा स्वीकार की :—

पछै विहार कर विचरत-विचरत आविया,
श्रीजीद्वारे हो संत सत्यां रे परिवार।
मात सहित चतुरभुज छोगजी,
थली सू आवी हो लीधो संजम भार॥
(ऋषिराय सुयश ढ़ा० ११ गा० ६)

चतुरभुज ऋष छोग री, रुखमांजी वर मात।
उगणीसै एके वरस, चरण उभय सुत साथ॥
अज्जा 'जीऊ' प्रतिवोधिया, वोरड रत्नगढ़ वास।
नाथदुवारे ऋषिराय पै, चरण महोछव तास॥
(रुकमा सती गुण वर्णन ढ़ा० १ दो० १,२)

यद्यपि चतुर्भुजजी तथा छोगजी की दीक्षा मुनि शिवचंदजी (१३६) से पहले हुई पर ख्यात मे इनका नाम वाद मे होने से क्रम सख्या वही रखी है। शिवचदजी की वडी दीक्षा पहले और इनकी वाद मे होने से ये शिवचंदजी से छोटे हो गये ऐसा भी सभव है।

२. चतुर्भुजजी को पहले आशा थी कि मेरे भाई छोगजी को आचार्य पदवी आयेगी तव मेरा भी संघ मे वहुत सम्मान वढेगा। इस स्वार्थ भावना से वे गणगणी के गुणगान करते एव वडी भक्ति दिखाते। साधुओ को डराते हुए कहते—'देखो वाद मे मेरे से ही काम पडेगा।' इस प्रकार अपने अहं मे फूले रहते। लेकिन स० १६२० की साल जयाचार्य ने मुनि मघवा को युवाचार्य पद दे दिया तव उनका दृष्टिकोण प्रतिकूल हो गया और दलवदी कर गण से अलग हो गये, वह घटना इस प्रकार है।

स० १६२० माघ सुदी मे श्री मज्जयाचार्य, युवाचार्य मघवागणी तथा साधु साध्वी परिवार से कसूवी पधारे। वहा माघ शुक्ला १२ को परिषद् के वीच सव मुनियो के साथ पांचो अवनीतो (१. चतुर्भुजजी, २. जोवोजी, ३. कपूरजी, ४. सतोजी ५. छोटा छोगजी) ने प्रतिदिनि की तरह हाजरी (गण मर्यादा) का वाचन किया। माघ शुक्ला १३ को मुनि परिवार से जयाचार्य ने वहां से लाडनूं

की तरफ विहार किया। पीछे से चार अविनीत १. जीवोजी (११३) २. कपूरजी (१०६), ३. संतोजी (१६२), तथा ४. लघु छोगजी (११७) किसी को कहे विना ही प्रच्छन्न रूप में गण से अलग हो गये। जयाचार्य लाडनू पधार गये। वहा साधुओ ने उनकी प्रतीक्षा की और सोचा—वे मध्यवर्ती गांव मे ठहर गये होंगे। संभवतः कल आ जायेंगे। लेकिन दूसरे दिन भी नहीं आये तब सबने जान लिया कि वे गण समुदाय से पृथक् हो गये हैं।

उस दिन चतुर्भुजजी (१३७) ने जयाचार्य से विनयपूर्वक निवेदन किया कि वे मेरे पन्ने ले गये हैं, अतः आपका आदेश हो तो मैं जाऊ और पन्ने तथा वे समझें तो उन्हे भी वापस ले आऊ। जयाचार्य ने एक वार तो उनके कथन पर ध्यान नही दिया। एक दो दिन वीते। माघ सुदी १५ को चतुर्भुजजी ने पट्टोत्सव के समय नई ढाल जोड़कर जयाचार्य के गुणगान किये, फिर अधिक आग्रह करने पर जयाचार्य ने उन्हे आदेश दिया, तथा साथ में मुनि श्री हंसराजजी (१५१) को भेजा। मुनि श्री हंसराजजी और चतुर्भुजजी लवे विहार कर एव अनेक कोश चलकर दूसरे-तीसरे दिन एक गांव[1] मे पहुचे। वहां फाल्गुन वदि १ को वे चारो अविनीत मिले। चतुर्भुजजी को देखकर वे वहुत प्रसन्न हुए। चतुर्भुजजी पहली वार गण से अलग होकर तत्काल उनके शामिल हो गये, क्योंकि उन्होंने अपने पन्ने पहले ही उन्हे दे दिये थे तथा एक महीने के अन्दर-अन्दर निकलने का वचन भी दे दिया था। वे तो केवल पिछली स्थिति को देखने के लिए ही रहे थे।

मुनि हंसराजजी को उन लोगों की दलवदी का पता नही था। फिर भी वड़ी हिम्मत और सावधानी से काम किया। उन्होने दो दिन वार्तालाप कर उन पाचो को समझाया। उनके प्रश्नों का समाधान किया, तव चतुर्भुजजी ३ दिन और शेष ४ छह दिन (माघ सुदि १३फाल्गुन वदि ३ तक) वाहर रहे, उसका दंड मंजूर कर फाल्गुन वदि ३ को गण में आये और वोले—'तुम जयाचार्य से क्षेत्र भुलाने के लिए कहना। हम पच पदों की वंदना मे नामोच्चारणपूर्वक गुरु को वदना करेंगे, तथा मृगसर महीने मे दो साधु दर्शन करने का विचार भी रखते है।' मुनि हंसराजजी ने वहां से विहार किया, तव वे पहुंचाने के लिए भी आये।

मुनि हंसराजजी ने जयाचार्य के दर्शन कर सारे समाचार सुनाये तव आचार्यश्री ने उनका निर्वाह करने के लिए उनको नागौर के चोखले मे विहरण करने का तथा चातुर्मास के वाद मे दो साधुओं को दर्शन करने का आदेश दिया।

---

१. माथा सुखे। (जय सु० ढा० ४८ गा० ७)

दो भाइयों ने उन्हें जाकर कहा तव वे वापस इन्कार हो गये और बोले—'हम हमारी इच्छानुसार विहार करेंगे, दीक्षा स्वामीजी के नाम से देंगे, पर उसे अपने पास ही रखेगे।' जयाचार्य ने जब यह मान्य नही किया, तब वे नौ दिन गण में रहकर फाल्गुन वदि १२ या १३ को फिर सघ से अलग हो गये।

वहा से रवाना होकर वे पाचो अविनीत पश्चिम थली की तरफ गये। सं० १९२१ का जसोल मे चातुर्मास किया। उस वर्ष मुनि श्री तेजसी (तेजपालजी १२९) आदि ३ साधुओ का चातुर्मास भी वहां पर था। जसोल मे एक कोश की दूरी पर वालोतरा मे मुनि श्री हरखचदजी (१४४) आदि ४ साधुओं का वर्षावास था। मुनि हरखचदजी ने चतुर्भुजजी आदि को समझाने का प्रयास किया पर अहं भाव के कारण उनकी अनुकूल भावना नही हुई। उन्होंने कुछ बोल छोड़ने के लिए कहा। मुनि श्री उसके लिए इन्कार हो गये। जयाचार्य ने उनके प्रति उपेक्षा भाव कर दिया। श्रावक लोगो ने भी उनको आदर भाव नही दिया। इस प्रकार उनकी आशा विफल हो गई तब पाच मे से तीन अविनीतों (चतुर्भुजजी, कपूरजी, छोगजी) ने छह महीनो की अवधि मे थोड़े ही दिन अवशेष जानकर जोधपुर मे विराजित जयाचार्य को निवेदन करवाया—'अगर स्वामीजी हमारा सिघाडा करे तो हम सभी दंड लेकर गण मे आने के लिए तैयार है।' जयाचार्य द्वारा पूछे जाने पर जयाचार्य ने स्पष्ट शब्दों मे इस प्रकार फरमाया :—

करार सिंघाड़ा रो करी नै जाण, मांहे लेवा रा पचखाण।
इम लेवा री आज्ञा नाही, वले बोल न छोडणो कांई॥

बोल छोड़ी ने संत ने ताहि, लेवा री आज्ञा नांहि।
आत्मा रो करणो कल्याण, तो गण मांहे लेणां जाण॥

आत्म कल्याण करणो जो नांहि, तो ए जासी यांरी कमाई।
किण रै गरज है इम लिखो पानै, गुरु सिखाय दिया श्रावकां नै॥

(लघुरास)

कागद के द्वारा जब उन्हे ये समाचार मिले तब वे बिल्कुल हताश हो गये। दूसरी वार एक विनीत श्रावक के माध्यम से अत्यधिक प्रयत्न किया तथा कागद की सारी बातें मानने को तैयार हुए तब जयाचार्य ने तेजसी मुनि को विधिवत् गण मे लेने की आज्ञा दी। तेजसी आदि मुनियो ने उनसे खुलासा बातचीत कर लेख पत्र लिखवाया और स० १९२१ भादवा वदि १३ को दड देकर प्रथम अधिक अविनीत चतुर्भुजजी तथा पचम अविनीत लघु छोगजी को सघ मे शामिल कर लिया। दो दिन के बाद लघु छोगजी फिर अलग हो गये। वे दूसरे अविनीत

जीवोजी और चौथे अविनीत सतोजी के पास गये। उन्होने शामिल नही किया तव एक रात्रि वाहर रहकर अपनी त्रुटि स्वीकार कर वापस गण मे आ गये। तीसरे अविनीत कपूरजी ने भी गण मे आने के लिए प्रयत्न किया पर उस समय उन्हे गण मे नही लिया।

प्रथम अविनीत चतुर्भुजजी प्रायश्चित लेकर सघ मे तो आ गये पर उनका हृदय शुद्ध नही हुआ। दो महीने वाद फिर उदगल करना शुरू कर दिया। चातुर्मास मे वालोतरा जाकर मुनि हरखचदजी के साथ वाले मुनि किस्तूरजी (१८५) (छठे अविनीत) को फटाकर ले आये। इस घटना का स्वय किस्तूरजी ने वाद मे जयाचार्य के सम्मुख जिक्र करते हुए कहा था—'कात्तिक शुक्ला ११ के दिन चतुर्भुजजी नदी (जसोल-वालोतरा के वीच) मे मुझे मिले और वोले— 'तुम मेरी वात मान कर मेरे साथ चलो, वरना मैं अपघात करके मरूगा।' तत्काल वे 'नांगला' (रस्सी) लेकर गलपाशा लेने लगे और जोर से अरराट किया। उस समय मेरे मन मे उनके प्रति दया आ गई और मैंने साथ चलने का वचन दे दिया। इस तरह मैं उनके साथ हो गया। उनमे शिथिलता व छल प्रपच देखकर दो दिन के पश्चात् ही वापस गण मे आ गया।'

तव साधुओ ने उन्हे दगादार समझकर प्रथम अविनीत चतुर्भुजजी, पाचवें अविनीत छोगजी 'छोटा' और छठे अविनीत किस्तूरजी का सघ से सवध विच्छेद कर दिया। ये तीनो अविनीत एक हो गये। दूसरे अविनीत जीवोजी, तीसरे कपूरजी और चौथे संतोजी ये तीन शामिल थे। कपूरजी उनसे अलग होकर चतुर्भुजजी के साथ हो गये। इस तरह चतुर्भुजजी आदि चार अलग और जीवोजी सतोजी दो अलग रहे। छठे अविनीत किस्तूरजी दो दिन चतुर्भुजजी के साथ रहकर, वापस दड लेकर गण मे आ गये।

चतुर्भुजजी आदि तीन एक तरफ जीवोजी सतोजी दो एक तरफ रहे। तीसरे अविनीत कपूरजी जो चतुर्भुजजी के साथ थे, वे गण मे आने के लिए उद्यत हुए एव हरखचदजी स्वामी आदि सतो से वातचीत कर विश्वास पैदा करने लगे, पर सतो ने उनको सघ मे नही लिया।

चातुर्मास के वाद मुनि हरखचदजी और तेजसीजी ने जयाचार्य (जसोल वालोतरा के तरफ पधारे तव) के दर्शन कर सारी स्थिति अवगत की। छठे अविनीत किस्तूरजी उनके साथ थे। उन्होने अपनी समग्र वीती घटना सुनाई और वोले—'मेरे चित्त विभ्रम हो गया है अत अव मैं सघ मे नही रहूगा। चतुर्भुजजी आदि के साथ मे जाने का आजीवन परित्याग है। जीवोजी, सतोजी के साथ मैं जाऊगा।' ऐसे कहकर वे गण से अलग हो गये और दूसरे अविनीत जीवोजी और चौथे अविनीत संतोजी के साथ मिल गये। तीनो ने वहा से अन्यत्र विहार कर दिया। चतुर्भुजजी, कपूरजी तथा लघु छोगजी को छोड़कर उनके

पीछे-पीछे गये और उनके शामिल होने के लिए अनेक उपाय किये, पर उन्होंने संभोग शामिल नही किया।

जब पहले-तीसरे-पांचवें तीनों अवनीतो की सब कल्पनाएं जल बुद्‌बुद् की तरह विलीन होती गई, तब निराधार व दीन होकर उन्होने जयाचार्य की तरफ विहार किया। रास्ते मे उन्हें गुरु-दर्शनार्थ जाते बाव निवासी मूलजी कच्छी नामक श्रावक मिला। उसके सामने उन्होने अनेक अनर्गल बातें कही। उसने जयाचार्य को सारी बातें निवेदित की तब उन्होंने छठे अविनीत किस्तूरजी के अतिरिक्त (क्योंकि उन्हे गण से अलग हुए थोडा ही समय हुआ था) पांचो अविनीतो को नई दीक्षा दिये बिना गण मे लेने का परित्याग कर दिया। ये समाचार सुनकर वे बहुत निराश हो गये। वापस विहार कर पोष वदि मे पचपदरा चले गये। जयाचार्य वहा पधारे तब तीसरे अविनीत कपूरजी जयाचार्य के पास आकर विविध प्रकार की बहस करने लगे। आखिर निरुत्तर होकर चले गये।

कुछ समय पश्चात् चतुर्भुजजी, कपूरजी तथा छोगजी 'छोटा' को छोड़कर अलग हो गये। दूसरे-चौथे तथा छठे अविनीतों के पीछे अनेक कोश चलकर गये। उन्होने आदर भाव नही दिया तब चतुर्भुजजी छठे अविनीत किस्तूरजी (जिन्होंने चतुर्भुजजी के साथ जाने का आजीवन त्याग किया था) को उनमे से फटा कर ले आये।

तीसरे अविनीत कपूरजी और पाचवे अविनीत छोगजी फिर माघ वदि १२ को जयाचार्य के सम्मुख आये और सघ मे लेने के लिए प्रार्थना करने लगे। जयाचार्य ने नई दीक्षा के विना गण मे लेने के लिए स्पष्ट इन्कार कर दिया। तब वे दोनो वापस चले गये।

प्रथम अविनीत चतुर्भुजजी, छठे अविनीत किस्तूरजी तथा तीसरे अविनीत कपूरजी, पांचवे अविनीत छोगजी इन चारो अविनीतों ने दूसरे अविनीत जीवोजी और चौथे अविनीत सतोजी के साथ नम्रतापूर्वक प्रायश्चित लेकर छलपूर्वक सभोग शामिल कर लिया। तब तीसरे अविनीत कपूरजी तथा चौथे अविनीत सतोजी ने वहा से अलग होकर विहार कर दिया। इस तरह स्वेच्छा से कभी शामिल और कभी अलग हो जाते।

एक दिन चौथे अविनीत संतोजी ने जसोल से विहार कर बीठोदे (बीठोजे) गाव मे जयाचार्य के दर्शन कर गण-गणि के गुणगान किये। अपनी पारस्परिक बीती हुई घटना सुनाई। शासन के प्रति अत्यन्त सम्मुखता दिखाई। इस तरह कभी कोई कभी कोई आते। कभी अनुकूलता और कभी प्रतिकूलता दिखाते। आखिर मे चार तीर्थ के द्वारा कोई प्रोत्साहन नही मिला तब वे निरुत्साह हो गये। फिर एक गृहस्थ के द्वारा जयाचार्य को विनति कराई—'हम नई दीक्षा लेकर गण मे आने के लिए तैयार है, लेकिन हमारी बात रखने के लिए पाच

चार बोल तो आपके छोड़ देने चाहिए।'

जयाचार्य ने फरमाया—

यांने लेवा अर्थे यांरा कहिण सू जांण,
इक पिण बोल छोडण रा पचखाण।" (लघुरास)

इस स्पष्टोक्ति से उनका मन बहुत दु खी और जबान बंद हो गई।

स० १९२१ मृगसर के पहले-पहले छहो अविनीत कई बार गण से अलग और कई बार सम्मिलित हो गये। लघुरास मे लिखा है—

(१ चतुर्भुजजी) अधिक अविनीत दो वार टलियो,
निकल २ बोल्यो अलियो ॥
(२ जीवोजी) बीजो अविनीत टल्यो चिहुं वेला, नीकल २ कीधा हेला ॥
(३ कपूरजी) तीजो अविनीत टल्यो वार तीन, नीकल २ बोल्यो मलीन ॥
(४ संतोजी) चोथो अविनीत टल्यो वार तीन, नीकल २ ने हुओ दीन ॥
(५ छोगजी) पंचम अविनीत टलियो वार चार, नीकल २ हुओ खुवार ॥
(६ किस्तूरजी) षठो अविनीत टल्यो दोय वार, नीकल २ बोल्यो विफार ॥

स० १९२२ पाली चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य 'ईडवा' पधारे। वहा बालोतरा के पास 'वीठोजा' ग्राम से रवाना होकर सतोजी तथा किस्तूरजी जयाचार्य के समीप जा रहे थे। 'मेडता' मे एक भाई ने उन्हे कहा—'तुम लोग कभी तो गण से अलग और कभी सम्मिलित होते हो, ऐसे अस्थिर परिणाम वालों को गणपति सघ मे लेंगे या नही—यह चिन्तनीय है।' यह सुनकर किस्तूरजी के परिणाम कच्चे पड़ गये, वे 'ईडवा' से तीन कोश पहले वाले गांव मे ही रह गये। सतोजी 'ईडवा' मे गुरुदेव के दर्शन कर माघ वदि २ को पूर्ण रूप से समर्पित हो गये। तब उन्हे छेदोपस्थापनीय चारित्र (नई दीक्षा) देकर संघ मे ले लिया। किस्तूरजी ने दूसरी तरफ विहार कर दिया। गणपति वहां से विहार कर डेगाना होते हुए' 'बाजोली' पधारे। वहा किस्तूरजी नौ कोश का विहार करके आये और गुरु-चरणो मे समर्पित हो गये। माघ वदि ८ को इन्हे भी चारतीर्थ के सामने नई दीक्षा देकर सघ मे प्रविष्ट कर लिया।

कुछ दिन के बाद चतुर्भुजजी के साथ अनबन होने से पाचवे अविनीत छोगजी 'छोटा' विहार कर जयाचार्य के पास पहुचे और अपनी भूरि-भूरि आत्म-निंदा की तब वैशाख कृष्णा ७ को नई दीक्षा देकर उन्हे शासन मे सम्मिलित कर लिया।

शेष तीन अविनीत चतुर्भुजजी, जीवोजी और कपूरजी सघ से बाहर रहे। उनको जयाचार्य ने नई दीक्षा के साथ साध्वियों को वदना किये विना गण मे लेने का परित्याग कर दिया।

कुछ ही दिनो मे समाचार आये कि तीसरे अविनीत कपूरजी सघ का गुण-गान करते है, नई दीक्षा लेकर संघ में आना चाहते हैं, पर जयाचार्य ने स्वीकार नही किया। उस वर्ष स० १९२३ का चातुर्मास मुनि श्री तेजसी का जोधपुर फरमाया, साथ मे यह भी कहा कि अधिक अविनीत तथा तीसरे अविनति को नई दीक्षा देने की आज्ञा नही है। वे गुरु वचनो को शिरोधार्य कर जोधपुर मे वर्षावास विताने लगे। जयाचार्य ने उस वर्ष बीदासर मे चातुर्मास किया। वहा दूसरे अविनीत जीवोजी ने एक भाई के द्वारा विनम्रतापूर्वक गण मे लेने के लिए विनति करवाई, तव जयाचार्य ने मुनि तेजसी को उन्हे विधिवत् संघ मे लेने की अनुमति प्रदान की। चातुर्मास के पश्चात् मुनि तेजसी पश्चिम थली से विहार कर पाली होते हुए 'दूदाडा' पधारे। वहां दूसरे तीसरे दोनो अवनीत आये। दूसरे अविनीत 'जीवोजी' ने मुनि श्री को दो दिन तक विनयपूर्वक अत्यन्त सरल भाव से बहुत प्रार्थना की, तव माघ शुक्ला २ को साध्वियो को भाव सहित वदना करवाकर मुनि तेजसी ने उन्हें नई दीक्षा प्रदान की। जीवोजी को साथ लेकर मुनि श्री तेजसी ने थली प्रदेश मे जयाचार्य के दर्शन किये। जीवोजी ने गुरुदेव के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता व्यक्त की और मुनि तेजसी का बहुत आभार प्रदर्शित किया। मुक्त स्वर से शासन व शासनपति की स्तवना गाई। भूरि-भूरि आत्म-निंदा की।

उन्होने अन्य मत की एक गाथा का संदर्भ प्रस्तुत करते हुए एक गाथा जोड़-कर कही। वह इस प्रकार है—

अन्य मत गाथा (लय—दलाली लालन की…)
"हरिदास ने हर मिल्या रे, आडे रस्ते आय।
खावण दीधी मोठ वाजरी, पीवण दीधी गाय॥
लजा हर राख लही"॥

जोड़कर कही हुई गाथा —

लय (पूर्वोक्त…)
"ज्यूं तेज ऋषि मुझने मिल्या रे, आडे रसते आय।
मुंह मांग्या पासा ढल्या जी, चरण दियो चित्त ल्याय।
चरण-जुग गणपति नांजी, हूं तो वांदू वे कर जोड़॥चरण…"॥

तीसरे अविनीत कपूरजी मुनिश्री के साथ-साथ गुरुदेव के पास मे आये, और सघ मे लेने के लिए विनम्र अनुनय करने लगे, तव जयाचार्य ने फरमाया—

तूं अधिक अवनीत तणो दिलधार, जो तिण दिशि कियो विहार।
तो शासण मांहि लेवा रा जाण, जावजीव पचखाण॥
मुझ पट्ट ए मघराज महाभाग, जावजीव तिण रे पिण त्याग।
(लघुरास)

उन्होंने सब बातें कबूल कर ली। आभ्यंतर ग्रन्थि को खोलकर हृदय को सरल बना दिया। तब चैत्र वदि १३ को साध्वियों को वदना करवाकर जयाचार्य ने कपूरजी को छेदोपस्थापनीय चारित्र (नई दीक्षा) दिया। सघ मे आकर अपने द्वारा किये गए दुष्कृत्यो की भूरि-भूरि आलोचना की। गण-गणपति की गुणगाथा गाते हुए महान् आभार प्रदर्शन किया।

छह साधु सघ से अलग हुए, उनमे अधिक अविनीत चतुर्भुजजी के अतिरिक्त पांच साधु नव दीक्षा लेकर वापिस सघ मे आ गये[1]।

उन पाचो का विस्तृत विवरण उनके प्रकरणो मे पढ़ें।

जयाचार्य ने स्वरचित 'लघुराम' मे उक्त घटना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उसका रचनाकाल स० १९२१ वैशाख सुदि ४ शनिवार तथा स० १९२३ वैशाख सुदि ८ है। अधिक अंश पहले और कुछ अश की रचना बाद मे करने से दो बार सवत् आदि का उल्लेख किया है।

३. चतुर्भुजजी पश्चिम थली (जसोल, बालोतरा) की तरफ से अकेले बीकानेर की तरफ गए और उन्होने स० १९२२ का चातुर्मास देशनोक मे किया। उसके बाद आसकरणजी क्षत्री को दीक्षा दी। स० १९२३ का चातुर्मास फतेहपुर मे किया[2]। चूरू, रीणी, रतनगढ़ और सरदारशहर आदि क्षेत्रो मे विचर कर स० १८३६ मे गण से बहिर्भूत चन्द्रभाणजी स० १८९० मे गण से बहिर्भूत फतेहचन्दजी के अनुयायी लोगो को अपने पक्ष मे कर लिया। उन्होने कुयुक्ति लगाकर बोलचाल सम्बन्धी एक हुण्डी (सक्षिप्त नोंध रूप) बनाई। उसके माध्यम से अनेक व्यक्तियो को सभ्रान्त किया। वह हुंडी इस प्रकार है —

१. साधु नै साध्वी नै आचार्य नै उपाध्याय नै विभूषा निमत्ते कपड़ा धोवणा नही।
२. साधु नै महोच्छव करणा नही।
३. साधां रै ठिकाणै साधु रहै तिण जायगा नै विषै आरज्यां नै सूवणो आहारपाणी करणो नही, साधु नै आरज्या रहै तिण जायगां नै विषै सूवणो आहारादिक करणो नही।
४. गाम मांहै रहै गोचरी गाम माहै वारणै दोनूं करै, मास-खमण उपरंत रहवारी थाप करै छै, रहै पिण छै, ते रहणो नही।

---

१. षट् जणा नीकलिया तिणवार रे, अधिक अविनीत रह्यो गण बार।
पच जणा इम गण में आय, नवो चरण लियो चित्त ल्याय ॥
(लघुरास)

२. उक्त चातुर्मास में मेघजी आंचलिया द्वारा किये गए प्रश्नो के उत्तर सबधी पत्र के आधार से दिये गए है।

५. नितपिंड दूजा साध साध्वी रो ल्यायो असण १ पाण २ खादम ३ स्वादम ४ च्यारू आहार भोगवणा नही।
६. साधु नै हवेली मे वैहरचो तो दूजे दिन हवेली वारै तथा नोहरा हाट प्रमुख कठेई वेहरणो नही।
७. औषध, भेषध, तम्बाकू, सूई, कतरणी, कपटो, बाजोट प्रमुख ग्रहस्थ रे घरे जायनै सूंपणा पिण थानक मे सूपणा नही।
८. साधु नै साहमो लाय नैं आहार पाणी औषध भेषध कपड़ो प्रमुख थानक मे देवै ते लेणा नही।
९. साधु नै औषध भेषध तम्बाकू ओमो प्रमुख रात्रि वासी राखणा नही।
१०. साधु नै ओसर 'व्याह' प्रमुख रे वास्ते मिठाई आदि चीज कीधी तै जान प्रमुख जीम्या पहली लावणी नही।
११. साधु रे ठिकाणै कहै काले अठाई आदि रो पारणो छै पधारज्यो तथा वडा प्रमुख कर स्यूं पगल्या कीज्यो तो साधु नै जावणो नही।
१२. साधु नै ग्रहस्थ रै घरे गोचरी गया जद तो असूझतो छै तो पछै आहार पाणी नै जावणो नही तथा साधु गोचरी गया तिणहिज घर दोय वार, तीन वार, वार-वार जावणो नही।
१३. छतै साधु नै आर्यां कना स्यू पेट प्रमुख मसलावणो नही।
१४. वडा साध रै चौमासा ऊपर चौमासो करणो नही तथा मासखमण रही वड़ा साध रे लारै रहणो नही।
१५. ग्रहस्थ रै घरे साधु नै दर्शण देवानै जावणो नही और उपकार हुवै तो जावणो।
१६ साधु नै साध्वी नै ग्रहस्थ रै पोल माहे अस्त्री रहती हुवै तिहा जाय नै वैसणो नही।
१७. साध्वी नै हाट चउटा नै विपै रहवो कल्पै नही।
१८. साधु साध्वी नै टूणो जंत्र मत्र आदि करणा नही।
१९ साधु नै किवाड किवाडियो सरीखो दोया स्यू अजेणा हुवा रो ठिकाणो छै तो खोलना नही खुलाय नै आहार पाणी लेणो नही।
२०. दूजा मे साधुपणो न सरधै तो एकलो विचरणो।
२१. साधु नै आखो थान राखणो नही, पछेवडी प्रमुख ना मान जुदा-जुदा करने राखणा।
२२. साधु नै खाय पीय सुखे समाधे सूवणो नही।
२३. साधु नै वस्त्र पात्र मर्यादा उपरत राखणा नही।
२४. प्रमाण स्यूं अधिक रजोहरणो पूंजणी राखणा नहीं।

२५. साधु नै सागी त्याग वार-वार करणा नही ।

२६. साध्वी नै तालो किवाड खुलाय नै उतरणो नही ।

२७. साधु साध्वी परठावण्यो आहार करै जद कोई पूछै तो पाधरो उपवास कहणो नही ।

२८ साधु नै ग्रहस्थ रै माथे ऊपरै हाथ देणो नही, खूवे प्रमुख ऊपरै हाथ देणो नही तथा खूवो हाथ प्रमुख पकडणो नही ।

२९. साधु साध्वी नै दोय कोस उपरत औपध भेपध तम्वाखु प्रमुख लेजा-वणा नही ।

३०. पहले पोहर रो वेहरयो औपध भेपध तया ४ आहार काई भोगवणो नही ।

३१. साधु साध्वी नै जाली रो कपडो ओढणो नही ।

३२. साधु साध्वी नै ग्रहस्थ नै वन्धो कराय नै विहार करै जद फलाणा गाम ताई पुचावो इम कही साथै ले जावणा नही ।

३३. साधु साध्वी नै एक हाथ स्यु पाटियो वाजोटादि लावणा भोगवणा ।

३४. साधु नै नाम लेइ वनणा तथा आहार पाणी जायगा रा त्याग करावणा नही ।

३५. साधु साध्वी नै भूत प्रमुख लागै तो कूटणा नही ।

३६. साधु साध्वी नै ग्रहस्थ देखतां आहारादिक करणा नही ।

३७. साधु साध्वी नै खाउ-खाउ नहि करणो तथा आखो दिन सुपारी प्रमुख चवलणा नही ।

३८. साधु साध्वी नै ताक-ताक गोचरी जावणो नही ।

३९. चिणा रा होला गुहां रा, जवां रो मोरण, मक्या रा कण, जवांर रो मोरण तथा केला, काकरी, खरवूजा री फाड, तथा गटा खांड प्रमुख लगाई वेहरणा नही ।

४०. माचै उपर वैठो वाई भाई तथा रूई रा गिदरा उपर चीज हुवै तो वेहरणी नही तथा ऊठ नै वैहरावै तथा अगरखो प्रमुख पहरवा नै हुवै ते वहरावै तो तिण रा हाथ स्यू वहरणो नही ।

४१. साधु साध्वी नै चौमासे विहार करणो नही ।

४२. राख रो पाणी तथा और आहार पाणी सका सहित लेणो नही ।

४३. न्हानै वालक नै नारकी देवता रा पाना नही वतावणा तथा वालक रोवै तिण नै पाना वताय रोवतो राखणो नही ।

४४. साधु साध्वी नै सिज्झातर नो आहारादिक लेणो नही ।

४५. साधु साध्वी नै ग्रहस्थ नै श्रावक श्रावका नै आखी रात तथा आधी-रात साधु साध्वी सूवै तिण जायगा मे राखणा नही ।

४६. साधु साध्वी नैं निमत नही भाखणो तथा थारै रोगादिक मिट जावै तो पूजजी रा दर्शण करणा तथा थारै भरतार पुत्रादिक परदेश प्रमुख स्यू आय जावै जद पूजजी रा दर्शण करणा इसो उपदेश देईनै वधा करावणा नही।

४७. साधु नै सावज आमना करणी नही तथा आपरै अर्थे आदमी प्रमुख चाकरी सेवा भक्त मे राखणा नही।

४८. सूत्र मे भगवान साधु नै कार्य करणा वरज्या तेहनी आचार्य थाप करै ते विरुद्ध छै।

४९. साधु साध्वी नैं चालता वोलणो नही, उभो रही नैं वोलणो।

५०. साधु नैं देवतादिक रै कहणै स्यू आहारादिक लेणा नही, वखाण प्रमुख जोडणा नही।

५१. गुरा री प्रतीत राखणी छोडना नही।

चतुर्भुजजी ने जनता मे अपना प्रभाव जमाने के लिए स० १९२२ मे चार महीनों का छेद (प्रायश्चित) लिया। सरदारशहर के जैतरूपजी आचलिया आदि कई प्रमुख व्यक्तियों को अपना अनुयायी वना लिया। स० १९२४ की वात है[1] कि जैतरूपजी अपने कार्य के लिए सुजानगढ गए और उन्होंने वहा विराजित जयाचार्य के दर्शन किये। उस समय जयाचार्य ने उनसे कहा—'तुम लोग चतुर्भुजजी को साधु और हमको असाधु मानते हो, किन्तु चतुर्भुजजी ने संघ से पृथक् होकर नई दीक्षा तो ली नही तव उनमें साधुता और तुम्हारे में श्रावकत्व कैसे समाहित हो गया?' इस प्रकार विविध न्याय युक्ति द्वारा समझाने से वे वास्तविकता को समझकर सरल हृदय से वोले—'महाराज! 'इतका रह्या ने उतका' अर्थात् हम तो न इधर के रहे और न उधर के। ऐसा कह कर वे वापस सरदारशहर गये और चतुर्भुजजी से उक्त संदर्भ में काफी तर्क-वितर्क किया। तव चतुर्भुजजी ने विवश होकर नई दीक्षा (छेदोपस्थापनीय चारित्र) ग्रहण की।

इस प्रकार लगभग सोलह वर्प (स० १९२० से ३६ तक) वे अपना काम चलाते रहे। सं० १९३६ वैशाख शुक्ला ३ को मुनि छोगजी (१३८) 'वड़ा' आदि गण से पृथक् हुए। वे सरदारशहर गए तव चतुर्भुजजी उनसे मिले और परस्पर मे सलाह मशविरा किया। तत्पश्चात् चतुर्भुजजी ने अपने अनुयायी लोगो को कहा—'हमने इतने दिन कपट से काम चलाया। हम भीखणजी स्वामी

---

१. अनुमानतः स० १९२४ का चातुर्मास चतुर्भुजजी ने सरदारशहर किया और चातुर्मास के वाद की यह वात है।

से लेकर सं० १६२० तक शामिल रहे तब तक गण में तथा हमारे मन मे तो साधुपना समझते थे और ऊपर से भीषणजी स्वामी आदि को असाधु समझते व वैसी प्ररूपणा करते थे, तथा चन्द्रभाणजी फतेहचन्दजी को मन मे तो असाधु समझते और वैसी प्ररूपणा करते थे।'

इस प्रकार उनकी दुतरफी बातो को सुनकर उनके पक्ष के लोग उनसे विमुख हो गए और उनकी बहुत अवहेलना हुई। उसके बाद चतुर्भुजजी, छोगजी के शामिल हो गए और स० १६३७ का चातुर्मास सरदारशहर मे किया। वहां चतुर्भुजजी, छोगजी आदि सभी ने सावन कृष्णा १४ को नई दीक्षा स्वीकार की। लगभग तीन महीने वे शामिल रहे। उसके बाद आपस में अनबन होने के कारण उसी चातुर्मास में चतुर्भुजजी, फौजमलजी (२३४) को साथ मे लेकर उनसे अलग हो गये और मृगसर वदि १ के दिन पुनः नई दीक्षा—सामायिक चारित्र ग्रहण किया। अपने पिछले जीवनकाल में सम्यकत्व और साधुता का स्पर्श हुआ ऐसा नही समझा। फिर अपनी इच्छानुसार मान्यता सबंधी विविध प्रकार की प्ररूपणा की।

(चतुर्भुजजी की ख्यात)

४. चतुर्भुजजी के सबध का सं० १६२३ तक का विस्तृत वर्णन जयाचार्य द्वारा रचित 'लघुरास' में है। स० १६३७ तक का संक्षिप्त वर्णन ख्यात मे है। कुछ प्रसंग जयाचार्य द्वारा प्रदत्त प्रश्नो के उत्तर रूप मे लिखे गए निबधो मे है। किंचित् उल्लेख जय-सुजश ढाल ४८ दो० १ से ३ तथा गा० १ से ६ में भी है।

छोगजी के प्रकरण मे भी चतुर्भुजजी से सबधित विवरण है। दोनो प्रकरण पढने से अच्छी तरह पूरी जानकारी हो सकती है।

१३८।३।५१ श्री छोगजी (रतनगढ़)

(दीक्षा सं० १९०१, १९३६ में गणबाहर)

रामायण-छंद

बोरड गोत्र रतनगढ़ पुर के 'छोग' चतुर्भुज के लघु भ्रात।
साधु बने अविवाहित वय में अग्रज और प्रसू के साथ[1]।
पढ़ लिखकर तैयार हुए हैं गण गणपति के आश्रय में।
प्राप्त योग्यता करके अच्छी बने विचक्षण लघु वय में।।१।।

जयाचार्य को लोग पूछते किसे बनायेंगे गण ताज ?
छोग, हरख मघराज—तीन में एक चुनूंगा मैं युवराज।
स्थान हृदय में गुरु के इतना और संघ में भी सम्मान।
तत्कालीन साधु श्रेणी में समझे जाते थे विद्वान्[2] ।।२।।

बीस साल में मुनि मघवा को युवपद दिया 'जीत' ने जब।
चार तीर्थ के बीच छोग ने गण-गणि-गरिमा गाई तब।
तब तक शुद्ध भावना इनकी गुरु के प्रति समुचित व्यवहार।
गण नंदन में विहरण करते गण मर्यादा के अनुसार[3]।।३।।

चतुर्भुज्जजी गुटबंदी कर हुए उस समय गण बाहर।
रहे संघ में ये घुलमिल कर ठीक रूप से कुछ वत्सर।
करने लगे गोलमाल फिर बोलचाल में खींचातान।
सत्ताईस साल में गण से पृथक् हो गये कर अभिमान।।४।।

सात प्रहर से वापस आये विनय नम्रता कर बहु बार।
दंड लिया जो दिया सुगुरु ने किया लिखित कर त्रुटि स्वीकार।
शासन, शासन-संरक्षक की स्तुति गाई रच ढालें नव्य।
पैदा किया हृदय में जय के कुछ विश्वास भक्ति कर भव्य[4]।।५।।

दोहा

छोडे जय ने उस समय, पांच बोल निर्दोष ।
सिर्फ निर्जरा के लिए, नही अन्यतम घोप ॥६॥

देते गुरुजान-सामने, लड्डू का दृष्टांत ।
उन्हें निभाने के लिए, काम किया हो शान्त[५] ॥७॥

रामायण-छंद

गण प्रवेश के बाद छोग से जय ने पूछा कितनी वार ।
अव तो कभी न आता होगा मन मे ऐसा वक्र विचार ।
कहा छोग ने सविनय झुककर तीन वार यों मुनि जान में ।
अव तो हो न सकेगा ऐसा कब ही फिर इस जीवन में[६] ॥८॥

लेकिन उनके प्रति जय दिल में प्राक्तन भाव न बह पाया ।
वखशीशे लागू करने का चिन्तन भी कुछ-कुछ आया ।
अनुनय सुन गभीरमल्लजी सिंधी का उपनय पूर्वक ।
कायम रख दी कृत बख्शीशें हो गुरु ने कारुण्य-परक[७] ॥९॥

दी पट्टी नागौर क्षेत्र की छोग हो गये है इन्कार ।
मांगी जब कुछ समय वादमे तव न दिया गुरु ने अधिकार[८] ।
फिर भी रहे विचरते गुरु का शिरोधार्य करके आदेश ।
दीक्षा भी दी एक हाथ से करते धर्म प्रचार विशेष[९] ॥१०॥

दोहा

नव वर्षो के वाद में, छोडा पुनरपि संघ ।
रोग लगा है भीतरी, पडा रंग में भंग ॥११॥

रामायण-छंद

सहयोगी मुनि हसराज का तन होने से रोगान्वित ।
मारवाड़ मे भेजे जय ने छोगव्रती को सुविधा हित ।
तीन साल तक आ न सके है कारणवश वे रहे उधर ।
किन्तु हाजरी (१३ वोलों की) रहे भेजते प्रति वत्सर
त्रिधिवत् लिखकर ॥१२॥

चौमासा सैंतीस साल का जयाचार्य ने फरमाया।
हरखूजी श्रमणी का हरिगढ़ समय ग्रीष्म ऋतु का आया।
पर परिचयवश गई छोग की तरफ छोड़कर अपनी राह।
वे भी उनके सम्मुख आये की मिलजुल कर एक सलाह ।।१३।।

शतोन्नीस छत्तीस साल की शुक्ल तृतीया माधव
(वैशाख) मास।
चार साधु सह पांच साध्वियां पृथक् हुए ले लम्बी आश।
बड़े छोगजी हसराजजी माणकचंद व जोताराम।
हरखू-सेरां-वृद्धां-वरजू-महाकंवर सतियों के नाम ।।१४।।

पुस्तकादि भी साथ ले गये अवगुण बोले गणि-गण के।
जयपुर में स्थित जय-मघवा ने समाचार ये सब सुनके।
हरिगढ (किशनगढ) स्थित कालू मुनि को दी अनुमति
जो पूरे विश्वस्त।
जाकर उनकी तरफ करो क्षेत्रों का पूरा बंदोवस्त ।।१५।।

कालू आदिक चार श्रमण ने किया वहां से शीघ्र विहार।
क्रमशः उनके पीछे आये चलते हुए शहर सरदार।
जिन-जिन गांवों में वे जाते फैलाते जो वितथ-विवाद।
उन-उन गांवों में मुनि कालू वतलाते सच्चा संवाद ।।१६।।

प्रश्नों का उत्तर दे करते जन-जन की शंकाए दूर।
आगम वा गण-विधि बतलाकर भरते श्रद्धा वल भरपूर।
चलते-चलते 'रीडी' पहुचा छोग आदि मुनि श्रमणी-व्रात।
तत्र स्थित संतोप सेठिया से की हरखूजी ने वात ।।१७।।

घर जाकर वोली—श्रावकजी। यहां पधारे पूज्य श्री 'छोगजी)।
हमने तो इस समय सुना था हैं जयपुर में पूज्य श्री (जयाचार्य)।
नहीं-नहीं वे नही पूज्यजी 'छोग' पूज्यजी आये है।
अच्छा ! तो क्या वही 'खोलिया' (शरीर) छोग साथ
मे लाये है ।।१८।।

अगर खोलिया वही सही तो कैसे हुए पूज्य तव वे ।
करते थे प्रत्येक हाजरी मे हो खड़े त्याग जब वे ।
सांस रहे खोली (शरीर) में जब तक नहीं करूं मर्यादा-भंग ।
तो क्या होकर अलग उन्होंने नही किया मर्यादा भंग ॥१६॥

यदि मर्यादा खंडित की तो भैक्षव गण-विधि के अनुसार ।
उनके साथ हमारा कैसे हो सकता वंदन-व्यवहार ।
इस प्रकार संतोषचंदजी का जवाब सुनकर के साफ ।
उत्तर दे न सकी हरखूजी चली गई वापस चुपचाप ॥२०॥

दोहा

जयपुर स्थित जय पास से, अलग हुए मुनि चार ।
जेठ मास मे उस समय, विना कहे अविचार ॥२१॥

रामायण-छन्द

उनमे एक पंथ मे से ही नंदराम आये वापस ।
जय गणपति के गिरे चरण मे गुनह खमाया भर शमरस ।
आत्मालोचन किया सरल हो दड लिया कर मानस शुद्धि ।
हुए रगरत्ता शासन में आई है उनको सद्वुद्धि ॥२२॥

छोटे छोग (१७७)-फौज (२३४)-गिरधारी (२४६)
मजिल कर आगे जाते ।
पथ में कवही तो मिल जाते कवही 'छोग' विछुड़ जाते ।
नही अशन पानी मिलने से संभोगी वनते मन से ।
मिलने से इच्छित भोजन जल तार तोड़ लेते गण से ॥२३॥

ऐसे मनमानी करते थे नही संतुलित था व्यवहार ।
गढ़सुजान मे आकर ठहरे चलते-चलते चक्राकार ।
भाव 'फौज' के ठीक हुए तव प्रस्तुत की सुदर झांकी ।
तत्रस्थित केसर(३१४)श्रमणी की साक्षी से निज निंदा की ॥२४॥

पंचपदों मे नाम सुगुरु का लिया, किया वदन सोल्लास ।
वसुगढ़ मे ले दंड सघ मे आये भोप श्रमण के पास ।
फिर कालू मुनि निकट आ गये पावस हित सरदारशहर ।
छोटे छोग और गिरधारी भी आये सरदारशहर ॥२५॥

कुछ दिन तो वे रहे वहां पर फिर गिरधारी तो चलकर।
बीकानेर नगर में पहुंचे जहां भोप मुनि फौज(२४२)इतर।
चतुर्मास हित गये हुए थे, उनके सम्मुख कर अनुनय।
प्रायश्चित्त ग्रहण कर गण में आये साञ्जलि कर सुविनय ॥२६॥

छोटे छोग छोग(बडे)के शामिल होकर कुछ ही दिन के बाद।
माणक मुनि-माता सेरां को लेकर अलग हुए साल्हाद।
कालू मुनि से कहा पथ मे हमे लीजिए गण मे आप।
चार वार की विनति ठिकाने पर आकर फिर अपने आप ॥२७॥

पर न हुए स्वीकृत मुनिश्री जब तब तीनों ने किया विहार।
चूरू गये वहा पर पन्ना श्रमणी का पावस सुखकार।
सेरांजी तो गण मे आई उनके द्वारा लेकर दण्ड।
फिर तो आजीवन स्थिरता से सयम पालन किया अखंड ॥२८॥

विनति छोग(छोटा)ने जय के सम्मुख गृहिजनद्वारा करवाई।
कच्ची नीति प्रकृति कटुता से सम्मति उन्हें न मिल पाई।
प्रकट चतुर्भुजजी कर अपना सोलह वर्षो का ठागा।
गये स्थान पर छोग 'वडा' के जोड़ लिया उनसे धागा ॥२९॥

कालू मुनि के साथ 'फौज' जो उनको बहला फुसला कर।
फंटा लिया टालोकर जन ने पथ मे गुपचुप बातें कर।
होकर सावन विद ग्यारस को प्रथम प्रहर में गण-वाहर।
मिले छोगजी (बडा) मे जाकर वे बोले है अवगुण बहुतर ॥३०॥

फिर सावन विद चतुर्दशी को सबहां ने शामिल होकर।
स्वीकृत की है नूतन-दीक्षा स्वेच्छापूर्वक निर्णय कर।
उनमे छोग-चतुर्भुज-हस व हरखू वरजू ने अनुगत।
चरण लिया छेदोपस्थापन स्थापित करने अपना मत ॥३१॥

और फोजमल जोतराम सह महाकंवर को स्वाभिप्राय।
सामायिक चारित्र दिया है पर न किया चितन निरपाय।
की प्ररूपणा-सप्तबीस की संवत् तक भैक्षव-गण में।
श्रद्धा सह साधुत्व मानते, फिर न मानते हम मन मे ॥३२॥

इस प्रकार मिल छोग आदि ने जोडा एक वड़ा जत्था।
जयाचार्यवत् वने छोगजी ली कर में शासन-सत्ता।
मुनि स्वरूप जय गुरु-भ्राता सम वने चतुर्भुजजी साकार।
दिया 'फौज' को श्रीमघवावत् युवाचार्य पद का अधिकार ॥३३॥

सती गुलाव प्रमुख ज्यों गण मे वन पाई हरखू मुखिया।
जनता ने सरदारशहर की प्रायः उनका पक्ष लिया।
शहर रत्नगढ़ की जेठां ने दीक्षा ली है छोग-समीप।
फिर आई जय-चरण शरण में जला ज्ञानमय दिल में दीप ॥३४॥

दोप निकाले जयाचार्य में चत्त्वारिंशत् धर कर जोश।
हलकी वाते करते गण की कहते अपने को निर्दोष।
हलचल मची शहर में भारी चर्चा जन-जन के मुख पर।
दोनों दल के सज्जन मिलकर करते गोष्ठी इतरेतर ॥३५॥

वोलचाल की बड़ी चोलना की कालू मुनि ने उस वक्त।
व्यक्ति २ को समझाकर के श्रद्धा में कर दिये सशक्त।
मेघराजजी आंचलिया ने जयपुर स्थित जय को गृहि साथ।
पूछे प्रश्न पत्र के द्वारा उत्तर आये हाथोहाथ ॥३६॥

सुनकर वे सब हुए निरुत्तर दे न सके है सही जवाव।
लोगों का भी भ्रम निकला है चला न उनका रोव रवाव।
पडी फूट उनके आपस में छुप-छुप जन ने समझाये।
पर नतीजा कुछ निकला है नही एक वे हो पाये ॥३७॥

पृथक् चतुर्भुज फौज हुए तव कार्तिक शुक्ला वारस को।
सामायिक चारित्र लिया है मृगसर कृष्णा एकम को।
इस भव के पिछले जीवन मे श्रद्धा और शद्ध चारित्र।
नही गिना समझा अपने मे, रहा रग विन कोरा चित्र ॥३८॥

पीछे छोग आदि पुर-पुर मे रहे घूमते कुछ वत्सर।
हंसराजजी चले गये फिर वीकानेर अलग होकर।
कुछ दिन से हो दूर वने है जोतराम सवेगी फिर।
वरजूजी भी चली गई है छोग एक मुनि में आखिर ॥३९॥

है न अकेले मे संयम वे कहते पहले जन-सम्मुख ।
अब तो लगे मानने, आगम पाठ दिखाते वह सोत्सुक ।
बहु वर्षों तक रहे अकेले हरखू आदिक सतियां तीन ।
घिरे रोग से छोग शेप में क्रमशः सब ही हुए विलीन ॥४०॥

दोहा

वस्तुस्थिति-चित्रण किया, ख्यात आदि स्थल देख ।
अनुश्रुति के आधार से, फिर कितना उल्लेख" ॥४१॥

प्रासंगिक संस्मरण कुछ, लिखता जो भी प्राप्त ।
मिलती जिससे प्रेरणा, पाठक को पर्याप्त ॥४२॥

रुपया सुलटा गिर गया, खिला परीक्षाकार ।
पावन तेरापथ की, की श्रद्धा स्वीकार ॥४३॥

लिये धर्म के व्यक्ति का, है स्वतन्त्र अधिकार ।
इसमें हस्तक्षेप से, होगी बडी दरार ॥४४॥

मुनि बयान-निर्देश हित, जाते बीकानेर ।
करो किराये ऊंट दो, दे हम उसको फेर" ॥४५॥

१. छोगजी रतनगढ (थली) के निवासी, गोत्र से वोरड (ओसवाल) और चतुर्भुजी के छोटे भाई थे। उन्होने अविवाहित (नावालिग) वय मे अपनी माता रुकमाजी (२१८) तथा वड़े भाई चतुर्भुजजी के साथ सं० १६०१ वैशाख कृष्णा १० को आचार्यश्री रायचदजी के हाथ से नाथद्वारा मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

ऋपिराय सुजश ढा० ११ गा० ६ तथा रुकमा सती गुण वर्णन ढ़ा० १ दो० १, २ मे भी दीक्षा से सवधित वर्णन है। पद्य चतुर्भुजजी के प्रकरण मे दे दिये गये है।

२. दीक्षित होने के पश्चात् छोगजी ने साधु-क्रिया में रत होकर ज्ञानार्जन किया। वे पढ-लिखकर अच्छी योग्यता को प्राप्त हुए और सघ मे जाने माने विद्वान् साधुओ की गणना में आने लगे। वोलचाल आदि विपयो पर उनका परामर्श लिया जाता था। जयाचार्य का भी उन पर अच्छा अनुग्रह था। जयाचार्य ने जव साधुओ के छुटपुट कामो के लिए पात्र पंचो की व्यवस्था की तव उनमे छोगजी का नाम मुख्य रूप मे था। यहा तक कि जयाचार्य को जव भावी उत्तराधिकारी के सवंध मे पूछते तव वे तीन नामों मे एक छोगजी का प्रथम नाम लेते थे :—

जन वहु पूछै जय भणी, सखरो युवपद साव।
किण मुनि नै देवा तणा, आप तणा छै भाव।।

तब जय गणपति उच्चरै, छोग-हरख मघराज।
त्रिहुं में पद युव इक भणी, थापण रा छै भाव।।

इम अति कुवं वधावियो, छोग हरप नू हीर।
वीसे युवपद मघनृपति, थाप्यो जांण गंभीर।।

(हरख चोढालियो ढा० ३ दो० १, २, ३)

३. स० १६२० आसोज वदि १३ को चूरू मे जयाचार्य ने मुनि मघवा को युवाचार्य पद प्रदान किया। उस समय तक उनकी भावना सघ व सघपति के प्रति अच्छी थी। जयाचार्य के आदेश से अग्रणी रूप मे विहरण करते थे। यद्यपि इनके अग्रगण्य वनने का सवत् नही मिलता पर स० १६२० की साल इन्हें मारवाड़ मे भेजने का जय सुजश ढा० ४८ गा० ५ मे उल्लेख मिलता है। इससे प्रमाणित होता है कि इनका सिंघाड़ा सं० १६२० मे या उससे पूर्व हो गया था।

४. स० १६२० मे छोगजी के वड़े भाई चतुर्भुजजी गण से अलग हो गये, लेकिन छोगजी की उस समय नीति अच्छी थी, अत. सघ मे रहे। जयाचार्य ने लघुरास मे इसका उल्लेख भी किया है—

"वंधव रै तो संजम री नीत, इण (चतुर्भुजजी) रै स्वार्थ री छै प्रीत।

बाद मे धीरे-धीरे साध्वी हरखूजी (२७५) के सग परिचय से तथा अन्य कारणों से विचारों मे अन्तर पड गया एवं दृष्टिकोण बदलता गया। इसके लिए कुछ बोल-चालों को माध्यम बनाया। स० १९२७ चैत्र बदि १२ को सुजानगढ मे बोलों की खीचातान कर छोगजी 'बडा', हसराजजी (१५१) के साथ गण से पृथक् हो गये। सात प्रहर बाहर रहकर वापस जयाचार्य के चरणो मे गिरे। बहुत विनय-नम्रता कर अपने द्वारा किये गये गुनाह के लिए क्षमायाचना की। गण मे लेने के लिए बार-बार निवेदन करते हुए बोले—"छोरू कुछोरू हुवै, पर माई कुमाइत नही हुवै" इत्यादि।

इस प्रकार छोगजी स्वेच्छा पूर्वक दंड लेकर गण मे आये और हाथ से लेख पत्र भी लिखा—

"आगा थी बोला आश्री आचार्य सू खाच करणै रा जावजीव त्याग छै। महाराजजी महाराज फुरमावै सो हीये बेसाय लेणी। साधपणा ज्यू ए त्याग है। सवत् १९२७ रा चैत विद १३ लिखतु ऋषि छोग लिख्यो सही छै।'

जय सुजश ढा० ५३ गा० २८, २९, ३० मे उक्त घटना का इस प्रकार उल्लेख किया है :—

त्यां चेत कृष्ण बारस दिने कांई, दीर्घ छोग, हंसराज।
गण बाहिर बिहुं निसरचा, करी ताण गमाई लाज॥

सात प्रहर नै आसरै कांई, रहिनै बिहुं गण बार।
तेरस दिन प्रभात रा, गणि चरण लागा सुविचार॥

निज अपराध खमायनै कांई, दंड करी अंगीकार।
वड़े छोगजी निज हाथ सूं कांई, लिखत लिख्यो तिणवार॥

सघ मे आने के पश्चात् वर्षो तक अनेक नई-नई ढाले जोडकर शासन एव शासनपति की स्तवना कर-कर आचार्य श्री के हृदय मे विश्वास पैदा करते रहे। एक ढाल मे उन्होने सघ तथा सघपति के प्रति बड़ी निष्ठा व श्रद्धा भावना व्यक्त की है।

श्री जिन देखणहूंस हुवै दिल, तो देखो नी जय दिदारी जी।
मन शाति करण प्रश्न री, तो गणी श्रुत केवल धारी जी।
महाराजा थारी शोभत गण वन क्यारी,
शासनपति जिनेंद्र तणी पर लागत छिव अति प्यारी।

वीर गोयम री जोड निरखणरी, जो भवि मन मझारी।
तो जय गणपति मुनि मघवा वर, थे लो नयण निहारी जी। महाराजा।

कर्म जोग निकमै जे गण थी, इक वे त्रिण आदि विचारी।
तेह भणो साधु नही गिणवो, वलि नहीं तीर्थ मझारी जी।
थांरी मर्यादा सुखकारी, वर भिक्खु ना वयण अराध्यां उभय
भवे हितकारी जी।

इण ढाल री छेहली गाथा लिखिये छै—

उगणीसै वर्ष तीस माघ वर शुक्ल, सप्तम सुखकारी।
वर गणिराज मर्याद दृढावत, छोग हरख हुसीयारो जी ॥मा०॥

५. जयाचार्य ने छोगजी की अन्तर स्थिति का अध्ययन कर एवं वोलो के लिए उनका तनाव अधिक वढ़ता जानकर स्वेच्छा से निर्दोप समझते हुए भी विशेप निर्जरा के लिए पाच वोल छोड़े।

१. आचार्य के कपड़े न धोना।

२. आचार्य के लिए डेढ़ मास अधिक दिन लगने पर कपड़ा न लाना।

३. चिरमली के वदले कपड़ा न रखना और न भोगवना। ये पहले करने की रिवाज थी।

४. उडघा के वदले में कलशिया, प्याली, पात्र आदि न रखना।

५. सूर्य की कोर लगने के वाद साध्वियो को साधु के स्थान पर न रहना।

इस सवध मे लोग पूछते तो जयाचार्य फरमाते—उनके संयम-निर्वाह के लिए हमने ५ वोल छोड़े है, लेकिन इनमे दोप नही मानते। जिस प्रकार वालक हठ पकड़ लेता है कि या तो मुझे लड्डू दे वरना मैं छत से नीचे गिरूंगा, तव माता-पिता उसे लड्डू देकर वचा लेते है, पर उसे गिरने नही देते। ठीक उसी तरह हमने इनका साधुत्व निभाने के लिए पाच वोल छोड़े है। इसका विस्तृत वर्णन जयाचार्य द्वारा निर्मित निम्नोक्त शीर्पक के निवन्धों से जानना चाहिए।

(१) स० १९२७ में निर्दोप जानकर निर्जरा के लिए ५ वोल छोड़े उनकी विगत।

(२) स० १९३६ मे जयाचार्य द्वारा लिखाये गये वस्त्र, प्रक्षालन विपय के प्रश्न का उत्तर।

६. गण मे आने के पश्चात् छोगजी ने वार-वार विनय नम्रता एवं गण-गणी के गुणानुवाद कर जयाचार्य के हृदय मे कुछ प्रतीति उत्पन्न की। कई वार जयाचार्य उन्हे विनोद मे पूछ भी लेते—'छोगजी! अव तो गण से अलग होने की कभी भी मन मे नही आती होगी?' छोगजी विनम्रतापूर्वक कहते—'गुरुदेव! अव तो निश्चित रूप से कहता हूं कि ऐसी वात कभी नही होगी।'

(मुनि हसराजजी (१५१) की ख्यात के आधार से)

७. व्यक्ति के जीवन [illegible]-चढाव आते रहते है। एक दिन छोगजी का

नाम युवराज पद के लिए सर्वप्रथम लिया जाता था, उन्ही छोगजी के प्रति कुछ कारणो से जयाचार्य के मन मे इतनी अरुचि हो गई कि ऋषिराय द्वारा या स्वयं द्वारा दी गई वखशीशों को वापस लेने की सोचने लगे। उस समय भीलवाडा के प्रमुख श्रावक गभीरलालजी सिघी ने जयाचार्य से विनयपूर्वक प्रार्थना करते हुए कहा—'देव गयो, देवात्तल गयो, कै पित्तल को ही मोल गयो'। देव का देवरूप या प्रतिमा रूप तो नही रहा, पर क्या पित्तल का भी मूल्य चला गया ? अर्थात् जिन्हे युवाचार्य पद देने की सोच रहे थे अव उनकी वखशीशे तो वापस नही लेनी चाहिए।'

जयाचार्य ने उनकी प्रार्थना मानकर पूर्व कृत वखशीशे कायम रखी।

(अनुश्रुति के आधार से)

८. एक वार जयाचार्य ने साधुओ को अलग-अलग विचरने के लिए अलग-अलग प्रान्त दिये। छोगजी ने भी चाहा कि हमे भी कोई प्रान्त मिलना चाहिए। जयाचार्य ने उन्हे नागौर पट्टी (प्रान्त) मे विचरने का आदेश दिया, छोगजी उसके लिए इन्कार हो गये। जयाचार्य ने कहा—'और तो अभी नही।' कुछ समय के वाद अपने साथियो से विचार-विमर्श करके आये और वोले—'खैर ! नागौर पट्टी ही दीजिए। जयाचार्य वोले—'अव तो वह नागौर पट्टी भी नही है। राई के भाव रात को ही चले गये, अव क्या लेना-देना है।'

(अनुश्रुति के आधार से)

९. छोगजी अनेक वर्षो तक सिघाडवध रूप मे विचरे। उनके प्राप्त चातुर्मास इस प्रकार है :—

स० १९२७ गगापुर।

वहां उन्होने मुनि जीवोजी (८६) कृत भिक्षु-दृष्टान्त की जोड़ लिखी थी।

स० १९३५, ३ ठाणा कालू (वलूदा के पास)

(श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मासिक तालिका से)

उनके द्वारा दी गई दीक्षा —

स० १९२३ जेठ सुदि ८ को उन्होने रूपचन्दजी (२०५) 'आमेट' को दीक्षा दी, जो वाद मे गण से अलग हो गए। (ख्यात)

१०. मुनि छोगजी के सहयोगी मुनि हसराजजी के शरीर मे अस्वस्थता होने के कारण जयाचार्य ने मुनि छोगजी को मारवाड के क्षेत्रो मे विहरण करने का आदेश दिया। उन्होने स० १९३४, ३५ और ३६ के तीन चातुर्मास उधर ही किये। कारण योग से वे जयाचार्य के दर्शनार्थ नही आ सके पर सघीय मर्यादा के अनुसार १३ वोलो की हाजिरी लिखकर उधर से आने वाले साधु-साध्वियो के साथ प्रतिवर्ष भेजते रहे।

जयाचार्य ने साध्वी हरखूजी का स० १६३७ का चातुर्मास किसनगढ फरमाया। वे किसनगढ का रास्ता छोडकर छोगजी की तरफ गई। छोगजी भी उनके सामने आये। दोनो ने परस्पर मिलकर वातचीत व गुप्त मत्रणा की। फिर सं० १६३६ वैशाख शुक्ला ३(अक्षय तृतीया)को चार साधु—छोगजी, हसराजजी (१५१), माणकचन्दजी (१६१)और जोतरामजी (२४४) तथा पांच साध्वियां—हरखूजी (२७५), सेराजी (३२०), वृद्धाजी (२६३), वरजूजी (३६६) और महाकवरजी (४३३) गण से पृथक् हो गए। गण के अवर्णवाद वोले और सघीय पुस्तको को साथ ले गए।

उस समय जयाचार्य युवाचार्य मघवा आदि साधु-साध्वी परिवार से जयपुर मे विराज रहे थे। उन्होने जव यह समाचार सुना तो किसनगढ मे स्थित मुनि कालूजी (१६४)को छोगजी की तरफ विहार करने का एव श्रद्धा के क्षेत्रो को सभालने का आदेश दिया। तव मुनि कालूजी ने अपने सहयोगी तीन मुनियो—गणेशीलालजी (२२०) छवीलजी (२३०) व कुसालजी (२४५) सहित तुरन्त छोगजी की तरफ विहार कर दिया। छोगजी आदि जिन-जिन क्षेत्रो मे जाते एव लोगो को भ्रान्त करते उन-उन क्षेत्रो मे मुनि कालूजी आदि पधार कर गण-मर्यादा के अनुसार प्रश्नो का जवाव देकर लोगो को निशक कर देते। क्रमश. छोगजी आदि सरदारशहर गये। मुनि कालूजी भी वहां पहुच गए।

(छोगजी की ख्यात)

मुनि छोगजी 'वडा' तथा साध्वी हरखूजी आदि सरदारशहर पहुचने के पहले 'रीड़ी' (वीदासर-डूगरगढ के वीच) ग्राम मे गए। वहां शासन-निष्ठ श्रावक सतोपचन्दजी (दीपचन्दजी के दादा) सेठिया के घर पर जाकर साध्वी हरखूजी ने कहा—'श्रावकजी! यहां पर पूज्यजी महाराज पधारे है और आपने अभी तक दर्शन भी नही किये।' श्रावक सतोपचन्दजी—'हमने तो सुना था कि पूज्यजी महाराज (जयाचार्य) जयपुर मे विराज रहे हैं, फिर अकस्मात् इतने जल्दी यहा कैसे पधार गये?'

हरखूजी—'नही, नही, वे पूज्यजी महाराज नही, पूज्यजी महाराज छोगजी पधारे है।'

श्रावकजी—'अच्छा! तो क्या छोगजी उसी 'खोलिया' (शरीर) मे है या उसे वदल कर आये है? यदि खोलिया वही है तो पूज्यजी महाराज कैसे हुए? क्योकि वे 'हाजरी' (साधुओ की उपस्थिति) मे खडे होकर लोगो के समक्ष ऐसा परित्याग करते थे कि जव तक खोली मे सास रहेगा तव तक गण की मर्यादाओ का भग नही करूगा। क्या उन्होने सघ से पृथक् होकर सघीय मर्यादाओ को खडित नही किया? यदि मर्यादाओ का भग कर दिया है तो शासन-विधि के अनुसार हम श्रावको का उनके साथ वंदन आदि व्यवहार कैसे हो सकता है।'

इस प्रकार स्पष्ट उत्तर सुनकर साध्वी हरखूजी चुपचाप अपने स्थान पर चली गई। (श्रुतानुश्रुत)

छोगजी के पृथक् होने के कुछ ही दिन बाद जेठ महीने मे जयपुर मे जयाचार्य के पास से चार साधु—नन्दरामजी (२२८), छोगजी (१७७) 'छोटा', फौजमलजी (२३४), गिरधारीजी (२४६) प्रच्छन रूप मे गण से अलग हो गये। उनमे से एक साधु नदरामजी तो रास्ते मे से वापस आकर जयाचार्य के चरणों मे समर्पित हो गए और अपने द्वारा किये गए अपराध के लिए सरल हृदय से क्षमायाचना की एव आत्मालोचन पूर्वक प्रायश्चित लेकर सघ में सम्मिलित हो गये। छोगजी, फौजमलजी और गिरधारीजी रास्ते मे आहार-पानी न मिलता तब तो स्वेच्छा पूर्वक गण से सबध शामिल कर लेते और कहते कि हमने गुरुदेव को वदना कर ली है। फिर दूसरे दिन आहार-पानी अनुकूल मिल जाता तब गण से सबध विच्छेद कर लेते। कही-कही गण के अवर्णवाद बोलने लग जाते।

इस प्रकार चलते-चलते वे सुजानगढ़ पहुचे। फौजमलजी (२३४) की भावना अच्छी होने से उन्होने वहा विराजित साध्वी श्री केशरजी (३१४) के सम्मुख अपनी आत्म-निन्दा की एव पांच पदो मे गुरुदेव का नाम लेकर वन्दना की। फिर रतनगढ मे विराजित मुनि श्री भोपजी (२१०) के पास प्रायश्चित लेकर वे गण मे आ गए। तत्पश्चात् उन्होने मुनि श्री कालूजी के साथ सरदारशहर में चातुर्मास किया।

छोगजी 'छोटा' तथा गिरधारीजी भी सरदारशहर पहुचे। वहां कुछ दिनों तक तो वे दोनो साथ रहे फिर गिरधारीजी बीकानेर गए और वहा चातुर्मास करने के लिए मुनि श्री भोपजी (२१०), फौजमलजी (२४२) पधारे हुए थे, उनके पास विनय नम्रतापूर्वक प्रायश्चित लेकर सघ मे सम्मिलित हो गए। छोगजी 'छोटा' आषाढ शुक्ला १० को सरदारशहर मे छोगजी 'बडा' के सम्मिलित हो गए। सात दिन शामिल रहने के बाद सावन वदि २ को छोगजी 'बड़ा' के सहयोगी सत माणकचन्दजी (१६१) तथा अपनी ससार-पक्षीया माता साध्वी सेराजी (३२०) को फटाकर अलग हो गए। मुनि श्री कालूजी को गण मे लेने के लिए चार बार ठिकाने पर आकर तथा रास्ते मे मिलने पर प्रार्थना की। परन्तु मुनि श्री ने उन्हे गण मे सम्मिलित नही किया तब सावन वदि ३ को सरदारशहर से विहार कर चूरू गये। साध्वी सेराजी वहा विराजित साध्वी श्री पन्नांजी (१२६) के समीप अपनी आत्म-निन्दा कर एव प्रायश्चित लेकर गण में आ गई। छोगजी 'छोटा' ने गृहस्थों द्वारा जयपुर मे विराजित जयाचार्य को सघ मे लेने के लिए नम्रता पूर्वक निवेदन करवाया। किन्तु जयाचार्य ने कच्ची नीति व प्रकृति कठोरता के कारण-बिल्कुल मना कर दिया। तब छोगजी और माणकचदजी साथ मे रहे। कुछ वर्ष बाद दोनो अलग-अलग हो गए।

इधर सरदारशहर मे चतुर्भुजजी अपना १६ वर्षो का 'ठागा' उघाड़ कर छोगजी 'वडा' के साथ हो गए। मुनि कालूजी के साथ जो मुनि फौजमलजी थे, उन्हे वहिर्भूत साधुओ ने शौचार्थ व गोचरी के समय गुपचुप वाते कर फटा लिया जिससे वे सावन वदि ११ को गण से अलग होकर उनके शामिल हो गये और शासन की निन्दा करने लगे।

तत्पश्चात् सावन वदि १४ के दिन गण से वहिर्भूत सभी साधु-साध्वियों ने नई दीक्षा ग्रहण की। उनमें १. मुनि छोगजी 'वड़ा' २ चतुर्भुजजी ३. हंसराजजी तथा ४ साध्वी हरखूजी ५. वृद्धांजी ६. वरजूजी ने छेदोपस्थापनीय चारित्र स्वीकार किया और १. मुनि फौजमलजी २. जोतरामजी तथा ३. साध्वी महाकवरजी को सामायिक चारित्र दिया। जनता के समक्ष उन लोगो ने ऐसी प्ररूपणा की कि हम स० १९२७ तक गण मे साधुपना समझते हैं, उसके वाद नही।

इस प्रकार छोगजी आदि ने मिलकर एक नये संघ की स्थापना की और उसका नाम 'प्रभु पथ' दिया। जयाचार्य के स्थान पर छोगजी को स्थापित किया। मुनि श्री स्वरूपचंदजी (जयाचार्य के ज्येष्ठ वधु) के स्थान पर चतुर्भुजजी को, युवाचार्य मघवागणी के स्थान पर फौजमलजी (जिनका सिर गंजा था जिससे उन्हें टाटिया कहते थे) को तथा साध्वी प्रमुखा गुलावांजी के स्थान पर हरखूजी को नियुक्त किया।

वे सव पहले पीछे करके १९ साधु-साध्वी हो गए थे। उनकी सूची इस प्रकार है :—

साधु	गणवाहर संवत्
१. छोगजी (१३८) 'वड़ा'	१९३६ वैशाख सुदि ३
२. हंसराजजी (१५१)	,, ,,
३. माणकचंदजी (१६१)	,, ,,
४. जोतरामजी (२४४)	,, ,,
५. छोगजी (१७७) 'छोटा'	१९३६ जेष्ठ मे पांचवी वार
६. फौजमलजी (२३४)	१९३६ जेष्ठ मे

फिर फौजमलजी ने चतुर्भुजजी के साथ अलग होकर सामायिक चारित्र लिया। लेकिन परस्पर अनवन होने से स० १९३७ मे मुनि भवानजी (१२०) के पास नई दीक्षा लेकर वे गण में आये। फिर स० १९६० मे गणवाहर हुए।

७. रूपचन्दजी (२०५)

इन्होने छोगजी 'वड़ा' द्वारा सं० १९२३ जेठ सुदि ८ को दीक्षा ली। स० १९२५ मे छोगजी के पास से अलग होकर चतुर्भुजजी में चले गए।

स० १९२६ मे नई दीक्षा लेकर वापस आये। फिर स० १९३३ चेत वदि २ को निकल कर इधर-उधर भटकते रहे। पीछे स० १९४१ मे छोगजी के शामिल हो गए।

८. गंगारामजी (२१५)

ये स० १९३६ आपाढ महीने मे श्रावक के व्रत धारण कर गण से निकले। मुनि वेप मे रहे, कितने दिन निन्दा न की। फिर वापस गण मे लेने के लिए प्रार्थना की पर नही लिया। वाद मे छोगजी के सम्मिलित हो गए।

(१) चतुर्भुजजी (१३७) सं० १९२० में गण वाहर।

(२) जोरजी (२२९)

इन्होंने स० १९२८ मे दीक्षा ली। सं० १९३४ मे गण से अलग होकर चतुर्भुजजी मे मिले।

(३) किस्तूरजी (१८५)

ये स० १९२४ मे गण से तीसरी वार अलग होकर चतुर्भुजजी मे मिले। फिर पागल होकर अनेक विपरीत काम किये। फिर साधु वनकर चतुर्भुजजी मे मिले। फिर रीणी में अधिक पागल होने से गृहस्थो ने वन्दोवस्त किया। फिर जव चतुर्भुजजी से आसकरणजी क्षत्री अलग हुए तव ये साधु वनकर आसकरणजी के शामिल हो गए। कई महीनों तक दोनो साथ रहे, फिर दोनो चतुर्भुजजी मे मिले। फिर किस्तूरजी चतुर्भुजजी से पृथक् हो गए।

(४) आसकरणजी क्षत्री—

इनको चतुर्भुजजी ने स० १९२२ के चातुर्मास के वाद अपना चेला वनाया।

(५) हजारीमलजी (२११)

ये स० १९३८ जेठ सुदि १४ को गण से प्रच्छन्न रूप में निकले। बहुत वर्षो तक अकेले रहे। फिर चतुर्भुजजी की श्रद्धा स्वीकार कर, सामायिक चारित्र लेकर उनमे मिल गए।

साध्वियां—

(१) हरखूजी (२७५)	१९३६ वैसाख सु० ३
(२) सेराजी (३२०)	,, ,,
(३) वृद्धांजी (२९३)	,, ,,
(४) वरजूजी (३९६)	,, ,,
(५) महाकवरजी (४३३)	,, ,,
(६) जेठांजी (४९८)	,, ,,

जेठाजी रत्नगढ निवासिनी थी। इनके ससुराल वाले टालोकरों की श्रद्धा मे थे, जिससे इन्होने स० १९३७ के छोगजी, चतुर्भुजजी के चातुर्मास मे हरखूजी

के पास दीक्षा ग्रहण की। बाद मे उनको छोड़कर सं० १६३८ वैशाख वदि ५ को गण समुदाय मे दीक्षित हुई। ऐसा मघवागणि रचित 'जेठां सती गुण वर्णन ढा० १' मे उल्लेख है।

साध्वी जेठाजी (४६८) की पूरी घटना उनके प्रकरण मे अथवा मघवागणि रचित 'जेठा सती गुण वर्णन' ढ़ाल से जाननी चाहिए।

छोगजी और हरखूजी ने गण से अलग होकर जयाचार्य मे ४० दोष बताये थे। उनमे कितने बोलो में दोष और कितने बोलो मे शका कहते। वे बोल निम्न प्रकार है :—'वड़ा छोगजी, हरखूजी गण में दोष काढ्या तथा कैयकनै शका कहै ते बोल लिखिये छै'।

(१) कपड़ा धोवै आचार्य रा।

(२) चिरमली टोले दीठी एक राखणी, ठाणा ५ हुवो ७ हुवो २।३ हुवो।

(३) चोमासा उपरान्त दिक्षा रै वास्ते १५ दिन रहै ते दोप।

(४) दोढ मास उपरान्त कपडो ल्यावता लागै ते दोप।

(५) वडा के लारै छोटो चोमासो करै ते संका।

(६) नवा आयां त्या घर फर्श्या ते दूजा भोगवै ते शंका।

(७) मेह वरसता तमाखू न मसलणी मसले तो छाटा लागता परठणो पडै तिण मू।

(८) मैंण रात न राखणो।

(९) पात्रो तूंवो रोगांन रे वास्ते न राखणो न वावरणो।

(१०) ओघा री दाडी पूजणी री दाडी एक उपरत न राखणी।

(११) पेट साध्वी कनै न मसलावणो इमहीज साधु कनै न मसलणो।

(१२) सूर्य री कोर दव्या पछै साध्वी नै ठिकाणै न रहणो।

(१३) अठाई तेलादिक रे पारणे पहिले दिन तथा उण दिन कहै माहरै पदारो तो न जाणो।

(१४) वाजोट एक हाथ मू न उठै तो न ल्यावणो, मोरां ऊपर, खाधा ऊपर न ल्यावणो।

(१५) आचार्य रे पगमंडा न करणा टेलता।

(१६) ग्रहस्थ साधु उतरचा तिण एक खड मे गोवर वेलू री लीक पाल कर नै कल्प करै तो तिण मे न रहणो।

(१७) आहार करता नै ओर ही साधु री आर्या माखी उडावै।

(१८) चिरमली रो कपडो ओढै पहरै तो दोप।

(१९) वहुमोलो एक आक उपरत ओढै पहरे ते दोप।

(२०) रेत राख जणां जणां री भेली न राखणी पलेवणी दोरी आवै भेला सू।

(२१) कवाडीया रो न लेणो ते चुलीया रो न लेणो कुलावा रो लेणो।
(२२) गृहस्थ रे घरे गयो ते कहै हूं आज न वहरावू काल वहरासूं ते न लेणो।
(२३) जिण घरे वहरयो तेहनो हाट प्रमुख में दूजै दिन न वहरणो।
(२४) ठिकाणे तमाखू उपरत न वेहरणी।
(२५) तेला अठाई पारणै गृहस्थ कहै भावना भावू तो न जाणो।
(२६) वडो छोटा रै आगै हाथ जोडै ते न जोडणा।
(२७) आर्यां नै दिन ऊग्यां पहली पलेवणादि काम अर्थे साधां रे ठिकाणे न आणो।
(२८) रोगांन २।। महीना सू अधिक न राखणो।
(२९) उडगा रा कल्प मे पात्रा लोट न राखणा।
(३०) मेह में अन्य जागां सू आचार्य रे वास्ते असण पाणी आदि न ल्यावणो।
(३१) एक आंख वाला नै इन्द्री हीण नै दीक्षा न देणी।
(३२) गांम वारै तथा गांम मे आर्यां वा साध राख नै कल्प कर नै घर फर्शावै।
(३३) रोगांन वारे महीना सासतो राखै ते न राखणो।
(३४) आहार करै जरे ऊपर चंद्रवो राखै ते न राखणो।
(३५) आखो परेडो हुवै जिण घर को पाणी न लेणो।
(३६) मेह आवतो देखे जेरे पेली पात्रा लेइने गृहस्थ रे घरे जाय वेठै।
(३७) मेह में दिसा जाय जरे ठाम अधिक साथे ले जावै गृहस्थ रे छाजा हेठे होयने आहार ल्यावै।
(३८) आखो थान न राखणो पछेवड़ी को वैत कर नै राखणो।
(३९) वडा कनै हाथ जोडावै जवरदस्ती सू ते न जोडावणा।
(४०) रजाई आघो गदरो रूई री गीदी त्यांरै सघटै न वेहरणो।

मुनि श्री कालूजी ने छोगजी द्वारा प्ररूपणा एवं वोलचालों के संदर्भ में गृहस्थो के सम्मुख काफी छानवीन की। उस समय सरदारशहर निवासी श्रावक मेघराजजी आचलिया ने जयपुर के प्रमुख श्रावक लाला भैरूलालजी को पत्र देकर जयाचार्य से प्रश्न पूछे एवं जयाचार्य द्वारा दिये उनके उत्तरो को धारकर उन्होने वापस सरदारशहर भेजा। उसकी मेघजी को सूचना मिलने के पहले ही गण से वहिर्भूत साध्वी हरखूजी ने प्रच्छन्न रूप मे उसे जांच लिया। मुनि कालूजी को जव यह खवर मिली तो उन्होंने मेघजी को कहा—'हमनेसुना है कि जयपुर से पत्र आया है, क्या यह वात सही है?' वे वोले मुझे ज्ञात नही है। मैं

जानकारी करूंगा। उन्होने तत्काल घर पर आकर पूछा तो उत्तर मिला—'पत्र आया तो था पर उसे साध्वी हरखूजी जांचकर ले गई।'

उन्होने ठाकरसीजी को वहां से कागद लाने के लिए कहा। उन्होने कहा—'क्या वे मुझे कागद दे देंगी?' मेघजी वोले—'दे देंगी।' इस प्रकार कह कर उन्हे वहां भेज दिया और स्वय उनके पीछे-पीछे गये। ठाकरसीजी ने हरखूजी से पत्र मांगा तो उन्होंने कहा—'मैं पत्र को जांचकर ले आई हू अत वापस देना नही कल्पता।' यह वात नीचे खड़े हुए मेघजी ने सुनी और वे तत्काल ऊपर जाकर जोर से वोले—'कागद को यहां रख दो अन्यथा आप जानती हैं या नही कि मेरा नाम मेघजी है।' तव हरखूजी ने शीघ्र पत्र दे दिया।

उक्त पत्र मे आये हुए जवावो को सुनकर छोगजी और चतुर्भुजजी निरुत्तर हो गये और उनके परस्पर भारी टकराव खड़ा हो गया। उस समय उनके अनुयायियो ने गुप्त रूप से दोनो को समझाने का तथा सामजस्य विठाने का वहुत प्रयत्न किया परन्तु कुछ भी समझौता नही हो सका तव कार्त्तिक शुक्ला १२ को चतुर्भुजजी फौजमलजी को साथ लेकर छोगजी 'वडा' से पृथक् हो गये और मृगसर वदि १ को उन्होने पुन. सामायिक चारित्र ग्रहण किया। अपने पिछले जीवन मे चारित्र का स्पर्श हुआ भी नही समझा।

छोगजी 'वडा' चातुर्मास के वाद कुछ समय तक ग्राम-ग्राम मे घूमते रहे। उनके साथ के हंसराजजी स० १९३८ वीकानेर मे मृत्यु प्राप्त हो गये तत्पश्चात् जोतरामजी उनसे अलग होकर सवेगी साधु वन गए। साध्वी वरजूजी भी मृत्यु को प्राप्त हो गई। छोगजी 'वडा' अकेले रह गए। शरीर मे अस्वस्थता भी वहुत रही। वे पहले अकेले मे साधुपना नही समझते थे परन्तु अव गण से वहिर्भूत फतेहचंदजी अकेले साधु के लिए जो सूत्र का पाठ दिखाते थे वही पाठ दिखाने लगे और अकेले मे साधुपना मानने लगे।

इस प्रकार काफी समय तक छोगजी 'वडा' अकेले रह गए। हरखूजी आदि तीन साध्विया रही जो उनके साथ घूमती रही।

(छोगजी की ख्यात)

छोगजी से सवधित घटना व प्रश्नोत्तर निम्नोक्त स्थलो मे है :—

१. ख्यात।

२. मेघजी आचलिया के प्रश्न के उत्तर का पत्र (निवध)।

३. स० १९२७ तक गण मे साधुत्व मानने सवधी प्रश्न के उत्तर का पत्र (निवध)।

४. स० १९२७ मे निर्दोप जानकर विशेष निर्जरा के लिए पाच वोल छोड़े। (निवध)।

५. स० १६३६ मे जयाचार्य द्वारा लिखाये गए वस्त्र प्रक्षालन विषय के प्रश्न का उत्तर (निबंध)।
६. स० १६३६ मे छोगजी के अलग होने की बाद की स्थिति का तथा उनके द्वारा कही गई विविध बातो का उल्लेख (निबंध)।

११. छोगजी के प्रसंग की कुछ घटनाएं निम्न प्रकार है :—

(क) एक व्यक्ति ने सोचा—मुझे गुरु धारणा करनी है, पर इसकी पहले परीक्षा कर लेनी चाहिए कि तेरापंथी साधु अच्छे है या छोगजी आदि। इसके लिए उसने निर्णय किया कि यदि चांदी का रुपया सीधे सिक्के की तरफ गिरेगा तो तेरापथी साधु अच्छे है और उलटी तरफ गिरेगा तो छोगजी। उसने रुपये को उछाला तो वह सीधा गिरा। तब उसने अपने कृत निर्णय के अनुसार तेरापंथ की गुरु धारणा स्वीकार कर ली। उस समय के व्यक्ति ऐसे सरल-हृदय एव भद्र प्रकृति वाले थे।

(ख) सरदारशहर के भाई प्रायः छोगजी के प्रवाह मे आकर उनके अनुयायी बन गये। पर बहनो के हृदय मे आचार्य भिक्षु एव भिक्षु-शासन के प्रति गहरी श्रद्धा थी। उनकी नस-नस कसूम्बे की तरह धर्म से रगी हुई थी। पुरुषो की इच्छा थी कि हमारे घरो की बहनें भी हमारे गुरु छोगजी के चरणो मे सर झुकाए और उन्हे गुरु रूप मे स्वीकार करें। जब उन्हे इस विषय मे कहा गया तो दृढ़धर्मिणी बहनो के मुख से एक ही आवाज निकली कि आप घर के मालिक हैं, घरेलू कार्य आप चाहे जो करा सकते है, पर धर्म आत्मा की चीज है, इसे आप परिवर्तित नही करा सकते।' फिर भी उन पर दबाव डालते हुए कहा कि तुम्हे हम तेरापथी साधु-साध्वियो के पास नही जाने देंगे, जाना हो तो छोगजी के यहां जाओ, अन्यथा घर मे बैठी रहो। बहनो ने दृढ़ता के स्वर मे कहा—'आपका अधिकार हमारी इन चूडियो पर है, न कि हमारी आत्मा पर, अत. हम चाहेगी उसी धर्म का पालन करेंगी। आप इसमे बाधक क्यो बनते हैं? हम किसी बुरे कार्य मे प्रवृत्त हो तब तो आपका कर्त्तव्य है कि आप हमे रोके, पर सत्य धर्म के पालन मे रुकावट डालना उचित नही है। आप लेना चाहे तो ये हमारी चूडिया अभी ले सकते है पर तेरापथी साधु-साध्वियो के पास जाना बन्द नही हो सकेगा।' इनका उत्तर सुनकर भाई लोग चुप रह गये। बहनो का आना-जाना पहले की तरह चालू रहा।

(ग) एक बार सरदारशहर के कुछ विरोधी बंधुओ ने एक षड्यन्त्र रचा कि तेरापथी साधुओ को अमुक विषय मे बयान दिलवाया जाए। इसके लिए वे छोटे मोटे राजकर्मचारी से तो मानने वाले हैं नही, अतः बीकानेर से ऐसा आदेश लाए कि जिससे उन्हे अपने सिद्धांतो से सम्मत न होते हुए भी बाध्य होकर बयान देना पड़े। बीकानेर जाने के लिए ऊटो की खोज करते-करते भोजन के

समय मे कुछ विलम्ब हो गया। वाद मे घर आने पर वहनो द्वारा पूछा गया तो वोले—'तेरापथी साधुओ को वयान का आदेश लाने के लिए वीकानेर जाना था। उसके लिए ऊटो की खोज करने चले गए अत. विलम्ब हो गया।' वहनो ने हार्द को पकडते हुए उत्तर दिया—'अच्छा ! साधुओ को वयान दिलवाने का आदेश लेने के लिए आप वीकानेर जा रहे है तो दो ऊट भाडे पर लाना।' वे वोले—'दो क्यो ?' वहनों ने स्पष्टीकरण किया—'एक तो आपके लिए जो कि आप उनके लिए वयान का आदेश लेने जा रहे है और एक हमारे लिए जो हम उसका जवाव दावा करेंगी। इसके लिये वाद मे न जाकर आपके साथ ही चली जाए तो आपको हमारी रखवाली के लिए फिर नही जाना होगा, और अभी आपको वहा भोजन पकाने आदि की सुविधा भी रहेगी।' भाई लोग सुनकर शान्त हो गए।

इस प्रकार समय-समय पर वहनों ने डटकर मुकावला किया और सफलता प्राप्त की। वहनो की हार्दिक भक्ति एव वास्तविक श्रद्धा से ही उस समय सरदारशहर वहनो का क्षेत्र कहलाता था।

(अनुश्रुति के आधार से)

१३६।३।५२ मुनि श्री नेमजी (दौलतगढ़)

(संयम पर्याय सं० १६०२-१६३६)

गीतक-छन्द

'नेम' दौलतगढ़ निवासी भूमि में मेवाड़ की ।
पोरवाल सुवंश चोटी चढ़े विरति-पहाड़ की ।
छोड़ भाई वहन माता धर्म-पत्नी स्वजन गण ।
कृष्णगढ़ में हुये दीक्षित 'जय' चरण की ले शरण[१] ।।१।।

विरागी त्यागी सजग स्वाध्याय चिंतन ध्यान मे ।
गहनतम की आगमो की धारणा रम ज्ञान में ।
पाठ तो स्थानांग के कितने किये कंठस्थ है ।
सूत्र-वाचन अधिकतर कर हो गये आतमस्थ हैं[२] ।।२।।

पालकर चोतीस वत्सर शुद्ध संयम धैर्य धर ।
अन्त में अनशन किया है भावना से ऊर्ध्वतर ।
मुहूर्त्तान्तर से फला है हर्ष अभिनव छा गया ।
तीस पर छह साल का शुभ मास आश्विन आ गया[३] ।।३।।

१. मुनि श्री नेमजी मेवाड़ में दौलतगढ़ के निवासी और जाति से पोरवाल (लोहड़ा साजन) थे। उन्होने माता, भाई, बहिन तथा पत्नी को छोड़कर सं० १६०२ भाद्रव कृष्णा ६ को युवाचार्य श्री जीतमलजी के हाथ से कृष्णगढ में दीक्षा स्वीकार की। (ख्यात)

ख्यात में उनका ग्राम दौलतगढ़ लिखा है और जय सुजश में 'कीडीमाल' से आकर दीक्षित होने का उल्लेख है :—

त्यां (किसनगढ़) चौमासे लघु नेमजी, कीडीमाल थी आय।
वनिता तज जय मुनि कनै, लियो चरण सुखदाय ॥
(जय सुजश ढा० ३० दो० २)

इसका तात्पर्य यही लगता है कि वे मूलतः दौलतगढ के निवासी थे और कीडीमाल (दौलतगढ के समीप) मे रहने लगे हों।

२. मुनि श्री ने विद्याध्ययन कर जैनागमो तथा तात्त्विक बोल थोकड़ों की अच्छी धारण की। अनेक सूत्रों का अनेक बार वाचन किया। स्थानाङ्ग सूत के कई पाठ कठस्थ किये। ज्ञान-ध्यान मे तल्लीन रहकर जीवन को सफल बनाया। (ख्यात)

३. उन्होने ३४ वर्ष लगभग सयम का पालन कर अन्त में एक मुहूर्त्त के अनशन से स० १६३६ के द्वितीय आसोज मे पडित-मरण प्राप्त किया। (ख्यात)

शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २१६ से २२१ मे प्रायः ख्यात की तरह ही वर्णन है पर वहा स्वर्गवास-तिथि आश्विन कृष्णा १ लिखी है जो ख्यात की शब्दावली है—'सथारो सं० १६३६ द्वितीय आसोज १ मुहूरत आरारै आयो' को समझने की भूल से लिखी गई है। सत विवरणिका आदि में भी वैसा ही अनुकरण हो गया है।

सत विवरणिका मे लिखा है कि वे अग्रगण्य हुए पर चातुर्मास एक भी उपलब्ध नही है।

१४०।३।५३ श्री हमीरजी (वदनोर)

(दीक्षा सं० १६०२, १६१० मे गण वाहर हुए)

रामायण-छन्द

थे 'हमीर' वदनोर निवासी गोत्र चौधरी-वोरदिया।
दो की साल मार्ग विद छठ को कठिन साधना-मार्ग लिया[1]।
आठ वर्ष तक रहे भिक्षु-शासन में तप भी वहुत किया।
लेकिन लगा कर्म का धक्का जिससे सत्पथ छोड़ दिया ॥१॥

दस की साल 'डवोक' गाव मे जीव और धनजी के सग।
अलग हो गये गण-वनिका से करके मर्यादा का भंग।
'जीव' दण्ड ले वापस आये समझाने से श्रावक के।
धन, हमीर ने अवगुण वोले शासन शासन-नायक के[2] ॥२॥

दोहा

दोनों गढ हनुमान की, तरफ रहे धर आश।
मृत्यु हुई धन की वहा, हुआ हमीर हताश ॥३॥

रामायण-छन्द

मुडित किया एक खाती को टिक न सका वह भी वहु काल।
एक गाव मे रहे अकेले निराधार वन कर वहु साल।
द्वेप भावना मन्द हुई कुछ गति-विधि मानस की वदली।
शतोन्नीस अड़तीस हयन मे ग्रसित कर गया काल वली[1] ॥४॥

१. हमीरमलजी मेवाड़ में बदनोर के वासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से बोरदिया 'चौधरी' थे। उन्होंने सं० १९०२ मृगसर वदि ६ को दीक्षा ग्रहण की। (ख्यात)

उनकी दीक्षा युवाचार्य जीतमलजी के द्वारा हुई थी :—

हिवे चौमासो ऊतरयां, दिक्षा ग्रही हमीर ।
युवराजा जय मुनि कनै, तिरण अथग भवनीर ॥

(जय सुजश ढा० ३० दो० ४)

ख्याति आदि मे उनके दीक्षा-स्थान का उल्लेख नही है। पर उस वर्ष युवाचार्य श्री का चातुर्मास किसनगढ मे होने से लगता है कि उनकी दीक्षा किसनगढ में उक्त तिथि को हुई।

२. सं० १९१० के चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य ने मालव-यात्रा के लिए प्रस्थान किया। वे जिस दिन कानोड पधार रहे थे उस दिन 'डवोक' ग्राम मे मुनि श्री मोतीजी 'वडा' (७७) के साथ से तीन मुनि १ हमीरजी २ धनजी (९२) और जीवोजी (११३) गण से अलग हो गये। उनमे से मुनि जीवोजी तो राजनगर के श्रावक लिखमीचदजी द्वारा समझाने से प्रायश्चित लेकर वापस गण में आ गये। हमीरजी और धनजी गण से अलग ही रहे और बहुत अवर्णवाद बोले :—

शहर कानोड पधारतां, वड़ा मोती मुनि लार ।
गांव डवोक मे डूबिया, तीन मुनि भव वार।
थयो जीवराज (११३) लघु कर्म वश, कर्म जवर जो धार ।
धनजी (९२) नैं दीधो धको, हमीर गयो भव हार ।
राजनगर वासी जवर, लिखमीचन्द जई लार ।
दंड दराय समझाय नें, लियो लघु जीव नैं तार ।
दोय जणा समझ्या नहीं, वदता अवर्णवाद ।
जवर कर्म जिण जीव नें, ते किम लहै समाध ॥

(जय सुजश ढ़ा० ४० दो० २ से ५)

तीन थया गण वार रे, धनो हमीर नन्दजी ।
विण पूछैं हुआं खुवार रे, अजेस पाछा नाविया ॥

(आर्या दर्शन ढा० २ गा० ७)

उक्त जय सुजश मे मुनि जीवोजी और 'आर्या दर्शन' कृति मे नंदोजी (१२१) का नाम है। इसका कारण यह है कि मुनि जीवोजी गण वाहर होकर कुछ ही दिनो वाद वापस गण मे आ गये थे इसलिए 'आर्या दर्शन' मे उनका नाम नही

है। नदोजी उसी वर्ष गण से अलग हुए थे अतः उस वर्ष के क्रमानुसार 'आर्या-दर्शन' में उनका नाम है।

३. हमीरजी और धनजी दोनों हनुमानगढ की तरफ चले गये। धनजी कुछ समय पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हो गए। तत्पश्चात् हमीरजी ने एक खाती को दीक्षित किया किन्तु वह भी उनके साथ नही टिक सका। फिर अकेले हमीरजी एक गाव मे अनेक वर्षो तक रहे। समयान्तर से सघ के प्रति द्वेष भावना भी कम हो गई। आखिर स० १६३८ में उनका देहान्त हो गया।

(ख्यात)

१४१।३।५४ श्री देवदत्तजी (पंजाब)

(दीक्षा सं० १६०२, कुछ दिन वाद गणवाहर हुए)

रामायण-छन्द

'देवदत्त' पंजाव प्रान्त के स्वीकृत करके मुनि-जीवन[1]।
समयान्तर से अलग हो गए रख न सके हैं संयम-धन।
फिर भी सम्मुख रह पाये हैं शासनपति वा शासन के।
भक्ति वहुत मुनि सतियों के प्रति, दर्शन करते मुनि जन के ॥१॥

दोहा

चार दिनों का आ गया, अनशन आखिरकार।
लोगों के मुख से सुना, अच्छे रहे विचार[2] ॥२॥

१. देवदत्तजी पंजाव प्रान्त के रहने वाले थे। उन्होंने सं० १६०२ में दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

२. वे गण से अलग हो गये, ऐसा ख्यात मे उल्लेख है।

सेठिया संग्रह में लिखा है कि वे कुछ दिन वाद गण से पृथक् हुए।

अलग होने के वाद वे शासन के सम्मुख रहे। साधु-साध्वियो के प्रति हार्दिक भक्ति रखते और साधुओ के दर्शन करने के लिए आते।

अंत मे चार दिनो के अनशन से मृत्यु को प्राप्त हो गये।

(ख्यात)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ सोरठा २२३ मे ख्यात की तरह ही उल्लेख है।

१४२।३।५५ श्री कुशालजी (ताल लसाणी)

(दीक्षा सं० १६०२, १६०४ में गणबाहर हुए)

रामायण-छन्द

'ताल लसाणी' में 'कुशाल' के परिजन जन का वास-स्थल।
शतोन्नीस दो संवत्सर में संयम भार लिया सकुशल।
लेकिन नहीं निभा सकने के कारण दो वर्षों के बाद।
छोड़ दिया है शासन-उपवन चख न सके इच्छित फल-स्वाद' ॥१॥

१. कुशालजी 'ताल लसाणी' (मेवाड़) के निवासी थे। उन्होंने सं० १६०२ में दीक्षा ग्रहण की। वे लगभग दो साल गण मे रहे, फिर सं० १६०४ में गण से पृथक् हो गये।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गो० २२४)

१४३।३।५६ मुनि श्री गुलाबजी (देहली)

(संयम-पर्याय सं० १९०२—१९३४)

गीतक-छन्द

देहली के थे निवासी विदित नाम 'गुलाब' था।
वोहरा-श्रीमाल कुल में खिला फूल गुलाव था।
साल दो की चैत्र शुक्ला श्रेष्ठतम तिथि सप्तमी।
वने पाली शहर में ऋषिराय कर से संयमी[१] ॥१॥

साधु-चर्या में सजग वन शुद्ध रखते भावना।
प्रकृति से थे खरे, की है विविध तप-जप साधना[२]।
मार्ग शुक्ला तीज को उन्नीस सौ चोतीस की।
मरण पंडित पा गये ले शरण शासन-ईश की[३] ॥२॥

१. मुनि गुलाबजी देहली शहर के निवासी और गोत्र से श्रीमाल बोहरा (ओसवाल) थे। उन्होंने अपने भाई को छोड़कर सं० १९०२ चैत्र शुक्ला ७ को आचार्य श्री रायचंदजी द्वारा पाली मे दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

२. मुनिश्री प्रकृति से खरे और साधु-क्रिया मे पूर्णतः जागरूक थे। तप मे भी अच्छी अभिरुचि रखते थे।

(ख्यात)

सं० १९३० के बीदासर चातुर्मास मे वे जयाचार्य की सेवा में थे। वहां उन्होने एक महीने तक बेले-बेले तप किया :—

गुलाब दीर्घ इकमास लग, छठ-छठ तप वर कीन।

(जय सुजश ढा० ५६ दो० ५)

सं० १९३० के शेषकाल मे मुनि गुलाबजी, मुनि जीवोजी (११३) और बीजराजजी (१८३) बालोतरा में विराजित मुनि श्री मोतीजी 'दुधोड़' (११८) की सेवा मे थे। फिर जयाचार्य ने दो मुनियो—माणकजी (१९१) और रामलालजी (१९३) को उनके पास मे भेजा और गुलाबजी आदि तीनों मुनियो को बुला लिया[1]।

संत-विवरणिका मे लिखा है कि वे सं० १९२६ में अग्रगण्य बने पर उनके चातुर्मास उपलब्ध नही है।

३. मुनिश्री सं० १९३४ मृगसर सुदि ३ को दिवंगत हुए। स्वर्ग-वास स्थान प्राप्त नही है।

शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० २२५, २२६ मे ख्यात की तरह ही उल्लेख है।

---

१. संत तीन सेवा मझे, गुलाब बीजराज जीवो।
जयगणि सुण मुनि दे वली, म्हैल्या हरष अतीवो ।।
माणक मुनि रामलालजी, आया मोती रे पासो।
आगला तीन संतां भणी, विहार करायो तासो ।।

(मोती गु० व० ढा० १ गा० १६, १७)

१४४।३।५७ मुनि श्री हरखचंदजी (अटाट्या)

(सयम पर्याय सं० १६०२-१६२५)

लय—साथे आसी रे…

हर्ष वढाऊं रे, हर्ष वढ़ाऊं रे मुनि हर्षचंद की गरिमा गाऊं रे।
शासन-शिरोरत्न की उपमा उन्हें लगाऊं रे॥ हर्ष…ध्रुव ॥

मेदपाट की धरती पर था पुर 'अटाटिया' छोटा रे।
था तलेसरा गोत्र ज्ञाति का जमघट मोटा रे ॥१॥

टेकचंद जी पिता गेह में खिली धर्म फुलवारी रे।
भक्तिमान वहु वंधु 'फौजमल' श्रद्धा-धारी रे ॥२॥

शत अष्टादस साल छयासी की मंगलमय आई रे।
जन्म 'हर्ष' का हुआ हर्षमय मिली वधाई रे ॥३॥

प्राक्तन जागृत संस्कारों से वचपन में वडभागी रे।
हुए चरण लेने को उत्सुक वने विरागी रे ॥४॥

लिए लग्न के परिजन जन ने की भरसक मनुहारें रे।
हुए आप इन्कार विरति में लगे नजारे रे ॥५॥

वन्धन समझा पाणिग्रहण को भव-भ्रमण का कारण रे।
साधु-धर्म ही एक मात्र है शिव सुख साधन रे ॥६॥

घर वाले घर में रहने हित वहु उपाय कर पाये रे।
पर भौतिक आकर्पण रस में वे न लुभाये रे ॥७॥

देख भावना सवल अत में सहमत सव परिवारी रे।
मजबूती से फली हृदय की इच्छा सारी रे ॥८॥

हेम महामुनि वहां पधारे, 'हर्ष' हर्ष अति पाये रे।
व्यक्त विचार किये हैं अपने जमे जमाये रे ॥९॥

अनुमति लेकर पिता आदि की हेम व्रती ने तत्क्षण रे।
वस्त्राभूषण सहित दे दिया संयम-भूषण रे[1] ॥१०॥

'हर्ष' सहर्ष साधना करते ज्ञान-ध्यान में रमते रे।
विषय-विकार-विजेता बन मन इन्द्रिय दमते रे ॥११॥

हेम पास में रहे क्षेम से पढ़े चार जैनागम रे।
विनय भक्ति से मेधा बढ़ती ज्ञान-समागम रे ॥१२॥

शान्ति श्रमण के संग रहे जब हेम हुए सुर-वासी रे।
वाचन-शिक्षण लेखन करते विद्याभ्यासी रे[2] ॥१३॥

नौ की साल अचानक सुरपुर जब मुनि शान्ति सिधाये रे।
जय-दर्शन कर पुस्तकादि सब भेंट चढ़ाये रे ॥१४॥

करुणा कर जय ने फरमाया, मन हो अगर तुम्हारा रे।
लो ये संत-पुस्तकें विचरो, हुक्म हमारा रे ॥१५॥

मेरे निकट चाहते रहना तो रह सकते सुख से रे।
रहे हर्ष गुरु पद में करके विनति स्व-मुख से रे[1] ॥१६॥

सार-भरी चर्चा शास्त्रों की जय गणपति से धारी रे।
प्रायश्चित्तादिक की विधि भी, न्यारी न्यारी रे ॥१७॥

एक बार आगम-बत्तीसी एक वर्ष में पढ़ते रे।
कितने वर्ष रहे इस क्रम में आगे बढ़ते रे ॥१८॥

'चर्चा बड़ी' बनाई मति से (जो) तत्त्व ज्ञान-रस कूपी रे।
पढ-पढ़कर रस लेते जो नर तत्त्व-स्वरूपी रे ॥१९॥

सिद्धान्तों के गूढ रहस्यों का वह परिचय देती रे।
है स्वाध्याय भूमिका की सुन्दरतम खेती रे ॥२०॥

आगम गण-विधि आदि विषय पर, की रचनाएं रुचिकर रे।
प्रतिपादन करने की शैली थी सुदरतर रे[४] ॥२१॥

बुद्धिमान् वर्चस्वी गण में पंडित और विवेकी रे।
संघ-संघपति के प्रति अति ही रखते ऐकी रे ॥२२॥

विनयादिक गुण देख 'जीत' ने उनका कुर्ब बढ़ाया रे।
मुक्त स्वरों से चार तीर्थ में गौरव गाया[५] रे ॥२३॥

शत उन्नीस त्रयोदश में कर दिये अग्रणी उनको रे।
बारह वत्सर विचरे शिक्षा देते जन को रे[६] ॥२४॥

जयाचार्य की दया-दृष्टि से बड़ी योग्यता लाये रे।
स्थान साधु-सतियों के दिल में अच्छा पाये रे ॥२५॥

पद आचार्य प्रमुख के लायक बने भिक्षु-शासन में रे।
नाम आपका गुरु लेते युव पद-स्थापन में रे[७] ॥२६॥

उपवासादिक से सोलह तक तप भी किया बहुततर रे।
सर्दी गर्मी सहते मुनिवर, क्षमता-सागर रे[८] ॥२७॥

आत्मालोचन जय के सम्मुख कर पाये आत्मार्थी रे।
पापभीरुता पग-पग पर रखते परमार्थी रे[९] ॥२८॥

दोहा

सरस साधना का समय, रहा वर्ष तेईस।
चतुर्मास बतला रहा, वर्षों के तेईस[१०] ॥२९॥

शहर जोधपुर का हुआ, चौमासा निर्णीत।
आये पुर 'पीपाड़' में, धर कर भाव पुनीत ॥३०॥

अकस्मात् हैजा हुआ, व्याधि बढ़ी विकराल।
समभावों से सहन की, भर पौरुष सुविशाल ॥३१॥

क्षमायाचना कर खिले, ज्यों सरवर में पद्म।
जेठ अमा मध्याह्न में, पहुच गये सुर-सद्म[११] ॥३२॥

लय—साथे आसी रे…

जैसा सिंह वृत्ति से धारा, वैसा पार उतारा रे।
सुयश सितारा चमका जग में, जय-जय नारा रे ॥३३॥

जय विरचित व्याख्यान ध्यान से, सुजनो ! पढ़ना सुनना रे।
मुनिश्री के गुण-सुमनों को तन्मय हो चुनना रे[१२] ॥३४॥

१. मुनि श्री हरखचन्दजी का जन्म अटाट्या (मेवाड़) ग्राम के तलेसरा (ओसवाल) परिवार मे हुआ। उनके पिता का नाम टेकचन्दजी और भाई का नाम फौजमलजी था। (ख्यात)

वे चार भाई थे और उनके एक वहन थी। उनके वड़े भाई फौजमलजी सं० १८८७ मे नाथद्वारा के सुप्रसिद्ध श्रावक मयाचदजी तलेसरा के यहा दत्तक पुत्र रूप में आये जो ऋषिराय तथा जयाचार्य के समय के प्रमुख और भक्तिमान् श्रावक थे।

(मुनि वुद्धमलजी द्वारा लिखित-नाथद्वारा के सुप्रसिद्ध श्रावक फौजमलजी तिलेसरा के निवध के आधार से)

हरखचदजी ने १६ वर्ष की अविवाहित (नावालिग) वय मे माता-पिता, भाई-भोजाई, वहिन, भतीजी आदि वहु परिवार को छोड़कर स० १९०२ के शेपकाल मे मुनि श्री हेमराजजी द्वारा गृहस्थ के गहनो कपड़ो सहित[1] अटाट्या मे दीक्षा स्वीकार की। उनके पिता ने वड़े हर्ष से दीक्षा-महोत्सव किया :—

टेकचंद सुत दीपतो, हरखचंद हुंसियार।
तलेसेरै तीखी करी, सखरी करणी सार।
वासी मेवाड़ देश नो, ग्राम अटाट्यै मांय।
दीक्षा मोछव दीपता, किया जनक अधिकाय।
सोल वर्ष रे आसरै, हेम ऋषि रे हाथ।
चारित्र लियो छांडी करी, तात मात अरु भ्रात।
उगणीसै बीये अमल, चरण लियो चित्त चंग॥

(हरख चोढ़ालियो ढ़ा० १ दो० १ से ४)

विचरत-विचरत आया अटाट्ये, हरषचंद हितकारी।
मा तात भाई वैन छांडिया, मिलिया हेम हजारी॥
गैहणा सहित चारित्र उचराई, पाछा दिया तिणवारी।
केवल पांमी गैहण खोल्या, भरतजी 'जंवूदीपपन्नती' मझारी॥

(हेम नवरसो ढा० ६ गा० २०, २१)

ख्यात मे प्राय. ऐसा ही उल्लेख है।

२. मुनि श्री हरखचंदजी पच महाव्रत, पंच समिति और तीन गुप्ति का सम्यग् प्रकार से पालन करते हुए मुनि जीवन को दीप्तिमान करने लगे। वे आचार्यश्री रायचदजी के आदेशानुसार दो साल (सं० १९०२ से १९०४

---

१. दीक्षित होने के पश्चात् उन्हे साधु वेप पहना दिया एव गृहस्थ के गहने कपड़े प्रातिहारिक होने से वापस उनके पिता को सौंप दिये।

तक) मुनि श्री हेमराजजी के सान्निध्य मे रहे और विनय पूर्वक ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होने चार सूत्र कठस्थ किये—१. आवश्यक २. दशवैकालिक ३. उत्तराध्ययन और ४. अनुयोगद्वार।

स० १९०४ मे मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्ग-गमन के पश्चात् मुनि हरखचंदजी पांच साल (स० १९०५ से १९०९ तक) मुनि श्री सतीदासजी (८४) के सिंघाड़े मे रहे और उनकी तनमन से सेवा की। मुनि सतीदासजी ने मुनिश्री हरखचंदजी को परम विनीत समझ कर आगमो का वाचन करवाया तथा सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं की विविध धारणा करवाई।

(हरख चोढालियो ढ़ा० १ गा० १ से ९ के आधार से)

३. सं० १९०९ मे मुनि श्री सतीदासजी के दिवंगत होने के बाद मुनि हरखचंदजी ने जयाचार्य के दर्शन कर साधु तथा पुस्तकें भेंट की तब जयाचार्य ने फरमाया—'मुनिवर ! तुम्हारी अलग विहार करने की इच्छा हो तो तुम इन्ही साधुओ और पुस्तकों को लेकर सिंघाड़बंध रूप में अलग विहार करो एव मेरे पास में रहने की इच्छा हो तो मेरे पास मे रहो। मेरी तरफ से तुम्हें दोनो प्रकार का आदेश है।'

मुनि श्री ने गहराई से चिंतन कर विनय पूर्वक निवेदन किया—'गुरुदेव ! मेरी भावना आपकी सेवा मे रहने की है।'

तत्पश्चात् मुनिश्री जयाचार्य की उपासना मे रहे और अत्यत विनय नम्रता पूर्वक आचार्यप्रवर के मनोनुकूल चलकर उनकी दृष्टि व इंगित की आराधना करने लगे। उक्त सदर्भ मे पढ़िये निम्नोक्त पद्य :—

उगणीसै नवके समै, मृगसर मास मझार।
परभव मांहि पांगरचा, शान्ति ऋषि सुखकार॥
हरखचंद ले आवियो, गणपति केरै पाय।
सूंपी मुनि पोथ्यां भणी, तब जयगणि कहै वाय॥
सुगुण जन सांभलो रे॥
विचरो मुनि पोथ्यां ग्रही, सिंघाडो तुज सार।
मन हुवै तो पासे रहो, मुझ वेहुं आज्ञा उदार॥
हरख कहै सेवा आपरी, करवा रा मुझ भाव।
सूंपै मुनि पोथ्यां प्रतै, सखर विचारण साव॥
जय गणपति रै आगले, हरख रहै हुंसीयार।
तन मन सू सेवा करै, वारू विनय विचार॥
चित्त अनुकेडै चालतो, दिन-दिन विनय विवेक।
रुड़ी रीत रीझाविया, गणपति नै सुविसेख॥

(हरख चोढालियो ढ़ा० २ दो० ३ गा० १ से ५)

४. मुनि श्री ने जयाचार्य द्वारा सिद्धान्तों के प्रमुख स्थल, गहन-गहन बोलचाल तथा प्रायश्चित्त विधि आदि की विविध धारणा की। वे प्रतिवर्ष आगम-वत्तीसी का वाचन करते। उनका वह क्रम कई वर्षो तक चलता रहा।

(ख्यात)

मुनि श्री ने प्रश्नोत्तरो के माध्यम से भाव, आत्मा, योग आदि की विस्तृत चर्चा तैयार की जो 'हरखचदजी स्वामी की चर्चा' के नाम से प्रसिद्ध है। उसमे ६०७ प्रश्नोत्तर है। तत्त्वज्ञान की गहराई मे पहुचने के लिए तथा शुभयोगों की प्रवृत्ति के लिए उसका अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है।

मुनि श्री हरखचदजी सैद्धान्तिक व तात्त्विक विषयो के गभीर विद्वान् तो थे ही, साथ-साथ पद्यवद्ध रचना करने मे भी कुशल थे। उनके द्वारा वनाई गई रचनाएं इस प्रकार है :—

ढ़ाल संख्या	दो० सो० गा०	रचनाकाल/स्थान
१. मर्यादा की जोड़ २	१६-३२	स० १९१४ जेठ वीदासर
२. १३ वी हाजरी की जोड़ ६ (मडलिया उतरने की ढाल)	२१-१३७	सं० १९१२ कार्त्तिक सुदि ५ उदयपुर
३. ६ काया पर संघटा पर ढाल	६-१०२	सं० १९१५ आसोज वदि ८ सरदारशहर
४. इरियावहि क्रिया ऊपर जोड	८-१४८	स० १९१५ कार्त्तिक वदि ३ सरदारशहर
५. समोहया पाठ ऊपर ढ़ाल	९-१३५	सं० १९१६ मृगसर सुदि सरदारशहर
६. पात्रा रगणा ऊपर ढाल	९-८०	स० १९२३ कार्त्तिक सुदि ११ उदयपुर

६९+५४४ कुल संख्या ६३२

५. मुनि श्री वड़े बुद्धिमान्, मेधावी, विनयी, विवेकी आचार्यो के प्रति निष्ठाशील तथा शासन मे प्रभावशाली साधु हुए। (ख्यात)

जयाचार्य ने उनके विनयादिक विशिष्ट गुणो की व्याख्या करते हुए उन्हे चतुर्विध सघ मे सम्मानित किया। पढ़िये निम्नोक्त सार भरे पद्य :—

तव गणपति मन जाणियो, हरख तणै हद रीत।
शासण ने गणपति थकी, अभितर में प्रीत॥
परचो स्त्रीयादिक तणो, अवनीतां रो संग।
ए दोनू इण में नही, जाण्यो जय चित्त चग॥

आण अखंड आराधतो, विनयवंत वडवीर।
परम दृष्टि जय परखियो, हरख अमोलक हीर ।।
ततक्षिण कुरब वधावियो, च्यार तीर्थ रै मांय।
सुप्रसन्न थई पढ़ावियो, थयो प्रवल पंडित अधिकाय ।।

(हरख चोढालियो ढ़ा० २ गा० ६ से ६)

६. मुनि श्री ने चार चातुर्मास (स० १६१० से १३ तक) जयाचार्य के साथ मे किये। तत्पश्चात् जयाचार्य ने मुनि श्री का चार साधुओं से सिंघाडा वनाया और मुनि श्री हेमराजजी (तत्पश्चात् शांति ऋपि) के निश्राय की वे ही पुस्तकें दी एव प्रथम चातुर्मास वीकानेर मे करने का आदेश दिया :—

च्यार चउमासा जय कनै, रह्यो हरख हुंसियार।
उगणीसै तेरै समै, कियो सिंघाडो सार ।।
तेहिज पोथ्यां हेम नीं, हरख सहित मुनि चार।
वीकानेर भलावियो, चउमासो सुखकार ।।

(हरख चोढ़ालियो ढा० ३ दो० २,३)

७. जयाचार्य को भावी उत्तराधिकारी के विषय मे लोग पूछते तव जयाचार्य छोग, हरख, मघराज ये तीन नाम लेते थे :—

जन वहु पूछै जय भणी, सखरो युवपद साव।
किण मुनि नै देवा तणा, आप तणा छै भाव ।।
तव जय गणपति उच्चरै, छोग हरष मघराव।
त्रिहुं में पद युव इक भणी, थापण रा छै भाव ।।
इम अति कुर्ब वधावियो, छोग हरष नू हीर।
वीसे युवपद 'मघ-नृपति', थाप्यो जांण गंभीर ।।

(हरख चोढालियो ढा० ३ दो० ५, ६)

स० १६२० मे मघवा मुनि को युवाचार्य पद देने के पश्चात् भी हर्ष मुनि उनके साथ हार्दिक प्रीति रखते एवं उन्हे वहुमान देते .—

परम प्रीति गणपति युवपद सू, अमल तीर्थ में आव।

(हरख चोढ़ालियो ढा० ४ गा० ४)

जयाचार्य द्वारा सम्मानित एव अनुग्रहीत मुनि श्री सरूपचन्दजी तथा साध्वी प्रमुखा सरदारांजी के प्रति भी हर्प मुनि अनुकूल प्रवृत्ति व विनय नम्रता पूर्वक व्यवहार रखते थे :—

सरूप सिरदारां सती, गणि मुरजी अवलव।
तसु अनुकूल प्रवरततो, छांडी दिल नो दंभ।

(हरख चोढालियो ढ़ा० ३ दो० १)

स० १९२२ के पाली चातुर्मास के वाद जयाचार्य रामपुरा पधारे। मुनि श्री हरखचन्दजी सं० १९२२ का जोधपुर चातुर्मास कर वहां पहुंच गये। रात्रि के समय जयाचार्य ने कुछ मुनियो को सम्बोधित कर नवीन सोरठो के माध्यम से शिक्षा प्रदान की। उनमे एक मुनि हरखचन्दजी थे। पढ़िये निम्नोक्त सोरठा —

दिन दिन विनय दिनेश, अंतर उजवालो अधिक।
वाधै सुयश विशेष, ताजक सीख तिलेसरा॥
(जय सुजश ढा० ५० सो० ३)

८. मुनि श्री ने उपवास, वेले, तेले, चोले तो वहुत वार किये तथा —

५	६	७	८	९	१३	१४	१५	१६	
२	१	१	१	१	१	१	१	१	किये :—

चोथ छठ अठम वहु दशम, पांच पांच दोय वार।
षट सत अठ नव वलि चवदै, सोल प्रमुख तप सार॥
(हरख चोढ़ालियो ढा० ४ गा० १)

उपर्युक्त तप मे १३ तथा १५ के दो थोकडो का हरख चोढ़ालिया मे उल्लेख नही है पर शान्ति विलास मे वर्णन है।

शान्ति विलास ढ़ा० ११ मे उल्लेख है कि हर्ष मुनि ने स० १९०५ पीपाड मे १६ दिन का, सं० १९०६ पाली मे ८ दिन का, सं० १९०७ वालोतरा मे १५ दिन का, स० १९०८ पचपदरा मे १३ दिन का तप और स० १९०९ वीदासर मे २ पचोले किये।

उन्होने शीतकाल मे शीत का एवं उष्णकाल मे गर्मी का परिषह वहुत सहन किया। पोष महीने को भयंकर सर्दी मे वे एक पछेवड़ी रखते थे :—

पोष मास शीत सह्यो अति, वे पछेवड़ी परिहार।
शीत उष्णकाल फुन मुनिवर, देश प्रदेश विहार॥
(हरख चोढ़ालियो ढा० ४ गा० २)

९. स० १९२५ के गगापुर चातुर्मास के पश्चात् मुनि श्री ने जयाचार्य के दर्शन कर वहुत दिन सेवा का लाभ लिया। एक दिन उन्होने जयाचार्य के पास सरल हृदय से 'आलोयणा' (आत्मालोचना) की। उसका उल्लेख इस प्रकार है :—

सेवा करतां जय तणी, इक दिन अवसर देख।
'दिशा भूमका' पुर वाहिर, जय संग हरष विसेख॥
संतां नै अलगा करी, आलोवण दिल खोल।
याद करी आछीतरै, कीधी हरख अमोल॥

परभव नीं चिन्ता घणी, निमल थया जिम न्हाय।
निशल हुवा आगूच इम, ए अचरज अधिकाय॥
(हरख चोढालियो ढा० ४ दो० १ से ३)

१०. मुनि श्री ने लगभग २३ वर्ष साधु-पर्याय का पालन किया। उनके २३ चातुर्मासों का विवरण इस प्रकार है :—

(क) मुनि श्री हेमराजजी के साथ २

१. सं० १६०३ नाथद्वारा
२. सं० १६०४ आमेट

(ख) मुनि श्री सतीदासजी के साथ ५

सं० १६०५ पीपाड़
सं० १६०६ पाली
सं० १६०७ बालोतरा
सं० १६०८ पचपदरा
सं० १६०९ बीदासर

(ग) जयाचार्य के साथ ४

सं० १६१० नाथद्वारा
सं० १६११ रतलाम
सं० १६१२ उदयपुर
सं० १६१३ पाली

(घ) अग्रणी अवस्था में १२

सं० १६१४ बीकानेर
सं० १६१५ सरदारशहर
सं० १६१६ फलौदी
सं० १६१७ जोधपुर
सं० १६१८ श्रीजीद्वारा
सं० १६१९ जयपुर
सं० १६२० उदयपुर
सं० १६२१ बालोतरा[1]
सं० १६२२ जोधपुर

---

१. उस चातुर्मास में उनके साथ मुनि ज्ञानचंदजी (१८९), रूपचंदजी (१९२) और किस्तूरजी (१८५) थे। (लघुरास)

स० १९२३ उदयपुर
स० १९२४ नाथद्वारा
सं० १९२५ गगापुर

(हरख चोढ़ालियो ढ़ा० ३ गा० २ से ७)

जयाचार्य ने हर्ष मुनि का सं० १९२६ का चातुर्मास जोधपुर फरमाया। वे सुखपूर्वक विहार करते हुए ज्येष्ठ कृष्णा १४ को पीपाड़ पधारे। उसी दिन पश्चिम रात्रि के समय अचानक हैजा हो गया। दस्त तथा उलटिया होने लगी। मुनि श्री ने उस वेदना को समभावों से सहन किया। दूसरे दिन ज्येष्ठ कृष्णा १५ को उन्होंने सबके साथ ऊंचे स्वर से क्षमा याचना की एव निर्मल भावो से आत्मा-लोचन किया।

(हरख चोढालियो ढ़ा० ४ गा० ५ से ७ के आधार से)

स० १९२५ ज्येष्ठ कृष्णा १५ को एक घड़ी (२४ मिनट) दिन अवशेष रहा तब परम समाधि पूर्वक स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया। ज्येष्ठ शुक्ला १ को श्रावको ने २९ खडी वैंकुठी बनाकर चरमोत्सव मनाते हुए उनके शरीर का दाह-सस्कार किया :—

पणवीसे पींपाड़ में, पंडित मरण प्रसंग।

(हरख चोढ़ालियो ढा० १ दो० ४)

जेठ अमावस आसरै, घड़ी थकां पर लोग।
एकम मंडी गुणतीस खंडी, जबर महोछव जोग॥

(हरख चोढालियो ढ़ा० ४ गा० ८)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० २३१ मे लिखा है कि उन्हे दो घड़ी (एक मुहूर्त) का सथारा आया।

१२. मुनि श्री के जीवन प्रसग पर जयाचार्य ने 'हरख चोढ़ालियो' नामक आख्यान बनाया जिसकी ४ ढालें हैं। उनमे १८ दोहे और ४० गाथाए है जिसका रचनाकाल स० १९२६ पोष वदि २ है :—

संवत उगणीसै छावीसे, पोह विद बीज उदार।
हरख लडायो अति सुख पायो, जय-जश गणपति सार॥

(हरख चोढालियो ढा० ४ गा० १३)

जयाचार्य ने मुनि श्री के गुणानुवाद की एक भावभरी गीतिका बनाई। उसकी पाचवी गाथा इस प्रकार है :—

अति अमल चरण आराध्यो, सुख ब्रह्म तणो मुनि साध्यो।

प्राचीन अनुश्रुति से कहा जाता है कि मुनि श्री हरखचंदजी पांचवे देवलोक में गये। उक्त पद्य से भी ऐसा आभासित होता है।

जयाचार्य द्वारा रचित मुनि श्री के स्मृति-संदर्भ मे रचे हुए कुछ पद्य इस प्रकार है:—

उज्ज्वल मन सूं चरण अनोपम, धारचो घर चित धीर।
लियो भार ते पार पूगायो, हरख वृषभ हद हीर।
गणपति पासैं रह्या वर्ष चिहुं, विचरचा द्वादश वास।
वचन असातन रूप सांभल्यो, याद न आवै तास।
च्यार तीर्थ में कीरति चंगी, रंगी गुण रस हेर।
अविनय रूपी भंगी छेदन, जंगी हरख सुमेर।
हरख तणो मरणो सांभल नै, च्यार तीर्थ नै ताम॥
अति ही दोहरो लागो अधिक ही, संभारै गुणधाम॥

(हरख चोढ़ा० ढा० ४ गा० ९ से १२)

ख्यात तथा शासनप्रभाकर ढ़ा०६ गा० २२७ से २३१ मे मुनि श्री से संबधित सक्षिप्त वर्णन है।

१४५।३।५८ मुनि श्री खूबचंदजी (खूमजी) (ताल)

(संयम-पर्याय १९०२-१९२३)

गीतक-छन्द

गोत्र मुहता 'खूब' मुनि का 'ताल' नामक ग्राम था।
स्वजन धार्मिक और घर में सब तरह आराम था।
साधु-संगति से हुआ अति विरति का विस्तार है।
छोड़ पत्नी, चार सुत को बन गये अणगार है॥१॥

दोहा

चौदस कृष्णा चैत्र की, शतोन्नीस दो साल।
जीवराज मुनि पास में, संयम लिया रसाल[1] ॥२॥

लय—जावणद्यो रे भाई ······

हरी भरी जी हरी भरी, शासन-वनिका हरी भरी।
कर पाये वे खराखरी॥ हरी···ध्रुव॥

खूबवढ़ायात्यागविराग, आत्म-विजय में लगा दिमाग।
तप की गाई स्वर-लहरी॥३॥

उपवासादिक से छहमास, क्रमशः चढ़े ऊर्ध्व कैलाश।
नभ में विजय-ध्वजा फहरी···॥४॥

शीत समय में सहते शीत, कर्म निर्जरा से कर प्रीत।
भरी सुकृत-कूपी गहरी[2] ॥५॥

दोहा

सेवा की मुनि 'रत्न' की, अनशन क्षण में खूब।
होकर उसमे एक रस, फूले ज्यों वन-दूब[3] ॥६॥

लय—जावणद्यो······

हो समाधि सुख में आसीन, सफल साधना की संगीन।
पाई सुन्दर सुर-नगरी[4] ॥७॥

१. मुनि श्री खूबचदजी मेवाड़ मे 'ताल' (लसाणी के पास) के निवासी और गोत्र से जामर मुंहता थे। उन्होने चार पुत्र तथा पत्नी को छोडकर सं० १९०२ चैत्र कृष्णा १४ को मुनि श्री जीवोजी (८६) द्वारा दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

२. मुनि श्री वडे तपस्वी हुए। उन्होंने उपवास, वेले, तेले तो वहुत किये।

चोले	४१	४७	५२	७५	८५	१९३
२	१	१	१	२	१	१

(ख्यात)

मुनि खूबजी का सं० १९१२ का चातुर्मास मुनि श्री मोडजी (८७) के साथ मोखणदा में था। वहा मुनि मोडजी ने छहमासी एवं खूवजी ने १९३ दिन का तप किया। चातुर्मास के पश्चात् दोनो मुनियो को जयाचार्य ने अपने हाथ से पारणा करवाया :—

हिवैं मोखणदे आया मुनिपति, आछ आगार सूं भारी रे।
मोडजी तपसी नैं छहमासी नो, पारणो परम उदारी रे॥
स्व-हत्थ आप करायो स्वामी, वलि खूमजी मुनि तप भारी रे।
तप षटमासी ऊपर तुररो दिन, तेरैं अधिक उदारी रे॥
दिन इक सौ त्राणुनो मोखणदे, तप कियो आछ आगारी रे।
पारणो खूम ऋषि नैं पिण तब, करावियो गुणकारी रे॥

(जय सुयश ढ़ा० ४३ गा० २३, २५, २६)

मुनि खूबजी ने स० १९१३ का चातुर्मास मुनि जीवोजी (८६) के साथ राजनगर मे किया। तीसरे संत मुनि शिवजी (८२) थे :—

जीवराज शिव खूबजी तीन सत चौमास।

(शिव-चौ० ढ़ा० २ गा० १५)

वहां उन्होने ३१ दिन का तप किया, ऐसा मुनि जीवोजी कृत सं० १९१३ की चातुर्मासिक विवरण ढाल १ गा० ७ मे उल्लेख है :—'इगतीस दिन खूवचद'।

उन्होने शीतकाल मे वहुत शीत सहन किया।

(ख्यात)

३. सं० १९१७ फाल्गुन शुक्ला १३ को मुनि श्री रत्नजी (७४) ने ४९ दिन के संथारे से स्वर्ग-गमन किया। उस अवसर पर मुनि जीवोजी (८६), माणकजी (९९), पोखरजी (१६५) और मुनि खूबजी उनकी सेवा मे थे। सभी ने उनकी

अच्छी सेवा की :—

जीवराज माणक मुनि रे, खूम पोखर धर खंत।
सेवकरी साचे मने रे, रत्न तणी चित्त शान्त॥

(रत्न० गुण ढ़ा० १ गा० २७)

४. वे स० १९२३ के शीतकाल मे चोले के पारणे के दिन दिवंगत हुए।

(ख्यात)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गाथा २३२ से २३५ मे ख्यात की तरह ही वर्णन है।

१४६।३।५६ श्रीधनजी

(दीक्षा सं० १९०२, कुछ समय बाद गणबाहर)

दोहा

धन को संयम धन मिला, पर न रख सके मूल।
छोड़ी गण-गणपति शरण, की है भारी भूल[1] ॥१॥

१. धनजी का दीक्षा संवत् ख्यात में नही है पर उनके पहले और पीछे की दीक्षा स० १९०२ मे होने से सभवतः उनकी दीक्षा स० १९०२ मे हुई।

वे थोड़े समय बाद गण से अलग हो गये। सवत् प्राप्त नही है।

(ख्यात)

१४७।३।६० मुनि श्री चिमनजी (सूरवाल)

(संयम पर्याय स० १६०३-१६५४)

लय—चेतन ! ले ले शरणा···

'चिमन' चमन में आया एक, पाया मधुफल फूल अनेक।
लाया पौष्टिक वल सविवेक, रत हो अपनी लय में। चि०···।।

सूरवाल कुल क्रम से ग्राम, पोरवाल परिजन धन धाम।
फूला धार्मिक तरु अभिराम, नव छवि भाग्योदय[1] में ।।१।।

सत्संगति से विरति विकास, वनिता 'वगतू' सह सोल्लास।
संयम ग्रहण किया गुरु पास, खिलती यौवन वय में ।।२।।

सोरठा

शतोन्नीस की तीन, आई पूनम भाद्रवी।
छाई छटा नवीन, दीक्षा की जयनगर में[1] ।।३।।

लय—चेतन ! ले ले शरणा···

चढ़े साधना की सोपान, वढ़े भाव से ज्यों फलवान।
पढ़े आत्म-विद्या दे ध्यान, शासन-विद्यालय में ।।४।।

लिपि-कौशल में किया निखार, लाखों श्लोक लिखे धृतिधार।
श्रम से श्रमण बने साकार, निर्मल हृदयाशय में ।।५।।

खोला ज्ञान ध्यान का स्रोत, हो पौरुष से ओत:प्रोत।
किया वड़ा आत्मिक उद्योत, रमकर समताश्रय में[2] ।।६।।

दोहा

विचरे होकर अग्रणी, स्पर्शे वहु पुर ग्राम।
चातुर्मास-प्रवास के, मिलते है कुछ नाम[3] ।।७।।

सोरठा

था मजबूत शरीर, हृष्ट पुष्ट अवयव सभी।
देते बड़ी नजीर, साहस की वे समय पर ॥८॥

अच्छी अशन-खुराक, शक्ति पचाने की प्रवल।
पांच सेर मधु पाक, खा सकते राजी खुशी ॥६॥

छप्पय

मधुर मधुर संस्मरण कुछ सुनो खोलकर कान।
गरिमा गाओ चिमन की मधुर मिलावो तान।
मधुर मिलावो तान एक दिन हलुआ खाया।
चार सेर अन्दाज उदर पर भार न आया।
सराहना जठराग्नि की करते संत सुजान[४]॥
मधुर-मधुर संस्मरण कुछ सुनो खोलकर कान ॥१०॥

श्रावक गुरुमुखरायजी कोठारी घर संत।
गये एक दिन गोचरी देख भाव अत्यंत।
देख भाव अत्यंत पात्र सारे ही भरते।
दूध दही घी घाट रोटियां अंदर धरते।
अति मात्रा से सेठ को संशय हुआ महान्।
मधुर-मधुर संस्मरण कुछ सुनो खोलकर कान ॥११॥

देते-देते रुक गये श्रावकजी के हाथ।
समझे सुविवेकी श्रमण उनके दिल की बात।
उनके दिल की बात हाथ में झोली लेकर।
विदा हुए तत्काल गये हैं पुर के वाहर।
पात्र सभी खाली किये रखा न कुछ सामान।
मधुर-मधुर संस्मरण कुछ सुनो खोलकर कान ॥१२॥

विस्मय पाये सेठजी रिक्त पात्र सब देख।
वजन अठारह सेर का करते मुनि उल्लेख।
करते मुनि उल्लेख हुआ है नाश्ता केवल।
जाकर अगले ग्राम गोचरी करना अविकल।
पछतावा उनके रहा अल्प दे सका दान[५]।
मधुर-मधुर संस्मरण कुछ सुनो खोलकर कान ॥१३॥

खाया है घृत सेर दो गर्म खीच के साथ ।
वात-वात में वीर ने दिखलाये दो हाथ ।
दिखलाये दो हाथ सभी को चकित वनाया ।
इतनी वड़ी खुराक पाक-वल इतना पाया[६] ।
फिर भी करते थे सदा सीमित भोजन-पान ।
मधुर-मधुर संस्मरण कुछ सुनो खोलकर कान ॥१४॥

लय—चेतन ! ले ले शरणा च्यार······

कर पाये वह तप उपवास, अधिकाधिक चढ़ साधिक मास ।
लगे रहे है वे हर श्वास, जीवन-सर्वोदय में[७] ॥१५॥

छप्पय

गाड़ी भरी अनाज को खींच निकाली सद्य ।
प्राप्त हो गई वह उन्हें शर्त मुताविक हृद्य ।
शर्त मुताविक हृद्य गृहस्थाश्रम मे विश्रुत[८] ।
मुनि वनने के वाद दिखाई ताकत अद्भुत ।
उठा लिया दो मुष्टि पर दो मुनि को वलवान[९] ।
मधुर-मधुर संस्मरण कुछ सुनो खोलकर कान ॥१६॥

जय ने मुनियों से कहा करो कार्य क्रमवार ।
किन्तु चिमन मुनि हो गये एक वार इन्कार ।
एक वार इन्कार दिया इजेक्शन ऐसा ।
वगतूजी के साथ वोलना वंद हमेशा ।
तव गुरु वचनों को किया स्वीकृत देकर ध्यान[१०] ।
मधुर-मधुर सस्मरण कुछ सुनो खोलकर कान ॥१७॥

लय—चेतन ! ले ले शरणा ·····

तन या जितना उनका स्थूल, मन था उतना हलका फूल ।
खूव वढ़ाई पूजी मूल, रमकर रत्न-त्रय में ॥१८॥

संयम पाला वावन वर्ष, गुरु शासन में रहे सहर्ष ।
कर आराधक पद का स्पर्श, पहुचे सुर-आलय में[११] ॥१९॥

१. मुनि श्री चिमनजी सूरवाल (ढूढाड़) के वासी और जाति से पोरवाल (ओछल्या) थे। उनके पिता का नाम हेमराजजी था। उन्होने अपनी धर्म-पत्नी साध्वी श्री वगतूजी (२३०) के साथ सं० १६०३ भाद्रव शुक्ला १५ को आचार्य श्री रायचंदजी के हाथ से जयपुर मे संयम ग्रहण किया।

(ख्यात)

वहु संत सत्यां रा परिवार सूं, जय नगरे हो तीये चौमासो उदार।
त्रिया सहित चिमनजी सयम लियो, माधोपुर थी हो आवी नें तिणवार ॥

(ऋपिराय सुयश ढा० ११ गा० ८)

शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० २३७ मे दीक्षा संवत् १६०२ लिखा है जो उपर्युक्त प्रमाणो से गलत है।

उनके निकटतम परिवार की सोलह दीक्षाएं हुईं। उनका विस्तृत वर्णन मुनि हीरालालजी के प्रकरण मे दे दिया गया है।

२. मुनि श्री चिमनजी साधु-क्रिया मे लीन होकर ज्ञान-ध्यान आदि के द्वारा अपने जीवन का निर्माण करने लगे। उन्होने सूत्र तथा व्याख्यानादिक के लाखों पद्यो को लिपिवद्ध किया।

(ख्यात)

३. मुनि श्री अनेक वर्पो तक अग्रणी अवस्था में विचरे। उनके चातुर्मासों की तालिका इस प्रकार उपलब्ध है :—

सं० १६३४ में ३ ठाणों से राजलदेसर।

उस वर्प साध्वी मानांजी (३१७) का भी ३ ठाणों से राजलदेसर चातुर्मास था।

सं० १६३५ में ३ ठाणों मे वोरावड़।

इस चातुर्मास में डालगणी (मुनि अवस्था मे) उनके साथ थे।

'अमन चिमन रे साथ में जी कांई, वोरावड़ में वास।'

(डालिम चरित्र खंड १ ढा० ४ गा० १६

सं० १६३७ मे ५ ठाणो से वीदासर।

,, १६३८ मे ४ ,, ,, चूरू ।

(श्रावकों द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मास तालिका से)

४. मुनि चिमनजी का शरीर वहुत पुप्ट और संहनन मजवूत था। उनकी जठराग्नि इतनी तेज थी कि जो हजारो व्यक्तियो में किसी एक में मिले या न मिले। इस सदर्भ मे उनके विविध प्रसग वड़े रोमांचकारी और आकर्षक है।

एक वार किसी श्रावक के यहां विशेप अवसर पर आवश्यकता के अनुसार खाने-पीने की वस्तुएं प्रचुर मात्रा मे वनी थी। संत गोचरी के लिए गये तो उसने

आग्रह पूर्वक पूरा पात्र हलुवे से भर दिया। वह लगभग चार-पांच सेर था। सत उसे लेकर स्थान पर आये तो वात ही वात मे किसी साधु ने कहा—'आज तो मुनि चिमनजी की पाचन शक्ति की परीक्षा कर लो।' फिर सभी ने वह पात्र उनके सन्मुख रखते हुए कहा—'अगर आप इतना हलुवा खा लें तो हमे पता चल जायेगा कि आपकी खुराक और हाजमा शक्ति कितनी है।'

मुनि चिमनजी पहले तो इन्कार हुए पर देखा कि सभी मेरी परीक्षा को तुले हुए हैं तव उन्होंने उस पात्र को अपने हाथ मे लिया औरउसे खाने लगे।

कुछ देर पश्चात् पात्र को खाली करके जव वे उठे तो सतों ने देखा कि अभी तो उन्हे डकार तक भी नही आई है। उन्होंने आश्चर्य-चकित होते हुए पूछा अव आप और कितना भोजन कर सकते है ?

मुनि श्री ने मुस्कराते हुए कहा—'एक सेर चने और चावल हो तो मैं अच्छी तरह खा सकता हू।'

सभी सत मुनि चिमनजी की पाचन शक्ति की प्रशसा करने लगे।

(श्रुतिगत)

आचार्य श्री तुलसी ने इस प्रसग पर लिखा है :—

दृढ़ संघयण पाचन प्रवर, खासी घणी खुराक।
पांच सेर की पादरी, चटनी करै चटाक॥

(डालिम चरित्र खड १ ढा० ४ दो० २१)

५. मुनि श्री चिमनजी के सिंघाड़े मे मुनि वृद्धिचंदजी (१८४) और चैनजी (१८७) थे। वे तीनो एक परिवार के थे। आहार-विहार आदि मे भी समान प्रकृति के ही थे। एक वार वे हरियाणा की ओर से विहार करते हुए चूरू आये। दूसरे दिन प्रात आगे विहार करने के लिए उद्यत हुए तव स्थानीय श्रावक गुरुमुखराय कोठारी ने गोचरी के लिए प्रार्थना करते हुए कहा—'मेरे घर पर सव प्रकार का योग होते हुए भी मुझे पात्र दान का अवसर वहुत कम मिल पाता है। साधु-साध्विया आते तो हैं परन्तु थोड़ा सा लेकर ही रह जाते हैं, मेरा मन पूर्णरूपेण तृप्त नही होता है। आज आपको पूरी कृपा करनी होगी।'

उनके विशेष आग्रह पर मुनि श्री विहार करते समय रास्ते मे ही उनके घर पर गये। कोठारीजी वड़ी तीव्र भावना से भिक्षा देने लगे। सतों ने दूध, दही, मक्खन, मिठाई और ठण्डी रोटियां आदि पदार्थो से पात्र भर लिये। श्रावकजी वहुत उत्साह से भिक्षा दे रहे थे। पर मात्रा की अधिकता ने उनके मन मे सदेह उत्पन्न कर दिया। वे भिक्षा देते-देते रुक गये। सतो ने उनकी सदिग्ध भावना को समझ लिया और तत्काल पात्रो को झोली मे रखकर वहा से रवाना हो गये।

श्रावकजी कुछ देर साथ-साथ आये तव मुनि श्री ने कहा—'तुम अभी रास्ते मे सेवा करोगे क्या ?' गुरुमुखरायजी ने कहा—'हा, करने की इच्छा है।' मुनिश्री

विहार कर शहर के बाहर पहुंचे। अन्य भाई-बहनों को मंगल पाठ सुनाया और गुरुमुखरायजी को वही ठहरने का एकांत किया। तीनों मुनि संकेत स्थान देखकर बैठे और थोड़ी देर मे ही सारे पात्र साफ कर दिये। उन सब पदार्थों का अनुमानिक वजन अठारह सेर था। श्रावकजी ने खाली पात्र देखकर कहा—'मुनिवर्य, आज तो भोजन अधिक होने से आपको तकलीफ हुई होगी ?' मुनि चिमनजी मुस्कराते हुए बोले—'यह तो केवल नाश्ता हुआ है। अभी अगले गांव जाकर गोचरी करना तो बाकी है।'

यह सुनकर कोठारीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने निवेदन किया—'मुझे ऐसा पता होता तो मैं कमी क्यो रखता ? आज मेरे मन मे सदेह ने मुझ को पात्रदान के पर्याप्त लाभ से वचित रख दिया।' वे पश्चाताप करते हुए अपने घर लौट आये। चिमनजी आदि तीनो मुनि विहार कर 'बीनादेसर' गाव मे ठहरे। वहां किसानो के घरो से दस-बारह रोटिया लाकर उन्होंने मध्यान्ह का आहार किया। (श्रुतिगत)

आचार्य श्री तुलसी ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है :—

सेर अठारह स्यू सरचो, करचो सिरावण कोड़।
कोठारी श्रावक डरचो, हरचो भरम झट मोड़॥

(डालिम चरित्र खड १ ढा० ४ दो० २२)

६. एक बार मघवागणी लाडनूं मे विराज रहे थे। सायकाल के समय साध्वी श्री चांदाजी (३८७) गोचरी के लिए गई तो एक व्यक्ति ने लगभग दो सेर घृत मनाह करते-करते पात्र में डाल दिया। साध्वी श्री कुछ घबराई और स्थान पर आकर मघवागणी के सम्मुख पात्र खोलते हुए निवेदन किया—'गुरुदेव ! अमुक व्यक्ति ने हठात् इतना घृत डाल दिया।'

मघवागणी ने चिंतित होते हुए कहा—'तुम्हे सावधान रहना चाहिए था। इतना घृत अब कौन खायेगा ? बहुत सारे सत तो स्थडिल भूमि की ओर चले गये हैं। कुछ ही यहा होगे। यह घृत भी कम नही है कि जिसे दो-चार संत खा लें।'

मघवागणी ने पात्र हाथ मे लेकर अपने आस-पास मे देखा तो वहां मुनि चिमनजी खड़े थे। उन्होंने कहा—'गुरुदेव ! इसके लिए इतना चिंतित होने की क्या आवश्यकता है ? अनुमति हो तो इतना घृत मै अकेला ही उठा सकता हू।'

मघवागणी ने पात्र को उनकी तरफ करते हुए कहा—'पहले देख लो कि यह कितना है।'

मुनि चिमनजी ने पात्र को हाथ मे लेते हुए कहा—'कोई खास बात नही है, इसे उठाने के लिए कुछ खिचड़ा या चीनी मंगवा दे तो ठीक रहेगा।'

मघवागणी के आदेश से साध्वियां गईं और लगभग दो-तीन सेर खिचड़ा ले आई। मुनि श्री चिमनजी जमकर बैठे और घृत को उसमे मिलाकर कुछ ही

२. मुनि पृथ्वीराजजी (२१६) 'उदयपुर' को सं० १९२६ पोह वदि १० को कानोड में दीक्षा दी।
३. मुनि जालमोजी (२२७) 'भिवानी' को सं० १९२८ को भिवानी में दीक्षा दी।
४. कृष्णचंदजी (२७६) 'चाणोद' को सं० १९३९ फाल्गुन वदि ७ को पाली में दीक्षा दी।

(इन्हीं साधुओं की ख्यात से)

६. मुनि श्री के तप की तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१३
२६१	३	१	५	३	२	२	८	१	१

उक्त तेरह दिन का तप उन्होंने सं० १९०७ के बालोतरा चातुर्मास में मुनि श्री सतीदासजी के साथ किया :—

'नाथू ऋषि किया तेर हो'

(शान्ति विलास ढ़ा० १० गा० १७)

शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० २५९ में ९ के थोकड़े १३ बार करने का लिखा है वह समझने की भूल है।

७. मुनि श्री अन्तिम वर्षों मे गोगुंदा मे स्थिरवास थे :—

नाथूजी स्वामी, गोगुंदा में थाणपति।

(डालिम० च० ख० १ ढ़ा० २० सो० ६)

वे डालगणी के पदासीन होने के पश्चात् संवत् १९५४ के शेष काल में दिवंगत हुए। ख्यात मे उनका स्वर्गवास संवत् नही है पर सेठिया-संग्रह तथा संत-विवरणिका मे उक्त संवत् है।

शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० २५५ से २५९ में प्रायः ख्यात की तरह ही वर्णन है।

१५४।३।६७ मुनि श्री देवीचंदजी (पाली)

(संयम-पर्याय १९०५-१९१०)

गीतक-छन्द

वास 'देवीचंद' का था शहर पाली में प्रमुख।
सुराणा कुल गोत्र गाया और पाया स्वजन-सुख।
श्रमण-श्रमणी प्रेरणा से ऊर्ध्व भावों को किया।
धर्म-पत्नी साथ में गुरु हाथ से संयम लिया ॥१॥

सोरठा

प्रवर पांच की साल, सित दसमी आसोज की।
पाली में सुविशाल, पर्व दशहरा आ गया[1] ॥२॥

पांच साल खुशहाल, रहे साधु-पर्याय में।
सुयश चढ़ाया भाल, पाकर के पंडित-मरण[2] ॥३॥

१. मुनि श्री देवीचदजी पाली (मारवाड़) के निवासी और गोत्र से सुराणा (ओसवाल) थे। उन्होंने सं० १९०५ आश्विन शुक्ला १० (दशहरा) को अपनी पत्नी साध्वी श्री कुन्नणाजी (२४२) के साथ आचार्य श्री रायचन्दजी के हाथ से पाली मे दीक्षा स्वीकार की[१]।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २६०)

२. मुनि श्री ने लगभग पाच साल साधुत्व का पालन कर सं० १९१० के मृगसर महीने मे स्वर्ग-प्रस्थान किया :—

देवीचंद त्रिया साथ रे, उगणीसै पांचे दिक्षा।
गुमान वृध विख्यात रे, मृगसर परभव वेहुं मुनि।

(आर्यादर्शन ढ़ा० २ सो० ५)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढ़ा० ६ गा० २६१ मे उल्लेख है कि उनका स्वर्गवास स० १९१२ वैशाख वदि १२ के दिन रायपुर मे हुआ, पर वह उपर्युक्त प्रमाण से गलत है।

मुनि श्री देवीचदजी की पत्नी साध्वी कुन्नणाजी (२४२) का स्वर्गवास सं० १९१२ वैशाख वदि १२ को रायपुर मे हुआ था, जो भूल से देवीचंदजी के प्रकरण मे भी लिख दिया गया है।

---

१. उगणीसै पांचे पाली मझे, सत सती वहु हो करता स्वामीजी नी सेव।
तिहां त्रिया सहित देवीचंदजी, चरित्र लीधो हो अलगो करी अहमेव ॥

(ऋषिराय सुजश ढ़ा० ११ गा० १०)

१५५।३।६८ श्री कनीरामजी (वखतगढ़)

(दीक्षा सं० १६०६, १६१६ के वाद गण वाहर)

रामायण-छन्द

प्रान्त मालवा के अन्तर्गत ग्राम वखतगढ़ के वासी।
गोत्र सुराणा कनीरामजी वने महाव्रत-अभ्यासी[1]।
पर अशुभोदय से गण छोड़ा फिर आये ले नया चरण।
नही निभा सकने के कारण पुनरपि छोड़ दिया है गण[2] ॥१॥

सोरठा

किंतु न अवगुणवाद, वोले गण से विमुख हो।
मृत्यु-प्राप्ति के वाद, पुस्तक पन्ने आ गये[3] ॥२॥

१. कनीरामजी मालवा मे वखतगढ के वासी और गोत्र से सुराणा (ओसवाल) थे। उन्होने अपने भाई को छोड़कर सं० १९०६ मृगसर वदि ६ के दिन दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

२. वे पहली बार 'घरार' मे गण से पृथक् हुए। फिर नई दीक्षा लेकर वापस गण मे आये। फिर संयम का निर्वाह न कर सकने के कारण दूसरी वार सघ से अलग हो गये।

(ख्यात)

उनके दूसरी वार अलग होने का सवत् व स्थान प्राप्त नही है। शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २६२ तथा सेठिया-सग्रह में लिखा है कि वे जयाचार्य के शासन-काल मे गण से पृथक् हुए।

आचार्य श्री रायचदजी के स्वर्गवास के समय विद्यमान साधुओं मे उनका नाम है, इससे भी उक्त कथन की पुष्टि होती है कि वे जयाचार्य के युग में गण से अलग हुए।

जयाचार्य कृत 'आर्या दर्शन' कृति मे सं० १९०८ माघ वदि १४ से स० १९१६ तक गणबाहर होने वाले सभी साधु-साध्वियो का नामोल्लेख है। परन्तु उनमे कनीरामजी का नाम न होने से लगता है कि वे स० १९१६ के वाद गण सेअलग हुए।

३. संघ से वहिर्भूत होने के पश्चात् वे शासन के अनुकूल रहे। विशेष निन्दा नही की। उनकी मृत्यु के वाद उनके पुस्तक पन्ने गृहस्थ लोगो ने लाकर साधुओं को दे दिये।

(ख्यात)

सभवतः कनीरामजी ने गृहस्थो को मृत्यु से पूर्व ऐसा कह दिया था।

१५६।३।६८ श्री हेमोजी

(दीक्षा सं १६०६, ऋषिराय के समय गण वाहर)

सोरठा

हरियाणा के हेम, अग्रवाल थे जाति से ।
किया चरण से प्रेम[1], किन्तु न पालन कर सके[2] ॥१॥

१. हेमोजी जाति से अग्रवाल थे ।

(ख्यात)

सभवत. वे हरियाणा प्रान्त के थे ।

उनका दीक्षा-संवत् ख्यात मे नही है पर पहले पीछे के क्रमानुसार स० १६०६ ठहरता है ।

उन्होंने दीक्षा किसके द्वारा ली, इसका उल्लेख भी ख्यात मे नही है । सं० १६०६ मे मुनि श्री गुलहजारीजी (१०३) हरियाणा के क्षेत्रो मे विचरते थे अत. वहुत संभव है कि वे मुनि गुलहजारीजी के पास दीक्षित हुए ।

२. संयम का पालन न कर सकने के कारण वे गण से पृथक् हो गये ।

(ख्यात)

शासन-प्रभाकर ढा० ६ गा० २६३ मे ऐसा ही उल्लेख है ।

१५७।३।७० मुनि श्री रामदयालजी (खडक)

(संयम पर्याय १९०६-१९५४ डालगणी के युग में)

गीतक-छन्द

'खडक' नामक ग्राम गाया नाम रामदयाल था।
अग्रवाला जाति उनकी वंश-वृक्ष विशाल था।
भाव से संयम लिया है गुलहजारी पास में।
साल छह में आ गये है भिक्षु गण-आवास में[1] ॥१॥

वढ गये वे साधना में किया तप धृति धार है।
चढ़ गये उपवास से नौ दिवस तक अणगार है।
सहन कर शीतादि परिषह की सुकृत-रस-आय है[2]।
वर्ष तो उनचास पाली चरण की पर्याय है[3] ॥२॥

१. मुनि श्री रामदयालजी हरियाणा प्रान्त में 'खड़क' के निवासी और जाति से अग्रवाल थे। उन्होंने स० १९०६ के पौष महीने मे मुनि श्री गुलहजारीजी (१०३) द्वारा चारित्र ग्रहण किया।

(ख्यात)

रामदयालजी की दीक्षा मुनि वीरचदजी (१५८) के वाद मे हुई पर ख्यात मे नाम पहले होने से क्रम संख्या वही रख दी गई है।

२. मुनि श्री ने तीन महीने एकान्तर तप किया। नौ वर्ष प्रत्येक महीने में चार-चार उपवास किये। तप की प्राप्त तालिका इस प्रकार है :—

	२	३	४	६	७	८	९
उपवास सैकड़ो किये।	—	—	—	—	—	—	—।
	५	६	३	१	१	९	१

ख्यात मे लिखा है कि अब तक यानी ख्यात मे लिखने के समय स० १९४३ तक उन्होंने शीतकाल मे एक पछेवड़ी (चद्दर) ओढी।

संत विवरणिका मे उल्लेख है कि वे स० १९५० मे अग्रगण्य रहे तथा तपस्या वहुत की और उष्ण काल मे आतापना भी ली।

३. ख्यात मे उनका स्वर्गवास संवत् नही है। सेठिया सग्रह में उल्लेख है कि वे स० १९५४ में डालगणी के शासन काल में दिवगत हुए।

स० १९५४ पोष वदि ४ के दिन[1] आचार्य श्री डालगणी के आचार्य पद नियुक्ति के लेखपत्र पर उनके हस्ताक्षर नही हैं इसका कारण है कि वे उस समय उपस्थित नही थे।

---

१. पोष वदि ३ को रात्रि के समय डालगणी का निर्वाचन हुआ एव चतुर्थी के दिन लेखपत्र लिखा गया।

१५८।३।७१ मुनि श्री वीरचंदजी (वलुन्दा)

(संयम-पर्याय १९०६-१९३५)

गीतक-छन्द

'वलुंदा' के वागरेचा 'वीर' ने संयम लिया।
साधना में लीन हो वीरत्व का परिचय दिया[1]।
प्रकृति से थे भद्र रखते बड़ी सेवा-भावना।
तपस्या करते व लेते ग्रीष्म में आतापना[2] ॥१॥

दोहा

शतोन्नीस पैंतीस में, पहुंचे अमर-विमान।
ग्राम 'ईडवा' में हुआ, चरमोत्सव-मंडान[3] ॥२॥

१. मुनि श्री वीरचदजी वलुदा (मारवाड़) के निवासी और गोत्र से वाग-रेचा (ओसवाल) थे। उन्होंने स० १९०६ मृगसर वदि २ को दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

दीक्षा कहां और किसके द्वारा ली, इसका उल्लेख नहीं मिलता।

वीरचंदजी की दीक्षा मुनि रामदयालजी (१५७) से पहले हुई पर ख्यात में नाम वाद मे होने से क्रम संख्या वही रख दी गई है।

२. मुनि श्री प्रकृति से भद्र थे। यथाशक्य तप करते और ग्रीष्म ऋतु मे आतापना लेते। उनमें वैयावृत्य करने का विशेष गुण था।

(ख्यात)

स० १९११ मे जयाचार्य ने मुनि वीरचदजी और हिन्दूजी (९१) को मुनि शिवजी (७८) की परिचर्या के लिए इंदौर से राजगढ (मालवा) भेजा था। दोनो मुनि शीघ्र विहार कर मुनि शिवजी की सेवा मे पहुच गये।

(शिव गुण वर्णन ढ़ा० १ गा० ६९ से ७२ के आधार से)

३. उन्होने सं० १९३५ मृगसर वदि १३ को ईडवा मे पंडित-मरण प्राप्त किया।

(ख्यात)

१५६।३।७२ श्री जीतमलजी

(दीक्षा सं० १९०६, कुछ दिन वाद ऋषिराय युग में गणवाहर)

दोहा

गोत्र वोहरा 'जीत' का, दीक्षित छह की साल ।
दुर्वलता से संघ को, छोड़ दिया तत्काल[१] ।।

१. जीतमलजी गोत्र से वोहरा (ओसवाल) थे । उन्होंने सं० १९०६ मे दीक्षा ग्रहण की ।

(ख्यात)

वे कहां के थे तथा दीक्षा कहां और किसके द्वारा ली, यह प्राप्त नही है ।

उनके गण से वाहर होने का संवत् आदि नही मिलता पर सेठिया सग्रह मे लिखा है कि वे थोड़े दिन वाद गण से अलग हो गये ।

आचार्य श्री ऋषिराय के दिवगत के समय विद्यमान साधुओं की सूची में उनका नाम नहीं है अतः स्पष्ट है कि वे ऋषिराय युग मे गण से पृथक् हुए ।

१६०।३।७३ मुनिश्री भवानजी 'छोटा' (बाघावास)

(संयम पर्याय १६०७-१६४२)

लय—चलना आखिरकार है……

संयम लिया प्रधान है, दिया समय पर ध्यान है।
लघु 'भवान' ने किया वस्तुतः जीवन का उत्थान है ॥ध्रुव॥

हो मारवाड़ मे ग्राम नाम से सुविदित वाघावास है।
हो गोत्र बोहरा-कोठारी था पाया धर्म-प्रकाश है।
मिला बोध-वरदान है, खिला हृदय-उद्यान है ॥ लघु ॥१॥

हो विमुख पौद्गलिक सुख से होकर सम्मुख शिव के हो पाये।
सात साल में मोती मुनि से चरण-रत्न ले फूलाये।
चढ़े प्रगति के थान हैं, गुण के बने निधान हैं[1] ॥२॥

हो मुनि स्वरूप की देखरेख में विद्या का अभ्यास किया।
हो वहु वर्षो तक भरसक उनकी परिचर्या का लाभ लिया।
दिया उन्हें बहुमान है, किया विनय बलवान है[2] ॥३॥

हो ज्ञान-खजाना पाकर ज्ञानी-ध्यानी बने 'भवान' है।
हो साधक कुशल विवेकी चर्चावादी चतुर सुजान है।
कहलाये मतिमान है, पाये अच्छा स्थान है ॥४॥

हो शासन-रंग मजीठी गहरा लगा हुआ था अन्दर में।
हो श्रद्धा अविचल टिकी हुई थी एकमात्र गणशेखर में।
उज्ज्वल दिल अरमान है, एक लक्ष्य मे ध्यान है ॥५॥

हो प्रतिपक्षी जन को प्रत्युत्तर देते थे वे सही-सही।
हो स्पष्ट बात कहने में किसकी खैर न रखते कभी कही।
फैला यश अम्लान है, गाते जन गुणगान हैं[3] ॥६॥

हो मुनि स्वरूप के पीछे जय ने उनको किया अग्रणी है।
हो विचरे पुर-पुर में उपकारी बनकर तारण-तरणी है।
समझाये इन्सान हैं, भर पाये बहु ज्ञान है[५] ॥७॥

दोहा

नौ दीक्षा दी आपने, दो मुनि सतियां सात ।
दो हरियाणा प्रान्त की, बोरावड़ की सात[६] ॥८॥

लय—चलना आखिरकार है......

हो बयांलीस की साल विक्रमी फाल्गुन सित दसमी आई ।
हो 'देवरिया' में आयु पूर्ण कर आराधक पदवी पाई ।
सफल किया अभियान है, बने स्वर्ग महमान है[६] ॥९॥

१. मुनि श्री भवानजी मारवाड मे वाघावास के वासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से 'रत्नपुरा वोहरा-कोठारी' थे। उन्होने स० १९०७ मृगसर वदि ५ को मुनि श्री मोतीजी (११८) 'दुधोड' द्वारा दीक्षा स्वीकार की। (ख्यात)

२. मुनि श्री ने मुनि श्री स्वरूपचदजी (६२) के सान्निध्य मे रहकर ज्ञानार्जन किया और पढ लिख कर तैयार हुए। मुनि स्वरूपचदजी की शेप समय तक सेवा की और विनयभक्ति द्वारा उनके मन मे परम समाधि उत्पन्न की :—

वहु वर्षा लग छेडा सुधी, भवान कालू आदि।
तन मन सेती सेव करी अति, विविध प्रकार समाधि॥

(सरूप नवरसो ढा० ९ गा० ६९)

मुनि भवानजी ने अन्तिम दिनो मे मुनि सरूपचदजी से कुछ शिक्षा प्रदान करने के लिए निवेदन किया तव उन्होने चार अमूल्य शिक्षा दी —

१. आचार्य के साथ मे रहते हुए किसी के साथ खीचातान न करना।
२. आचार्य की दृष्टि के अनुसार प्रवृत्ति करना।
३. आचार्य द्वारा सौपा गया कार्य सहर्ष करना।
४. किसी कार्य के लिए इन्कार नही होना।

(सरूप-नवरसो ढा० ९ गा० ३९,४०)

३. मुनि श्री सघ एव सघपति के प्रति पूर्ण निष्ठाशील और वडे साहसिक थे। प्रतिपक्षी लोगो के प्रश्नो का उत्तर वडी निर्भीकता से देते। सत्य वात कहने मे किसी की भी परवाह नही करते।

(ख्यात)

४. मुनि श्री स्वरूपचदजी का स० १९२५ मे स्वर्गवास होने के पश्चात् जयाचार्य ने मुनि भवानजी का सिंघाडा वना दिया। वे अनेक वर्षो तक विचर कर धर्म का प्रचार-प्रसार करते रहे। उनके चातुर्मास स्थान इस प्रकार हैं :—

स० १९२८ ठाणा ३ गगापुर।

स० १९२७ के शेपकाल मे उन्होने जयाचार्य के जयपुर मे दर्शन किये। वहा आचार्य श्री ने उनका स० १९२८ का चातुर्मास गगापुर फरमाया था :—

'लघु भवान नै गंगापुर भोलाविया रै।'

(जय छोग सुजश विलास ढा० ३ गा० १९)

फिर चातुर्मास के वाद उन्होने जयाचार्य के जयपुर मे दर्शन किये :—

त्रिहुं ठाणे लघु भवानजी आव्यो धावियो रे लोय,
चौमासो कर गंगापुर अवलोय।

(जय छोग सुजश विलास ढा० ८ गा० ८)

स० १६३२ हरियाणा (लुहारी या सीसाय के आस-पास)

वहा कुमारी गांव मे उन्होने मृगसर वदि ५ को बुरजकंवरजी (४३५) तथा पाताजी (४३६) को दीक्षा दी थी।

स० १६३७ ठाणा ३ वोरावड़।

(श्रावकों द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मास तालिका से)

स० १६३४, १६३५ और १६३८ की प्राप्त चातुर्मास तालिका मे उनका नामोल्लेख नही है।

५. मुनि श्री ने निम्नोक्त ६ भाई-वहनो को दीक्षा प्रदान की ·

१. मुनि अभयराजजी (२६६) 'वोरावड़' को स० १६०७ मृगसर शुक्ला ५ के दिन 'नावा' ग्राम के रास्ते मे साभर के ताल मे गृहस्थ के कपड़ो सहित दीक्षा दी। घरवालो ने दीक्षा की आज्ञा का पत्र तो लिख दिया था पर दीक्षा के समय उपस्थित नही हुए।

(ख्यात, सेठिया संग्रह)

२. मुनि पनजी (२६६) 'वोरावड़' को स० १६३७ आषाढ़ शुक्ला ३ को दीक्षा दी जो वाद मे अलग हो गये।

३. साध्वी बुरजकवरजी (४३५) 'सीसाय' को स० १६३२ मृगसर वदि ५ को कुवारी ग्राम में दीक्षा दी।

४. साध्वी पाताजी (४३६) 'लुहारी' को सं० १६३२ मृगसर वदि ५ को कुवारी ग्राम मे दीक्षा दी।

५. साध्वी हस्तूजी (४८६) 'वोरावड' को स० १६३७ मृगसर वदि ५ को वोरावड़ मे दीक्षा दी।

६. साध्वी जड़ावाजी (४८७) 'वोरावड़' को स० १६३७ मृगसर वदि ५ को वोरावड़ मे दीक्षा दी।

७. साध्वी जेठाजी (४८८) 'वोरावड' को स० १६३७ मृगसर वदि ५ को वोरावड़ मे दीक्षा दी।

८. साध्वी इन्द्रूजी (४८६) 'वोरावड' को सं० १६३७ मृगसर वदि ५ को वोरावड़ मे दीक्षा दी।

६. साध्वी शिवकवरजी (४६०) 'वोरावड़' को स० १६३७ मृगसर वदि ५ को वोरावड़ मे दीक्षा दी।

६. वे स० १६४२ फाल्गुन शुक्ला १० को देवरिया (मेवाड) मे दिवगत हुए। (ख्यात)

शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २६७ से २७० मे प्राय. ख्यात की तरह ही वर्णन है।

१६१।३।७४ श्री माणकचंदजी (देवगढ़)

(दीक्षा सं० १६०७, १६३६ में गणबाहर)

रामायण-छन्द

ग्राम देवगढ़-वासी 'माणक' गोत्र स्वजन का था सहलोत।
रामोजी स्वामी से पाये सात साल में संयम-पोत[1]।
रहे वर्ष उनतीस संघ में फिर गुटबंदी में फसकर।
छोग साथ में अलग हो गये भैक्षव-शासन को तजकर॥१॥

दशा हुई दयनीय व्याधि से चलने-फिरने में लाचार।
तयांलीस की साल काल से ग्रसित हो गये आखिरकार[2]।
उनसे संबंधित पूर्वा पर मिलती घटनाएं कुछ एक।
ज्ञात हो रहा जिससे उनका कैसा था व्यवहार विवेक[3]॥२॥

१. माणकचदजी 'देवगढ' (मेवाड) के वासी और गोत्र से सहलोत (ओसवाल) थे। उन्होने स० १६०७ वैशाख शुक्ला ७ को तपस्वी मुनि रामोजी (१००) के हाथ से 'धरार' में दीक्षा स्वीकार की। (ख्यात)

२. माणकचदजी स० १६३६ वैशाख शुक्ला ३ को छोगजी (१३८) 'वडा' के साथ जिल्लावदी करके भिक्षु-शासन से अलग हुए, साथ मे अन्य मुनि हंसराजजी (१५१) तथा जीतरामजी (२२४) थे। साध्वी हरखूजी (२७५) भी ५ ठाणो से अलग हुई। उस वर्ष जेठ महीने में जयाचार्य के पास से जयपुर मे ४ सत गण से पृथक् हुए—१ छोगजी 'छोटा' (१७७) २. नदरामजी (२२८) ३. फौजमलजी (२३४) ४. गिरधारीजी (२४६)। वे सभी थली की तरफ रवाना हुए। उनमे नदरामजी तो रास्ते से वापस लौट आये और दड लेकर शीघ्र ही गण मे सम्मिलित हो गये। फौजमलजी भी रतनगढ मे मुनि भोपजी (२१०) से प्रायश्चित लेकर गण में आ गये।

छोगजी 'छोटा' और गिरधारीजी सरदारशहर पहुचे। वहां छोगजी 'छोटा' आषाढ शुक्ला १० को छोगजी (१३८) 'वड़ा' मे मिल गये। गिरधारीजी वहां से वीकानेर जाकर मुनि श्री भोपजी (२१०) से दंड लेकर गण मे आ गये। छोगजी (१७७) स० १६३७ सावन वदि २ को अपनी माता साध्वी सेरांजी (३२०) को लेकर माणकचदजी (१६१) के साथ छोगजी (१३७) 'वडा' से अलग हो गये। दोनो ने वहां विराजित मुनि श्री कालूजी (१६४) को गण में लेने के लिए रास्ते मे तथा ठिकाने पर आकर वार-वार प्रार्थना की पर उन्होने उन्हे गण मे नही लिया। तव उन्होने चूरू की तरफ विहार कर दिया। साध्वी सेराजी तो वहां विराजित साध्वीश्री पन्नांजी (१२६) से प्रायश्चित लेकर सघ मे आ गई।छोगजी 'छोटा' ने जयपुर मे विराजित जयाचार्य को गण मे लेने के लिए गृहस्थो के साथ निवेदन करवाया, परन्तु प्रकृति की कठोरता व कच्ची नीति जानकर जयाचार्य ने स्वीकृति-प्रदान नही की। तव छोगजी 'छोटा' और माणकचंदजी साथ मे रहे। कुछ समय पश्चात् आपस मे अनवन होने से दोनो अलग-अलग हो गये। एक वर्ष निकल जाने के वाद गृहस्थों ने दोनो को समझाया तव नई दीक्षा लेकर दोनो शामिल हो गये। फिर मन न मिलने से अलग-अलग हो गये। माणकचदजी मारवाड, मेवाड और मालवा मे गये, पर जव श्रद्धालु भाइयो ने उन्हे आदर नही दिया तव वे वापस थली-प्रदेश मे आकर डूगरगढ मे रहे। वहा असात-वेदनीय के उदय से दोनो पैर जुड़ गये। गोचरी और पचमी (शौचार्थ) वैठे-वैठे पैरों को घसीटते-घसीटते जाते। वड़ी दयनीय दशा हो गई। आखिर स० १६४३ कार्त्तिक वदि मे डूगरगढ मे ही मरण प्राप्त हो गये। (कुछ अश छोगजी 'वड़ा' तथा कुछ अश माणकचंदजी की ख्यात के आधार से)

शासन प्रभाकर ढाल ६ गा० २७१ मे लिखा है—माणकचंदजी जयाचार्य के समय दो बार गण से अलग हुए :—

'जय गणी वरतार में, निकलियो वे वार।'

पर वह गलत मालूम देता है क्योकि ख्यात मे सं० १९३६ मे एक बार ही गण से पृथक् होने का उल्लेख है।

३ (क) तपस्वी मुनि श्री मोतीजी (११८) की गुण वर्णन ढाल १ गा० १७ मे उल्लेख है कि सं० १९३० मे माणकचदजी को मुनि रामलालजी (१९३) के साथ मुनि मोतीजी की सेवा मे बालोतरा भेजा। उन दोनो ने वहा जाकर पहले के तीन सतो—जीवोजी (११३), गुलाबजी (१४३), बीजराजजी (१८३) को विहार करा दिया।

(ख) श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मास-तालिका मे लिखा है कि स० १९३४ का २ ठाणो से मुनि माणकचदजी का चातुर्मास ऊमरा में था। उस समय इस नाम से माणक गणी के अतिरिक्त ये माणकचंदजी थे अत. हमने वह चातुर्मास इनका माना है।

(ग) स० १९२८ के चातुर्मास मे वे तपस्वी मुनि श्री दुलीचदजी (१९७) के साथ थे एव चातुर्मास के पश्चात् उनके साथ जयाचार्य के जयपुर मे दर्शन किये थे, ऐसा जय छोग सुजश-विलास ढा० ८ गा० १२ मे उल्लेख है।

(घ) मत्री मुनि मगनलालजी (२९४) द्वारा कथित 'पुरातत्त्व' शीर्षक प्राचीन पत्रो मे एक उल्लेख मिलता है कि युवाचार्य मघवा जब पचमी समिति (शौच भूमि) से वापस पधारते तब माणोजी (माणकचदजी) नाम के साधु खडे नही होते और पैर पर पैर रखकर बैठे ही रहते।

जयाचार्य को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने साधुओ को सबोधित करके कहा और मर्यादा बनाई कि मघजी बाहर जाकर वापस स्थान पर आये तब किसी साधु को बैठा न रहना अर्थात् खडा होना। गोचरी जाएतो साथ मे जाना, यदि स्थान पर रहे तो जब तक मघजी वापस न आये तब तक बैठना नही अर्थात् खडा रहना।

उक्त उल्लेख से जयाचार्य ने यह अभिव्यक्त किया है कि युवाचार्य का किस प्रकार सम्मान रखना चाहिए और उनके साथ कैसा विनय-व्यवहार रखना चाहिए।

१६२।३।७५ मुनिश्री संतोजी (जसोल)

(संयम पर्याय सं० १६०७-१६२८)

रामायण-छन्द

पुर 'जसोल' के थे सतोजी 'सालेचा' परिजन का गोत्र।
मुनि कपूरजी के वहनोई पढ़े विरति का मंगल स्तोत्र।
शतोन्नीस पर सात साल की आपाढ़ी पूनम आई।
लघु मोती मुनिवर के कर से संयम की सुपमा पाई[1] ॥१॥

लेकिन दलवंदी इतरेतर करके भीतर ही भीतर।
पहली वार साल तेरह में हुए भिक्षु-गण से वाहर।
फिर लगभग दो मास वाद में आये गण में लेकर दंड।
वीस साल में अलग हुए फिर मन हो पाया है उद्दण्ड ॥२॥

फिर आये फिर पृथक् हो गये वार तीसरी विना विचार।
नव-दीक्षा लेकर फिर आये सच्चिंतन कर आखिरकार।
गिरना सहज किंतु गिर करके उठना कठिन-कठिन गाया।
जय गणि कृत 'लघुरास' खास मे विवरण पूरा वतलाया ॥३॥

दोहा

तप कर विविध प्रकार का, खींचा जीवन-सार।
शासन में जमकर किया, आत्मा का उद्धार ॥४॥

फाल्गुन विद दसमी दिवस, आठ वीस की साल।
जयपुर में पंडित-मरण, प्राप्त किया सुविशाल[3] ॥५॥

१. मुनि श्री सतोजी मारवाड़ मे जसोल के निवासी जाति से ओसवाल और गोत्र से सालेचा थे। उनके पिता का नाम जोरजी था।

(संत विवरणिका)

उन्होने माता, पिता, भाई आदि परिवार को छोड़कर सं० १९०७ आषाढ़ शुक्ला १५ को मुनि मोतीजी 'छोटा' के हाथ से दीक्षा ली। (ख्यात)

'वाघावास' वाले मुनि मोतीजी (९६) 'छोटा' स० १८९६ मे दिवगत हो गये थे और मोतीजी (७७) 'वड.' 'सिवास' वाले तथा लघु मोतीजी (११८) 'दूधोड़' वाले उस समय विद्यमान थे अत. लघु मोतीजी दूधोड़ वालो के हाथ से सतोजी की दीक्षा हुई ऐसा निष्कर्ष निकलता है।

जयाचार्य द्वारा रचित ढाल 'लघुरास' मे ऐसा सकेत मिलता है कि मुनि संतोजी मुनि कपूरजी (१०९) के वहनोई थे।

कहा जाता है कि वे मुनि पूनमचदजी (२५८) गणेशमलजी (४२३) जीवणमलजी (३४७) और मुलतानमलजी (४३०) के पूर्वज थे।

२. स० १९१३ मे सतोजी पहली वार भैक्षव-शासन से अलग हुए। दो महीनो के वाद प्रायश्चित लेकर वापस गण मे आये :—

तीजा अविनीत (कपूरजी) रो वहनोई, तिण नैं कर्मां दियो विगोई।
आसरै दोय मास रहि सीधो, इण पिण मांहि आवी दंड लीधो।।

(लघुरास)

स० १९२० माघ शुक्ला १३ को जयाचार्य कमुवी से विहार कर लाडनूं पधार रहे थे। उस दिन चार सत—१. संतोजी २. कपूरजी (१०९) ३. जीवोजी (११३) और ४. छोगजी 'छोटा' (१७७) पीछे रह गये। सध्या तक लाडनूं नही आये तव जयाचार्य ने समझा कि ये गण से अलग हो गये हैं। इस तरह सतोजी दूसरी वार गण से पृथक् हो गये।

उक्त चारो साधुओ के गण से वहिर्भूत होने के तीन दिन वाद ही फाल्गुन वदि १ को मुनि चतुर्भुजजी (१३७) और हंसराजजी (१५३) उनसे माथासुख गांव में मिले पर चतुर्भुजजी की उनके साथ पहले से ही साठ-गाठ थी जिससे वे उनके शामिल हो गये। मुनि हसराजजी ने उन सव को समझाया तव वे पांचो गण वाहर रहे। (चतुर्भुजजी ३ दिन सतोजी आदि ६ दिन) उसका दंड लेकर फाल्गुन वदि ३ को गण मे आ गये। फिर ९ दिन पश्चात् फाल्गुन वदि १२ या १३ को सतोजी उनके साथ तीसरी वार गण से अलग हो गये।

सं० १९२१ का पांचो ने जसोल चातुर्मास किया। उस वर्ष मुनि श्री तेजपालजी (१२९) का जसोल और मुनि श्री हरखचदजी (१४४) का चातुर्मास वालोतरा था।

चातुर्मास मे एक वार किसी गृहस्थ द्वारा अधिक प्रयत्न करवाने पर जयाचार्य के आदेश से मुनि श्री तेजपालजी ने चतुर्भुजजी और छोगजी 'छोटा' को दड देकर गण मे ले लिया। पर चातुर्मास मे ही वे फिर अलग हो गये। फिर उन पाचो में भी दो गुट हो गये। एक तरफ – चतुर्भुजजी, कपूरजी, छोगजी 'छोटा' और एक तरफ—जीवोजी और सतोजी। फिर दो वर्ष लगभग सतोजी कभी किसी के शामिल और कभी किसी के शामिल हो जाते।

स० १९२१ के चातुर्मास के वाद जयाचार्य वीठोदा (वीठोजा) पधारे तब सतोजी ने जयाचार्य के पास आकर गण-गणी के गुण-गान किये एव अपनी पारस्परिक वीती घटना भी सुनाई। इस तरह कभी अनुकूलता दिखाते और कभी प्रतिकूल वन जाते।

स० १९२२ के पाली चातुर्मास के वाद जयाचार्य 'ईडवा' पधारे। वहां वीठोजा (वालोतरा के पास) गाव से रवाना होकर संतोजी तथा किस्तूरजी (१८५) जयाचार्य के समीप जा रहे थे। 'मेडता' मे एक भाई ने उन्हे कहा— 'तुम लोग कभी तो गण से अलग और कभी सम्मिलित होते हो, ऐसे अस्थिर विचार वालो को गणपति सघ मे लेंगे या नही, यह चिन्तनीय है।' यह सुनकर किस्तूरजी के विचार कच्चे पड गये, वे ईडवा से तीन कोश पहले वाले गांव में ही रह गये। सतोजी 'ईडवा' मे गुरुदेव के दर्शन कर पूर्ण रूप से समर्पित हो गये। तव जयाचार्य ने सं० १९२२ माघ वदि २ को उन्हे छेदोपस्थानीय चारित्र देकर सघ मे सम्मिलित किया।

उक्त वर्णन जयाचार्य द्वारा रचित 'लघुरास' के आधार से दिया गया है।

जय सुयश मे भी उनको गण मे लेने का उल्लेख है :—

तिहां टालोकर संतजी आवी, प्रश्न पूछ संशय मन टाली जी।
नवी दीक्षा ले गण में आई, निज आतम उजवाली जी॥

(जय सुयश ढा० ५० गा० ९)

३. तीसरी वार गण में आने के पश्चात् मुनि सतोजी ने अपना जीवन तपस्या मे झोंक दिया और वहुत तप किया। छह साल के वाद सं० १९२८ फाल्गुन वदि १० को पडित मरण प्राप्त किया।

(ख्यात, शासनप्रभाकर ढा० ६ गा० २७३)

लघु छोगजी (१७७) कृत जय छोग सुजश विलास मे उल्लेख है कि सं० १९२८ मे मुनि सतोजी जयपुर मे थे। वहां उनके अस्वस्थ होने से जयाचार्य ने मुनिश्री नाथूजी (१५३) आदि ४ साधुओ को उनकी सेवा मे रखा। जयाचार्य के विहार करने के दस दिन पश्चात् फाल्गुन वदि १० को वे दिवगत हो गये :—

संतोजी नें अंगे कारण ऊपनो रे,
चिहु ठाणे नाथूजी चाकरी मांय रें।

पूज्य पधारया लारै चटकै चल गयो रे,
दस दिन में पिडत मरणज पाय रे ॥
(जय छोग सुजश विलास ढा० ६ गा०)

सेठिया सग्रह मे उनकी स्वर्गवास तिथि फाल्गुन शुक्ला १० लिखी है जो उक्त प्रमाणो से गलत है।

मुनि सतोजी ने तीन वार गण से वाहर होकर चौथी वार गण मे आत्म कल्याण कर 'चौथे चावल सीजै' की उक्ति को सार्थक कर दिया। शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २७३ मे लिखा है—'भाग्या ही जे वाहुडै रे, ताकू रग चढाय।' अर्थात् सग्राम से भगने के वाद वे ही वीर पुरुप लौट आते है कि जिनके वीरता का पक्का रग चढ जाता है।

१६३।३।७६ मुनि श्री कालूजी (रेलमगरा)

(संयम पर्याय स० १६०८-१६५८)

लय—कोटि-कोटि कंठो......

कालूजी स्वामी की गाऊं गुण-गरिमा दिल खोल रे।
शासन-निधि की एक दिखाऊ वस्तु बड़ी अनमोल रे ॥ ध्रुव ॥

ग्राम 'रेलमगरा' था उनका कुल सरावगी गाया।
पिता मानजी मां वखतू की दिव्य कुक्षि में आया।
जन्म लिया २ नव नवति ह्यन में वजे खुशी के ढोल रे[1] ॥१॥

प्राग्भव संस्कारांकुर फूटे छूटे ज्ञान फुंवारे।
नवल सती के चातुर्मास में पाकर बोध-नजारे।
मां वखतू २ सह समझ गये है लिया विरति रस घोल[2] रे ॥२॥

सोरठा

जननी बखतू साथ, मृगसर कृष्णा छठ को।
मुनि भवान के हाथ, दीक्षित नव वर्षायु[3] में ॥३॥

शिशु मुनि ने सोल्लास, भेंटे पद ऋषिराय के।
सेवा का दो मास, मिल पाया अवकाश कुल[4] ॥४॥

हलका फूल शरीर, कृष्ण वर्ण लम्बा न कद।
देती कान्ति नजीर, छुपे हुए व्यक्तित्व की ॥५॥

बिठलाया है गोद, जय ने इक दिन मोद में।
पनपाने हित पौध, सीचा रस वात्सल्यमय[5] ॥६॥

नहीं किया मंजूर, पंचों का वह फैसला ।
आशंका सब दूर, की जय ने गूढोक्ति से[6] ॥७॥

लय—कोटि-कोटि कंठो······

मुनि स्वरूप को सौंपा जय ने लिए प्रगति के इनको ।
विनय-भक्ति पूर्वक रहते हैं कर अर्पित तन-मन को ।
कुल सतरह २ वर्षों तक उनकी सेवा सजो अडोल[7] रे ॥८॥

साधु-क्रिया में चलकर प्रतिपल गये शिखर पर चढ़ते ।
पाकर के वात्सल्य सुगुरु का उन्नति पथ पर वढ़ते ।
कर उद्यम २ पढ़ते जैनागम को विस्तृत भूगोल रे । ९॥

कुशल संयमी वने दमीश्वर कोमल सरल प्रकृति से ।
गुण ग्राहक वन गुण-सुमनों का हार पिरोया धृति से ।
गण-गणि को २ ही सव कुछ माना लगा रंग तम्वोल रे ॥१०॥

ऋषि स्वरूप सुरलोक पधारे तव वोले जय गणिवर ।
संत पुस्तकें लेकर के ये विचरो पुर-पुर मुनिवर ।
वे वोले २ गुरु पद सेवा की इच्छा नाथ ! सतोल[8] रे ॥११॥

चार साल गणपाल चरण के सन्निधि में रह पाये ।
प्राप्त योग्यता कर अधिकाधिक गण में शोभा पाये[9] ।
मधुर-मधुर २ सस्मरण श्रमण के सुनिये श्रुति पट खोल रे ॥१२॥

जय—भीखण जी स्वामी रो···

कलाकार 'कालू' की कृतियां स्मृतियां आज वनाई जी ।
कार्य-कुशलता क्षमता की दे रही गवाही जी । कला···

शासन-शासनपति सेवा में उनका एक नजारा जी ।
नस-नस में एकत्व भाव की वहती धारा जी ।
किये कार्य वहु गण के, जिम्मेदारी खूव निभाई जी ॥१३॥

कुशल चिकित्सा कोमल कर से जय-लोचन की की है जी ।
मिटा 'मोतियाविद' पद्मवत् आंख खुली है जी ।
जयाचार्य की दया-दृष्टि से दिन-दिन आव वढ़ाई जी[10] ॥१४॥

ऋषि स्वरूप के नाम सिघाड़ा जय ने किया सभा में जी।
वखशीशे कर नाना भर दी प्रभा प्रभा में जी।
साधु-संघ में जिनकी सूची सर्वोपरि वन पाई[११] जी ॥१५॥

कालू मुनि ने जय-चरणों में साग्रह भेट चढ़ाई जी।
साधिक एक लाख गाथाएं लिखी लिखाई जी।
भारी मनुहारों से पक्की स्वीकृति-छाप लगाई[१२] जी ॥१६॥

वालक से वन तरुण तरुण से वने प्रौढ़ वर्चस्वी जी।
वय सह अनुभव ज्ञान विवेक वना तेजस्वी जी।
मिले रत्न ही रत्न यत्न से भाग्य लता लहराई जी ॥१७॥

श्लोक हजारों सीखे मुनि ने ऊर्ध्वमुखी प्रतिभा से[१३] जी।
लिखे लेखिनी द्वारा लाखों पद स्थिरता से जी।
लेखन की द्रुत गति जन मन में अति ही विस्मय लाई[१४] जी ॥१८॥

ज्ञानी-ध्यानी थे व्याख्यानी छाप जमी गुरु मन में जी।
था मौलिक विश्लेषण उनके हर प्रवचन में जी।
कथा हेतु दृष्टान्त युक्ति सह वाक्पटुता चतुराई[१५] जी ॥१९॥

याद कथाएं वहुत उन्हें थी मति से नई वनाते जी।
कभी-कभी मुनि जन गोष्ठी में उन्हें सुनाते जी।
श्री मघवा ने सुन पीछे से ग्राह्य-वृत्ति दिखलाई[१६] जी ॥२०॥

थे इतिहासकार संघ को देन वड़ी ही दी है जी।
भैक्षव गण के मुनि सतियों की 'ख्यात' लिखी है जी।
देख अनूठा संग्रह, उनको देते सभी वधाई[१७] जी ॥२१॥

साहित्यिक रचनाएं उनकी हैं कितनी भावात्मक जी।
तेज सार आख्यान, गीतिका प्रतिवोधात्मक[१८] जी।
वहुमुखी आयाम खोलकर अभिनव ज्योति जगाई जी ॥२२॥

देश-देश पुर-पुर में विचरे अप्रतिबंध-विहारी जी।
कर-कर धर्म-प्रचार बने है पर उपकारी जी।
सम्यग्-दर्शन-ज्ञान-चरण की वड़ी दुकान चलाई जी ॥२३॥

सोरठा

आचार्यों के पास, रहते मुनिवर अधिकतर।
ज्येष्ठ मास में खास, जाते पावस के लिए ॥२४॥

करते दीर्घ विहार, बारह-बारह कोश के।
नही मानते हार, सबल मनोबल के धनी[१९] ॥२५॥

लय—भीखणजी स्वामी रो……

सुलभ बोधि बहु श्रमणोपासक दे प्रतिबोध बनाये जी।
गण-विधि युत दो बहिनों को दीक्षित कर पाये[२०] जी।
संयम ही जीवन सर्वोत्तम आत्मिक सुख की साई जी ॥२६॥

बहिर्भूत मुनि छोग आदि ने भ्रान्ति बहुत फैलाई जी।
अथग परिश्रम कर मुनि श्री ने उसे मिटाई जी।
पुर सरदार शहर योगी की जटिल जटा सुलझाई जी ॥२७॥

थली देश की सौंपी जय ने सारी जिम्मेदारी जी।
पूर्ण निभाई गण-गणिवर से रख इकतारी जी।
की सराहना गुरु ने मुख से मुक्त स्वर स्तुति गाई[२१] जी ॥२८॥

दोहा

किया शहर सरदार में, पावस अवसर देख।
समझा मेरी दृष्टि को, कर चिन्तन सविवेक[२३] ॥३०॥

कर देना प्रस्थान तुम, शकुन देखकर तेज।
संत पुस्तकें बाद में, दूंगा फिर मैं भेज[२४] ॥३१॥

भैंस मर गई दीर्घतर, 'पोठा' (गोबर) है अवशेष।
कंडा बन वह लोह का, कर सकता बल शेष[२५] ॥३२॥

लय—भीखणजी स्वामी रो……

अन्तरंग बहिरंग कार्य बहु, किये वफादारी से जी।
गणि-ईंगित निर्देश समझते बारीकी से जी।
गर्मी में मेवाड़ गमनकर दुविधा दूर हटाई जी[२६] ॥३३॥

साहस भरा हृदय में भय तो कोशों दूर भगाया जी।
एक वार रजनी में 'चित्ता' नजर चढ़ाया जी।
विघ्न हरण की गीति स्मरण से चिंता निकट न आई जी[७] ॥३४॥

साधु-साध्वियों के सहयोगी वनते समय-समय पर जी।
थी आत्मीय-भावना रखते ध्यान निरन्तर जी।
'उदय' तपोधन को अनशन में गाथा खूव सुनाई जी[८] ॥३५॥

शतोन्नीस चोपन की कार्तिक कृष्ण तृतीया आई जी।
विना किये गणनाथ, नाथ ने सुरगति पाई जी।
अप्रत्याशित इस घटना से गण-वनिका मुरझाई जी ।३६॥

दोहा

कालू मुनि का उदयपुर, चतुर्मास उस साल ।
समाचार सुन विरह के, सव ही हुए निढाल ॥३७॥

चिन्तन चलता भीतरी, भारी हुआ दिमाग ।
स्व-परमती जन कर रहे, ऊहापोह अथाग ॥३८॥

सोरठा

अल्प न पद की भूख, चाह संघ-सम्मान की।
हुए चित्रवत् मूक, उत्तर सुन श्रीलालजी[९] ॥३९॥

लय—भीखणजी......

गण के लिए कसौटी का वह समय विकटतम आया जी।
उतरा खरा श्रमण-गण उससे यश वहु छाया जी।
कालूजी स्वामी की अद्भुत सूझ-वूझ गहराई जी ॥४०॥

दोहा

चातुरगढ़ से आ गया, चंदेरी में संघ ।
'तखत' हवेली में मिला, खिला निराला रंग ॥४१॥

चलते-चलते आ गये, श्री कालू मुनिवर्य ।
पौष कृष्ण तिथि तीज को, वढ़ा सहज सौन्दर्य ॥४२॥

कर चुनाव आचार्य का, पाये है वहुमान ।
हुए चतुर्विध तीर्थ के, सकल सफल अरमान ।।४३।।

सवकी एक सलाह से, पास हुआ प्रस्ताव ।
दिखा दिया गणतंत्र ने, एकतंत्र का भाव ।।४४।।

जिस चुनाव हित हो रहे, वोटों के संग्राम ।
नोटों का क्षय, वचन पर रहती नहीं लगाम ।।४५।।

दो क्षण में संघर्ष विन, निकल गया निष्कर्ष ।
सुने सभी उम्मीदवार, घटना वह उत्कर्ष ।।४६।।

लय—खमा ३ हो……

वोलो-वोलो-वोलो संतो ! सव ही सयाने,
आचार्य नाम तुम वोलो जीओ ।
घोलो-घोलो-घोलो मुख में मधुर वताशे,
मणि स्वर्ण-तुला में तोलो जीओ ? ।।ध्रुव।।

मिली निशा में मुनि-मडली अकेली, है नही निकट गृह-राजा जीओ ।
चारो ओर देकर चौकी कम्वल के द्वारा, रोका मुनि ने दरवाजा जीओ।।४७।।

सवको आह्वान करके वोले मीठे स्वर में, सुहृदय कालूजी स्वामी ।
भावी गणपति नाम लाओ अव सामने वैठे मुनि नामी, नामी ।।४८।।

झोली विछाऊ वड़ी करूं एक याचना, दे दो तुम नाथ-नगीना ।
वनें सनाथ हाथ दोनों मिलाकर ताने हाथीवत् सीना ।।४९।।

वोले सव सत आप वड़े हैं विचक्षण, वलवहु अनुभव चिंतन का ।
ढूढ के निकालो झट मुक्ता-समूह से, मोती वह चोसठ मन का ।।५०।।

सवका सुझाव सुन वोले मुनि कालू, श्री डालचंद जी स्वामी ।
अपने आचार्य कार्यवाहक है गण के, हम सव उनके अनुगामी ।।५१।।

साधुओं ने किया वदन उस ही दिशा में, सादर अभिनदन मुख से ।
गोष्ठी संपन्न हुई फूला मन फूल ज्यो, सोये शय्या में सुख से ।।५२।।

फैली है वात रात-रात में हवा ज्यों, घर-घर क्या पुर-पुर नगरी।
देश क्या विदेश में भी तार पत्र द्वारा, पहुची है यह खुशखवरी ॥५३॥

करते सव लोग तेरापंथ की प्रशंसा, श्रद्धा से शीप झुकाते।
नूतन इतिहास गढा पढा मंत्र इप्ट का, कालू मुनि का यश गाते ॥५४॥

दोहा

युग-युग तक इतिहास मे, अमर रहेगा नाम।
याद करेगे काम को, मुनि श्रमणी हर याम ॥५५॥

माघ कृष्ण तिथि दूज को, पदासीन श्री डाल।
मुनि श्रमणी फूले फले, देख संघपति-भाल[१०] ॥५६॥

गुण-वर्णन संस्मरण का, कितना करूं वयान।
वास्तव में कर्तृत्व की, थी वह मूर्ति महान् ॥५७॥

वड़े-वड़े पुर नगर में, चातुर्मास प्रवास।
कर कर भर पाये नया, जनता में उल्लास[११] ॥५८॥

लय—कोटि कोटि कंठों से......

वर्प पचास संयमी जीवन सकुशल सवल विताया।
श्रम-वूंदों से खीच सार रस उसको सफल वनाया।
भर पौरुप २ ऊर्ध्वोर्ध्व भाव से दिये कर्म-तरु छोल रे ॥५९॥

शत-उन्नीस अठावन सावन कृष्ण तृतीया आई।
अनशन पूर्वक मुनि श्री ने आराधक-पदवी पाई।
चरमोत्सव २ की लगी 'ताल छापर' में नव रंग रोल रे ॥६०॥

दोहा

मुनि गणेश वहु वर्प से, थे मुनि श्री के साथ।
प्रतिदिन वैयावृत्य में, रहे वढाते हाथ ॥६१॥

अंतिम वर्पावास में, अमरचंद मुनि सग।
की है सेवा आखिरी, सुदर देख प्रसंग[१२] ॥६२॥

कालू मुनि का चयन कर, बतलाया संबंध।
ख्यात आदि में मिल रहे, छोटे बड़े निबंध ॥६३॥

करते श्री कालूगणी, समय-समय उल्लेख।
तुलसीगणि द्वारा रचित, लो पद्यों को देख[33] ॥६४॥

१. मुनि श्री कालूजी मेवाड प्रदेशान्तर्गत रेलमगरा (जहां न रेल है और न मगरा) नामक ग्राम के निवासी, जाति से सरावगी और गोत्र से 'छावडा' थे।

उनके पूर्वज पहले जयपुर तथा फूल्याकेकड़ी में निवास करते थे।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम मानजी और माता का वखतूजी था। उनका जन्म सं० १८६६ मे हुआ। (सेठिया सग्रह)

मुनि अमरचदजी (२२८) द्वारा रचित कालू मुनि गुण वर्णन ढाल० २ गा० १ मे उनके पिता का नाम देवीचंदजी लिखा है :—

मुनिवर ! रे देश मेवाड़ मे जाणज्यो रे, रेलमगरो पिछाण रे लाल।
जात सरावगी ते सही रे, देवीचंद सुत जाण रे लाल॥

स० १६०८ मे साध्वी प्रमुखा नवलाजी(२४०) 'पाली' का चातुर्मास रेलमगरा मे हुआ। उस समय वालक कालू और उनकी माता वखतूजी दो ही व्यक्ति घर मे थे। माता वखतूजी प्राय· साधु-साध्वियो से दूर रहती और उनकी निन्दा करती थी, किन्तु राग-रागिनियों से आकृष्ट होकर रात्रि के समय 'रामचरित्र' सुनने के लिए आती और दूर बैठकर व्याख्यान सुनती। अच्छी-अच्छी रागें सुनने से तो उसका जी अधिक ललचाता। अन्य वहिनो को पूछताछ कर विशेष जानकारी करती। आखिर धीरे-धीरे निकट आने लगी और साध्वियो की सेवा कर कठ मिलाने लगी। क्रमश. सपर्क करते-करते उसकी दीक्षा लेने की भावना हो गई। साथ-साथ पुत्र कालूजी भी तत्त्वज्ञान सीखकर दीक्षा के लिए तैयार हो गये।

(सेठिया सग्रह)

मुनिवर रे ! वालपणै वुध आगला रे, सीख्या जाणपणो सार रे लाल।
मां वेटा मतो करै रे, लेणो चरण सुखकार रे लाल॥

(मुनि अमरचदजी कृत—गु० व० ढा० २ गा० २)

उस वर्ष तृतीयाचार्य श्री रायचदजी का चातुर्मास उदयपुर मे था। वहां माता और पुत्र दोनो ने आचार्य श्री ऋषिराय के दर्शन कर दीक्षा के लिए प्रार्थना की तव गुरुदेव ने मुनि भवानजी (१२०) 'वड़ा' को रेलमगरा जाकर दोनों को दीक्षित करने का आदेश दिया। स्वय सांस का प्रकोप अधिक होने से नही पधार सके :—

गणपत आप पधारता, चरण देवण नै ताम।
सांस तणा कारण थकी, मेल्या दीर्घ भवान नै स्वाम॥

(गु० व० ढ़ा० २ गा०३)

३. माता पुत्र दोनो वापस रेलमगरा आये। चातुर्मास के पश्चात् मुनि भवानजी वहां पधार गये-तव स० १६०८ मृगसर वदि ६ को वालक कालूजी

ने नौ साल की अविवाहित (नाबालिग) अवस्था मे अपनी माता वखतूजी (२६६) सहित मुनि श्री भवानजी द्वारा रेलमगरा मे दीक्षा स्वीकार की :—

माता साथै दीक्षा लीन्ही, भवानजी मुनि हाथ।
उगणीसै आठै मृगविद छठ, शैशव सुषमा साथ ॥

(डालिम चरित्र खड १ ढ़ा० १८ गा० ५)

मुनि भवानजी नव दीक्षित मुनि कालूजी को अपने साथ ले गये और उनकी माता साध्वी वखतूजी को साध्वी नवलाजी को सौप दिया।

४. मुनि भवानजी ने आचार्य श्री रायचदजी के दर्शन कर नव दीक्षित मुनि कालूजी को गुरु चरणो मे भेंट कर दिया। आचार्य ऋषिराय ने वालक मुनि पर वहुत अनुग्रह रखा :—

मां वेटा नै दिख्या दीधी रे, दिया गणपत चरण लगाय।
वालक साधु देखनै रे, गणी लाड राख्यो वहु ताय।

(गुण वर्णन ढ़ा०गा० ४)

मुनि कालूजी को दो महीने गुरु-सेवा का अवसर मिला। आचार्य श्री के स्वर्ग-गमन के पश्चात् जयाचार्य पदासीन हुए। उन्होने मुनि कालूजी को मुनि श्री सरूपचदजी को सौप दिया :—

दो महीना रै वाद हुया हैं, जयाचार्य पटधारी।
वड वधव स्वरूप री सेवा, कालू ने रिझवारी ॥

(डालिम चरित्र खड १ ढ़ा० १८ गा०६)

५. वालमुनि कालू का शरीर दुवला-पतला, कद छोटा और वर्ण श्याम था। चेहरे की दिव्य कान्ति छुपे हुए विराट् व्यक्तित्व की सूचना दे रही थी।

लाडनू की घटना है कि एक दिन जयाचार्य ने वाल मुनि कालू को गोद मे विठा कर ऊपर मोटी कम्वल ओढ ली। साध्वी श्री सरदारांजी आदि साध्विया गुरुदेव की सेवा मे आई तव जयाचार्य ने पूछा—'यहा साधु कितने है ?' उन्होंने आस पास दृष्टि फैलाकर देखा और कहा—'इस स्थान मे तो केवल आग ही विराज रहे हैं।' आचार्यप्रवर ने कम्वल को दूर हटाकर पूछा—'यह कौन है ?' वाल मुनि कालू को गुरुदेव के गोद मे वैठे हुए देखकर सभी आश्चर्यचकित हुए और वातावरण विनोद मे परिणत हो गया। (अनुश्रुति के आधार से)

६. जयाचार्य ने एक वार साधुओं की साधारण स्खलना के प्रायश्चित के लिए पाच पचो (मुनि छोगजी (१३८), हरखचदजी (१४४) आदि) की नियुक्ति की। किसी भी त्रुटि करने वाले व्यक्ति को कितना दड मिलना चाहिए, इसका निर्णय वे पांच पच सम्मिलित होकर किया करते थे।

सं० १९११ के शेषकाल मे जयाचार्य खाचरोद (मालवा) मे विराज रहे थे। एक दिन की बात है कि बाल मुनि कालूजी से कोई गलती हो गई। पचो ने उनको कितने मडलियों (प्रायश्चित का मानदड) का दड दिया। पर मुनि कालूजी ने वह स्वीकार नही किया। तब पंचों ने जयाचार्य से उनकी शिकायत की। जयाचार्य ने सब बात की जांच कर बालमुनि कालूजी से प्रायश्चित स्वीकार न करने का कारण पूछा तो उन्होने कहा—'दड ज्यादा है।' जयाचार्य ने उनसे पूछा—'तुझे किस पर विश्वास है ? क्या तू मघजी के निर्णय को मान लेगा।' उन्होने कहा—'हा, वे जो कुछ प्रायश्चित देगे वह मुझे सहर्ष मान्य है।' जयाचार्य ने मुनि मघवा को बुलाया और पूर्व स्थापित पाच पचो पर उन्हे सरपच बना दिया। उस समय मुनि मघवा की चौदह वर्ष की अवस्था थी। मुनि कालूजी उसके लिए सहज निमित्त बन गये :—

वय चवदह बरसां बण्या रे, शासण में सरपंच।
कालूजी स्वामी बड़ा रे, हेतु-भूत इण संच॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० २१)

७. मुनि श्री १७ वर्ष (सं० १९०८ से २५तक) मुनि श्री स्वरूपचंदजी के सान्निध्य मे एक रस होकर रहे। विनय नम्रता पूर्वक शिक्षा, लेखन, व्याख्यान मे उत्तरोत्तर प्रगति करने लगे। ३२ सूत्रों का वाचन किया।

मुनि श्री कालूजी ने मुनि श्री स्वरूपचदजी की सेवा कर 'सेवा धर्म. परम गहन:' उक्ति को सार्थक कर दिया। सेवा वही मुनि कर सकता है जिसकी कर्म निर्जरा की दृष्टि हो, जो दूसरे के शरीर को अपना शरीर समझे तथा अग्लान भाव हो। उन्होने उसे मूर्त्त रूप देकर मुनि श्री को सभी तरह से बहुत समाधि उत्पन्न की। मुनि स्वरूपचदजी ने उनकी सेवा-भावना की मुक्तकठो से प्रशसा की। आखिरी समय तक वे मुनि श्री के चरणों मे समर्पित होकर रहे, उनके हाथों मे (सहारा देकर बैठे थे) ही मुनि श्री स्वरूपचदजी दिवगत हो गये :—

बहु वर्षा लग छेडा सूधी, भवान कालू आदि।
तन मन सेती सेव करी अति, विविध प्रकार समाधि।

(स्वरूप नवरसो ढा० ९ गा० ६९)

तन मन अर्पण कर, सोदर री, भारी सेवा साझी।
सतरै वर्ष सहर्ष बिताया, जबरी जीती बाजी।

(डालिम चरित्र खड १ ढा० १८ गा० ७)

९ स० १९२५ मे जेठ सुदि ४ को मुनि स्वरूपचदजी के स्वर्गवास के पश्चात् दूसरे दिन जयाचार्य ने मुनि कालूजी को अग्रगामी रूप मे विहरण करने का निर्देश देते हुए फरमाया—'थे स्वरूपचदजी स्वामी के निश्राय की पुस्तके तथा

साधु है, इन्हें साथ लेकर विचरण करो।' मुनि श्री ने नम्र शब्दो मे निवेदन किया—'मेरी इच्छा आपकी सेवा मे रहने की है।' कुछ समय तक परस्पर मनुहारे होती रही। आखिर मुनि श्री की हार्दिक प्रार्थना फलित हुई। वे गुरुकुल वास मे रहे।

(प्राचीन पत्र के आधार से)

९ स० १९२६ से २९ तक मुनि कालूजी को जयाचार्य की सेवा का अवकाश मिला। चार वर्ष के गुरुकुल वास मे वे बहुत लाभान्वित हुए। अनेक अनुभव एव शासन कार्य करने का उन्हे सुअवसर प्राप्त हुआ।

वे सभी तरह से योग्यता प्राप्त कर सघ के प्रमुख साधुओ की गणना मे आ गये। उनकी शासन निष्ठा, गुरुभक्ति, सेवा परायणता, विवेक शीलता एवं कार्य क्षमता से जयाचार्य अत्यधिक प्रभावित हुए। विशेष अनुग्रह भरी दृष्टि से उन्हे प्रोत्साहित किया। (ख्यात)

१०. वृद्धावस्था के साथ जयाचार्य के आंख मे कुछ गडबड़ हो गई। साधारण उपचार से वह ठीक नही हुई। धीरे-धीरे नेत्र ज्योति क्षीण होने लगी और उनमें 'मोतिया' उतर आया। उसके पक जाने से स० १९२९ बीदासर मे पंचायती के नोहरे मे मुनि श्री कालूजी ने सफल चिकित्सा की[1] जिससे चारतीर्थ मे आनन्द की लहर दौड़ गई। जयाचार्य ने मुनि श्री के हस्तकौशल की प्रशसा करते हुए 'मुझ चक्षु तणां दातार' 'जिन्दगी दार' आदि वाक्यो के द्वारा कृतज्ञता व्यक्त की।

कला सुकौशल हस्त सुलाघव, चतुरमुखी चतुराई।
गुणतीसै जय दृग् ऑपरेशन, भारी कीरत पाई।

(डालिम चरित्र खड ढा० १८ गा० १०)

मुनि श्री के हस्त-कौशल का मघवागणी के मन मे बडा विश्वास जमा हुआ था। एक बार की बात है—साध्वी प्रमुखा गुलाबाजी के स्तन पर एक गाठ हो गई। दो हजार रुपये मासिक वेतन वाले डाक्टर ने उसे देखकर कहा—'क्या कोई ऐसी चतुर साध्वी है जो इसका आपरेशन कर सके, वरना हमे आदेश दें तो हम करने के लिए तैयार हैं।' मघवा गणी ने फरमाया—'कालूजी स्वामी अभी यहां नही है, उनके आने के पश्चात् इस विषय मे चिंतन करेंगे।'

(अनुश्रुति के आधार से)

११ स० १९२९ माघ शुक्ला ५ (बसत पचमी) को बीदासर मे चारतीर्थ

---

१. गणपत रा नेतर तणी, कारी करी सुजाण।

(गु० व० ढ़ा० १ गा० ६)

ख्यात मे भी इसका उल्लेख है।

के बीच जयाचार्य ने मुनि श्री कालूजी का सिंघाड़ा बनाया एवं साथ में चौथे साधु की बख्शीश की। अनेक अनुग्रह भरे वचनों में उन्हें सम्मानित किया :—

सुन्दर दिवस बसंत पंचमी, उगणीसैं गुणतीस।
स्वरूप शशी लारै सिंघाड़ो, थाप्यो कर बगसीस।
(डालिम चरित्र खंड २ ढा० १८ गा० १३)

उनका सिंघाड़ा करने से पूर्व सं० १९२९ भाद्रव शुक्ला १३ भिक्षु चरमोत्सव के दिन जयाचार्य ने उनको निम्नोक्त बख्शीशें की[1] :—

(१) सर्व बोझ की बख्शीश।
(२) गोचरी उपरांत सब काम की बख्शीश तथा साथ में पंचमी जाने की बख्शीश।
(३) लघु की बारि परठने की बख्शीश।
(४) अस्वस्थता में औषध ले तो विगय वर्जन की छूट।

इसके अतिरिक्त समय-समय पर उनको आचार्यों द्वारा अनेक बख्शीशें हुई। उनकी लम्बी तालिका प्राचीन प्रकीर्णक पत्र प्रकरण ५ में संगृहीत है।

जयाचार्य के स्वर्गारोहण के बाद मुनि श्री कालूजी मघवागणी तथा माणकगणी के भी विशेष कृपापात्र रहे।

जीवन भर श्री जयाचार्य री, कृपा-पात्रता पाई।
बढ़ती चढ़ती रही दिनों दिन, मघवा महर सवाई॥
(डालिम चरित्र खण्ड १ ढा० १८ गा० २३)

माणकगणी ने मुनि श्री कालूजी को मंत्री के रूप में मान्य किया :—

श्री माणिक गणिवर वरतारै, मन्त्री ज्यूं मानीज्या।
केवल अपनी कार्य-दक्षता स्यूं, दिन-दिन पूजीज्या॥
(डालिम चरित्र खण्ड १ ढा० १८ गा० २६)

वे विहार करते तब आचार्य श्री मघवागणी पहुंचाने के लिए पधारते तथा आते तब अगवानी करते :—

करता जद विहार कालूजी, स्वयं पूज्य पहुंचाता।
आता जब अगवाणी करता, इज्जत खूब बढ़ाता॥
(डालिम चरित्र खण्ड १ ढा० १९ गा० २४)

---

१. बोज काम छोड्यो सहु, मांगी वस्तु नी आग्या जाण।
च्यार संतां सूं सिंघाड़ो कियो, दीधी सरूप पोथ्यां पिछाण॥
(गु० व० ढा० २ गा० ७)

ख्यात में भी ऐसा उल्लेख है।

विविध पुरस्कार तथा बहुमान मिलने पर भी उनकी निस्पृहता और अनाकांक्षा वृत्ति श्लाघनीय थी जो परिशिष्ट संख्या १ मे दिये गये विभिन्न उद्धरणों से व्यक्त होती है।

१२. स० १९२९ भादवा सुदी १३ को उन्होने एक लाख से कुछ अधिक लिखित गाथाएं जयाचार्य को भेंट की। उनके अधिक आग्रह करने पर जयाचार्य ने वह भेंट स्वीकार की :—

लाख पद्य निज हस्त लिखित मुनि, जयाचार्य री भेंट।
कीधा मुनिवर हठ-मनुहारां, स्वीकृत कीधा नेठ॥
(डालिम चरित्र खड १ ढ़ा० १८ गा० १२)

१३. मुनि श्री ने आगम, आख्यान, श्लोक, छन्द आदि ५४ हजार गाथाए लगभग कठस्थ की। स्व-पर मत के अनेक ग्रंथ पढ़े। यथा सभव सीखे हुए ग्रथो का स्वाध्याय (पुनरावर्तन) किया करते थे।

आगम अवलोक्या अनेक वर, ऊपर ग्रंथ स्वाध्यायी।
कंठ स्थित है पद्य हजारां, प्रगति पंथ अनुयायी।
(डालिम चरित्र खड १ ढा० १८ गा० ८)

पढ्या भण्या गुण आगला, कला विविध पर जांण।
लाखां ग्रंथ वांच्यां लिख्या, हजारां कंठ केवावै।
अनमती सनमती सुण-सुण, गुण थांरा वहु गावै॥
(गु० व० ढा० २ गा० ६, ९)

१४. मुनि श्री ने भगवती सूत्र की जोड़ आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। उनकी लेखिनी बडी द्रुत गति से चलती थी। साधु गोचरी (विभाग आदि मे २ घटे करीब लग जाते) जाकर वापस आते। इतने मे लगभग २०० गाथाए लिख लेते। एक दिन मे अधिक से अधिक चार-चार पत्र एव पांच सौ गाथाए लिख सकते थे। नवीन ग्रथो का सग्रह करने मे भी वड़े कुशल थे :—

लेखन शैली बड़ी नवेली, लिख्या पचासा ग्रंथ।
नूतन संग्रह निरत निरन्तर, दूर दृष्टि अत्यन्त।
(डालिम चरित्र खड १ ढ़ा० १८ गा० ९)

१५. मुनि श्री का व्याख्यान तात्त्विक एव वैराग्य प्रधान था। मघवागणी फरमाते कि हम व्याख्यान मे देर से जाए तो भी कोई आपत्ति नही क्योकि पहले मुनि बीजराजजी (१३५), नाथूजी (१५३), कालूजी (१६३) 'वड़ा' तथा मोतीजी (१७४) गये हुए है। इन चार मुनियो का व्याख्यान रोचक एव प्रामाणिक है।
(अनुश्रुति के आधार से)

१६. मधुर दृष्टांत, हेतु एव कथाओ से व्याख्यान की सरसता और रोचकता अधिक बढ जाती है। मुनि श्री को सैकडो कथाएं याद थी तथा स्वयं अपनी प्रतिभा से कथाओ का निर्माण भी करते थे। उनका वाक्युक्ति के द्वारा प्रतिपादन कर जनता को आकृष्ट कर लेते। वे रात्रि के समय कभी-कभी साधुओं को कथाए सुनाते तव स्वय मघवागणी भी दीवाल के पीछे खडे रहकर उनके द्वारा कही गई कथाओ को सुनते थे।

(अनुश्रुति के आधार से)

१७. अतीत को जीवित रखने के लिए इतिहास की वडी अपेक्षा रहती है। इतिहास के विना समाज की भावी उन्नति मे रुकावट आती है। मुनि श्री ने तेरापथ धर्म-सघ की स० १९४३ तक की ख्यात लिखी जिसमे तव तक के साधु-साध्वियो का सक्षिप्त परिचय है। श्री मज्जयाचार्य ने तो सर्वतोमुखी भिक्षु-शासन का इतिहास आख्यान और गीतिकाओ के रूप मे लिखा ही है जो प्राचीन घटना व संस्मरणो का आधार स्तंभ है ही। लेकिन मुनि श्री द्वारा लिखित 'ख्यात' भी इतिहास की खोज करने वालों के लिए वहुत उपयोगी है।

भिक्षु शासन सन्त सत्यांरो, प्रथम लिख्यो इतिहास।
कालू री आ दूरदर्शिता, ओ सामयिक विकास।

(डालिम चरित्र खंड १ ढा० १८ गा० २२)

ख्यात के १५ पन्ने उनके द्वारा लिखे हुए है उसके वाद लगभग ३० वर्ष तक ख्यात नही लिखी गई। फिर मुनि श्री चौथमलजी (३५५) जावद ने उसे व्यस्थित रूप से लिखना प्रारभ किया एव उत्तरोत्तर अन्य मुनियो द्वारा उसका क्रम चलता रहा।

१८. सामान्य घटना भी कविता द्वारा सरस व आकर्षक वन जाती है। मुनि श्री ने इस क्षेत्र मे भी अच्छा विकास किया। तेजसार का व्याख्यान, पखवाड़ा, तथा "विमल विवेक विचार नै" इत्यादि वैराग्य पूर्ण गीतिकाए उनके द्वारा रचित है।

१९. मुनि श्री अग्रगण्य होने के पश्चात् भी प्राय शेषकाल मे आचार्य देव की सेवा मे रहते। जेठ, आषाढ मे चातुर्मास के लिए प्रस्थान करके लम्वे-लम्वे विहार कर निर्दिष्ट स्थान पर पहुच जाते। १०, १२ कोश का विहार तो आपके लिए साधारण था।

चूरूं स्यू विश्राम फतेपुर, ततो रतनगढ़ जाण।
श्रै विहार साधारण मुनि रा, कांइ कांइ करू वखाण।।

(डालिम चरित्र खं० १ ढा० १८ गा० १६)

२०. मुनि श्री ने प्रतिवोध देकर अनेक व्यक्तियों को सुलभ वोधि और

श्रमणोपासक बनाया[1] तथा आचार्य श्री के आदेशानुसार दो बहनो को दीक्षा प्रदान की :—

१. स० १९४१ जेठ सुदी ३ को अभाजी (५२५) 'सरदार शहर' को सरदारशहर मे दीक्षा दी ।
२. स० १९४३ माघ सुदी ६ को गुलाबाजी (५३८) 'सरदारशहर' को सरदारशहर मे दीक्षा दी ।

२१. स० १९३६ वैशाख शुक्ला ३ को छोगजी आदि ४ साधु तथा हरखूजी आदि ५ साध्विया परस्पर दलबदी करके सघ से बहिर्भूत हो गये । सं० १९२० मे गण से बहिर्भूत चतुर्भुजजी आदि से मिलकर एक गुट तैयार कर लिया । वे अनेक ग्रामो मे घूमते हुए सरदारशहर पहुचे । स० १९३७ का चातुर्मास भी सरदारशहर किया ।

उस समय जयाचार्य जयपुर मे विराज रहे थे । उन्होने कालूजी स्वामी (जो किशनगढ मे थे) को थली की तरफ जाने का आदेश दिया एव पूर्ण जिम्मेदारी सौंपी :—

जयाचार्य जयपुर चौमासे, थली देश रो भार ।
सारो सूंप्यो कालूजी ने, स्वेच्छा करो विहार ॥

(डालिम चरित्र ख० १ ढ़ा० १८ गा० २०)

तत्काल मुनि श्री ने उस दिशा मे विहार किया । छोगजी आदि जिन-जिन ग्रामो मे जाकर मिथ्या भ्रम फैलाते, मुनि श्री उन-उन ग्रामो मे पधार कर लोगो को समझाते । प्रश्नो का आगम एव गणविधि के अनुसार उत्तर देकर उन्हे असदिग्ध बनाकर श्रद्धा मे मजबूत करते ।

सरदारशहर मे उस समय चतुर्भुजजी आदि का प्रभाव जमा हुआ था । छोगजी के मिलने से उन्हे फिर बल मिल गया । जयाचार्य सरदारशहर को 'योगी की जटा' कहा करते थे । जिस प्रकार योगी की जटा बहुत उलझी हुई होती है, उसे कघी से नही सवारा जा सकता, उसे ठीक करने के लिए उस्तरे की अपेक्षा होती है । ठीक इसी तरह समय आने पर ही सरदारशहर के लोग समझेंगे अर्थात् वह योगी की जटा सुलझेगी ।

मुनि श्री कालूजी ने जयाचार्य के आदेशानुसार स० १९३७ का चातुर्मास सरदारशहर किया । वहां सभ्रात लोगो को समझाने के लिए रात दिन भरमक

---

१. देश-प्रदेश विचरचा घणा, वोहत कियो उपगार ।
सम्यक्त दीधी हजारा जन भणी, कैहता किम आवै पार ॥
(गु० व० ढ़ा० २ गा० ८)

प्रयास करने लगे। स्थानीय श्रावक मेघराजजी आचलिया ने जयपुर के श्रावकों को पत्र देकर छोगजी आदि से सवधित प्रश्नो के जवाव मगवाये। जयपुर के श्रावको ने जयाचार्य से प्रश्नो के उत्तर धारकर सरदारशहर के श्रावको को भेजे[1]। उनके माध्यम से मुनि श्री ने व्यक्ति-व्यक्ति को समझाना प्रारभ किया। थोडे दिनो मे जेठमलजी गधइया आदि अनेक परिवार समझकर तेरापथ के अनुयायी वने और सच्ची श्रद्धा स्वीकार की। सरदारशहर पहले वहिनो का क्षेत्र कहलाता था। कालूजी स्वामी ने ऐसा तीव्र प्रयत्न किया कि एक साथ सरदारशहर लगभग ठीक हो गया और वह योगी की उलझी हुई जटा सुलझ गई एव वातावरण स्वस्थ हो गया।

सरदारशहर की जनता मे मुनि श्री के प्रति गहरी निष्ठा थी। उनके द्वारा किये गये उपकार को लोग वार-वार याद करते।

जयपुर विराजित जयाचार्य ने थली प्रदेश के सव समाचार सुनकर मुनि कालूजी की भूरि-भूरि प्रशसा की।

उपर्युक्त समझने वाले भाइयो मे जेठमलजी गधैया की घटना इस प्रकार है—

जेठमलजी गधैया पहले सं० १८९० मे गण से वहिर्भूत मुनि फतेहचदजी (१०२) की श्रद्धा मे थे। वाद मे वे मुनि चतुर्भुजजी, छोगजी के अनुयायी वन गये। सं० १९३७ के चातुर्मास मे मुनि श्री कालूजी ने अनेक लोगों को समझा-कर गुरु-धारण करवाई। मुनि श्री की जेठमलजी से वात करने की इच्छा थी, पर वे मिले नही। मुनि श्री यह भी जानते थे कि वे स्थान पर नही आयेंगे, क्योंकि वे चतुर्भुजजी के इतने कट्टर श्रावक हो गये हैं कि किसी अन्य तीर्थी (अन्य सम्प्रदाय के साधु) को नमस्कार करने, उनके स्थान पर जाने तथा पहल करके उनसे वात-चीत करने तक का उन्होने प्रत्याख्यान कर दिया है। मुनि कालूजी ने अपने साथ के मुनि छवीलजी से कहा—'गोचरी आदि के समय यदि मार्ग मे कही जेठमलजी मिले तो उनसे वातचीत करनी चाहिए। सभव हो तो यहा मेरे से वात करने के लिए उन्हे प्रेरित करना चाहिए।' मुनि छवीलजी उसी दिन से उस कार्य के लिए जुट गये।

एक दिन वे गोचरी के लिए गये हुए थे कि मार्ग मे जेठमलजी मिले। मुनि छवीलजी ने पैर रोक कर उनसे वातचीत की। उन्होने मुनि चतुर्भुजजी तथा छोगजी के सवध मे जयाचार्य द्वारा प्रस्तुत किये गये तर्कों से उन्हे अवगत कराया और उत्तर के लिए प्रेरित किया। दूसरे दिन फिर मुनि छवीलजी ने युक्ति-

---

१. वह पत्र छोगजी (१३९) 'वड़ा' के प्रकरण मे लिपिवद्ध कर दिया गया है।

पूर्वक समझा कर उन्हे 'ठिकाने' के पास गली मे मुनि कालूजी के साथ वातचीत करने के लिए तैयार कर लिया।

भोजन करने के पश्चात् निर्दिष्ट स्थान पर मुनि कालूजी से जेठमलजी ने वार्तालाप किया। लगभग ढाई घटो तक खड़े-खड़े तत्त्व-चर्चा चली। मुनि श्री ने प्रत्येक वात को काफी विस्तार से वतलाया। वे भी पूर्ण मनोयोग से सुनते और समझते रहे। जेठमलजी ने यह भी जान लिया कि तेरापथ को अन्यतीर्थी मानना न्यायसगत नही है। तव उन्होने दूसरे दिन ठिकाने मे आकर मुनि श्री से शकाओ का समाधान प्राप्त किया। पूर्णरूप से आश्वस्त होने के पश्चात् तीसरे दिन उन्होने गुरु-धारणा कर ली।

श्रद्धा स्वीकार करने के वाद वे वहा से उठकर सीधे मुनि चतुर्भुजजी के ठिकाने गए। वहा से सामायिक के उपयोगी-आसन आदि लेकर ज्यो ही वापस आने लगे तो उपस्थित व्यक्तियो ने उन्हे घेर लिया। उन पर प्रश्नो की वौछार-सी होने लगी। वे लोग पूछ रहे थे कि आप मुनि कालूजी के पास क्यो जा रहे हैं, उन्होने आपको क्या-क्या वतलाया है इत्यादि···।

जेठमलजी ने सभी वातो का एक ही वार मे सक्षिप्त-सा उत्तर देते हुए कहा—'मैंने मुनि कालूजी के पास तत्त्व समझकर जयाचार्य को गुरु रूप मे स्वीकार कर लिया है। अव सामायिक आदि धार्मिक क्रियाए वही करूगा। इसलिए आसन आदि ले जा रहा हू।'

मुनि चतुर्भुजजी ने भी उन्हे रोकने का वहुत प्रयास किया पर वे अपने निर्णय मे अडिग रहे। उन्होने कहा—'मैंने अच्छी तरह सोचकर यह कार्य किया है, वह अपरिवर्तनीय है।'

वे अपने घर पर आ गये। मुनि श्री कालूजी के सान्निध्य मे सामायिक आदि धार्मिक क्रियाए करने लगे। उन्होने कलकत्ता पत्र देकर अपने पुत्र श्री चदजी को इस विपय मे अवगत कर दिया। उन्होने भी पिताजी की तरह जयाचार्य को गुरु रूप मे स्वीकार कर लिया।

(युवादृष्टि-मार्च १६७७ कालू स्मृति ग्रथ मे मुनि श्री वुद्धमलजी
द्वारा लिखित निवध के आधार से)

मुनि कालूजी गण का कठिन से कठिन कार्य करने मे अग्रणी रहते थे। वे शासन को ही जीवन प्राण और सर्वोपरि समझते थे। गण से वहिर्भूत साधुओ के साथ उनका रुख भी नही मिलता था :—

वड़ो काम शासण मे पड़तो, कालू आगेवाण।
कै जीवन-जामा शासण रा, प्रस्तुत है दस प्राण॥

टालोकर अवनीत अजोगां, कदै न मिलती आंख ।
पूरब पश्छिम को सो अन्तर, छत्तीसां रो आंक ॥

(डालिम चरित्र ख० १ ढा० १८ गा० १८, १९)

किसी ने मुनि कालूजी की शिकायत करते हुए जयाचार्य से निवेदन किया :- 'इस वर्ष आपने मुनि कालूजी को फतेहपुर चातुर्मास करने का निर्देश दिया था और उन्होने अपनी इच्छा मे सरदारशहर मे कर दिया, इसके लिए वे भारी उपालभ के भागी है ।' कई साधुओं को ऐसी सभावना भी थी कि इस वार मुनि कालूजी को आज्ञा-उल्लघन का वहुत उलाहना मिलेगा ।

जयाचार्य ने उक्त चर्चा का स्पष्टीकरण करते हुए फरमाया—'मुनि कालूजी ने मेरी दृष्टि को समझकर सरदारशहर चातुर्मास किया है क्योंकि जिस उद्देश्य से फतेहपुर के लिए मेरा निर्देश था उस उद्देश्य को उन्होने अपने चिन्तन व विवेक से समझकर एव द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को जानकर वहा चातुर्मास किया है । वहा उनके द्वारा किये गये कार्य की मै सराहना करता हू ।'

शिकायत व अहापोह करने वाले सव मौन हो गये ।'

(अनुश्रुति के आधार से)

२४. जयाचार्य ने मुनि कालूजी को कहा—'तुम हमेशा शौचार्थ शहर के वाहर जाते ही हो, जिस दिन 'सोनचिड़ी' के अच्छे से अच्छे शकुन हो जाये तो तुरन्त सरदारशहर की तरफ विहार कर देना, यह मेरा आदेश है। मै पीछे से सत और पुस्तकादिक आवश्यक सामग्री भेज दूंगा ।'

(अनुश्रुति के आधार से)

२५. जयाचार्य के स्वर्गवास के पश्चात् जव मुनि श्री सरदारशहर गये तव लोगो ने व्यग कसते हुए कहा—'अव क्या है ! भैस तो मर गई, केवल पोठा' (गोवर) रहा है, अर्थात् महान् विज्ञ जयाचार्य तो दिवगत हो गए और ये साधारण साधु रहे है ।' मुनि श्री ने थोड़े शव्दो मे युक्ति-पूर्वक उत्तर देते हुए कहा—"यह 'पोठा' उसी भैस का है जो कडा वनकर तुम्हारे जैसे लोहे के टुकड़ो को भस्म करने मे समर्थ है ।"

सुनकर सव आश्चर्य-चकित हो गये । (अनुश्रुति के आधार से)

२६. एक बार केलवा (मेवाड़) की साध्वी सिणगारांजी (मुनि जयचदजी की ससार पक्षीया पत्नी) को किसी अंतरंग कारण से सघ से बहिष्कृत करने का प्रसग उपस्थित हो गया । इसके लिए मेवाड़ के श्रावको को समझाना बहुत अपेक्षित था । साधु-साध्वियो के कई सिघाड़े वहां पहले से ही विचरण करते थे, किन्तु उस जटिल समस्या का समाधान करना उनके लिए सभव नही था । सामने चातुर्मास का समय था । स्थिति को नियत्रण मे करने के लिए मघवागणी ने कालूजी स्वामी को जेठ महीने मे विहार करा कर मेवाड़ भेजा । उन्होने मेवाड़

मे पहुच कर श्रावको ने सम्पर्क स्थापित कर उन्हे वस्तु स्थिति से अवगत कराया और विधिपूर्वक आचार्य श्री के निर्देश को क्रियान्वित किया। यह घटना सं० १९४५ के जेठ या आषाढ महीने की है :—

जेठ महीने थली देश स्यू, जाणो है मेवाड़।
धाड़ फाड़ कालू री छाती, देता कड़ी लताड़॥
(डालिम चरित्र ढा० १८ गा० १७)

२७. एक बार मुनिश्री ४ साधुओ से रेलमगरा से दो मील दूर पहाड़ी पर 'सूरजवारी' नामक स्थान पर ठहरे हुए थे। आसपास जगल ही जगल था। रात के समय एक चीता आता हुआ दिखाई दिया। तब मुनि श्री ने सहयोगी साधुओ को सजग करते हुए 'विघ्नहरण' की ढाल का स्मरण करना प्रारभ कर दिया। निर्भय होकर जाप मे तन्मय हो गए। चीता ऊपर आया और इधर-उधर सूघकर एक गधे पर लपका और उसे लेकर चलता बना।

(अनुश्रुति के आधार से)

२८. तपस्वी मुनि उदयराजजी के ६५ दिन के सलेखना, सथारे के अवसर मुनि श्री ने उन्हे बड़ा सहयोग दिया। वैराग्य भरी ४१ हजार लगभग गाथाएं सुनाई। (मुनि उदयचदजी की ख्यात)

२९. मुनिश्री कालूजी उस समय वर्तमान साधुओ मे लगभग सभी सतो से बड़े थे। केवल मुनि श्री नाथूजी (१५३) और रामदयालजी (१५७) दो ही सत उनसे बड़े थे। मुनि कालूजी का सवत् १९५४ का चातुर्मास उदयपुर मे था। वहां स्थानकवासी आचार्य श्री श्रीलालजी का भी चातुर्मास था। अचानक माणकगणी के स्वर्गवास के समाचार सुनकर एक दिन श्रीलालजी ने मुनि कालूजी से पूछा—'अब आप आचार्य पद किसे देगे?' मुनि श्री ने कहा—'हम सभी साधु मिलकर किसी सुयोग्य साधु को आचार्य चुन लेगे।' आचार्य श्री लालजी बोले—'आपकी योग्यता को देखते हुए लगता है कि आचार्य पद के लिए आपका नाम ही चुना जायेगा।' यह सुनते ही कालूजी स्वामी ने चौककर निश्छल भाव से सिंह गर्जना करते हुए कहा—'हमारे धर्म-सघ मे अनेक साधु रूप-सपन्न, श्रुत-सपन्न, मेधावी और उच्चतम योग्यता वाले है। मैं तो एक सख्या पूर्ति करने वाला साधारण साधु हू। मेरे मे ऐसी क्या क्षमता है जो इतने बडे उत्तरदायित्व को संभाल सकू। हांडी के पैदे जैसा तो मेरा चेहरा है अत आप ऐसी बात जबान पर मत लाइये :—

श्रीलालजी कहै कालूजी, थानै पूज बणासी।
हांडी के पींदै सो कालो, कहो दाय कद आसी॥
(इतिहास के बोलते पृष्ठ १२५)

श्री लालजी मुनि कालूजी की निरभिमानता एव पद-निरपेक्षता से वहुत प्रभावित हुए ।

३०. माणक गणी के स्वर्गवास के पश्चात् समूचा सघ लाडनू में एकत्रित हुआ । सभी साधु भावी आचार्य के निर्णय के लिए चिंतित थे । मुनि श्री के आगमन की प्रतीक्षा मे पलके विछा रहे थे । मुनि श्री उदयपुर से विहार कर पौष वदि ३ को लाडनू पहुचे । वातावरण मे एक नई लहर आ गई । मुनि श्री ने सभी के मनोगत भावो को पहचाना एवं सारी स्थिति को जाना । रात्रि मे दरवाजे के वाहर तखतमलजी फूलफगर की हवेली में केवल साधुओं की अतरग गोष्ठी हुई । मुनि श्री ने भावी आचार्य की नियुक्ति के लिए सभी मुनियो को आह्वान करते हुए कहा—'आप लोग आचार्य पद के लिए किसी योग्य मुनि का नाम घोषित कीजिए ।' तव सत-जन वोले—'आप वड़े अनुभवी एवं दूरद्रष्टा हैं अतः आप ही भावी आचार्य का नाम प्रकाशित करें ।' मुनि श्री ने पूर्व चिंतन एवं विचार-विमर्पण के अनुसार मुनि श्री डालचंदजी के नाम की घोषणा कर दी । साधुओं के दिलो मे हर्ष की लहरे उमड़ने लगी एवं सभी ने श्रद्धावनत हो उस दिशा में वदन किया ।

मुनि श्री कालूजी को इस कार्य का श्रेय मिला जिससे युग-युग तक उनका नाम इतिहास के पृष्ठो मे अकित रहेगा ।

डालगणी ने माघ वदि २ को जव लाडनू प्रवेश किया तव सव साधु अगवानी के लिए सामने पधारे । स्थान पर पहुचने के पश्चात् चतुर्विध सघ ने नव नियोजित आचार्यप्रवर का विधिवत् पट्टोत्सव मनाया । मुनि कालूजी ने उस समय नई गीतिका वनाकर आचार्यप्रवर का गुणगान करते हुए अभिनदन किया । तत्पश्चात् समय देखकर डालगणी ने कालूजी स्वामी की तरफ सकेत करते हुए कहा—'आप लोगो ने मुझे पूछे विना ही यह कार्य क्यो किया ?' मुनि श्री ने निवेदन किया—'आर्य प्रवर ! यह कार्य तो हमने कर लिया पर अव सव काम आपको पूछकर ही करेंगे ।' मुनि श्री के उत्तर से वातावरण वड़ा सरस और मधुर वन गया ।

डालगणी का चुनाव-सम्वन्धी विस्तृत-वर्णन डालिम चरित्र खड १ ढ़ा० १६, २० मे है ।

३१. मुनि श्री के चातुर्मासों की तालिका इस प्रकार है :—

स० १६०६ से २५ तक मुनि सरूपचन्दजी की सेवा मे ।
(स्वरूप नवरसो तथा ख्यात)

स० १६२६ से २६ तक जयाचार्य की सेवा में । (ख्यात)

स० १६३० उदयपुर

सं० १६३१ वीकानेर

सं० १६३२ जोबनेर

सं० १६३३ जयपुर

सं० १६३४ बीकानेर ठाणा ५

सं० १६३५ रीणी (तारानगर) ठाणा ४

सं० १६३६ जयपुर

सं० १६३७ सरदारशहर ठाणा ५ साथ मे १. मुनि गणेशीलालजी (२२०) २. मुनि छबीलजी (२३०) ३. कुशालजी (२४५) ४. फौजमलजी (२३४)[1]।

सं० १६३८ फतेहपुर ठाणा ४

सं० १६३६ चूरू

सं० १६४० जोधपुर ठाणा ५. साथ में १. मुनि गणेशीलालजी (२२०) २. कुशालजी (२४५) थे। उन्होंने ६, ६ दिन की तपस्या की।
(पचपदरा के प्राचीन पत्र से)

सं० १६४१ रतनगढ

सं० १६४२ चूरू

सं० १६४३ बीदासर

सं० १६४४ सरदारशहर[2] ठाणा ४. साथ मे मुनि राममुखजी (२१७), गणेशीलालजी (२२०), छबीलजी (२३०)।

सं० १६४५ सुजानगढ़

सं० १६४६ उदयपुर

सं० १६४७ रतनगढ

सं० १६४८ जोधपुर

सं० १६४६ बीदासर

सं० १६५० रतनगढ

सं० १६५१ सरदारशहर

सं० १६५२ चूरू

सं० १६५३ जयपुर

सं० १६५४ उदयपुर

---

१. छोगजी 'बडा' की ख्यात के उल्लेखानुसार।

२. उस वर्ष साध्वी श्री नवलांजी (२४०) का चातुर्मास सरदारशहर मे था। ऐसा एक श्रावक द्वारा रचित कालू मुनि गु० व० ढा० १ गा० १८ में उल्लेख है।

स० १९५५	सरदारशहर	ठाणा	४
स० १९५६	चूरू	,,	४
स० १९५७	फतेहपुर	,,	४
स० १९५८	छापर	,,	४

सं० १९३० से १९५८ तक मुनि गणेशीलालजी मुनि कालूजी के साथ मे रहे थे। ऐसा कालूगणी कृत मुनि गणेशीलालजी की गुण वर्णन ढाल मे उल्लेख है। शासनप्रभाकर ढा० ८ गा० १८३ से २०२ मे मुनि गणेशीलालजी के चातुर्मासों की तालिका है। उसके अनुसार उपर्युक्त तालिका लिखी गई है। केवल स० १९४२ का एक चातुर्मास उनके साथ नही था। मुनि गणेशीजी का उस वर्ष मघवागणी के साथ और मुनि कालूजी का उस वर्ष चूरू में चातुर्मास था ऐसा 'श्रावक सागरमलजी' पुस्तक तथा चातुर्मास-विवरण पुस्तक मे लिखा है।

स० १९३४, ३५, ३७, ३८, ४३ के उपर्युक्त चातुर्मास श्रावकों द्वारा लिखित चातुर्मास तालिका मे भी है। उन चातुर्मासों के उक्त ठाणो की सख्या भी उसके आधार से दी गई है। स० १९४४ मे ठाणो की संख्या एक श्रावक द्वारा रचित कालू मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० १४ से १६ के आधार से तथा १९५५ से ५८ के ठाणो की सख्या साधुओ द्वारा हस्तलिखित चातुर्मास तालिका के अनुसार है।

स० १९३० के उक्त उदयपुर चातुर्मास मे उनके साथ डालगणी (मुनि अवस्था) थे, ऐसा कालूगणी रचित डालगणी की गुणवर्णन ढ़ाल १ गा० १० मे उल्लेख है।

स० १९३३, ३६ से ३९ और ४१ से ४९ तक मुनि छबीलजी (२३०) उनके साथ मे रहे, ऐसा 'छबील मुनि आख्यान' ढ़ाल ६ मे उल्लिखित है।

३२. आचार्य श्री डालगणी ने मुनि कालूजी का सं० १९५८ का चातुर्मास बीदासर फरमाया। लेकिन शारीरिक अस्वस्थता एव कमजोरी के कारण उनका चातुर्मास छापर मे हुआ। शक्ति कम होने पर मुनि श्री ने वहां कई दिनो तक व्याख्यान दिया। भाई-बहनो को विविध प्रकार की शिक्षाए भी देते, जिन्हे सुनकर सभी बहुत प्रभावित होते। श्रावक-श्राविकाओं मे धर्म-ध्यान की अच्छी जागृति हुई। मुनि श्री वेदना को समभावो से सहन करते हुए प्राय. स्वाध्याय ध्यान मे तल्लीन रहते[1]।

---

१. गणपत कृपा बहु करी, चतुरमास बीदाणे धराया।
कम सकती कारण बहु, तिण सू छापर सहर मे आया॥
व्याख्यान पिण दीधो तिहा, वली सीखावण बहु फरमावै।
उद्यम घणो भाया बाया तणै, सुण-सुण बहु सुख पावै॥

चातुर्मास का प्रथम सावन महीना सपन्न हुआ। द्वितीय सावन वदि ३ को मुनि श्री ने अनशन कर समाधिपूर्वक स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया। दूसरे दिन श्रावको ने धूमधाम से उनका चरमोत्सव मनाया :—

अणसण कर सुरग सिधाविया, द्वितीय सावण तीज तांम।
ओछव-मोछव वहु किया, ते संसारयां रा कांम ॥

(गु० व० ढा० २ गा० १३)

डालगणी की ख्यात तथा डालिम चरित्र मे उनकी स्वर्गवास तिथि सावन वदि ४ लिखी है।

मुनि श्री नौ वर्ष की अल्पायु मे दीक्षित हुए। उनका साधनाकाल लगभग ५० वर्ष का रहा जिसमे उन्होने १७ चातुर्मास मुनि श्री स्वरूपचदजी की सेवा मे, चार चातुर्मास जयाचार्य की सेवा मे तथा २६ चातुर्मास अग्रणी अवस्था मे किये। पुर-पुर मे धर्म का उद्योत कर अध्यात्म की धारा प्रवाहित की। शासन एव शासनपति के गौरव को वढाया। उनके द्वारा की गई सघीय सेवाए चिर स्मरणीय रहेगी।

चातुर्मास मे उनके साथ मुनि गणेशीलालजी (२२०), अमरचदजी (२२२) और एक अन्य सत (अनुमानत. रामसुखजी (२१७) थे। मुनि गणेशीलालजी मुनि श्री के साथ अनेक वर्षो तक रहे और उनकी मनोनुकूल वहुत सेवा की।

(गु० व० ढा० २ गा० १४ से १६ के आधार से)

३३. मुनि श्री कालूजी से सवधित विवरणात्मक स्थल —

मुनि अमरचदजी ने मुनि श्री के सात दिन वाद गुण-वर्णन की एक ढाल वनाकर उनके वहुमुखी जीवन का सक्षिप्त रेखाचित्र प्रस्तुत किया .—

द्वितीय श्रावण एकादसी, सहर छापर रै माय।
जोड करी ए जुगत सू, उगणीसै अठावने कहिवाय ॥

(गु० व० ढा० २ गा० १७)

स० १९४४ मृगसर वदि १ के दिन एक श्रावक द्वारा रचित मुनि श्री के गुणो की एक ढाल है। उसमे मुनि श्री के विशिष्ट गुणो को अभिव्यक्त करते हुए अपने पर किये गये उपकार के प्रति वहुत-वहुत आभार प्रकट किया है।

ख्यात, प्राचीन पत्र सग्रह तथा शासन प्रभाकर ढा० ६ गा० २७४ से २९५ मे मुनि श्री से सवधित चुम्वक रूप मे विवरण मिलता है।

सझाय ध्यांन करता वहु, वेदना सहै समभाव।
हुसियारी अति जाणज्यो, मुगत जावण रो चाव ॥

(गु० व० ढा० २ गा० १० से १२)

अष्टमाचार्य श्रीमत्कालूगणी मुनि कालूजी की विविध विशेषताओं का समय-समय पर उल्लेख किया करते थे। उनका आचार्य श्री तुलसी ने अपनी लेखनी द्वारा भावभरे शब्दो मे चयन किया है। पढिये तद्विषयक कुछ पद्य :—

उदियापुर स्यू आविया रे, पोष कृष्ण तिथि तीज,
कालूजी स्वामी वडा रे, शासण में इक चीज।

शासण में इक चीज हि भारी,
मुलक-मुलक में महिमा ज्यांरी।
तैल-वून्द ज्यू प्रसरै वारी,
राखी गणि, गण स्यू इकतारी॥

जय, मघवा, माणक गणी रे, महर रखी इकधार।
वर वगसीस करी घणी रे, कुरव वढ़ायो सार॥

कुरव वढ़ायो अति उल्लासे,
रहिया ज्येष्ठ-भ्रात रै पासे।
अगवाणी वण अथक प्रयासे,
विचर्‌या देश प्रदेशां खासे॥

गण-वच्छल नै जाणता रे, जीवन-प्राण समाण।
टालोकर नै टालता रे, कालकूट विष जाण॥

काल-कूट विष जाण सदाई,
'वावै स्यूं विण करता डाई।
शासण-सेवा री सुघड़ाई,
श्री मुख स्यूं गुरुदेव सराई॥

सन्ध्या पड़िकमणो करी रे, जोड़ी श्रमण समाज।
कालूजी स्वामी कहै रे, सोचो सव मुनिराज॥

सोचो सव मुनिराज सयाणां,
किण री धारां अव सिर आणां।
संत वदै हो आप पुराणां,
नाम प्रकाशो ज्यूं सहु जाणां॥

तव मुनिवर कालू कहै रे, माणक-गणिवर-पाट,
डालचंदजी आपणै रे, शासण रा सम्राट्।

शासण रा सम्राट सुहाया,
तिण दिशि नमण करो मुनिराया।

वन्दो विकसित मन, वच, काया,
सकल संघ मे रंग सवाया ।
जण-जण मुख जय-जय करै रे, अधिक जग्यो उत्साह,
उचरगे मुख स्यू कहै रे, वाह ! भिक्षू-गण वाह !
वाह ! भिक्षु-गण री पुनवानी,
जाहिर तीन जहान न छानी
मुनिवर मिल गुरु ढूढ्यो ज्ञानी ।
सप्तम ढ़ाल सुजन मनमानी ॥
श्रोता ! निसुणो सरस कहानी ॥

(कालू यशोविलास उल्लास १ ढाल ७ गाथा १६ से २४)

श्रमण संपदा सांतरी रे, एक एक स्यू वीर,
कालूजी स्वामी वड़ा रे, धीर, वीर, गंभीर ।
धीर, वीर, गभीर सुहावै, जय मघवा, माणक मन भावै,
सकल काम, वारी वगसावै, वोझ-भार पिण माफ करावै,
जी गच्छाधिप जी ॥

जय-चक्षु कारी करी रे, भारी मरजी मांह,
ज्येष्ठ सहोदर री सझी रे, सेवा जिम तनु छांह ।
सेवा जिम तनु छांह सुहाई, वाक् पटुता चरचा चतुराई,
सुझ-वूझ सारां मन भाई, सुगुरु रिझावण हद सुघड़ाई ।
जी गच्छाधिप जी ॥

लिखता एक-इक दिवस में रे, पांच-पांच सो श्लोक,
संघ-सुरक्षा में निजी रे, जीवन देता झोंक ।
जीवन देता झोंक जरूरी, ख्यात लिखी शासणरी पूरी,
शहर-सरदार वजी जस-तूरी, टालोकर मद न्हाख्यो चूरी ।
जी गच्छाधिप जी ॥

(माणक महिमा ढा० १२ गा० ८, ६, १०)

डालिम चरित्र खंड १ ढाल १८ से २० मे मुनि श्री के संदर्भ मे लिखे गए पद्य प्रायः उपर्युक्त टिप्पणियो मे दे दिये गए है ।

१६४।३।७७ पञ्चमाचार्य श्री मघराजजी (बीदासर)

(संयम पर्याय स० १६०८-१६४६)

दोहा

श्री मघवा-स्तुति गा रहा, दिखा रहा आदर्श।
मन मे गुण-छवि छा रही, परम पा रहा हर्ष ॥१॥

लय—धर्म में डट जाना……

रमे गण-नन्दन मे, श्री मघवा गणताज ।
सुपञ्चम आसन में, आये वन अधिराज। रमे…… ।
थलो मे वीदासर विख्यात, वेगवाणी अन्वय अवदात ।
प्रसू वन्ना पूरणमल तात, जन्म तो शुभ क्षण में। श्री…१॥

रामायण-छन्द

अष्टादश शत नवति सात की चैत्र शुक्ल ग्यारस आई ।
सूर्यवार नक्षत्र मघा में जन्मोत्सव महिमा छाई ।
छोटी वहन गुलावकंवर ने कुछ अन्तर से न्म लिया ।
मिली युगलवत् अनुपम जोड़ी देख-देख फूली दुनिया[१] ॥२॥

लय—धर्म में डट जाना……

सुकोमल सुदर अंग अनग, रमा नस-नस मे शमरस रंग।
चमकते मुख पर भरा उमग, स्निग्धता लोचन मे[२] ॥३॥

दोहा

परभव पहुचे है पिता, लगा वड़ा आघात ।
जननी ने उसको सहा, अति साहस के साथ ॥४॥

थी वह सच्ची धर्मिणी, और समझती तत्त्व ।
समता मे रम कर रही, तप जप भरकर सत्त्व ॥५॥

मा की धार्मिक वृत्ति का, सतति पर सस्कार।
पड़ता है वह समय से, फलता ज्यों सहकार ॥६॥

लय—धर्म में डट जाना……

मिला मुनि श्रमणी का संयोग, खिला मघवा का भाग्य अमोघ।
भावना विकसित हुई निरोग, समुज्ज्वल जीवन मे[3] ॥७॥

जौहरी 'जय' युवपद धर तूर्य, पधारे पूज्य चमकते सूर्य।
सुविम्बित मघवा मणि वैडूर्य, मूर्ति ज्यों दर्पण में ॥८॥

दोहा

मिला 'जीत' संपर्क से, मघवा को प्रतिवोध।
तत्त्व-ज्ञान करके चढे, ऊर्ध्व विरति के सौध ॥९॥

मां भगिनी से प्रथम ही, उत्सुक 'मघ' दीक्षार्थ।
भावो के उत्कर्प से, यत्न हुवा फलितार्थ[4] ॥१०॥

लय—धर्म में डट जाना……

खेलते हिलमिल शिशु-जन साथ, हास्य में कहते वे कर वात।
जोड़ मघजी स्वामी को हाथ, वदना-सुचरण मे (और 'जी'
सुवचन मे) ॥११॥

पात्र मे तेरे है घृत धीर ! वैठकर पी शीतल जल वीर !।
फली वाणी जव चढे वजीर, सुगुरु पद-स्यंदन मे ॥१२॥

दोहा

भावी शुभ सूचक वचन, सुन उनके तत्काल।
सोचा जय ने हृदय में, होनहार यह वाल[1] ॥१३॥

लय— रामायण

'जय' के चरणाम्बुज में मघवा सज्ज हुए संयम-श्री हित।
'जय' ने मृगसर कृष्ण पचमी दीक्षा-तिथि कर दी घोपित॥

दीक्षोत्सव भी हुए ठाट से विदा स्वजन से ले सकुशल।
होकर अश्वारूढ जा रहे लेने को संयम अविकल ॥१४॥

दोहा

लोगों को व्यंगोक्ति से, काका धर आक्रोश।
उन्हें उठाकर ले गया, गढ़ में करके रोप ॥१५॥

हुई न दीक्षा उस दिवस, 'जय' ने किया विहार।
उचितोत्तर दे आ गये, मघवा निज गृह-द्वार ॥१६॥

काका को ज्ञापित किया, प्रसू स्वसा ले संग।
मघवा पहुचे लाडनूं, जय-पद में सोमंग ॥१७॥

किया निवेदन तव दिया, 'जय' ने संयम गुच्छ।
वारस कृष्णा मार्ग की, तिथि आई है उच्च ॥१८॥

स्थान 'पीरजी' का प्रमुख, पुर के वाहर खास।
समुदित मानव-मेदिनी, छाया नव उल्लास[1] ॥१९॥

लय—धर्म में डट जाना……

खवर रावलियां में सुन पीन, सुगुरु को आई छीके तीन।
साधु यह होगा वड़ा प्रवीण, मुकुट मणि शासन में[2] ॥२०॥

दोहा

सेवा का ऋषिराय की, मिल न सका अवकाश।
उभय मास के वाद ही, पहुंचे वे सुरवास[3] ॥२१॥

लय—धर्म में डट जाना……

किया संयम-रस में संचार, प्रथम है मुनि आचार-विचार।
वाद में विद्या का विस्तार, सुरभिवत् कांचन में ॥२२॥

लगाया पढ़ने में अति ध्यान, चित्त की स्थिरता थी वलवान।
मिला गुरु आशीर्वाद, ज्ञान-धन-अर्जन में ॥२३॥

दोहा

आवश्यक रस-कूपिका (उत्तराध्ययन), दशवैकालिक सूत्र ।
बृहत्कल्प प्रथमाङ्ग धुर, सीखे वन्ना-पुत्र ॥२४॥

अन्य ग्रन्थ सीखे पढे, संस्कृत प्राकृत आदि ।
व्याख्यानादिक याद कर, पाये ज्ञान-समाधि[९] ॥२५॥

पढ़ने में एकाग्रता, नही दूसरा ध्यान ।
किया परीक्षण पूज्य ने, लिया सभी ने जान[१०] ॥२६॥

लय—धर्म में डट जाना……

कृपा थी मघवा पर अनपार, मास से अधिक 'जीत' गणधार।
रहे इंदौर शहर इकवार,(जव) 'भाव' (मोतीझरा) निकला तन में[११] ॥२७॥

रामायण-छन्द

श्रीमज्जयाचार्य पाली में करके चातुर्मास समाप्त ।
'कालू' में आये तव निकली मघवा को 'माता' पर्याप्त ॥
एक महीना रहे वहां पर मुनि श्रमणी वहु मिले मुदा।
हुई गोचरी वाहर पुर की सुगुरु दृष्टि में वृष्टि सुधा[१२] ॥२८॥

दोहा

संस्कृत भाषा के हुए, सर्व प्रथम विद्वान् ।
मघजी पंडित संघ में, कहते 'जय' श्रुतवान[१३] ॥२९॥

अर्थ पहेली का गहन, पूछा मुनि ने एक ।
उत्तर मघवा ने दिया, चिंतन कर सविवेक[१४] ॥३०॥

वय में चौदह वर्ष की, वना दिया सरपंच ।
चमक वढ़ाता ही गया, वह सोना सोटंच[१५] ॥३१॥

ग्राम खेरवा मे कहा, जय ने अयि मघराज ! ।
तुम्ही सुनाओ हाजरी, सव संतो को आज[१६] ॥३२॥

थी अति सेवा भावना, चाहे वृद्ध व ग्लान ।
सहयोगी वनते सतत, रखते वृत्ति महान् ॥३३॥

पगचंपी मैं आपकी, करू आर्य ! अनिवार्य।
आप परठने का करे, आज निशा मे कार्य ।।३४।।

वृद्ध साधु की प्रार्थना, ली है तत्क्षण मान।
कार्य-व्यवस्था का दिया रे, जय ने तव से ध्यान[१७] ।।३५।।

वश मे की रस नालिका, (जो) सयम-रक्षा-व्यूह।
खाते भर-भर अजली, भोजन-खंड-समूह ।।३६।।

'सीते' खाने से वहुत, आती विद्या पुष्ट।
चली कहावत सघ में, करती मन को तुष्ट[१८] ।।३७।।

लय—धर्म में डट······

घोपणा युवपद की कर साफ, जमाई 'जय' ने मघवा-छाप।
लगाना गुरु के दिल का माप, कठिन है त्रिभुवन में[१९] ।।३८।।

दोहा

चौदस कृष्णा ज्येष्ठ की, शतोन्नीस उन्नीस।
राजलदेसर मे उन्हें, की 'जय' ने वख्शीस ।।३९।।

लेख-पत्र कहना नही, हस्ताक्षर संयुक्त।
काम, गोचरी, भार से, किये सर्वथा मुक्त[२०] ।।४०।।

सावन की विद प्रतिपदा, नया किया है काम।
विठलाये वाजोट पर, फूला सघ तमाम[२१] ।।४१।।

लय—धर्म में डट······

वीस का चूरू चातुर्मास, कृष्ण तेरस तिथि आश्विन मास।
दिया पद युवाचार्य का खास, भरा रस जन-जन मे[२२] ।।४२।।

दोहा

दी भावी आचार्य को, जय ने शिक्षा भव्य।
किया विवेचन साथ मे क्या गुरु का कर्त्तव्य[२३] ।।४३।।

लय—धर्म में डट······

वड़ा सम्मान विना अन्दाज, वर्ष त्रय-विशति में युवराज।
वने जिन-शासन के अधिराज, राज गुरु लोचन मे[२४] ।।४४।।

निरभिमानी विनयी गण-भूप, सरल दिल उज्ज्वल शांति अनूप।
सतत स्तुति निन्दा में सम रूप, शीत हरिचंदन मे ॥४५॥

योग्यवर धीर वीर गभीर, वचन मे क्षीरसिंधु का नीर।
स्निग्धता कोमलता तस्वीर, तेज स्मित-आनन में ॥४६॥

दोहा

स्वीय प्रशंसा श्रवण मे, सतत उपेक्षित आप।
करो न पर निंदा सुनो, कहते मुख से साफ[25] ॥४७॥

लय—धर्म में डट जाना .....

संघ की सकल सार संभाल, आप करने रख बडा खयाल।
कार्य व्याख्यानादिक सुविशाल, सुगुरु-अनुशासन मे ॥४८॥

कराते 'जय' पद रचना कार्य, बैठ एकान्त स्थान में आर्य।
सहायक मघवा से अनिवार्य, सिंधु-अवगाहन में ॥४९॥

मुक्त गण चिंता से हर वक्त, हुए 'जय' पाकर योग सशक्त।
वचन से करते थे अभिव्यक्त, परम सुख तन-मन मे[26] ॥५०॥

वर्ष अष्टादश तक साकार, रही जोड़ी वह एकाकार।
परस्पर यथायोग्य व्यवहार, पिता वा नंदन मे[27] ॥५१॥

प्रशंसा की 'जय' ने साह्लान, कहा-मघजी है पुण्य-निधान।
मिटी सारी ही खींचातान, खुशाली शासन मे[28] ॥५२॥

सही मघवी की स्थाप-उत्थाप, राख का जल लेना निष्पाप।
कहे जो 'मघजी' तो मै आप, छोड दू दो क्षण मे[29] ॥५३॥

दोहा

'जय' ने दिया उलाहना, परिषद् में भरपूर।
सहनशीलता देख के, विस्मित भव्य-मयूर ॥५४॥

की है बड़ी सराहना, गुरु ने सभा-समक्ष।
उदाहरण सम वृत्ति का, है मघवा प्रत्यक्ष[30] ॥५५॥

लय—धर्म में डट······

दिया युव-पटधर को निर्देश, लिखो गाथा तुम पंच हमेश।
रहे स्थिर लिपि कौशल सुविशेष, (जो) प्रमुख श्रुत-साधन में ॥५६॥

सोरठा

लिखे हजारों श्लोक, स्वच्छ सुन्दराकार में।
भरती नव आलोक, सूक्ष्माक्षर लिपि-दक्षता[३१] ॥५७॥

पढे जैनागम कर-कर शोध, किया पर दर्शन का भी बोध।
जोड़ते संस्कृत श्लोक समोद, भाव अभिव्यंजन में ॥५८॥

सरस व्याख्या-शैली उत्कृष्ट, श्रवण से होते जन आकृष्ट।
निपुणता हेतु युक्तियुत स्पष्ट, विषय प्रतिपादन में ॥५९॥

दोहा

सूत्र उत्तराध्ययन का, सुना विवेचन रम्य।
पटुगढ़ के श्रावक रसिक, पाये हर्ष अगम्य[३२] ॥६०॥

लय—धर्म में डट जाना······

जगत् मे भाग्यवान इन्सान, जहां जाता पाता सम्मान।
विजय-लक्ष्मी मिलती हर स्थान, नगर बसते वन में ॥६१॥

दोहा

भेजा 'मघवा' को अलग, दीं न पुस्तके साथ।
वापस आये उस समय, भरे हुए थे हाथ[३३] ॥६२॥

नव विधान का संघ में, होता जब प्रारंभ।
लागू मघवा पर प्रथम, करते जय गण स्तंभ[३४] ॥६३॥

जयपुर मे 'जय' ने किया, जब सुरपुर-प्रस्थान।
आये पंचम पट्ट पर, 'मघवा' मुनिप महान् ॥६४॥

शुक्ल द्वितीया भाद्रवी, आठ तीस की साल।
तीर्थ चतुष्टय ने किया, पद अभिषेक रसाल ॥६५॥

मंगल दिन मंगल घड़ी, मंगल ध्वनि स्वयमेव।
दीक्षा दी है मांगलिक, उठे गोचरी देव[३५] ॥६६॥

लय—धर्म में डट जाना……

मघववत् मघवा का ऐश्वर्य, विवुध गण विवुध तपोधन वर्य ।
त्याग तप भूपण का सौन्दर्य, अटल वल चेतन में ॥६७॥

आप गण में ज्यों प्रमुख किताव, वहन भी मुखिया वनी गुलाव ।
वढ़ी शासन-गुलशन की आव, नयन मुख-मंडन में ॥६८॥

हुआ था एक युगल अवतार, रूप तनु-छवि लावण्य वहार ।
देख कर चित्रित सव ससार, हार नर भूपण मे[३६] ॥६९॥

मृदुल गणवत्सल गणशृङ्गार, कृपा के कल्पवृक्ष साकार ।
नही किंचित् कटुतर व्यवहार, प्यार संभाषण मे ॥७०॥

देते आप अलाहना, संतों को समचित्त ।
त्रुटि की तुमने इसलिए, देता प्रायश्चित्त[३७] ॥७१॥

लय—धर्म में डट……

सादगी मय था जीवन-सत्र, रात्रि मे सोते जा अन्यत्र ।
पता चलता फिर ये गणछत्र, भूमि शय्यासन मे[३८] ॥७२॥

दोहा

निस्पृह ने धोये नही, मणिवंधोपरि हाथ ।
देह-पसीना पोंछते, धीरे-धीरे नाथ[३९] ॥७३॥

पापभीरुता का किया, प्रस्तुत उच्चादर्श ।
कपित होता अंग जव, हरियाली-जल-स्पर्श[४०] ॥७४॥

लय—धर्म में डट जाना……

सुसंस्कृत भापा के विद्वान्, गहन व्याकरण कोश नय-ज्ञान ।
सरस शिक्षाप्रद था व्याख्यान, क्षीरवत् भोजन मे ॥७५॥

वांचते भरत वाहुवलि काव्य, प्रतिध्वनि उठती अन्तर श्राव्य ।
मुग्ध नर-नारी गण अनुभाव्य, श्रुतिक रस-स्वादन मे[४१] ॥७६॥

मनीपा स्थिर स्मृति चिरकालीन, स्पष्ट व्याकरण सुनाई पीन ।
हुये पंडितजी विस्मय लीन, मुक्त स्वर कीर्तन मे ॥७७॥

कहा मघवा ने कर आयास, पढ़ी थी पाली मे जय-पास।
वीस छह वर्षो से सोल्लास, ला रहा चिंतन मे[८२] ॥७८॥

दोहा

कोष्ठक प्रतिभा के धनी, मघवा गण-अवतंश।
पूर्व-स्मृति आधार से, सुना दिया हरिवंश[८३] ॥७९॥

गीतक-छन्द

गलत करना अर्थ पनजी! ज्ञान की आशातना।
दंड लो इसके लिए फिर करो गुरुगम धारणा[८४] ॥
काम का तेरे न पर यह पत्र मेरे काम का।
रखा अपने पास, चितन गहन गुणमणि-धाम का[८५] ॥८०॥

लय—धर्म में डटा जाना……

एक दिन संस्कृत मे सह मान, वोलते स्खलित हुए धीमान्।
कराया गुरु ने उनको ध्यान, प्रभावित वे मन मे[८६] ॥८१॥

भरा मानस मे मैत्री भाव, नही तिल भर भी दाव व घाव।
जमा ऋजुता से वड़ा प्रभाव, स्व-परमति जन-जन मे ॥८२॥

दोहा

क्षमायाचना के लिए, स्थानक मे गुरुदेव।
गये स्वयं सरलाश्रयी, चित्रित जन स्वयमेव[८७] ॥८३॥

लय—धर्म में डट जाना……

नियम के प्रति निष्ठा हरवार, एकदा आये खुद दरवार।
वंदना कर वैठे सविचार, सामने आसन में ॥८४॥

मिनिट विंशति तक इकसार, दिया गुरु ने उपदेश उदार।
समय न अव वोले गणधार, (वे) गये चढ़ वाहन मे ॥८५॥

कहा राणा ने साधु महान्, समझते सवको एक समान।
भूप हो यदि निर्धन नादान, ध्यान व्रत-पालन मे[८८] ॥८६॥

दोहा

कविवर सांवलदान ने, प्रश्न किया है एक ।
पट लायक मुनि कौन है ? करे प्रभो ! उल्लेख ॥८७॥

समयान्तर से कह दिया, माणक मुनि उपयुक्त ।
हृदयंगम कवि ने किया, मघवा वच उन्मुक्त[४९] ॥८८॥

देते उत्तर प्रश्न का, अवसर देख उदार ।
वचते व्यर्थ विवाद से, जहां न लगता सार ॥८९॥

दीक्षा देंगे या नही, ले जो राणा आप ।
लेने आयेंगे तभी, सोचेंगे मति माप[५०] ॥९०॥

गीतक-छन्द

ब्रह्मचारी वाल वय से थे अखंडित रूप से ।
तेज निखरा है निराला सूर्य की भी धूप से ॥
वीतरागी तुल्य उज्ज्वल भावना अविकार है ।
मार तो भग गया इनसे वड़ी खाकर मार है ॥९१॥

दोहा

निकट अकेली वहन के, हो एकान्तावास ।
वहम न मघवा का तनिक, जमा अटल विश्वास[५१] ॥९२॥

था न विरोधी नाम का, उनके सज्जन एक ।
पाये अजातशत्रु की, उपमा वे अतिरेक[५२] ॥९३॥

चार तीर्थ को प्रेरणा, देते तप की आप ।
उत्साहित करते उन्हे, भरकर शक्ति अमाप ॥९४॥

तप विपयक नव गीतिका, रचते गुरु गुणधाम ।
अंकित करते थे वहां, मुनि सतियों के नाम[५३] ॥९५॥

'सुंदर' रंभा ने किया, साधिक तप छहमास ।
करवाया है पारणा, 'मघवा' ने सोल्लास[५४] ॥९६॥

माता 'वन्नां' को मिला, सुत मघवा का योग।
हुए उऋण उपकार से, दे अन्तिम सहयोग[96] ॥९७॥

प्रमुखा सती गुलाब को, सेवा दर्शन लाभ।
देकर आखिर समय मे, यश की लिखी किताब[97] ॥९८॥

सौंपा साध्वी संघ का, नवल सती को भार।
परामर्श पहले लिया, भगिनी से सविचार[97] ॥९९॥

लय—धर्म में डट जाना······

व्यवस्था चिंतन युत गणभूप, संघ मे करते थे समरूप।
भावना भरते सतत अनूप, शिष्य वातायन में ॥१००॥

दोहा

प्रतिक्रमण के बीच मे, 'आलोयणा' अदंभ।
करना साक्षी से अपर, प्रतिलेखन प्रारंभ ॥१०१॥

ध्यान बड़ा 'लोगस्स' का, कर पाये दे ध्यान।
पाक्षिक आदिक दिवस हित, क्रमशः क्रिया विधान[98] ॥१०२॥

रामायण-छन्द

पुर पुर मे गुरुदेव पधारे खोली ज्ञानामृत की नहर।
प्रमुख शहर सरदारशहर पर कर पाये हैं भारी महर।
सुलझी जटा वड़ी योगी की कालू मुनिवर के श्रम से।
समझे श्रावक और श्राविका दूर हुए मिथ्या-भ्रम से ॥१०३॥

उनचालीस साल में मघवा वहां पधारे सर्व प्रथम।
देख छटा जिन-समवसरण की जनता पाई हर्ष परम।
चतुर्मास दो करके घर-घर श्रद्धा-उपवन लहराया।
गया फूलता फलता क्रमशः क्षेत्र अग्रणी कहलाया[99] ॥१०४॥

लय—धर्म पर डट जाना······

रत्नगढ़-वासी जन की अर्ज, गणाधिप ने की दिल में दर्ज।
चुकाया उन्हें सवाया कर्ज, आश है स्थिर धन मे[100] ॥१०५॥

दोहा

उत्तर प्रश्नों के प्रवर, देते प्रतिभावान ।
प्रस्तुत मैं कुछ कर रहा, सुनें लगा कर ध्यान[६१] ॥१०६॥

रोमाञ्चक सस्मरण सह, घटना स्थल कुछ भव्य ।
गाता मघवा समय के, सुनिए सज्जन सभ्य[६२] ॥१०७॥

दर्शन कर व्याख्यान मे, फूले जोधाशाह ।
महर नजर से सुगुरु की, फलित हो गई चाह[६३] ॥१०८॥

कृतियां कुछ मघवा रचित, ढाले संस्कृत श्लोक ।
श्रुत साहित्यिक ओक मे, भरते है आलोक[६४] ॥१०९॥

लय—धर्म में डट जाना……

वर्ष एकादश तक दिन रात, संघ की सेवा की साक्षात् ।
रखा है चारतीर्थ पर हाथ, तातवत् रक्षण मे ॥११०॥

रहा वढ़ता गण मे उत्साह, सभी के मुख से सुयश अथाह ।
हुई सुरपुर मे हरि की वाह, राह दिग्दर्शन मे ॥१११॥

दोहा

प्रतिश्याय-ज्वर से हुआ, गुरु तन रोगाक्रान्त ।
फिर भी साहस आत्मगत, मुखपर शम रस शांत ॥११२॥

कर विहार गढ़रत्न से, आये पुर सरदार ।
मर्यादोत्सव भी वहां, हो पाया साकार ॥११३॥

दुर्वलता वढ़ती गई, हुआ न स्वास्थ्य सुधार ।
कर पाये विधिवत् विविध, औपधादि उपचार[६५] ॥११४॥

माणक को पटधर चुना, सौपा शासन-भार ।
दी सुदर शिक्षावली, भरा अनूठा सार[६६] ॥११५॥

कुछ मुनि श्रमणी पर अधिक, हो प्रसन्न गण-ईश ।
लिखकर अपने हाथ से, कर पाये वख्शीश[६७] ॥११६॥

किया गुरुने आलोचन-स्नान, क्षमायाचन भी सह अम्लान ।
शांति युत ध्याया निर्मल ध्यान, हुए रत अनशन में ॥११७॥

सोरठा

संवत्सर उनचास, चैत्र कृष्ण तिथि पंचमी ।
पहुंचे है सुरवास, मघवा पंचम गण-मुकुट ॥११८॥

लय—धर्म में डट जाना……

स्व-परमति जन मे विरह वजीर, विलाये मघवा से वड़ वीर।
सामने पड़ी रही तस्वीर, नही चेतन तन मे ॥११९॥

सोरठा

होने से दरसाव, पूर्व दाह संस्कार के ।
पहुचे महानुभाव, शोभा सह नगराजजी ॥१२०॥

सरस मघवा गुरु का आख्यान, देखिए 'मघवा-सुजश' प्रधान ।
रचा माणक गणि ने सह गान, श्रेष्ठतम वर्णन मे ॥१२१॥

दोहा

मघवा गणि के समय में, ले संयम संगीन ।
वने संत छत्तीस कुल, सतियां अस्सी तीन ॥१२२॥

साधु इकहतर साध्वियां, दो सौ में कम सात ।
भैक्षव-गण मे छोड़ के, गये स्वर्ग मे नाथ ॥१२३॥

ग्यारह वत्सर गेह में, वारह मुनि-पद लेख ।
युवाचार्य दश आठ फिर, गणि पद में दश एक ॥१२४॥

पावस जय गणि साथ में, कर पाये हैं तीस ।
गुरु-पद मे ग्यारह किये, सव मिल इकतालीस ॥१२५॥

सोरठा

वीदासर मे तीन, किये शहर सरदार दो ।
चतुर्मास शालीन, एक-एक छह शहर मे ॥१२६॥

दोहा

तीन किये हैं लाडणूं, जयपुर भे दो वार ।
एक-एक पुर सात मे मर्यादोत्सव सार ॥१२७॥

मुख्य-मुख्य मुनि साध्वियां, मघवा युग के छेक ।
चुन-चन कर प्रस्तुत करूं, उनका नामोल्लेख ॥१२८॥

द्वादशम शुक्र अनें बुधज, अवर भवने ग्रह नहीं ।
गणिराज मघवा ग्रह उत्तम, पुन्ये शुभ ही आवही ।।
(मघवा सुजश ढा० १ कलश० १)

जन्म-कुण्डली
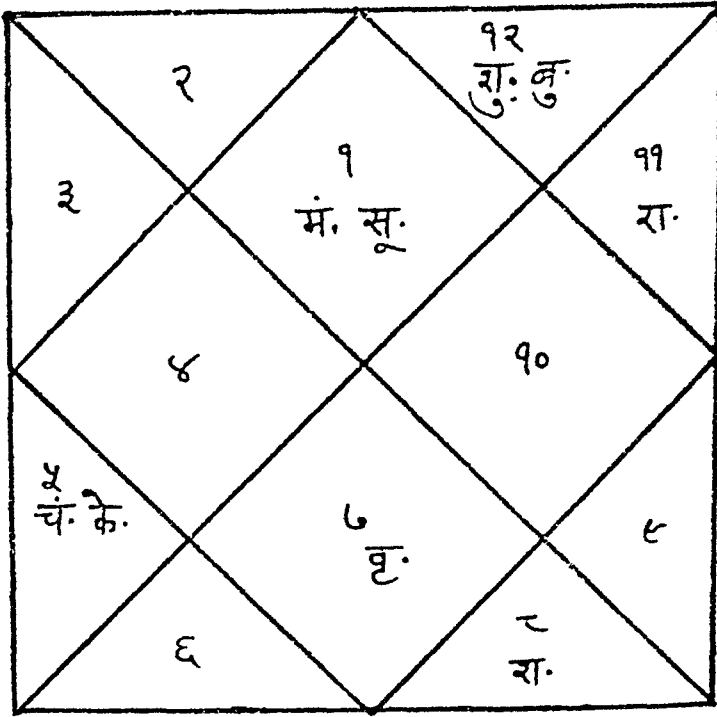
२. मघवागणी की शारीरिक सुन्दरता की कल्पना के रूप मे वर्णन करते हुए आचार्य श्री तुलसी ने 'कालू यशो विलास' काव्य मे लिखा है कि मानो विधाता ने देव के भरोसे मघवा के मनुष्य शरीर की रचना की है :—

चंगो अग सुरंगो सारो चूड़ि उत्तार रे।
जाणक सुर भोलं घड़ीजम्यो ओ मानव आकार ।।
(कालू यशो विलास उ० १ ढ़ा० ५ गा० ७)

३. दोनों भाई-बहन छोटी अवस्था में थे तभी उनके पिता पूरणमलजी का देहावसान हो गया। माता ने उस आघात को अत्यन्त धैर्यता से सहन किया। वे अपना जीवन तप-जप करती हुई विरति पूर्वक विताने लगी। माता की धार्मिक रुचि का प्रभाव संतान पर सहजतया पड़ता ही है। फिर उन्हे एक विशेष अवसर भी प्राप्त हो गया। एक वार सरदारमती का बीदासर मे आगमन हुआ। वे वहा उनकी जगह मे ही ठहरी। रात-दिन धार्मिक वातावरण में रहते हुए दोनों

भाई-वहनो ने कुछ तात्त्विक ज्ञान सीखा और उनका मन धर्म के प्रति विशेप आकृष्ट हो गया।

(मघवा मु० ढा० १ गा० ८ से १४ के आवार से)

४. जयाचार्य ने युवाचार्य पद मे स० १६०८ का चातुर्मास वीदासर मे किया। उनके साथ मुनि श्री स्वरूपचदजी आदि १२ सत थे। युवाचार्यश्री के प्रवचन, श्रवण तथा प्रेरणा से लोगों के मन मे त्याग-तपस्या की अच्छी जागृति हुई। उसी चातुर्मास मे माता वन्नाजी तथा उनके दोनो वालको के मन मे सयम लेने की भावना उत्पन्न हुई। उन्होने तत्त्व-चर्चा व वोल-थोकड़े सीखकर अपनी वैराग्य वृत्ति की विशेप अभिवृद्धि की। तीनो ही व्यक्ति साथ मे दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गये।

गुलाव सती की अवस्था छोटी होने से उन्हे दीक्षा का कल्प नही आया था, अत. युवाचार्य ने फरमाया—"इन्हे समय आने पर ही दीक्षा दी जा सकेगी।" मघवा ने युवाचार्यश्री से शीघ्रातिशीघ्र सयम प्रदान करने के लिए निवेदन किया। माता वन्नांजी को भी इसके लिए सहमत कर लिया कि यदि युवाचार्यश्री दीक्षा देते हो तो वे उन्हे पहले दीक्षित करने के लिए आज्ञा प्रदान कर देंगी। माता वन्नांजी ने युवाचार्यश्री से प्रार्थना की कि वे पहले पुत्र को और गुलावकवर को कल्प आने के प्रश्चात् हम दोनो को दीक्षा प्रदान करने की कृपा करवाए।

(मववा सुजश० ढ़ा० २ गा० १ से ५ के आधार से)

५. मववागणी के वाल साथियो को जव यह पता चला कि वे दीक्षा ले रहे हैं, तव उन्होने खेल ही खेल मे अज्ञात रूप से उस स्थिति को भी अपने खेल का एक विपय वना लिया। वे परस्पर खेलते तव एक वालक मघवा को सवोधित करते हुए कहता—'मत्थेण वदामि मघजी स्वामी।" मववा तो इस पर कुछ नही वोलते पर कोई दूसरा लड़का उसका पार्ट अदा करता हुआ कहता—'जी'। तव सारे लडके एक साथ कहते—'थारै पातरे मे घी, वैठ्यो वैठ्यो ठढो पाणी पी।'

युवाचार्य ने वालको के सहज हृदय से निकली हुई वाणी को वहुत शुभ माना। वे ज्योतिप तथा शकुन आदि के प्रति वड़ी आस्था रखते थे और स्वय इस विपय के अच्छे ज्ञाता भी थे। उसके आधार पर उन्होने सोचा—वालक मघवा सघ मे महान् प्रभावशाली साधु होगा' :—

मघवा अरज करी युवराजा नै, तुरत चरण देवो त्यारी।
भेला रमतां वालक वोलै, तमासा में तिहवारी॥
मघजी स्वामी करां वंदणा, आप ही कहिता 'जी' जांणी।
तुण पात्रा में घी वालक इम वोलै, वैठो वेठो पी ठडो पांणी॥

इम सुण चितै युवराजा, बालक वाक्य है श्रीकारी।
मघव संत मतिवंत सनूरो हुंतो दीसै हद भारी।।

(मघवा सु० ढ़ा० २ गा० ६,७, ८)

दीक्षा के बारह वर्ष पश्चात् मुनि मघवा को युवाचार्य पद दिया गया। तब जयाचार्य ने फरमाया—'बाल्यावस्था मे तुम्हारे साथी तुम्हे जो वाक्य कहा करते थे वे बहुत शुभ और श्रेष्ठ थे। उनकी वह भविष्यवाणी आज पूर्णत: फलित हो गई है।,

जय गणपति पिण इम जाणीयो जी, कांइ फल्या बालक वचन श्रीक.रजी।।

(मघवा सु० ढा० ७ गा० ८)

बालक जन की स्वाभाविक वाणी के लिए एक लोकोक्ति भी प्रचलित है :—

जे भाखै बालक कथा, जे भाखै अणगार।
जे भाखै वर कामिनी, झूठ न पडै लिगार।।

६. बालक मघवा की उत्कट अभिलाषा, माता वन्नाजी की प्रार्थना और बालको की शुभवाणी—इस त्रिवेणी की धारा का यह प्रभाव हुआ कि जयाचार्य ने मघवा को उनकी माता और बहिन से पहले दीक्षा प्रदान करने की स्वीकृति दे दी। साथ ही चातुर्मास के पश्चात् मृगसर कृष्णा पचमी का दिन दीक्षा के लिए घोषित कर दिया।

अभिभावक जन ने बड़े उत्साह से दीक्षा के उत्सव मनाये। मृगसर कृष्णा ५ को दीक्षार्थी मघवा ने अपने चाचा (पोमराजजी)[1] के साथ बैठ कर भोजन किया। उसके पश्चात् तिलक करवा कर तथा सारे परिवार से विदा लेकर एवं जुलूस सहित घोडी पर चढ़कर दीक्षा लेने के लिए अन्तिम रूप से घर को छोड़ कर रवाना हुए।

उस समय रास्ते मे मघवागणी के चाचा को किसी व्यक्ति ने व्यंग भरे वचनो से बहका दिया—'इसका पिता जीवित होता तो क्या इसे यो घर से बाहर निकाल देता ? अच्छा ही है, यह घर मे रहता तो धन की आधी पांती का अधिकारी होता, अब ये अकेले ही उसके अधिकारी रह जायेगे। इनका अपना बेटा दीक्षा लेता तब इनके हर्ष का पता लगता।'

यह सुनकर उन्होने बिना सोचे-समझे ही आवेश मे आकर तत्काल मघवा

---

१. मघवागणी के चार चाचा थे—१. पोमराजजी, २. कालूरामजी ३. रावतमलजी, ४. जवरीमलजी।

को खीचकर घोड़ी से नीचे उतार लिया। वे उन्हे गोदी मे उठाए हुए ही झटपट गढ मे ले गये।

इस प्रकार के अप्रत्याशित व्यवहार से सारी जनता चकित रह गई। साहस करके किसी ने चाचा से वैसा करने का कारण पूछा तो उन्होने तमतमाते हुए एक ही उत्तर दिया—"मुझे दीक्षा नही दिलानी है।"

युवाचार्य श्री को जव इस वात का पता चला तो वे वहा से लाडनू की तरफ विहार कर गये। उस दिन दीक्षा नही हो सकी।

वालक मघवा को गढ मे रोक कर रखा। वहां उन्हे ठाकुर साहव के पास भी ले जाया गया। ठाकुर साहव ने उनसे दीक्षा के सवध मे अनेक प्रश्न किये। उन्होने निर्भीकतापूर्वक प्रश्नो का यथोचित उत्तर दिया। फिर वापस घर पर आये और चाचा को सूचित कर माता-वहन के साथ लाडनू मे युवाचार्यश्री के दर्शन किये। वहां मघवा ने फिर अपनी दीक्षा की प्रार्थना की और चाचा की किसी प्रकार से वाधक न वनने की भावना वतलाई। तव युवाचार्यश्री ने स० १९०८ मृगसर कृष्णा १२ को लाडनू मे शहर के वाहर पीरजी के स्थान पर हजारो व्यक्तियो की उपस्थिति मे मघवा को सयम प्रदान किया :—

मृगसर विद पंचम नो मोच्छव, मेला मडिया हृद भारी।
भेला वैठ जीम्या काका संग, फुन टीको कढ़ायो जशधारी ॥
तन सिणगारी अश्व जाति पर, चढ़िया वरवा शिवनारी।
लौकिक कहण सू काको उठाई, रावलै ले गयो तिह वारी ॥
उण दिन तो नहिं हुइ वर दिख्या, जय दड़ीवै होइय लाडणू आइ।
रावलै पड़ उत्तरकर जणाय काका नै, त्रिहुंआया लाडणू सुखदाई ॥
दर्शन करी नैं अरजी कीधी, चरण रयण दीजै धारी।
गांम वाहिर पीरांजी स्थाने, चरण सामायिक दियो सारी ॥

(मघवा सुजश ढा० २ गा० १० से १३)

मृगसर विद वारस तिथि स्वामी, पुर वाहिर पीरांजी रे स्थान जी।
सईकड़ा जन-वृन्द मांहि सामायिक, उचरायो चरण निधान जी ॥

(जय सुजश ढा० ३४ गा० २५)

गुलाव सती को दीक्षा का कल्प आने के पश्चात् उन्हे तथा माता वन्नाजी को स० १९०८ फाल्गुन कृष्णा ६ को वीदासर मे दीक्षित किया गया।

(जय सुयश ढा० ३५ गा० १२, १३ के आधार से)

७. मघवागणी की दीक्षा के समय आचार्य श्री रायचन्दजी वडी रावलिया (मेवाड़) मे विराज रहे थे। युवाचार्यश्री द्वारा प्रदत्त दीक्षा के समाचार वहा

पहुचे तब उन्हे अचानक ही तीन छीके आई और कोई गुप्त सूचना की प्रतीति हुई। उन्होंने प्रथम छीक पर कहा—'लगता है कि यह साधु अच्छा होगा, 'तत्क्षण ही जब उन्हें दूसरी छीक आई तब वे बोले—'यह साधु अग्रणी की योग्यता वाला व प्रभावशाली होगा।' यह कहते ही उन्हे जब तीसरी छीक और आई तो उन्होने फरमाया—'यह तो सभवत जीतमल का भार संभाल ले तो कोई आश्चर्य नही।'

(श्रुतिगत)

छींकां त्रय स्यूं आंकियो रे, श्री मघवा रो मोल।
दीक्षा दिन ऋषिरायजी रे, भाख्यो बोल अमोल॥

(माणक महिमा ढ़ा० ६ गा० २६)

८. नव दीक्षित मुनि मघवा को आचार्य श्री ऋषिराय के दर्शन व सेवा का सुअवसर प्राप्त नही हो सका। क्योंकि उनकी दीक्षा के लगभग दो महीने पश्चात् ही माघ कृष्णा चतुर्दशी को ऋषिराय देवलोक पधार गये थे।

९. स० १९०८ माघ शुक्ला १५ को बीदासर मे जयाचार्य पदासीन हुए। मुनि मघवा आचार्यप्रवर के सान्निध्य में संयम-साधना मे सलग्न होकर विद्या-भ्यास करने लगे। उनकी बुद्धि प्रबल और चित्त की वृत्ति सुस्थिर थी।

उन्होंने आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, प्रथम आचाराग तथा वृहत्कल्प सूत्र को कठाग्र किया। अन्य आगमों की भी सैकड़ों गाथाए सीखीं। अनेक बार आगम बत्तीसी का वाचन किया। सूत्रों की सूक्ष्म-सूक्ष्म रहस्यों की जानकारी की। व्याख्यान, छन्द, श्लोक आदि हजारो पद कंठस्थ किये। सारस्वत व्याकरण का पूर्वार्ध और चन्द्रिका व्याकरण का उत्तरार्ध सीखकर वे सस्कृत-भाषा के विज्ञ बने। चान्द्र और जिनेन्द्र व्याकरण, जैनागमो की टीका, काव्य, कोश, छन्द, न्याय आदि ग्रन्थो का मनन-पूर्वक अध्ययन किया। उनका ज्ञान और धारणा शक्ति इतनी विकसित हो गई कि वे गूढ से गूढ प्रश्नों का तत्काल उत्तर देकर प्रश्नकर्त्ता को सतुष्ट एवं प्रभावित कर देते।

(मघवा सुजश ढ़ा० २ गा० ६ से १६ के आधार से)

१०. मुनि मघवा की बाल्यावस्था मे भी चित्त की इतनी स्थिरता थी कि वे अध्ययन करते समय इतने एकाग्र हो जाते कि उनका ध्यान प्रायः दूसरी तरफ जाता ही नही। एक दिन की बात है कि वे भीत की ओर मुह किये हुए पाठ याद कर रहे थे। जयाचार्य कुछ दूर विराज रहे थे। उन्होने मुनि मघवा की स्थैर्य-वृत्ति की परीक्षा के लिए एक साधु से कहा—"तुम मघजी की पीठ पर थोड़ी सी धूल डाल आओ।"

यह सुनकर वह साधु दुविधा मे पड़ गया। एक तरफ तो जयाचार्य का आदेश और दूसरी तरफ शिष्टता के विरुद्ध कार्य। आखिर जयाचार्य के निर्देशानुसार वह साधु गया और मुट्ठी भर धूल मुनि मघवा की पीठ पर डाल कर झट से लौट

आया। जयाचार्य दूर बैठे हुए उनकी प्रतिक्रिया देख रहे थे। मुनि मघवा उठे और कपड़े से शरीर को झाड़कर फिर बैठ गये। जयाचार्य ने आह्वान करके पूछा—'क्या हुआ मघजी ?' उन्होंने हाथ जोड़कर उठते हुए कहा—'नही महाराज ! कुछ नही, पीठ पर थोड़ी-सी धूल गिर गयी थी, वह पोंछी है ?'

जयाचार्य ने फिर पूछा—'धूल किसने गिरा दी थी।'

वे बोले—'एक साधु अभी इधर से गया था, उसके हाथ से गिर गई मालूम देती है।'

जयाचार्य ने कहा—'तुम पता तो करते वह किसने गिराई थी ?'

इस पर मघवा ने कहा—"पता क्या करना है महाराज ! जान बूझकर तो कोई गिराता नही, भूल से किसी के द्वारा गिर गई तो गिर गई। यो फिर आंधियो मे भी तो कितनी धूल गिरती रहती है, वह झड़का लेते हैं वैसे ही यह भी झड़का ली।'

यह थी मघवा की क्षमा-वृत्ति और चित्त की स्थिरता।

(श्रुतानुश्रुत)

११. स० १९११ की मालव-यात्रा मे जयाचार्य रतलाम चातुर्मास के बाद माघ महीने मे इंदौर पधारे। वहा माघ शुक्ला पूर्णिमा को जयाचार्य का पट्टोत्सव मनाना प्रारम्भ किया गया। उस समय मुनि मघवा को 'मोतीझरा' निकल आया। खासी भी बहुत हो गई। जयाचार्य ने पूरा एक महीना विराजने पर भी उनको ठीक होते नही देखा तब कुछ साधुओ को उनकी सेवा मे रखकर स्वय उज्जैन की ओर विहार कर दिया। वे इदौर से दो कोस की दूरी पर एक गांव में ठहरे। मुनि मघवा को जयाचार्य से अलग रहने का यह प्रथम अवसर था। उन्हे अपने आप मे ऐसा लगा कि वे शून्यवत् होते चले जा रहे हैं। आखिर उन्होने सतो को भेजकर निवेदन करवाया कि मुझे भी साथ ले लिया जाए।

उनकी इस प्रार्थना पर एक बार तो जयाचार्य का मन भी हो गया कि संतो के द्वारा उन्हे उठाकर साथ ले लिया जाए। किंतु स्थानीय वैद्य लालचदजी बोरड तथा खूबचदजी आदि प्रमुख श्रावको ने जोर देकर कहा कि 'मोतीझरा' को जब तक सत्ताईस दिन पूरे नहीं हो जाते है तब तक उन्हे उठाकर ले जाना उचित नही होगा। रास्ते मे पथ्य व औषध का सुयोग मिलना कठिन है। इसलिए आप शिष्य पर अनुग्रह कर वापस पधारने की कृपा करवाए।

जयाचार्य के यह बात जच गई। वे पुन. इदौर पधारे और तब तक वहा विराजे, तब तक कि 'मोतीझरा' ठीक नही हो पाया।

(जय सुजश ढ़ा० ४२ गा० १० से १७ के आधार से)

मघवा सुजश में उक्त संदर्भ में लिखा है :—

मघवा स्वाम नै नीकल्यो, मोतीझरो तिण ठांम।
कृपा पूज्य तणी इसी, विहार कर फिर पधारया स्वाम ।।

(मघवा सुजश ढा० ५ दो० ४)

मुनि मघवा के 'मोतीझरा' की मियाद पूरी हो चुकी थी। वे स्वस्थ होने लगे थे किन्तु रोगजन्य निर्बलता को दूर होने में कुछ समय लग जाने की संभावना थी। जयाचार्य ने जब देखा कि अधिक समय ठहरने का अवकाश नहीं है तब उन्होंने वहां से विहार कर दिया। आचार्यवर के आदेश से साधु मुनि मघवा को इंदौर से उज्जैन तक उठाकर लाये। वहां कुछ दिन औषध सेवन से शरीर में पुनः शक्ति का संचार हो गया और वे बिल्कुल स्वस्थ हो गये :—

बालक वय मुज नै तदा, ऊंचाय नै अणगार।
गणि हुकमे निज साथ मुज, ल्याया उजैण मझार ।।
हिवे पूज्य उजैण पुरि, कियो अधिक उपगार ।
मुझ तनु पिण ओषध कियां, थयो करार तिवार ।।

(जय सुजश ढा० ४३ दो० २,३)

१२. सं० १९१३ के पाली चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य जब 'कालू' (बलूंदे के पास) पधारे तब मुनि मघवा को चेचक (माता) की बीमारी हो गई। वहां सत्ताईस दिनतक जयाचार्य को ठहरना पड़ा। क्योंकि न जयाचार्य उन्हें पीछे छोड़ना चाहते थे और न वे स्वयं पीछे रहना चाहते थे। यद्यपि गांव छोटा था और चातुर्मास के बाद आने वाले साधु-साध्वियों की संख्या बढ़ती जा रही थी, फिर भी वे वहां विराजे। उस समय आहार-पानी के लिए आसपास के बारह गांवों की गोचरी की जाती थी। इससे पता लग सकता है कि जयाचार्य की मुनि मघवा पर कितनी कृपा थी और वे उन्हें कितना महत्त्व दिया करते थे :—

सुधरी जैतारण पीपाड़ थई कालू, आया गणी तिवारो रे।
तिहा मघवा नै माता नीकली, रह्या सप्तवीस दिन सारो रे ।।
महर करी नैं गणी विराज्या, तिहां ठाणा थया बहू भेला रे।
बार गांम नीं हुंती गोचरी, त्यां थी विहार कियो शुभ वेला रे।।

(मघवा सु० ढा० ६ गा० ५,६)

१३. जयाचार्य ने तेरापंथ धर्म-संघ में संस्कृत-भाषा का बीज-वपन किया था। उसे पल्लवित करने में सर्वप्रथम मुनि मघवा का योग रहा। वे व्याकरण का अध्ययन कर तेरापंथ में संस्कृत के विद्वान् बने। उन्होंने संस्कृत की कुछ स्फुट रचनाएं भी की थी। जयाचार्य के पास जब कोई संस्कृत का विद्वान् आता तब प्रायः उसे फरमाया करते थे कि हमारे यहां तो एक मघजी ही पंडित हैं।

(श्रुतानुश्रुत)

१४. जयाचार्य ने मुनि मघवा के लिए पडित शब्द का व्यवहार उनका उत्साह बढ़ाने अथवा अपनी कृपा व्यक्त करने के लिए किया होगा, परन्तु मुनि मघवा ने उस उपाधि को सतो द्वारा पहले ही प्राप्त कर लिया था।

स० १९१३ के शेपकाल मे जयाचार्य विहार करते हुए 'जेतारग' पधार रहे थे। कुछ संत उनसे आगे चलते हुए पहले ही जेतारण गाव के बाहर पहुच गये थे। उस समय किसी साधु ने वहा उपस्थित साधुओं से निम्नोक्त पहेली का अर्थ पूछा—

"आगै जैतारण लारै जैतारण विच में चालां आपां।
इण पाली (आड़ी) रो अर्थ वतावै, तिण नै पंडित थापां॥"

सर्वप्रथम मुनि मघवा ने ही उसका अर्थ वतलाया कि हम जहां पर हैं वहां से आगे तो जैतारण नामक गाव है और हमारे पीछे जनता को तारने वाले 'जयाचार्य' है। हम इन दोनो के वीच में है। वस उसी दिन से साधुजन उन्हे पडित नाम से सम्वोधित करने लगे। उन्होने आगे चलकर उस नाम को पूर्णत. सार्थक कर दिया।

(श्रुतानुश्रुत)

१५. जयाचार्य ने एक वार साधुओ की साधारण स्लखना का प्रायश्चित करने के लिए पाच पचो (मुनि छोगजी (१३८), हरखचदजी (१४४) आदि) की प्रायोगिक रूप से नियुक्ति की। किसी भी त्रुटि करने वाले व्यक्ति को कितना दड मिलना चाहिए, इसका निर्णय वे पाच पंच सम्मिलित होकर किया करते थे।

स० १९११ मे जयाचार्य खाचरोद (मालवा) मे विराज रहे थे। एक दिन की वात है कि वाल मुनि कालूजी (१६३) 'रेलमगरा' से कोई गलती हो गई। पंचो ने उनको कितने मंडलियों (प्रायश्चित का मान दण्ड) का दण्ड दिया। पर मुनि कालूजी ने वह स्वीकार नही किया। तव पचो ने जयाचार्य से उनकी शिकायत की। जयाचार्य ने सव वात की जांच कर वाल मुनि कालूजी से प्रायश्चित स्वीकार न करने का कारण पूछा तो उन्होने कहा—'दंड ज्यादा है।' जयाचार्य ने उनसे पूछा—'तुझे किस पर विश्वास है? क्या तू मघजी के निर्णय को मान लेगा?' उन्होने तत्काल कहा—'हा वे जो कुछ प्रायश्चित देंगे वह मुझे सहर्प मान्य है।' जयाचार्य ने मुनि मघवा को वुलाया और पूर्व स्थापित पाच पचो पर 'सरपच' वना दिया। उस समय मुनि मघवा की अवस्था लगभग चौदह वर्प की थी:—

खाचरोद में मघवा भणी, सिरेपंच दिया ठहराय।
भितर कृपा थी घणी, तिण वाह्य कुर्व वधाय॥

(मघवा सुजश ढ़ा० ५ दो० ६)

वय चवदह वरसां वण्या रे, शासण में सरपंच।
कालूजी स्वामी बड़ा रे, हेतु भूत इण मंच ॥

(माणक महिमा ढ़ा० ६ गा० २१)

१६. स० १९१३ के पालो चातुर्मास के वाद जयाचार्य खेरवा पधारे। वहा उनकी आखो मे कुछ गड़वड हो गई थी। उसके लिए उपचार भी चल रहा था। एक दिन जव सतो को हाजरी सुनाने का प्रसग आया तो उन्होंने अपना यह कार्य मुनि मघवा को सोपा। इस प्रकार जयाचार्य मघवा मुनि को सदैव आगे वढ़ने का अवसर प्रदान करते थे।

नेत्र रक्षा नै जयगणी, कचा गुल दिराय[1]।
मघवा नै कह्यो हाजरी, सुणावो संत नै जाय ॥

(मघवा सुजश ढा० ६ दो० ४)

१७. मुनि मघवा की सेवा भावना और उदार वृत्ति अनुकरणीय थी। वे हर साधु के सहायक वनने के लिए तत्पर रहते।

जयाचार्य के शासनकाल के पहले सघ मे यह क्रम चलता था कि जो साधु दीक्षा-पर्याय मे सवसे छोटा होता वही प्रायः साधुओ के वारी (परिष्ठापन) आदि का कार्य करता। मुनि मघवा की दीक्षा के कुछ समय वाद मुनि रामदत्तजी (१६६) की दीक्षा हुई जो अवस्था प्राप्त थे। मुनि मघवा पर जो वारी के काम की जिम्मेदारी थी वह उन पर आ गई। वृद्धावस्था के कारण वे इस कार्य को करने मे अक्षम थे। उन्होने मुनि मघवा से प्रार्थना की कि आप मेरी वारी का काम कर दे तो मैं इसके वदले आपके पैर दवा दूगा। कोमल-हृदय मुनि मघवा ने करुणार्द्र होकर कहा—'मुझे पांव नही दववाने है, मै ऐसे ही तुम्हारा काम कर दूंगा।' उन्होने वृद्ध मुनि की वारी का काम कर दिया। जयाचार्य को जव यह ज्ञात हुआ तो भविष्य के लिए चिंतन कर साधुओ के वारी आदि का कार्य सभी छोटे-वड़े साधुओ को क्रमानुसार करने का नियम बना दिया :—

'वृद्ध ग्लान-सेवा भणी रे, हृदय सुकोमल साझ।
मघजी तुम पग दावस्यू रे, वारी परठो राज ॥'

(माणक महिमा ढा० ६ गा० ३४)

१८. साधु-साध्वियो के लिए यह विधान है कि वे जूठन नही छोड सकते। भोजन करते समय या उसका विभाजन करते समय जो अन्न-कण नीचे विखर

---

1. जयाचार्य आंखो की सुरक्षा के लिए कचा गुल अर्थात् विना गर्म किये गुड़ का लेप करवाया करते थे। उस जमाने में इस उपचार का काफी प्रचलन था।

जाते हैं, उन्हे वटोर कर खा लिया जाता है। इस सदर्भ मे एक कहावत है—'सीतां' (विखरे हुए अन्न-कण) खाने से विद्या आती है।

इस कहावत के पीछे एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है। विखरे हुए अन्न-कण वही व्यक्ति खा सकता है जो अपने वड़ो के प्रति विनम्र होता है। विनय विद्या के विकास का मूल आधार है। मुनि मघवा कभी-कभी दोनों हाथ भर जाए इतने भोजन कण खा लेते थे। यह उनकी सहज विनम्रता का प्रतीक है।

धोवो भर-भर खावता रे, पोतै सिक्थ-समूह।
'सीतां' खावै विद्या आवै, फिर क्यू अपणी ऊह ॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० १०)

१९. जयाचार्य को कोई व्यक्ति उनके भावी उत्तराधिकारी के विषय में पूछता तो वे स्पष्ट शव्दो मे तीन साधुओं का नाम लेते :—

छोग, हरख, मघराज।
जन वहु पूछै जय भणी, सखरो युवपद साव।
किण मुनि नै देवा तणां, आप तणां छै भाव॥
तव जय गणपति उच्चरै, छोग, हरष, मघराज।
त्रिहुं में पद युव इक भणी, थापण रा छै भाव ॥
इम अति कुर्व वधावियो, छोग हरष नूं हीर।
वीसे युवपद 'मघ-नृपति,' थाप्यो जांण गंभीर ॥

(हरख चोढालिया ढ़ा० ३ दो० ५ से ७)

जयाचार्य मुख भाखता रे, छोग, हरष, मघराज।
तीनां में स्यूं एक नं रे देणो पद युवराज ॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० २२)

२०. जयाचार्य ने स० १९१९ ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को राजलदेसर मे मघवा मुनि को चार वखशीशे की :—

१. हाजरी मे लेखपत्र वोलने तथा लिखने (हस्ताक्षर करने) से मुक्त।
२. सव कामकाज से मुक्त।
३. सव वोझ-भार से मुक्त।
४. गोचरी से मुक्त।

इस सदर्भ मे सतो द्वारा लिखी हुई मूल शव्दावली निम्न प्रकार है :—

स० १९१९ जेठ विद १४ रै दिन हाजरी मे च्यार तीरथ रा थाट, लाडणू रा भाया दर्शण करवा आया ते पिण वैठा छा, तिण वेलां श्री श्री श्री १००८ श्री श्री पूजजी महाराज इम फरमायो अचित वात फरमाई ते लिखीयै छै।

मघजी अठीनै आय जावो, जद मघराजजी सनमुख आया, तिवारै फरमायो—सर्व साध हाजरी मे वड लोडाई सू लिखत लिख-लिखनै वाचै ते लिखत लिखवा री वाचवा री आज्ञा छै। संज्या का दिशा सूं पधारया पछै घणां साधु छा तिवारे मघराजजी नै फुरमायो महाराज-मघजी वदणा कर लै।

१. प्रथम हाजरी मे लिखित की वगसीस कीधी तेहिज।

२. सर्व काम की करणें की वगसीस कीधी।

३. सर्व वोझ की वगसीस कीधी।

४. गोचरी की वगसीस कीधी। ए ४ वगसीस कीधी तिवारै।

सरूपचदजी स्वामी आदि घणां साध आनद पाम्या। मघराजजी साह्रा वंदणा कीधी। फेर पूजजी महाराज फरमायो—ए वात मघजी नै चाहिजै—'किण ही वगत कामकाज आश्री अनेक वात आश्री कहिणो पडै तो हठ न चाहिजै।' इम हिज सरूपचदजी स्वामी महासत्याजी सरदारांजी अनेक वात कही—'हजूर फरमावै ते वात तो तत्काल अगीकार करणी।' इम अनेक वात हुई ते संक्षेप थकी लिखी सवत् १९१९ जेठ सुदि ५ द्वितीय पुष्प।

(प्रकीर्णक पत्र-संग्रह प्रकरण ५ पत्र सख्या ३४)

वड वधव पिण था कनै, जय गणपति अवलोय।
काम वोझ सर्व छोड नें, मघवा कुरव वधारचो जोग्य॥

(मघवा सु० ढ़ा० ७ दो० ७)

२१. स० १९२० सावन कृष्णा १ (चातुर्मास का प्रारम्भ दिन) को जयाचार्य ने चारतीर्थ के वीच मुनि मघवा को 'वाजोट' पर वैठने की वख्शीस की। इस सदर्भ मे लिखित मूल शब्दावली निम्नोक्त है :—

'स० १९२० श्रावण वदि १ रे दिन परभात रा वखाण में गुरुवार री हाजरी मे च्यार तीरथ ना थाट मे श्री श्री श्री १००८ श्री श्री पूजजी महाराजधराज श्री मुख सू इम फुरमायो, अचित वात फरमाई—'विनीत हुवै ते तो विनीत रो कुरव देख नै राजी हुवै अनें अविनीत हुवै ते सुण ने मुह विगाडै विनीत रो कुरव देख नै।' पूजजी महाराज फुरमायो—'विनीत नै वगसीस करां तो राजीपो राखणो।' जद छोगजी स्वामी आदि संत वोल्या—'घणो राजीपो आवै।' जदश्री पूजजी महाराज फुरमायो—'मघजी वंदणा करल्यो।' जद मघराजजी वदणा कीधी। सता जाण्यो कांई वगसीस करसी। चार तीरथ देखतां फुरमायो—'मघजी नै वाजोट री आज्ञा छै' पछै च्यार तीरथ देखतां वाजोट ऊपरे वैसाण्या, पछै भाया वाया वदणा कीधी, घणो हरख हुवो, आज वरस रो पहिलो दिन, भारी वगसीस हुई। महासतियांजी आदि साध-साधवी घणा राजी हुवा। पूजजी महाराज फुरमायो—'सरूपचदजी स्वामी वात सुणसी जद घणो राजीपो आवसी इम

फुरमायो ।' चार वगसीस तो राजलदेशर हुई, वाजोट री वगसीस चूरू में हुई सं० १९२० श्रावण विद १ ।'

(प्रकीर्णक पत्र सग्रह प्रकरण ५ पत्र सं० ३४)

२२. १९२० मे जयाचार्य का चातुर्मास चूरू में था। वहा उन्होंने आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन चार तीरथ के समक्ष परम विनीत मुनि मघवा को विधि-वत् युवाचार्य प प्रदान किया। उस अभिनव दृश्य को देखकर समूचे सघ मे हर्ष की लहर दौड़ गई। मघवागणी की माता वन्नांजी और वहिन गुलावांजी को तो जो आनद की अनुभूति हुई वह अनिर्वचनीय है।

जयाचार्य ने उसी दिन अपने हाथ से एक नवीन लेखपत्र लिखा और उसमे अपने उत्तराधिकारी के रूप मे मघवा का नामाङ्कन किया। फिर लेखपत्र मे सभी साधुओ से हस्ताक्षर करवाये :—

आसोज विद तेरस दिनै जी कांई, लोक सेइकड़ा वृन्द।
सिरदार गुलाव वनां सती जी कांई, चिहूं तीर्थ सुखकंद जी ॥
परम मैहर कृपा करी जी कांई, मघवा गुण अपरपार।
कृतज्ञ गणी गुण जांण ने जी कांई, दियो पद युवराज श्रीकार जी।
कांइ धिन धिन मघवा स्वांम नैं जी, कांई, धिन थारो अवतार ॥
निज तनु नी पछेवड़ी जी कांई, मघवा भणी दीध ओढ़ाय।
चार तीरथ आनंद लह्यो जी कांई, शासण नीव सवाय जी ॥
सती गुलाव वनां हरसित थई जी कांई, जांणी महिर जिवार।
जय गणपति पिण इम जाणियो जी कांई, फल्या वालक वाक्य श्रीकार जी ॥
भिक्षु लिखत में नाम भारीमाल रो जी कांई, तिण ठांम करायो स्वांम।
नवो लिखत करी विस्तारियो जी कांई, मघवा रो दिरायो नाम जी ॥

(मघवा सुजश० ढा० ७ गा० ३, ४, ५, ७, ८)

मघवागणी को युवाचार्य पद प्रदान करते समय जयचार्य ने मुनि छोगजी (१३८) से पूछा—'युवराज पद किसे देना चाहिए ?' उन्होने निवेदन किया—'मुनि मघराजजी को।' जयाचार्य ने मुनि मघवा को अपना उत्तरदायित्व सौंपा और मुनि छोगजी को काम-काज आदि वख्शीस कर सम्मानित किया।

आसू कृष्णा उगणीसै वीसे, तिथि त्रयोदशी शनि दीसैं।
हुई गुरां तणी वगसीसैं ॥
जुगराज पदवी फरमाई, सामी छोगजी मनुहार कराई।
सारा संत सत्यां मन भाई ॥
छोगजी पूजजी रैं मन भायो, जद कुरब कायदो वधायो।

स० १६३६ मे मुनि छोगजी गण से अलग हो गये। मुनि श्री हरखचदजी जयाचार्य के बड़े विनीत शिष्य थे। जयाचार्य ने उन्हे बहुत-बहुत सम्मान दिया। वे सं० १६२५ मे दिवगत हो गये। विस्तृत वर्णन उनके प्रकरण मे पढ़ें।

२३. जयाचार्य ने युवाचार्य की नियुक्ति करने के कुछ दिन पश्चात् ही एक नवीन गीतिका की रचना की जिसमे अपने उत्तराधिकारी मघवागणी को तथा भविष्य में होने वाले आचार्यो को सघ की श्रीवृद्धि के लिए सार-गर्भित शिक्षा प्रदान की। उसके कुछ मार्मिक पद्य इस प्रकार है :—

चउमासो उतरियां पाछै मुनिवर अज्जा आवै रे।
तास हकीगत सर्व पूछणी, तसु निर्णय इम भावै रे॥
गणी गुण धारी रे २।

वर जय गणपति नी हरख सीख हितकारी रे॥ गणी०॥
ए श्रमण सत्यां नी संपति अविचल सारी रे॥ गणी०॥
मर्यादा पलायां अति गण वृद्धि उदारी रे॥ गणी०॥

भिक्षु स्वाम तणै प्रसादे, तैं मग पायो भारी रे।
दुर्गति खंडन शिव सुख मंडन, राखै अधिक सुधारी रे॥

त्रिभुवन नाथ वीर प्रभु मोटा, तास पाट तूं भारी रे।
च्यार तीर्थ ना थाट संपदा, ते गहघाट उदारी रे॥

नीत हुवै चारित पालण री, दीजै साहज अपारी रे।
ए सगला तुज शरणे आया, तू सहु नो नेतारी रे॥

कोइक तो हुवै तन नो रोगी, कोइ मन रोगी धारी रे।
नीत हुवे चारित्र पालण री, स्हाज दियै हितकारी रे॥

चरण पालण री नीत हुवै नहिं, तसु काढ़ गण बारी रे।
तिण री कांण मूल मत राखै, डर भय दूर निवारी रे॥

शासण वीर तणो इण भरते, छै थारे भुज भारी रे।
तिण कारण ए शीख दई तुज, स्यूं कहूं वारंवारी रे॥

भिक्ष स्वाम तणी मर्यादा, अखंड पलावै सारी रे।
वलि ए शीख दइ ने तुजने, गण वच्छल हितकारी रे॥

पद युवराज समापै गणपति, ते रहे त्यां लग सारी रे।
तूं सेवा कीजै साचे मन, रहिजै आज्ञाकारी रे॥

चरण वडा संतां नै वंदणा, आछी रीत उदारी रे।
तू शुद्ध कीजै जग जश लीजे, मूल रीत ए भारी रे।।

विहार करी नै वड़ा मुनीसर, आयां नगर मझारी रे।
आसण छोड़ी उभो थइ नै, कर वंदण हितकारी रे।।

चरण वड़ा नै लघु संता जिम, आण अखंडित धारी रे।
आराधणी छै तन मन सेती, चारित्र जेम उदारी रे।।

पद युवराज शिष्य मघराज, भणी ए शिक्षा सारी रे।
वले अनागत गणपति ह्वै तसु, एहिज शीख उदारी रे।।

शिक्षा ए गणपति नै दीधी, म्हे निज वुधि अनुसारी रे।
वलि तुम्ह नै सुख ह्वै जिम कीजे, शासण गण वृद्धिकारी रे।।

उगणीशै वीसे चउमासै, चूरू शहर मझारी रे।
जय जश गणपति शिक्षा आपी, आणी हरख अपारी रे।।

(शिक्षा की चौपाई—गणपति-सिखावण की ढ़ा० गा० १,
५६ से ६२ व ६५ से ७१ तक)

इस गीतिका की सारगर्भित अधिकाश गाथाए शासन-समुद्र भाग २ (ख) जयाचार्य के प्रकरण मे उद्धृत कर दी गई है।

२४. मघवा मुनि को जव युवाचार्य पद दिया गया तव उनकी साधिक तेईस वर्ष की अवस्था थी। तेरापथ मे इतनी छोटी उम्र मे युवाचार्य पद की नियुक्ति का तव तक प्रथम अवसर था।

२५. मघवागणी अविरल विशेपताओ के धनी थे। क्षमा, मुक्ति आदि दश धर्मो का उत्कर्प उनमे प्रतिविम्वित होता था। अनेक गुणो मे उनकी निस्पृहता वेजोड थी। जव कोई व्यक्ति उनके सामने उनकी प्रशसा करने लगता तो वे उसके प्रति उपेक्षाभाव रखते हुए दूसरा प्रसग चला दिया करते। यहा तक की उन्होने अपना पट्टोत्सव मनाने की स्वीकृति भी साधु-वर्ग को नही दी। जयाचार्य का पट्टोत्सव दिन (माघ शुक्ला १५) ही मनाते रहे।

स्व-प्रशसा मे उनकी जितनी उपेक्षा रहती उतनी ही पर-निन्दा मे भी। कोई व्यक्ति उनके सामने किसी की निन्दा करता तो उसे भी वे महत्त्व नही देते। वे स्व-प्रशसा और पर-निन्दा से सदैव पराङ्मुख रहते थे। दूसरो को भी वे यही शिक्षा देते कि न तो पर निन्दा करो और न सुनो। (श्रुतिगत)

स्वीय प्रशंसा जव सुणी रे, धरचो उपेक्षा भाव।
करो न पर-निन्दा सुणो रे, जिन्दादिली सुझाव।।

(माणक-महिमा ढा० ६ गा० १५)

२६. युवाचार्य वनने के वाद उन्होने सघ-व्यवस्था का प्रायः कार्य सम्भाल लिया जिससे जयाचार्य अपना अधिकांश समय साहित्यिक रचना व स्वाध्याय-ध्यान मे लगाने लगे। आगमो में आचार्य के लिए एक विशेपण आता है—'गणतत्तिविप्पमुक्को'—गण की चिन्ताओ से मुक्त। यह विशेपण जयाचार्य के जीवन मे पूर्ण घटित हो गया। मघवा मुनि जैसे सुयोग्य उत्तराधिकारी मिलने से ऐसा हो सका था। जयाचार्य के पास उपासना करने वाले श्रावक-श्राविका आते तो वे उन्हे कहते—'मघजी की सेवा करो।' स्वय अपने कार्य में संलग्न हो जाते '—

जयाचार्य सचमुच हुया रे, गण-चिन्ता स्यू मुक्त।
मघजी री सेवा करो यू, करता वचन प्रयुक्त ॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० २५)

२७. वीर गौतम अथवा भिक्षु भारीमाल की तरह जय-मघवा की जोड़ी अठारह वर्षो तक रही। गुरु-शिष्य का पारस्परिक व्यवहार पिता-पुत्र की तरह वात्सल्य और विनय का पावन प्रतीक था। एक वयोवृद्ध स्थानकवासी मुनि ने एक दिन जयाचार्य से कहा—'आप वडे सौभाग्यशाली आचार्य है क्योकि आपको मघराजजी जैसे उत्तराधिकारी शिष्य का सुयोग प्राप्त हुआ है।'

भारीमाल, मघमालजी (मघराजजी) रे, उभय शिष्य युवराज।
भारी गण सेवा सझी रे, ओ शासण नै नाज ।
'भिक्षू' 'जय' दोन्यू कह्यो रे, दोन्यां रो वड़ भाग।
जोड़ी गोयम-वीर री रे, शिष्य भारमल, माघ (मघराज) ॥

(माणक महिमा ढ़ा० ६ गा० ३५, ३६)

२८. गुरु उस शिष्य की ही प्रशंसा करते हैं जो उत्कट योग्यता वाला होता है। जयाचार्य युवाचार्य मघवा के लिए फरमाते थे—'मघजी वहुत पुण्यवान है। छोगजी आदि साधुओ के गण से पृथक् होने के कारण चारतीर्थ मे कुछ हलचल-सी मची हुई थी, वह सारी मेरी विद्यमानगी मे समाप्त हो गई। मघजी को इसके लिए कुछ भी प्रयास नही करना पड़ेगा।' (श्रुतानुश्रुत)

२९. जयाचार्य ने पूरी छानवीन के वाद यह निर्णय किया कि राख से वर्णादिक फिर जाने के पश्चात् पानी प्रासुक (अचित्त) हो जाता है, अत. साधु-जन उसे ले तो किसी प्रकार के दोप की संभावना नही लगती। एक दिन किसी साधु ने वात ही वात में जयाचार्य से निवेदन किया कि राख के पानी के अचित्त होने मे तो शंका है। जयाचार्य ने पूछा—यह शका तुम्हारे ही है या और किसी के?' साधु ने कहा—'मुझे ही क्या यह शका तो आपके थाप-उत्थाप करने वालों को भी है।' जयाचार्य ने तत्काल अपने पास मे वैठे हुए युवाचार्य मघवा को सवोधित करते हुए कहा—'क्यो मघजी ! राख के पानी मे अचित्त होने मे तुम्हे कोई शका

है ?' युवाचार्य मघवा बोले—'नही महाराज ! मेरे मन मे तो इसके लिए किसी प्रकार का सदेह नही है ।'

उस साधु ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए कहा—'मेरा आशय मघराजजी महाराज के लिए नही छोगजी महाराज के लिए था, उनको यह शंका है ।' जयाचार्य ने फरमाया—'छोगजी की हमारे कोई थाप-उत्थाप नही है । मघजी के शका हो तो आज ही मैं छोडने के लिए विचार कर सकता हू ।'

(श्रुतानुश्रुत)

३०. लाडनू की घटना है कि एक बार जयाचार्य हवेली[1] के ऊपर वाले तिरवारे मे बैठकर साहित्य-रचना कर रहे थे । साध्वी श्री गुलाबाजी सेवा मे उपस्थित थी । युवाचार्य मघराजजी नीचे व्याख्यान दे रहे थे । प्रवचन करते-करते वे कुछ स्खलित हो गये । अकस्मात् जयाचार्य का ध्यान उनकी तरफ चला गया । उन्होने साध्वी गुलाबाजी से कहा—'तुम्हारे भाई को व्याख्यान देना नही आता, जाओ तुम व्याख्यान दो ।' साध्वी श्री असमंजस मे पडगई, "एक ओर तो आचार्यवर के आदेश-पालन का प्रश्न और दूसरी तरफ युवाचार्यश्री को व्याख्यान के बीच उठाकर व्याख्यान देना । साध्वी श्री सकपका गई । कभी एक पैर आगे रखती और कभी एक पैर पीछे । न जाने को दिल चाहता और न गुरु आज्ञा को टालने की भावना । जयाचार्य ने पुन प्रश्न करते हुए कहा—'क्यो व्याख्यान मे नही गई ?' विदुषी और अवसरज्ञा साध्वी श्री ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया—'प्रभो ! लोग बहुत दिनो से आपका प्रवचन सुनने को उत्सुक हैं, अत: आप स्वयं व्याख्यान मे पधार जाए तो वे कृत-कृत्य हो जाएग ।' जयाचार्य के यह बात जच गई और वे स्वय व्याख्यान मे पधार गये । पट्ट पर आसीन होकर युवाचार्य मघवा को प्रवचन मे स्खलित होने के कारण बडा उलाहना दिया । युवाचार्यश्री ने सविनय बद्धाञ्जलि 'तहत्' की ध्वनि से अपनी गलती स्वीकार की । सुनने वाले सारे विस्मित रह गये और मन ही मन सोचने लगे कि साधारण-सी स्खलना के लिए युवाचार्यश्री को कितना उपालभ दिया जा रहा है ।

दूसरे दिन जयाचार्य फिर व्याख्यान मे पधारे । उन्होने चारतीर्थ मे पहले दिन की बात दुहराते हुए युवाचार्य मघवा की सहनशीलता तथा आचार्य के प्रति अत्यधिक विनम्र भावना की भूरि-भूरि प्रशसा की । परिषद् ने देखा कि युवाचार्यश्री के चेहरे पर कल उपालभ के समय जैसी समरेखा थी वैसी ही आज प्रशसा के समय मे है । जो 'समो निंदापसंसासु तहा माणावमाणओ' आगम उक्ति को चरितार्थ कर रही है । (अनुश्रुति के आधार से)

---

१. जहा वर्तमान मे स्थिरवासिनी साध्वियां रहती हैं ।

३१. मघवागणी लिपि कला मे बड़े दक्ष थे। उनके अक्षरो की सुन्दरता व सुवड़ता श्लाघनीय थी। उन्होने हजारो पद्य लिपि-बद्ध किये। एक पत्र मे (लगभग ११ इंच लम्बे और ५ इंच चौडे) टीका सहित 'अनुत्तरोपपातिक' सूत्र लिखकर उस समय एक नया कीर्त्तिमान स्थापित किया।

जयाचार्य ने युवाचार्य मघवा को प्रतिदिन पांच गाथाएं लिखने का आदेश दिया जिससे लिपि कौशल के साथ हाथ जमा हुआ रहे।

लिखणी पंक्ति पांच ही रे, शेष सतत स्वाध्याय।
वरणू लेखण-सुघड़ता रे, मघवा री निर्भीक।
'अनुत्तरोवाइय' लिख्यो रे, एक हि पत्र सटीक॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० ३१, ३२)

३२. एक वार जयाचार्य सुजानगढ मे चातुर्मास करने के लिए पधारे। वहां उन्होने युवाचार्य मघवा को प्रातःकालीन प्रवचन के लिए आदेश दिया। युवाचार्यश्री ने श्रोताओ से पूछा—'व्याख्यान मे आप लोग कौन-सा सूत्र सुनना चाहते है?' श्रावकों ने कहा—'वैसे तो आपकी इच्छा हो वह सुनाएं पर आपके मुखारविंद से तो कोई नया सूत्र ही सुनना चाहते हैं।' युवाचार्य श्री ने कहा—आचारांग सुना दू? यह तो सुना हुआ ही है। भगवती सुना दूं? यह भी सुना हुआ है। पन्नवणा चालू कर दू? यह भी सुना हुआ है। जिन-जिन आगमो के लिए पूछा गया उन सबके लिए उनका एक ही उत्तर था कि यह तो सुना हुआ है। जयाचार्य पास में बैठे यह सब सुन रहे थे। इस कथन पर मुस्कराते हुए उन्होने श्रावकों से कहा—'तुम लोगों ने तो सारे ही सूत्र सुन रखे है पर मैं कहता हूं कि तुम एक बार मघजी के मुख से उत्तराध्ययन सूत्र सुन लो।'

जयाचार्य के निर्देश से व्याख्यान मे उत्तराध्ययन सूत्र चलने लगा। युवाचार्य श्री के व्याख्यान-कौशल, प्रतिपादन की शैली और भावाभिव्यक्ति से श्रावक-जन आश्चर्य-चकित रह गये। उनके मुह से एक ही स्वर निकलता कि उत्तराध्ययन सूत्र तो अनेक बार सुना पर ऐसा रहस्य-भरा विवेचन कभी नही सुना। यदि नही सुनते तो मन मे पश्चाताप ही रह जाता।

(श्रुतानुश्रुत)

३३. जयाचार्य मघवागणी को कई बार विनोद भरे शब्दों मे फरमाते—'मघजी! यहां बैठे क्या करते हो? मेरे पास तो मयाचदजी और ईशरजी दो संत ही काफी हैं। तुम पुस्तकें व संतो को साथ लेकर ग्रामानुग्राम विहार करो और जनता को प्रतिबोध दो :—

कहता जय मघजी? बैठा कांइ करो थे,
जावो उपकार करो जनपद विचरो थे।

म्हारे तो ईसर मयाचंद दोनूं है,
इं जोड़ी थकां जरूरत किण री क्यूं है ॥

(मगन चरित्र ढ़ा० १ गा० ८८)

सुना जाता है कि एक वार तो जयाचार्य ने उक्त कथन को सार्थक भी कर दिया। लाडनूं मे विराजित जयाचार्य ने एक दिन युवाचार्य मघवा को पुस्तक पन्ने दिये विना ही कुछ साधुओं के साथ कुछ दिन के लिए डीडवाणा जाने का आदेश दिया। युवाचार्य मघवा गुरु आज्ञा अनुसार विहार कर डीडवाणा पधारे। वहां प्रभात के समय व्याख्यान देना चालू किया। कठ सुरीले, राग मधुर और स्पष्ट व्याख्या-शैली होने से उनके प्रवचन का स्थानीय जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उनकी विद्वत्ता से आकृष्ट होकर एक यतिजी व्याख्यान सुनने के लिए आने लगे। वे वहां उपाश्रय मे रहते थे। उनके पास हस्त लिखित ३२ सूत्र तथा अनेक व्याख्यानादिक थे। उनके निवेदन करने पर युवाचार्य मघवा ने सूत्रादिक की कुछ प्रतियां मगवाई और सूत्र सुनाने शुरू कर किये। उनकी वक्तृत्व कला एव भावाभिव्यक्ति से यतिजी तथा श्रावक लोग वहुत प्रभावित हुए।

युवाचार्यश्री जव वहा से विहार करने लगे तव लायी हुई सूत्रादिक की प्रतियां वापस यतिजी को सौपने लग। वे वोले—'ये सव आप ही रखिए'। युवाचार्यश्री ने कहा—'हमे ये सव पुस्तकादिक गुरुदेव के चरणो मे भेंट करना पड़ता है।' यतिजी वोले—'मैं तो आपको भेट कर चुका हूं, अव चाहे आप रखे या गुरु महाराज लें, इसमे मुझे कोई आपत्ति नही है। आप ये सव ले जाइये।' युवाचार्य मघवा ने पुस्तकादिक लेकर संतों सहित वहा से विहार किया और जयाचार्य के दर्शन कर साथ मे लाये हुए पुस्तक पन्ने भेट किये। देखने वाले सभी साधु इस लिए आश्चर्यचकित हुए कि जाते समय तो कुछ नहीं ले गये थे और लाये हैं इतना सामान।

जयाचार्य ने उस सदर्भ मे एक दोहा फरमाया—

तिल मस अरु भवरी लशुन, होत जीवणै अंग।
चल्यो जाय पर द्वीप में, लक्ष्मी तजै न संग ॥

मघवागणी के दाहिने अग में लसुन का चिन्ह था जो विशेप शुभ माना जाता है। (अनुश्रुति के आधार से)

३४. जयाचार्य संघ मे कोई नई मर्यादा या नियम वनाते तो उसका प्रथम प्रयोग प्राय. मघवा मुनि से ही प्रारभ होता। उनकी जयाचार्य के प्रति इतनी आस्था थी कि उनके मन मे किसी भी प्रयोग के विपय मे प्रश्न नही उठता।

तात्कालीन परम्परा के अनुसार वारी (परिष्ठापन) के कुछ सामूहिक कार्य दीक्षा पर्याय मे छोटे साधु करते थे। जयाचार्य उस प्रणाली को क्रमवद्ध करना

चाहते थे। किन्तु जो साधु पहले काम कर चुके थे वे इस बात से सहमत नही हुए। जयाचार्य ने मुनि मघवा को बुला कर कहा—'तुम अपने क्रम का काम कर चुके हो, फिर भी मै चाहता हूं कि अब सब सत क्रमश: वारी का काम करें। इसके लिए तुम्हे फिर काम करना होगा'। मुनि मघवा ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। जयाचार्य ने उनको तत्काल पाच साल तक दीक्षा-क्रमानुसार काम करने का सकल्प करवा दिया। मुनि मघवा के संकल्प से अन्य साधुओं के मानस मे भी एक प्रतिक्रिया हुई और उन्होने भी क्रमशः वारी का काम करने का संकल्प ले लिया। (श्रुतानुश्रुत)

शासण सारण-वारणा रे, करता जय सुविहाण।
पेली मघजी ऊपरै रे, लागू हुंती लगाण ॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० ३३)

३५. स० १९३८ भाद्रव कृष्णा १२ को जयपुर मे जयाचार्य ने स्वर्ग-प्रयाण किया। युवाचार्य मघवा उनकी अन्तिम समय मे दत्त-चित्त होकर वड़ी तन्मयता से सेवा कर कृतार्थ हो गये।

भाद्रव शुक्ला २ शुक्रवार को साढे ग्यारह वजे मघवागणी चारतीर्थ के वीच आचार्य-पद पर आसीन हुए। साधु-साध्वी व श्रावक जन ने जय-घोषो से आचार्य देव का अभिनदन किया[1]। दूर-दूर के २७ गांवो के हजारों यात्री उस अवसर पर

---

१. उस समय सामूहिक रूप से जो मांगलिक जय गान गाया गया वह इस प्रकार है :—

जय जय नदा, जय जय भद्दा, जय विजय तुम होइज्यो।
अण जीत्या नै जीत जीत्या री, रक्षा रूड़ी कीज्यो जी ॥
म्हांरा पूज परम गुरु, चगो सुजश जग छायो रे।
म्है तो निरख-निरख सुख पायो रे,
म्हारै मघवा गुरु रो वढ़ज्यो तेज सवायो रे ॥ ध्रुव० ॥
पाट वैठतां पूज गोचरी उठ्या तिणहिज दिन्नो।
असणादिक ततू रा ढिगला, जाच ल्याया ऋपि जन्नो रे ॥१॥
छोटा छोटा भाया वोल्या 'मघजी-सामी वन्दणा' 'जी भाई जी'।
'वैठो वैठो मघजी-सामी ठडो पाणी पी भाई पी जी रे।
मघवागणी री वहन गुलावा, मा वेटी मनरगे।
कुंवारी कन्या कचन-वरणी, चरण लियो जय सगे रे ॥३॥
मघवागणी री जवर पुन्याई, देख-देख हुलसाया।
वहन भाया री जोडी दीपै, जाणै अवतर आया रे ॥४॥

एकत्रित हुए। कुछ लोगो ने उस खुशी में लगभग पन्द्रह सौ रुपये खर्च किये। शाल-दुशाले, पगड़ी, वस्त्र आदि वाटे। मघवागणी धर्मसभा से चलकर लालाजी की हवेली के निकट जहा ठठेरो का कुआ, महादेवजी का मन्दिर और वट वृक्ष था वहां पधारे एव मुनि हरदयालजी (२७०) को दीक्षा प्रदान की[1]। फिर वापस लालाजी की हवेली मे पधार कर उन्होने धर्मोपदेश दिया। जिनराज की तरह छटा देखकर स्वपर-मती लोग वहुत प्रभावित हुए। गोचरी के समय सर्वप्रथम आचार्यप्रवर श्रमण-श्रमणी परिवार से चित्तोड-निवासी परम श्रद्धाशील श्रावक ताराचदजी ढीलीवाल के डेरे मे भिक्षा के लिए पधारे। उन्होने एक ही साथ वारह व्रतो का लाभ लेकर आत्मा मे अभूतपूर्व आनद का अनुभव किया फिर स्वय गुरुदेव ने शहर के घरो की गोचरी की[2]।

(जयाचार्य की शोभायात्रा के वर्णनात्मक पत्र)

मघवागणी पदासीन हुए तव भैक्षव शासन मे ७१ साधु और २०५ साध्वियां विद्यमान थी।

मंत सत्यां नी संपद् सनूरी, संत इकोतर उदारी।
वेसय पंच समणी वर नीकी, गणी आणां में हुंसयारी जी॥

(मघवा सुजश ढा० १३ गा० १२)

३६. जिस प्रकार स्वर्ग मे विवुधगण (सुर-समूह) मे ऐश्वर्य-सपन्न मघवा (इन्द्र) सुशोभित होता है उसी तरह आचार्य मघवा विवुध (पडित साधु) जन मे त्याग तप के ऐश्वर्य से सुशोभित होने लगे।

मघवागणी तेरापथ के आचार्य और उनकी वहिन गुलाव सती साध्वी-प्रमुखा वनी। इस प्रकार की यौगलिक जोडी का मिलना धर्म-सघ के लिए वड़े सौभाग्य का सूचक था :—

'जाणक जोड़ी जुगलिया रे।'

(माणक महिमा ढ़ा० ६ गा० ८)

इस स्तुति गान मे रचयिता का नामोल्लेख नही है। वयोवृद्धा साध्वी लाडांजी (६१०) से प्राप्त हुई है।

१. अतिशय-धारी गण-सिणगारी, ज्यांरी भाग्य दशा अति भारी।
पट ओछव दिन श्रमण दिक्षा थई, आई अचिंती भेट तिवारी जी॥

(मघवा सुजश ढ़ा० १३ गा० ६)

२. तिणहिज दिन गणी गोचरी पधारचा, असन विविध ल्यावंतो।
घर आगण गणिराज देख नै, भवि चित अति हुलसतो जी॥

(मघवा सुजश ढ़ा० १३ गा० ४)

गणपति भगनी सहोदरी सूरी, गुलावकुंवर पुन्यवती।
पवित्रणी जिम पूज मुख आगल, ज्ञान ध्यान दीपंती जी ॥
(मघवा सुजश ढ़ा० १३ गा० ५)

आचार्य श्री मघवागणी आचार्य की आठ संपदा तथा वहुश्रुति की सोलह उपमाओ से उपमित होकर संघ मे अतिशयधारी अरिहंत देव की तरह सुशोभित होने लगे। उनकी मनहर मुद्रा देखकर तथा ओजस्विनी वाणी सुनकर जनता अत्यधिक प्रभावित होकर उनके विरल गुणो की मुक्त स्वरों से प्रशंसा करने लगी[1]।

३७. मघवागणी गलती करने वाले साधु-साध्वियों को उलाहना भी अत्यंत कोमल शब्दों मे देते। वे कहते—'यदि तुम लोग स्खलना नहीं करते तो मुझे कुछ नही कहना पड़ता, तुमने त्रुटि की है इसलिए संघ-व्यवस्था की दृष्टि से मुझे उपालंभ देना पड़ता है' :—

ओलम्भो जद देवता रे, दिल में वड़ो दरद।
संतां ! थे गलती करो तो, पड़े सुणाणो सद्द ॥
(माणक महिमा ढा० ६ गा० ३८)

गुरुदेव के मधुर व आत्मीय भाव से दिये गये उलाहने का शिष्य समुदाय के हृदय मे इतना असर होता कि वे भविष्य मे गलती न करने के लिए सावधान रहते।

३८. मघवागणी शरीर से वहुत कोमल थे। गर्मी के कारण उन्हे रात को प्यास का परिषह वहुत रहता था। रात्रि के समय गर्मी के कारण जब उनकी नीद खुल जाती तव वे पट्ट से उठकर अपने हाथ मे कम्वल लेकर इधर उधर घूमते। जहां कही ठड का आभास होता वहां नीचे जमीन पर ही कम्वल विछा

---

१. आचार्य नी अष्ट सपदा ओपै, वहुश्रुत ओपम सारी।
वाणी अमृत घन सम गुंजै आपरी, मुद्रा पेखत लागै प्यारी जी ॥
लोक जाणता जयगणी जेहवा, होणा दु:क्करकारी।
देख छटा मघवा जन वोलै, आ माया अपरंपारी जी ॥
महाराजा थांरो सफल थयो अवतारी।
हे गुण दरियो भरियो वर ज्ञाने, वले योग मुद्रा मनोहारी जी।
महाराजा थांरी भाग्य दशा अति भारी ॥
तज सर्व दूपण विद्या नो भूपण, सरस्वती कंठे त्यांरी।
आदेज वयण सरस पीयूप रस, यश परिमल धर सारी जी ॥
(मघवा सुजश ढ़ा० १३ गा० ७ से ९)

कर लौट जाते। उठने के समय जब साधुओं को पता लगता तो वे नम्रतायुक्त मीठा उपालंभ भी देते कि आपने हमको क्यों नहीं जगाया। मघवागणी कहते— 'तुम्हें नींद से जगाता उससे अच्छा तो यह था कि मैं स्वयं वहां जाकर सो गया। अनेक बार ऐसे अवसर भी आते थे जब वे जमीन पर बिछौना बिछाकर सोये हुए होते और उन्हें नींद आई हुई होती तभी कोई साधु नहीं पहचानने के कारण उन्हें उठा दिया करता।

एक बार की बात है कि मुनि पन्नालालजी (पनजी) (२६६) (बाद में गण से पृथक् हो गये) मघवागणी को कार्य विशेष के लिए उठाने लगे। मघवागणी बोले—"पनजी! मैं हूं..................पनजी! मैं हूं............" मुनि पन्नालालजी ने जब उन्हें पहचाना तो वे बहुत खिन्न हुए और बार-बार माफी मांगने लगे :—

रात्यूं जा कहिं पोढ़ता रे, कितो निगर्वी गात।
पनजी सरिखा पारखू रे, वणता विच व्याघात।।
(माणक महिमा ढ़ा० ६ गा० १७)

३९. मघवागणी पौद्गलिक पदार्थों से इतने निस्पृह थे कि वे सोचते कहीं मेरे शरीर पर भी ममत्व भाव न आ जाए। आवश्यकता वश हाथ भी धोते तो पौंहचे ऊपर नहीं धोते। शरीर का पसीना भी धीरे-धीरे पौंछते कि कहीं असावधानी से सूक्ष्म जीवों की विराधना न हो जाए :—

धोयो कदै न देखियो रे, पूंचै ऊंचो हाथ।
मेल मलपतो देवतो रे, मणि-भूषण ने मात।।
अंग पसीनो पूछता रे, सो पिण हलवै हाथ।
कहीं न मन की कल्पना रे, मूर्च्छामय हो जात।
(माणक महिमा ढा० ६ गा० १३, १४)

४०. मघवागणी जब कभी विहार करते अथवा शौच-भूमि पधारते उस समय रास्ते में कदाचित् हरियाली का तथा वर्षा आने से जल-बूंदों का स्पर्श हो जाता तो उनके शरीर में पसीना आ जाता। जिस प्रकार सांप कंचुकी का भय रखता है उसी तरह वे पाप का डर रखते थे :—

लीलोती जल लांघता रे, उठत पसीनो अंग।
डरता वलि-वलि पाप स्यूं रे, कंचुइ जेम भुजंग।।
(माणक महिमा ढा० ६ गा० १९)

४१. मघवागणी संस्कृत के प्रखर विद्वान् थे। वे परिषद् में 'भरत बाहुबलि' काव्य का वाचन अधिक करते थे। उनकी ओजस्विनी वाणी की प्रतिध्वनि

उच्चारण के साथ उठती थी। जनता श्रुतिरस में ओत:प्रोत होकर भाव विभोर बन जाती :—

काव्य 'भरत-बाहूवली' रे, वांचता जद विराट।
पड़छन्दा उठती ध्वनि रे, तखत करै थर्राट॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० २०)

भरत बाहूबलि महाकाव्य ते, व्याख्यान स्व मुख आप।
जन श्रवण कटोरा भर-भर हरषे, जिम पुतली चुपचाप॥

(मघवा सुयश ढा० १४ गा० ५)

मघवागणी 'भरत बाहूबलि' काव्य की जिस प्रति से व्याख्यान फरमाते थे, उस प्रति को एक साधु गण से अलग हुआ, वह ले गया। पता चलने पर उसकी खोज की गई तो उसके ४३ पत्र मिले, शेष कहीं खो गये। आचार्यप्रवर कालूगणी ने उस काव्य की खोज की, पर कहीं कोई प्रति नहीं मिली। आचार्य श्री तुलसी ने भी उसकी खोज चालू रखी। आखिर तेरापंथी सभा के मंत्री विद्वान् श्रावक स्वर्गीय छोगमलजी चोपड़ा (जो संस्कृतज्ञ और संस्कृत भाषा में विशेष रुचि रखते थे) को उक्त काव्य की एक प्रति आगरा के 'विजय धर्म लक्ष्मी ज्ञान मन्दिर' नामक जैन पुस्तकालय में मिली। उन्होंने प्रति से एक प्रतिलिपि करवाई। वह बहुत अशुद्ध होने से उसकी दूसरी प्रतिलिपि करवाई। लेकिन उसमें भी अशुद्धियां बहुत थी। तब आचार्यश्री तुलसी ने उसका संशोधन कर एक प्रति तैयार करने का मुनि श्री नथमलजी (वर्तमान युवाचार्य) को आदेश दिया। उन्होंने हमारे धर्मसंघ के प्रति और भंडार गत प्रति की प्रतिलिपि—दोनों के आधार पर प्रस्तुत काव्य का संपादन किया।

मुनि श्री द्वारा संपादित व लिखित प्रति के २८ पत्र हैं, जो सं० २००२ में लिखी गई है।

(भरत बाहुबलि महाकाव्य की भूमिका के आधार से)

४२. सं० १९४८ में मघवागणी का चातुर्मास जयपुर में था। वहां उन्होंने एक दिन पंडित दुर्गादासजी को वार्तालाप के प्रसंग में सारस्वत व्याकरण के कुछ स्थल (अंश) सुनाये। धारा प्रवाह और अस्खलित रूप में व्याकरण को सुनकर पंडितजी ने आचार्यश्री की स्थिर प्रतिभा की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की। पंडितजी ने पूछा—'क्या अभी तक आप व्याकरण दोहराते हैं ?' मघवागणी ने कहा—'सं० १९२२ के पाली चातुर्मास में जयाचार्य के पास पढ़ते समय दोहराई थी, उसके बाद आज लगभग २६ वर्षों से सहज ही दोहराने का अवसर मिल गया।' पंडितजी तथा सुनने वाले व्यक्ति आश्चर्य से भर गये।

(श्रुतानुश्रुत)

४३. स० १९४२ के जोधपुर चातुर्मास के पूर्व मघवागणी पचपदरा पधारे। वहा वे २० दिन ठहरे। सध्या के समय उन्होने भाइयो से पूछा—'कौनसा व्याख्यान सुनाऊ।' एक भाई बोला—'महाराज ! हरिवश का व्याख्यान फरमाए। उस समय मुनि श्री बीजराजजी (१३५) वहा उपस्थित थे। उन्होने उस भाई को टोकते हुए कहा—"गुरुदेव को ऐसा निवेदन करना चाहिए कि आपकी जो इच्छा हो वह व्याख्यान फरमाए।"

मघवागणी ने उस भाई के कथन को ध्यान मे रखकर अपनी पूर्व स्मृति के आधार से रात्रि के समय हरिवश का कुछ अश फरमाया। मुनि बीजराजजी ने आश्चर्य चकित होकर आचार्य श्री से पूछा—'आपने याद किये विना ही यह व्याख्यान कैसे फरमाया?' मघवागणि बोले—'आज से २० साल पूर्व सीखा हुआ था, आज उसे दुहराकर व्याख्यान दे दिया।' यह सुनकर सभी वहुत प्रभावित हुए और आचार्य प्रवर की कोष्ठक बुद्धि (स्थिरबुद्धि) की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे।

(मुनि जीवनमलजी (३९६)
जसोल वालो के कथनानुसार)

४४. मघवागणी ज्ञानोपलब्धि के प्रति बहुत जागरूक रहते थे। वे किसी भी पद, वाक्य या श्लोक का गलत अर्थ करना ज्ञान की बहुत बडी आशातना मानते थे। एक दिन मुनि पनजी (२६९) सारस्वत व्याकरण का एक श्लोक याद कर रहे थे।

प्रणम्य परमात्मानं बाल-धी-वृद्धि-सिद्धये।
सारस्वती मृजु कुर्वे, प्रक्रिया नातिविस्तराम् ॥

श्लोक-प्रत्यावर्तन के साथ उन्होने अर्थ करना शुरू किया—भगवान् ने कहा है—गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

मघवागणी ने जब यह सुना तो तत्काल उन्हे बुलाकर उक्त श्लोक का सही अर्थ बतलाया और भूल के लिए पाच 'परिष्ठापन' (एक प्रकार का प्रायश्चित) का दड दिया:—

गमै न ज्ञान अशातना रे, श्री मघवा मन सांच।
पनजी इण अपराध में रे, लिया परठणा पांच ॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० १८)

४५. मघवागणी पुराने पत्र व प्रतियो को वहुत सभाल कर रखते थे। जब तक उनका उपयोग हो तब तक परठने का (परिष्ठापन) आदेश नही देते थे। एक बार एक साधु ने मघवागणी से एक पत्र को परठने की आज्ञा मांगी। उन्होने उस पत्र को हाथ मे लेकर पूछा—'इसे क्यों परठ रहे हो?' उसने कहा—'यह अच्छा लिखा हुआ नही है और पुराना हो गया है। मैंने इसकी

दूसरी प्रतिलिपि भी कर ली है, अतः अब यह मेरे काम का नही रहा।' मघवागणी ने उस पत्र को अपने पुट्ठे में रखते हुए कहा—"यह तुम्हारे काम का न रहा तो न सही परन्तु मेरे काम आ जायेगा।' (श्रुतानुश्रुत)

४६. एक बार मघवागणी 'कुचामण' पधारे। वहां कुछ लोग एक स्थानीय पडित को साथ लेकर आये। पडितजी मघवागणी से सस्कृत भाषा मे प्रश्न पूछने लगे। मघवागणी जब उनके उत्तर राजस्थानी भाषा मे देने लगे तब पडितजी ने कहा—"सस्कृते वाच्यम्" मघवागणी ने पडितजी की बात को अस्वीकार कर दिया और उन्हे भी राजस्थानी भाषा का प्रयोग करने के लिए कहा, जिससे कि उपस्थित जनता के समझ में आ जाए। परन्तु पंडितजी ने उनकी बात नही मानी और गर्व के साथ सस्कृत मे ही बोलते गये। सस्कृत बोलने मे जब पडितजी के अशुद्धिया आने लगी तब मघवागणी ने सकेत के द्वारा उन्हें सावधान करते हुए कहा—'पडितजी ···।'

'पंडितजी तत्काल संभले और राजस्थानी भाषा मे ही बोलने लगे। प्रश्नोत्तर सम्पन्न होने के पश्चात् वापस जाते समय पडितजी ने मघवागणी के चरणो में झुककर अपनी भूल को स्वीकार करते हुए नम्रता पूर्वक निवेदन किया—'आप बडे उदार है, आपने मेरी लाज रख दी। यदि आप चाहते तो मुझे परिषद् मे अपमानित कर सकते थे, पर आपने वैसा नही किया यह आपकी महत्ता है।'

मघवागणी ने फरमाया—किसी का अपमान करने का हमारा लक्ष्य हो ही कैसे सकता है? हमारा आग्रह इसलिए था कि उपस्थित जन-समूह को लाभ मिल सके। (श्रुतानुश्रुत)

पत राखी पंडित तणी रे, चुपकै चोटी खांच।
बलि-बलि जाऊं वारणा रे, नहीं सांच नै आंच॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० २७)

४७. सं० १९४३ मे मघवागणी ने उदयपुर मे चातुर्मासिक प्रवास किया। वहा स्थानकवासी साधुओं का भी चातुर्मास था। सवत्सरी पर्व के पश्चात् एक दिन शौच भूमि से वापस लौटते समय मघवागणी 'खमत-खामणा' करने के लिए स्थानक मे पधारे। उस समय वहां व्याख्यान हो रहा था। संतों और श्रावको ने अप्रत्याशित रूप से मघवागणी को अपने सामने देखा। मघवागणी ने कहा—'सब सतो से सवत्सरी संबंधी 'खमत-खामणा' है।' सतो मे से न कोई खडे हुए न किसी ने वापस 'खमत-खामणा' किया। मघवागणी सहज भाव से अपने स्थान पर लौट आये। उनके प्रवास स्थान पहुंचने के पश्चात् डाल मुनि (डाल गणी) आदि संतो ने निवेदन किया—'गुरुदेव! आपको ऐसे स्थान पर नही पधारना चाहिए कि जहां अवज्ञा की संभावना हो। आपकी अवज्ञा समूचे संघ की अवज्ञा है।'

मघवागणी ने फरमाया—'तुम लोगो का चिंतन ठीक है। वहा के अनुचित व्यवहार की पहले सभावना होती तो सभवत. जाना न होता, परन्तु मुझे वहा जाने का पश्चाताप भी नही है, क्योकि मेरा चिन्तन है कि कोई व्यक्ति हमारे साथ कैसा ही व्यवहार करे पर हमारा व्यवहार अनुचित नही होना चाहिए।'

स्थानक मे उस समय जो व्यक्ति उपस्थित थे उनमे से भी अनेक श्रावको को मुनिजन का वह व्यवहार बुरा लगा, पीछे से उन्होने सतो को इस सवध मे सजग भी किया। मघवागणी के सौजन्य की शहर मे अच्छी प्रतिक्रिया हुई।

(श्रुतानुश्रुत)

गया विरोधी गेह में रे, खमत-खामणा हेत ।
पेलो पेश चढ़ै कियां रे, क्यूं चिन्तै सुध चेत ? ॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० १६)

४८. मघवागणी ने सं० १६४३ का चातुर्मास उदयपुर मे किया। वहा जनता मे अच्छी धर्म-जागरणा हुई। राजवर्गीय लोगो का भी अच्छा समागम रहा। चातुर्मास के पश्चात् मृगसर वदि १ को विहार कर मघवागणी कविराजजी सावलदानजी की वाड़ी मे विराजे। मृगसर वदि २ को वहा साध्वी श्री रूपाजी (५३५) 'देशनोक' की दीक्षा भी हुई। कविराजजी मघवागणी के वड़े भक्त थे। उन्हे राज्य की ओर से कविराज की उपाधि मिली हुई थी। राज्य मे उनका वड़ा सम्मान था। स्वय महाराणा भी उन्हे वड़े आदर की दृष्टि से देखा करते थे।

कविराजजी ने महाराणा फतेहसिहजी के सामने अपने यहा विराजित मघवा गणी की वात चलाई और उन्हे दर्शन करने की प्रेरणा दी। महाराणा ने कहा—'वहा जाने मे कोई आपत्ति तो नही है ?' उस समय पास मे पन्नालालजी पुरोहितजी वैठे हुए थे। उन्होने प्राचीन दफ्तर देखकर कहा—'खरतर गच्छ के श्रीपूजजी से तत्कालीन राणा शभूसिहजी मिले थे, इसलिए आप वहां पधारे तो कोई आपत्ति नही है।' तव महाराणा ने कविराजजी की वात को तत्काल स्वीकार कर लिया और वहा चार वजे आने का समय भी निश्चित कर लिया परन्तु ऐजेन्ट से मिलने के लिए वाग मे चले जाने के कारण वे निश्चित समय पर नही आ सके। सीधे महल मे आकर उन्होने अपनी वाहर जाने की पोशाक को खोलकर दूसरी पोशाक धारण कर ली। उस समय उन्हें अचानक सतो के दर्शन करने की वात याद आई। तत्काल उन्होने एक हरकारे को आगे भेजकर अपने आने की सूचना दी और स्वय शीघ्रता से तैयार होकर कविराजजी की वाड़ी मे पहुचे। मघवागणी को नत-मस्तक होकर वदन करते हुए उन्होने देरी से पहुंच पाने के लिए क्षमायाचना की।

मघवागणी ने लगभग वाईस मिनिट तक उन्हे उपदेश सुनाया। महाराणा ध्यान-पूर्वक सुनते रहे। आचार्यदेव ने देखा कि अव सूर्यास्त हो चुका है और

प्रतिक्रमण के समय मे विलम्ब होता जा रहा है तब उन्होने उपदेश का उपसंहार करते हुए कहा—'अब समय समाप्त हो गया है।' महाराणा तत्काल उठे और अपने स्थान की ओर चल पड़े। उपस्थित जनता तथा स्वय कविराजजी भी मघवागणी के इस उत्तर से बड़े चिंतित हुए। उन्हें यह चिंता थी कि कही महाराणाजी अप्रसन्न तो नही हो गये है।

महाराणा इतने प्रभावित हुए कि उन्होने महलो मे जाकर मघवागणी की नियम-निष्ठा व निस्पृहता की भूरि-भूरि प्रशसा की। कविराजजी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने अन्य व्यक्तियो को भी यह बात बतलाई तब सबकी चिन्ता दूर हुई। शहरवासियो को जब पता चला तो उनके आश्चर्य का पार नही रहा। राज कर्मचारी-वर्ग का मानस उल्लास से भर गया। सर्वत्र आचार्य श्री मघवागणी की व जैन धर्म की महिमा फैल गई।

(मघवा सुजश ढा० १८ गा० १२ से २१ के आधार से)

महाराणा के साथ उस समय पुरोहित पन्नालालजी और कवि मनोहरसिंहजी भी थे। उपर्युक्त घटना के सदर्भ मे पढिये निम्नोक्त कलश :—

कविराज वाड़ी मांहि राणा, फतेहसिंह तिहां आविया।
वंदणा करी नै बेस गणी नी, वाण सुण सुख पाविया ॥
संग पन्नालाल कविराज मनोहरसिंघ, दरस कर हुलसाविया।
आसरै रह्यो बावीस मीटज, वंदणा कर महल सिधाविया ॥

(मघवा सुयश ढ़ा० १८ कलश २०)

मघवागणी रचित स० १९४३ की चातुर्मासिक तप-विवरण गीतिका मे भी उक्त घटना का उल्लेख मिलता है।

पछै मृगशिर विद एकम दिनै रे, धणे हगांम करी विहार।
कविराजा नी वाड़ी तिहां रे, रह्या गणी अणगार ॥
बीज दिवस वाड़ी मझै रे, देशणोक तणी सुविचार।
रूपांबांई दिक्षा ग्रही रे, तृतिय पोहर तिहवार ॥
जन हजारां आविया रे, दिक्षा मोच्छव रै मांह।
बे पादरी साहिब पिण देखवा रे, आया धर ओछाह ॥
पछै आथण री वेलां तिहा रे, दर्शण करण उदार।
अति ही मोटा जन आविया रे, त्यां थयो अधिक उपगार ॥

(मघवागणी रचित ढ़ा० २ गा० ४८ से ५१)

४९. कविराज सावलदानजी पर मघवागणी की अच्छी कृपा थी। उन्होने एक दिन आचार्यवर्य से निवेदन किया कि मैं आपके पीछे होने वाले उत्तराधिकारी का नाम जानना चाहता हूं। मघवागणी ने फरमाया—'समय आने पर कहने का

विचार है।' मघवागणी जब दूसरी बार उदयपुर पधारे और कविराजजी की वाड़ी मे विराजे तब उन्होने कविराजजी को फरमाया—'अभी इतने साधुओं मे मुनि माणक आचार्य पद के योग्य है।' कविराजजी ने अत्यंत प्रमुदित होकर गुरुवाणी को हृदय मे धारण कर लिया।

> कविराज सांवलदान ताहयो, गणीराज सूं अर्ज करायो।
> आपरै महाराज सवायो, लारै लायक रो नाम फुरमायो॥
> मघवा भाखै निगैह म्हारी, अवसर आयां कहवां भाव सारी।
> थांरी विचारणा अति भारी, हद शासण वृद्धि विचारी॥
> अवार इतरा साधां मझै, माणक सत महंत।
> इम सुण नै कविराजियो, सिघ्र वच तहत कहंत॥

(मघवा सुजश ढ़ा० १८ गा० २२, २३ ढा० १९ गा० ३)

५०. एक बार दो व्यक्ति मघवागणी के पास आये और उन्होने तर्क-वितर्क की भाषा में पूछा—'अगर महाराणाजी दीक्षा ले तो आप देगे या नही?'

आचार्यप्रवर ने फरमाया—'जब महाराणाजी दीक्षा लेने के लिए आयेंगे तभी इस प्रश्न पर विचार कर लेगे। पहले ही इसके लिए व्यर्थ वाद-विवाद क्यो बढ़ा रहे हो। (श्रुतानुश्रुत)

५१. मघवागणी अखड बाल-ब्रह्मचारी और बडे निर्मल आचार्य थे। साक्षात् वीतराग की उपमा को सार्थक करते थे। विकार भावना ने मानो उनका स्पर्श ही नही किया था। संघीय व्यक्ति क्या संघ विरोधी लोग भी उनका पूर्ण विश्वास किया करते थे। गण से बहिर्भूत छोगजी आदि के सम्मुख एकबार जब मघवागणी के विषय में बात चली तो उन्होने कहा—'मघराजजी के विषय में हमें किसी प्रकार का सदेह नही है। वे इतने उज्ज्वल व चरित्रनिष्ठ हैं कि यदि उन्हे अकेली स्त्री के निकट एकांत मे रख दिया जाए तो भी हमें कोई आशंका नही होगी।' (श्रुतानुश्रुत)

> तज्यो पिंड उण पिंड रो रे, जाणक विषय-विकार।
> रही सदा अनभिज्ञता जो, जाणै शिशु-ससार॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० ११)

५२. मघवागणी 'अजातशत्रु' थे। विरोधी लोगो के दिल मे भी उनके प्रति बड़ी सद्भावना थी। वे भी प्रायः उनकी आलोचना न करके प्रशसा ही किया करते थे।

> मिलै न मघवा वासतै रे, बोलणहार विरुद्ध।
> तत 'अजातशत्रू' तणो रे, विरुद वह्यो सुविशुद्ध॥

(माणक महिमा ढा० ६ गा० ३०)

५३. ज्ञान, दर्शन व चारित्र की आराधना के साथ तप: आराधना भी आत्म-शुद्धि का एक मुख्य साधन है। मघवागणी चतुर्विध संघ को यथाशक्ति विवेक पूर्व तपस्या करने की प्रेरणा देते थे। साधु-साध्वियों को उत्साहित करने के लिए चातुर्मासिक तप-विवरण की ढालें भी बनाते। उन में प्रत्येक साधु-साध्वी का नामोल्लेख करते। उस क्षेत्र मे श्रावक-श्राविकाओं में जो तपस्या होती उसका भी दिग्दर्शन करवाते। उनके द्वारा रचित निम्नोक्त चातुर्मासों की ढालें उपलब्ध है :—

सं० १९३९	सं० १९४६
स० १९४३	सं० १९४७
स० १९४४	सं० १९४८
सं० १९४५	स० १९४९

विस्तृत वर्णन देखें परिशिष्ट पृ० ९३ से १०० मे।

५४. समय-समय पर साधु-साध्वियों को हाथ से पारणा करवा कर उन्हें उल्लसित करते। स० १९४३ के उदयपुर चातुर्मास के पश्चात् मघवागणी रेलमगरा पधारे। वहा उन्होंने साध्वी श्री रंगूजी (२१५) के साथ की साध्वी श्री सुदरजी (२६४) (नाथद्वारा) को सवा छहमासी तप का पारणा करवाया :—

त्यां थी आकोलै आविया, रेलमगरे दरस दिया ताम।
रंगूजी कनें सुन्दर सती, करायो सवा षट मासी पारणों स्वाम ॥
(मघवा सुजश ढ़ा० १९ गा० ९)

सं० १९४३ का मर्यादा महोत्सव दौलतगढ़ मे किया। वहा साध्वी श्री मघुजी (१९३) के सिंघाड़े की साध्वी रंभाजी (२२०) को साढे छहमासी तप का पारणा करवाया।

साढ़ा षटमासी रंभा करी, मघु संग दौलतगढ़ मांय।
तिहा श्री पूज पधार नें, स्व हस्त पारणो कराय ॥
(मघवा सुजश ढा० १९ गा० २२)

५५. मघवागणी की संसार-पक्षीया माता साध्वी श्री वन्नांजी (२७०) ने सं० १९२५ वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को लाडनूं में ग्यारह प्रहर के सागारी अनशन से समाधि-पूर्वक पंडित-मरण प्राप्त किया। उस समय जयाचार्य, युवाचार्य मघवा तथा साध्वी-प्रमुखा सरदारसती व मघवागणी की बहिन गुलाबसती आदि का आगमन हुआ। आचार्य श्री और युवाचार्य श्री ने उन्हे विविध वैराग्य वर्धक गाथाएं सुनाकर बहुत सहयोग दिया। मघवागणी मातृ-उपकार से उऋण होकर कृत-कृत्य हो गये। (मघवा सुजश ढ़ा० ९ दो० १ से ५ के आधार से)

विशेष वर्णन उनके प्रकरण मे पढे ।

५६. मघवागणी की संसार-पक्षीया वहन साध्वी-प्रमुखा गुलावसती का सवा प्रहर के सागारी अनशन से सं० १९४२ पोष कृष्णा नवमी को जोधपुर मे स्वर्गवास हुआ । उनके वक्ष-स्थल मे एक ग्रथि (गांठ) थी । विविध उपचार करने पर भी वह ठीक नही हुई । अस्वस्थता के कारण चातुर्मास के पश्चात् भी वे जोधपुर शहर मे विराजी । मघवागणी महामन्दिर (जोधपुर के निकट) पधार गये । वहां से गुलाबसती को दर्शन-सेवा का लाभ देने के लिए प्रतिदिन शहर मे पधारते और वैराग्यपूर्ण आगम-पद्य आदि सुनाते । जिस दिन उनका स्वर्गवास हुआ उस दिन मघवागणी शहर मे ही विराजे ।

इस प्रकार गुलावसती के समाधि-मरण मे सहयोगी वनकर कृतार्थ हो गये ।

(मघवा सु० ढा० १६ गा० १८ से २७ के आधार से)

गुलावसती का विस्तार-पूर्वक जीवन-वृत्त उनके प्रकरण मे तथा 'गुलाव-सुयश' मे पढ़े ।

५७. गुलावसती के दिवगत होने के पश्चात् मघवागणी पाली पधारे । वहां पोष सुदि मे साध्वी नवलाजी (२४०) (पाली) को सभी दृष्टियो से योग्य समझकर साध्वी-प्रमुखा पद पर नियुक्त किया ।

(मघवा सुजश ढा० १७ दो० १ से ४ के आधार से)

साध्वी श्री नवलांजी पहले सिंघाडवध रूप मे विहार करती थी । मघवागणी ने गुलावसती की विद्यमानगी मे ही उनसे विचार-विमर्श किया तव उन्होने नवलसती को साध्वी प्रमुखा वनाने के लिए अपना सुझाव दिया था ।

(श्रुतानुश्रुत)

५८. पहले संघ मे सदैव प्रतिक्रमण के समय चार 'लोगस्स, (२४ तीर्थंकरों की स्तुति) के ध्यान की प्रणाली थी । मघवागणी ने विशेष स्वाध्यायलाभ की दृष्टि से पाक्षिक दिन १२, चातुर्मासिक पाक्षिक दिन २० और सवत्सरी महापर्व के दिन ४० लोगस्स का ध्यान करने की परम्परा चालू की ।

साथ ही प्रतिक्रमण के वीच मे आलोचना लेना तथा प्रतिलेखन के पूर्व अन्य किसी साधु को साक्षी करना, ऐसा आदेश दिया । (श्रुतानुश्रुत)

५९. सरदारशहर पहले वहनों का क्षेत्र कहलाता था । उनके हृदय में धर्मसघ के प्रति गहरी निष्ठा थी । साधु-साध्वियों के चातुर्मास भी यथासभव वहां हुआ करते थे । परन्तु अधिकांश भाइयो का झुकाव सं० १९२० में गण से वहिर्भूत चतुर्भुजजी (१३७) आदि के प्रति था ।

जयाचार्य सरदारशहर के भाइयो की तुलना जोगी की जटा से किया करते थे । जिस प्रकार उलझी हुई जोगी की जटा कघी से नही सुलझ सकती, उसे तो उस्तरे से ही सुलझाया जा सकता है, उसी तरह सरदारशहर के भाई अपने आप

मे तेरापंथ से द्वेष-भावना रखने के कारण जोगी की जटा की तरह उलझे हुए है। तत्त्वचर्चा की कघी से उन्हे नही सुलझाया जा सकता। उन पर तो कोई घटना विशेष का उस्तरा फिरेगा तब ही वे सुलझेंगे।

जयाचार्य की वह भविष्यवाणी यथार्थ हुई। सं० १९३६ में चतुर्भुजजी के बड़े भाई मुनि छोगजी (१३८)) आदि संघ से पृथक् हुए और वे चतुर्भुजजी के साथ शामिल हो गये। उन सबका एक जत्था तैयार हो गया। एकबार तो उन्होने जन-समूह मे काफी उथल-पुथल मचा दी। परन्तु जब उनसे सम्बन्धित किये गये मेघजी आंचलिया के प्रश्नो के जयाचार्य द्वारा दिये गये युक्ति सगत उत्तर सुने तब वे सब बिखर गये। स० १९३७ मे मुनि श्री कालूजी (१६३) का वहां चातुर्मास हुआ। उनके सबल प्रयत्न से अनेक भाइयो ने तेरापथ की गुरुधारणा स्वीकार की। (श्रुतानुश्रुत)

उसके बाद प्रतिदिन वह क्षेत्र सुरंगा होता गया। श्रावक वर्ग के निवेदन करने पर स० १९३९ के पौष महीने मे पचमाचार्य मघवागणी का वहां सर्वप्रथम पदार्पण हुआ। उससे पूर्व कोई भी आचार्य वहा पर नही पधारे थे। उनका वहां आगमन सभी दृष्टियो से अत्यन्त लाभप्रद रहा। आचार्यप्रवर की तेजस्विता व प्रौढ-प्रभाव से विरोधी-दल छिन्न-भिन्न हो गया। शहर के प्राय. लोग सत्य श्रद्धा स्वीकार कर भिक्षु-शासन के अनुयायी बन गये।

राजलदेसर रतनगढ़ थई, आया सिरदारशहर।
श्रमण सत्यां नां वृन्द हगांमे, दर्शण दिया गणी कर मैहर॥
खंड्या री बात देखी नैं जन त्यां सह, उतर गयो मन ताहि।
पूज आयां कर दरसण प्रश्न पूछी, करण गुरधारण हुंती मन मांहि॥

(मघवा सुजश ढा० १४ गा० ३,४)

बाद में मघवागणी ने वहां दो चातुर्मास (सं० १९४१, १९४५) भी कालूरामजी जम्मड की हवेली मे किये। क्रमशः आचार्यों तथा साधु-साध्वियो के लगातार चातुर्मास-प्रवास होने से श्रावक-श्राविकाओ में श्रद्धा व भक्ति का श्रोत उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता रहा। आज उस क्षेत्र मे श्रद्धालु भाइयो के लगभग दो हजार घर है और वह तेरापथ की राजधानी कहलाता है।

६०. सं० १९४६ के ज्येष्ठ महीने मे मघवागणी सरदारशहर से विहार कर रतनगढ पधार रहे थे। सं० १९४७ का चातुर्मास भी रतनगढ मे करने की उनकी इच्छा थी परन्तु कुछ कारण से वह बदल गई। (देखे टिप्पण सख्या…?)

रतनगढ़ पहुचने के पश्चात् वहां के श्रावकों ने अपने यहां चातुर्मास करने की भरसक प्रार्थना की तब आचार्यप्रवर ने उन्हे आश्वासन देते हुए फरमाया—'इस बार तो बीदासर मे चातुर्मास करने का निर्णय कर लिया है। फिर अवसर आने पर तुम्हारी सवाई कसर निकालने का विचार है।'

दो वर्षों के बाद आचार्य श्री ने सं० १६४६ का पांच महीनों का चातुर्मास रतनगढ वासियों को प्रदान कर उनकी सवाई कसर निकाल दी।

(मघवा-सुजश ढा० २२ गा० १४, १५ तथा ढा० २३ गा० १० के आधार से)

६१. (क) जयाचार्य ने अपने अंतिम दो चातुर्मास (सं० १६३७, ३८) जयपुर मे किये। युवाचार्य श्री मघवा भी उनके साथ थे। एक दिन (सं० १६३७ के शेष-काल मे) युवाचार्य श्री पुर के बाहर शौचार्थ पधारे। वहां संवेगी साधु ऋद्धसागरजी के साथ चर्चा चल पड़ी। उन्होंने पूछा—'सम्यक्त्व के आचार कितने है?' युवाचार्य श्री ने कहा—'नि शंकित आदि आठ आचार हैं'।' मुनिजी बोले—'उनके अलग-अलग अर्थ बतलाइए।' युवाचार्य श्री ने जब उनका क्रमश. अर्थ बतलाते हुए 'वात्सल्य' का अर्थ बतलाया तब उन्होंने कहा—'इसका तात्पर्य स्वामी वत्सल-साधर्मिक-वात्सल्य (साधर्मिक भाइयों को भोजन कराना) से है और उसके द्वारा सम्यक्त्व की पुष्टि होती है। युवाचार्य श्री बोले—'यहां 'वात्सल्य' का अर्थ साधर्मिक वात्सल्य किया जाय तो छठे गुणस्थान वालो के वह कैसे हो सकता है। पांचवें गुणस्थान वालो की अपेक्षा से तो छठे गुणस्थान वालों की सम्यक्त्व अधिक पुष्ट होती है। वे साधर्मिक वात्सल्य तो करते नही, तब उनके सम्यक्त्व की पुष्टि कैसे होती है। टीका मे भी इसका उक्त अर्थ नही किया है।

इस प्रकार युवाचार्य ने चर्चा मे अपना कौशल अभिव्यक्त किया और अपनी गहरी छाप छोडी।

(मघवा सुजश ढा० १२ गा० ५ से १० के आधार से)

(ख) सं० १६३८ के शेषकाल मे मघवागणी जयपुर मे विराज रहे थे। वहा पंजाब से एक सेठजी आये और उन्होंने आचार्यप्रवर से पूछा—'भीखणजी स्वामी प्रत्येक बुद्ध, स्वयं बुद्ध तथा बुद्ध-बोधित मे कौन से बोधी थे?' मघवागणी ने कहा—'आचार्य भिक्षु बुद्ध-बोधित थे।' वे सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने फिर अनेक प्रश्न किये। आचार्य श्री द्वारा सुंदर समाधान पाकर वे हर्ष से फूल

---

१. १-३. नि शंकित-निष्कांक्षित-निर्विचिकित्सित-लक्ष्य और उसकी निष्पत्ति के साधनो के प्रति स्थैर्य।

४. अमूढ़दृष्टि—जिन प्रवचन मे कौशल।

५-६. उपबृंहण—स्थिरीकरण-तीर्थसेवा-तीर्थ की वृद्धि और उसका स्थिरीकरण।

७. वात्सल्य—भक्ति।

८. प्रभावना—जिन प्रवचन की प्रभावना करना।

(जैन सिद्धान्त दीपिका प्रकाश ५ सूत्र ११)

उठे। उन्होने साधुओं को पजाव भिजवाने के लिए गुरुदेव से प्रार्थना की।

(मघवा ढ़ा० १४ दो० ५, ६ के आधार से)

वहां सूरत (गुजरात) से सेठ नगीनदासजी आये। आचार्य श्री के दर्शन पाकर हर्ष विभोर होगए। उन्होने कहा—'सव ही धर्मावलम्वियोने अपनी-अपनी दूकानदारी जमा रखी है पर वे सव आपसे नीचे है। इस समय भरत क्षेत्र मे आपके सम्प्रदाय के समान दूसरा कोई सम्प्रदाय नजर नही आता।'

(मघवा ढा० १४ दो० ७, ८ के आधार से)

(ग) स० १९४३ के उदयपुर चातुर्मास के पहले मघवागणी गोगुदा पधारे। वहां गुरुदेव के प्रवचन-श्रवण से तीन भाई पन्नालालजी, मगनलालजी और गोपालजी दीक्षा के लिए तैयार हुए। पन्नालालजी ने विवाह करने का परित्याग कर दिया। यह सुनकर 'रावजी' ने मघवागणी से कहा—'आपने अनेक व्यक्तियो के घर उठा दिये।' आचार्यप्रवर ने फरमाया—'अगर हम जवरदस्ती से नियम दिलाते तो आपका कथन सही हो सकता था पर हमने तो साधुचर्या की कठिनता वतलाकर तथा उपदेश देकर इनको दीक्षा के लिए तैयार किया है।' रावजी उचित उत्तर सुनकर वहुत हर्षित हुए।

(मघवा सु० ढा० १७ गा० १९, २० तथा
ढ़ा० १८ दो० १ के आधार से)

(घ) स० १९४३ के चातुर्मास के पश्चात् मघवागणी दूसरी वार उदयपुर पधार कर कविराजजी की वाड़ी मे विराजे। वहा एक दिन सध्या के समय पन्नालालजी मुहता, कविराज सांवलदानजी तथा मौलवी साहव आदि अनेक व्यक्ति गुरु दर्शनार्थ आये। आचार्यप्रवर ने धर्मोपदेश देना प्रारभ किया। उस समय उपस्थित एक पडितजी वीच-वीच मे वहुत वोलने लगे। मौलवी साहव ने उन्हे टोकते हुए कहा—'आप वीच मे मत वोलिए। हम लोग केवल महाराज साहव का प्रवचन सुनने आये हैं।' तव वे चुप हो गये। सभी ने गुरुदेव की वाणी को दत्तचित्त होकर सुना। आचार्य श्री ने वहा से विहार किया तव पन्नालालजी मुंहता पहुचाने के लिए आये। उन्होने एक प्रश्न किया—'कोई व्यक्ति हिंसक प्राणी को मार देता है तो उसे क्या होता है?' मघवागणी ने उनसे पूछा—'कोई मनुष्य सिंह को मार देता है तो उसका पाप किसे लगता है?' मुंहताजी वोले—'मारने वाले को ही लगता है।' आचार्यदेव ने फरमाया—'अव आप स्वय विचार कर सकते है कि पाप किसको लगा।' वे प्रश्न का यथार्थ उत्तर पाकर हर्षित हुए और सही तत्त्व को समझ गये।

(मघवा सु० ढ़ा० १९ दो० ४ से १० के आधार से)

(ङ) स० १९४३ के शेपकाल मे आचार्य श्री मघवागणी का अजमेर पधारना हुआ। वहा एक अन्य मतावलम्बी भाई ने पूछा—'आज ससार मे

मुख्यतया चार मत हैं। उनमे ईसाई 'इसामसीह' को, मुसलमान 'खुदा' को, सनातनी ईश्वर' को और जैन लोग 'केवली' को भगवान् मानते है। उनमे कौन सा मत सत्य है?' मघवागणी ने फरमाया—'सभी मतावलम्वी अपनी-अपनी विशेपता वतलाते हैं। वास्तव मे सत्य धर्म की साधना से ही ससार भ्रमण मिट सकता है। वर्तमान मे केवल (सपूर्ण) ज्ञानी कोई व्यक्ति नही है अत. जो सर्वज्ञ-पुरुप हुए उनकी वाणी पर विश्वास रखने से ही प्राणी का कल्याण हो सकता हैं।'

इस प्रकार अनेक प्रश्नोत्तर चले। आचार्यदेव के व्यक्तित्व से सभी वहुत प्रभावित हुए। (मघवा सु० ढ़ा० २० गा० १ से ६ के आधार से)

(च) स० १९४४ के वीदासर चातुर्मास के वाद मघवागणी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मर्यादा-महोत्सव के लिए वीकानेर पधारे। वहां जयाचार्य द्वारा समझाये गये राजमान्य श्रावक मदनचन्दजी राखेचा थे। वे वड़े तपस्वी थे। विविध तप के साथ-साथ प्रत्येक महीने मे ६ पौपध किया करते थे। उनके कौटुम्बिक भाई मगलचदजी राखेचा ने मघवागणी का सपर्क कर पूछा—'इस समय कोई व्यक्ति मुक्ति मे जा सकता है या नही।' आचार्य श्री ने कहा—'अभी इस भरत क्षेत्र मे जन्म लिया हुआ प्राणी मुक्ति मे नही जा सकता।' उन्होने नही जाने का कारण पूछा तो गुरुदेव ने फरमाया—'इस समय इस क्षेत्र मे उत्पन्न प्राणियो का इतना सामर्थ्य नही है कि वे चौथे आरे में पैदा हुए मनुष्यो की तरह कठोर साधना के द्वारा कर्मो का क्षय कर मुक्त हो सके।' समुचित समाधान पाकर वे वहुत सतुष्ट हुए। (मघवा सु० ढा० २१ दो० १ से ५ के आधार से)

(छ) वीकानेर मे एक दिन मघवागणी के पास लगभग पन्द्रह सवेगी मुनि व यतिजी चर्चा करने के लिए आये। अन्य लोग भी काफी एकत्रित हो गये।

उन्होने पूछा—आप आगम कितने मानते है?

मघवागणी ने उत्तर दिया—हम तीन प्रकार के आगम मानते हैं:—
१. सूत्रागम २. अर्थागम ३. तदुभयागम।

सवेगी मुनि—आप सूत्र कितने मानते है?

मघवागणी—मिलते हुए सभी सूत्र मानते हैं?

संवेगी मुनि—वत्तीस या पैतालीस।

मघवा गणी—वत्तीस तथा इनसे मिलते हुए और भी।

संवेगी मुनि—इनके अतिरिक्त दूसरे सभी सूत्र क्यो नही मानते?

मघवा गणी—उनमे पूर्वापर मिलान नही वैठता। जिस प्रकार महानिशीथ सूत्र आदि के पन्ने फट जाने के कारण नेमीचन्दजी आदि आचार्यो ने अपनी मति से उनका सुधार किया है। अन्त मे वे लिखते है कि कही विरुद्ध लिख दिया गया हो तो हमे दोपी मत ठहराना। तो फिर दूसरा व्यक्ति कौन निश्चय कर सकता है कि वे सत्य ही है। इसलिए मूलभूत ग्यारह अगो से मिलते हुए वत्तीस आगमो

को हम मानते है क्योकि उनमे पूर्वापर विसगति नही आती। शेप सूत्रों मे ऐसा न होने से वे मान्य नही किये गये है। युक्ति-पूर्वक उत्तर सुनकर वे सन्तुष्ट होकर अपने स्थान पर चले गये।

(मघवा सु० ढा० २१ गा० ५ से १२ के आधार से)

६२. (क) स० १९३९ के आषाढ महीने मे मघवागणी रतनगढ मे विराज रहे थे। वहा चूरू तथा सरदारशहर के श्रावकों ने चातुर्मास की जोरदार प्रार्थना की। आचार्य वर्य ने सवकी विनति ध्यान से सुनी पर उस दिन कुछ नही फरमाया। आखिर जव विहार का दिन आ गया तव गुरुदेव ने फरमाया—'अभी जिस दिशा मे विहार कर रहे हैं उस ग्राम चातुर्मास करने का विचार है।' विहार चूरू की तरफ हुआ। सरदारशहरवासी उदासीन हो गये। उन्होने नम्र शब्दो से निवेदन किया—'प्रभुवर ! हम वहुत समय से आशा लगाये वैठे है। हमारे शहर मे अभी तक एक भी आचार्यो का चातुर्मास नही हुआ। चूरू मे तो एक चातुर्मास जयाचार्य ने करवाया था। आप भक्त-वत्सल है अतः हम भक्तो पर अनुग्रह कर चातुर्मास प्रदान करे।'

आचार्य श्री ने उन्हे मधुर शब्दो मे आश्वस्त करते हुए कहा—'इस वर्ष (१९४०) का चातुर्मास तो चूरू मे ही करने का विचार है पर तुम लोगो की हार्दिक भावना को देखते हुए सरदारशहर मे आगामी सं० १९४१ के चातुर्मास की घोपणा करता हू।' श्रावको के हृदय मे हर्ष का पार नही रहा। उनकी नस-नस नाचने लग गई।

(श्रुतानुश्रुत)

(ख) मघवागणी ने सं० १९४० का चातुर्मास चूरू में सपन्न किया। उसके पश्चात् वे रामगढ (जयपुर रियासत मे) पधारे। वहां श्रावको के घर थोडे होने पर भी वाईस दिन तक विराजना हुआ। इसका कारण था कि उससमय वीकानेर रियासत के उमराव-राजाओ के परस्पर विरोध चल रहा था। वह शात होने के बाद आचार्यप्रवर रतनगढ (वीकानेर रियासत) आदि क्षेत्रो मे पधार गये।

(मघवा सु० ढा० १४ गा० १९ से २१ के आधार से)

(ग) शासन-भक्त, परम श्रद्धालु वादरमलजी भडारी की विशेप प्रार्थना पर मघवागणी ने स० १९४२ का चातुर्मास जोधपुर मे किया। उन्होने आचार्य-वर की सेवा का भरसक लाभ उठाया। भाद्रव महीने मे अस्वस्थ होने से उनको मघवागणी ने अनेक वार दर्शन दिये। वैराग्य-वर्धक उपदेश सुनाकर उनकी भावना को विकसित किया। उन्होने अत मे समाधि-पूर्वक देह-त्याग कर दिया।

उस समय लोगो ने कहा—'भंडारी जी वादरमलजी तथा जयपुर के लाला भेरूलालजी जैसे भक्तिमान् श्रावक थे, वैसा ही उन्हे अन्तिम समय मे आचार्य देव के सान्निध्य का सुअवसर प्राप्त हुआ।' भडारीजी के पीछे उनके पुत्र किसनमलजी

भी उनके समान ही आस्थावान हुए।

(मघवा सु० ढा० १६ गा० ६, १२ से १७ के आधार से)

(घ) स० १९४२ के शेषकाल मे मघवागणी ने मेवाड़ मे प्रवेश किया और देवगढ़ पधारे। उनके पदार्पण के कुछ दिन पहले ही वहा के रावजी के कुवर गुजर गये थे। उनके शोक मे रावजी ने सारे शहर मे कुछ दिन के लिए गाना-बजाना जीमनवार आदि कार्यो को बंद रखने का आदेश दे दिया था। जब उन्हे मघवागणी के पधारने की सूचना मिली तब उन्होने अपनी ओर से चलाकर श्रावक जनो को कहलवाया कि पूज्यजी महाराज के यहां आने के अवसर पर किसी भी प्रकार का प्रतिबध नही है। सदा की तरह स्वागत आदि कर सकते हो। रावजी ने केवल कहलवाया ही नही किन्तु अपने अधिकारियो और कर्मचारियो को भी सामने भेजा। स्वय को दर्शन देने के लिए प्रार्थना भी करवाई।

मघवागणी जब उन्हे दर्शन देने के लिए गढ मे पधारे तब उन्होने मदिर तक सामने आकर आचार्यदेव का स्वागत किया। अपने परिजन, प्रधान तथा कर्मचारियो सहित उपदेश श्रवण का लाभ लिया। उनके शोक सतप्त हृदय को बड़ी शाति मिली। (मघवा सु० ढा० १७ गा० १ से ३ के आधार से)

(ङ) स० १९४३ के शेपकाल मे मघवागणी मेवाड से थली की ओर पधारते हुए अजमेर पधारे। वहां एक दिन स्थानकवासी सम्प्रदाय की कुछ साध्वियो ने आकर प्रार्थना की कि आप हमे दीक्षित कर लीजिए। आचार्यप्रवर ने फरमाया—'तेरापथ की मर्यादाएं बहुत कडी है, बहुत वर्षो तक अपनी इच्छानुसार चलते रहने के बाद दूसरे के अनुशासन मे रहना सहज नही है।' इस प्रकार मीठा उत्तर देते हुए उन्होने इस प्रसग को टाल दिया[1]।

(च) मघवागणी अजमेर से बोरावड पधारे। वहां से विहार कर देने के पश्चात् मार्ग के 'बालिया' ग्राम मे उनके दस्तो की शिकायत हो गई। गर्मी के दिन थे। फिर भी क्रमश: मजिल कर डीडवाणा होते हुए लाडनू पधारे। वहां बीस दिनो के प्रवास मे अनेक उपचार करने पर भी रोग नही मिटा। फिर सुजानगढ़ पधारे। वहा एक श्रावक के पास उन्ही दिनो स्वयं द्वारा अनुभूत डाक्टरी औषध प्राप्त हुई। उससे रोग तो शीघ्र ही उपशांत हो गया परन्तु निर्बलता बनी रही। उस समय आषाढ़ का शुक्ल पक्ष चल रहा था। सुजानगढ के लिए चातुर्मास की सभावना हो रही थी। वहा के श्रावको द्वारा अनेक बार प्रार्थना भी की जा चुकी थी। मघवागणी द्वारा स्वीकृत कर लेनामात्रही अवशिष्ट था। (मघवा सुजश ढ़ा० २० गा० ११ से १३ के आधार से)

---

१. तिहां टोला तणी आरज्या जी, कहै दीक्षा देवो मुझ स्वाम।
गणी मीठो उत्तर दियो इसो जी, मुझ मर्यादा कठिन है ताम॥

(मघवा सु० ढा० २० गा० ८)

उन्ही दिनो बीदासर के नगराजजी बैगानी को अपने इष्टदेव द्वारा 'दरसाव' हुआ कि आचार्य श्री को बीदासर पधार जाना चाहिए । यहां आने पर वे स्वयं ही पूर्ण निरोग हो जायेगे । उन्होंने शोभाचदजी बैगानी के पास जाकर सारी बात कही । विचार-विमर्श के वाद उसी रात को दोनो व्यक्ति ऊटो पर चढ़कर सुजानगढ़ की ओर चल पड़े। वे वहा पहुंचे तव मघवागणी शौचार्थ वाहर पधारे हुए थे । गाव के वाहर ही उन लोगों ने दर्शन किये । शोभाचन्दजी ने नगराजजी के 'दरसाव' की वात सम्मुख रखते हुए निवेदन किया कि आप बीदासर पधारने की कृपा करे । (श्रुतानुश्रुत)

मघवागणी ने उनकी प्रार्थना को तत्काल स्वीकार कर लिया और आषाढ़ शुक्ला ९ को सुजानगढ़ से विहार कर आषाढ़ शुक्ला १५ को बीदासर पहुच गये । इस प्रकार सं० १९४४ का चातुर्मास सहज ही बीदासर को प्राप्त हो गया[1] ।

(छ) मघवागणी ने स० १९४४ का मर्यादा-महोत्सव बीकानेर में किया । वहा वे पूनमचंदजी सुराणा की जगह मे ठहरे । प्रवचन उपाश्रय मे देते । जनता काफी सख्या मे उपस्थित होती । २७ दिन विराजना हुआ । उनका वह प्रवास सभी दृष्टियो से सफल रहा । यति, सवेगी, स्थानकवासी साधु तथा सत्ताईस मोहल्लो के लोग व उनके राज-कर्मचारी आदि उपस्थित हुए और संघ की मर्यादा और आचार्य श्री के वर्चस्वी व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए । जन-जन के मुख से एक ही आवाज निकलने लगी कि हमलोगो ने ऐसा मेला आखो से कभी नही देखा ।

एक दिन कवल गच्छीय श्री पूजजी के निवेदन करने पर मघवागणी उनके उपाश्रय में पधारे । आचार्य श्री की विद्वता, धैर्यता, तेजस्विता तथा साधु-साध्वियो की संपदा देखकर उनका रोम-रोम हर्ष से पुलकित हो उठा ।

रास्ते मे कई वार स्थानकवासी सम्प्रदाय की आर्याए मिलती । वे मघवागणी को श्रद्धा-युक्त भावो से झुक-झुक कर वदन करती । उनका दिल हर्षातिरेक से भर जाता ।

(मघवा सु० ढ़ा० २१ दो० १ गा० १ तथा १३ से २१ के आधार से)

(ज) स० १९४६ के ग्रीष्मकाल में आचार्यश्री मघवागणी सरदारशहर पधारे । एक महीने विराजने के पश्चात् वहां से विहार कर साजनसर होते हुए दुलरासर पहुचे । वहां अग्नि प्रकोप होने से एक माइल की दूरी पर 'मांगासर' ग्राम मे पधार गये । शरीर की स्थूलता के कारण आचार्यप्रवर छोटे-छोटे विहार

---

१. सुजानगढ़ लोकां अर्ज घणी करी, पिण मर्जी बीदासर करण री ताय ।
विहार आषाढ़ सुद नवमी कियो, सुद पूनम विराज्या आय ॥
(मघवा सु० ढ़ा० २० गा० १४)

करते थे। गर्मी की शिकायत भी रहती थी। उस दिन उन्हे विहार मे अत्यधिक परिश्रम पड़ा। वे इतने खिन्न हो गये कि दिन भर प्रायः लेटे ही रहे। साधु-साध्वियो को भी काफी तकलीफ उठानी पड़ी। दूसरे दिन एक कोश का विहार कर खिलेरिया पधारे। तब गुरुदेव के गर्मी की वेदना शांत हुई। आचार्य श्री के साथ मुनि नदरामजी (२२८) थे जो भयकर ऊष्मा के कारण दिवंगत हो गये। (मघवा० सु० ढ़ा० २२ गा० १२ से १४ के आधार से)

खिलेरिया मे साधु एक मदिर से ठहरे। वहीं पर मुनि नंदराम को बिछौना करके सुला दिया गया। कुछ ही समय पश्चात् उनकी स्थिति एकदम बिगड़ गई। पुजारी ने जब उनकी मरणासन्न स्थिति मे देखा तो वह मदिर खाली कर देने को कहने लगा। समझाने-बुझाने पर भी कोई प्रभाव नही हुआ। आखिर साधु झोली मे सुलाकर उन्हे पास के घर मे ले गये। वहा पर भी रहने नही दिया तब वापस लाकर मंदिर की बाहर वाली चौकी पर सुलाया गया। उसी क्षण उनका देहान्त हो गया। उस समय मघवागणी की सेवा मे लोग बहुत कम थे। जो थे उनमे भी बहिनों की सख्या अधिक थी। भाइयो ने दाहसंस्कार के लिए ग्रामवासियो से लकड़िया आदि सामान मांगा। परन्तु वे लोग इतने निम्न विचारधारा के निकले कि मूल्य से भी सामान देने के लिए तैयार नही हुए। सभी भाई बड़ी दुविधा मे फस गये। वे सोच ही रहे थे कि अब क्या करना चाहिए, इतने मे नगराजजी बैंगानी आदि श्रावक सेवा करने के लिए बीदासर से वहां आ पहुचे। उन्होने वहा की सारी स्थिति देखी-सुनी तो वे बड़े खिन्न हुए। उन्होने ग्राम के प्रमुख व्यक्तियो से बातचीत की और समझाने का प्रयास किया पर न जाने उन पर कैसा नशा छाया कि वे टस से मस न हुए।

सीधे उपाय से कार्य होने की सभावना नही रही तब नगराजजी ने दूसरा मार्ग अपनाया। उन्होने उन लोगो को धमकी देते हुए कहा—'मैं बीदासर के उन्ही बैंगनियो के परिवार का हू, जिन्होने अभी कुछ वर्ष पूर्व 'दुगोली' के गढ पर हल चलवा दिये थे। हम शव को अन्यत्र नही ले जायेंगे और दाह-संस्कार इसी ग्राम मे करेंगे।' उन्होने अपने नौकर को भेजकर आस-पास मे कही पड़े हुए एक हल को मगवा लिया और उसे चीर कर सीढ़ी तैयार कर ली। उधर से दो व्यक्ति ऊटों पर लकड़िया लेकर जा रहे थे। दो आदमी गए और जबरन उन ऊटो को ले आये। दाह-कर्म अच्छी तरह संपन्न कर दिया गया। कुछ ही समय बाद ऊट वाले दोनो व्यक्ति आये और बोले—'सेठ साहब! लकड़ियों को काम मे लिया सो लिया पर हमारे ऊंट तो वापस दे दीजिए।' नगराजजी ने कहा—'तुम्हारे ऊट चारा खा रहे है, उन्हे ले जाओ और बतलाओ कि लकड़ियों की क्या कीमत है?' वे बोले—'हम शहर मे ले जाकर उन्हे बेचते तो तीन रुपये मिल जाते।' नगराजजी ने उन्हे पांच रुपये देकर खुश कर दिया। वे दोनो खुशी-

खुशी अपने ऊटो को लेकर चले गये। थोड़ी देर मे हल वाला व्यक्ति गिड़गिडाता हुआ आया और बोला—'आपने तो मेरा सात रुपयों का हल ही चीर डाला। बतलाइये अब मेरा काम कैसे चलेगा ?' उन्होंने कहा—'लो दस रुपये मे नया हल ले आना।' वह भी सन्तुष्ट होकर अपने घर चला गया। बाद में गांव वालो को कड़ी डांट लगाकर नगराजजी आदि खिलेरिया से रवाना होकर मघवागणी की सेवा मे पहुच गये।

सुना जाता है कि ग्रामवासियो के इस व्यवहार से कई वर्षो तक साधु-साध्वियो का खिलेरिया गांव में जाना बद रहा। पुन. लोगो की विनम्र प्रार्थना पर जाना प्रारंभ हुआ। (सेठिया सग्रह)

मघवागणी नगराजजी की उस सामयिक सेवा से अत्यन्त प्रभावित हुए। यद्यपि स० १९४७ का चातुर्मास रतनगढ़ करने की इच्छा थी, परन्तु इस घटना ने उनकी भावना के प्रवाह को बीदासर की ओर मोड़ दिया। वे विहार करते हुए रतनगढ़ पधारे। लोगो ने बड़ी आशा के साथ आग्रह भरी प्रार्थना की। आचार्य श्री ने लोगो को—"सवाई कसर निकालने का विचार है' ऐसा मधुर शब्दो मे अश्वासन दिया और वह चातुर्मास बीदासर किया[1]।

(ञ) स० १९४७ में बीदासर चातुर्मास के पश्चात् शीतकाल में मघवागणी ने जयपुर की तरफ विहार किया। क्रमश: डीडवाणा होते हुए कुचामण पधार कर बाग मे विराजे। वहां भाइयो ने आकर कई प्रश्न पूछे। आचार्यप्रवर द्वारा दिये गये उत्तरो को सुनकर वे पूर्ण सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा—'आपको बहुत तक-लीफ हुई पर ऐसे जवाब देने वाला दूसरा कोई दृष्टिगत नही होता।'

कुचामण के ठाकुर केसरीसिहजी ने आचार्यवर्य के पधारने की खबर सुनी तो उन्होंने अपने कंवरसाहब व भवर को भेजकर शहर से पधारने की प्रार्थना करवाई। मघवागणी ने पूछा—'वहां ठहरने के लिए स्थान कौन सा है ?' उन्होने सेठ रुघनाथजी के नोहरे का स्थान बतलाया। 'आचर्यश्री वहां पधारगये। ठाकुर साहब केसरीसिहजी तामजाम (खुली पालकी) मे बैठकर दर्शन करने के लिए आये। गुरुदेव ने उन्हे धार्मिक उपदेश सुनाया। उन्होंने हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—'आपने यहां पधार कर दर्शन दिये इसके लिए हम बहुत आभारी हैं। मेरा एक निवेदन है कि आप मुझे ऐसा उपाय बतलाए कि जिससे

---

१. पहिलां रतनगढ़ चौमासा रो मन हुतो,
कोई जोग स्यू फिर गयो मन विमास।
तिहां थी रतनगढ़ आविया, चौमासा री हो कीधी घणी हठ।
बीदासर चौमासै रा भाव है, सवाई कसर काढवा रा भाव झट॥
(मघवा सु० ढा० २२ गा० १४,१५)

मेरे जीवन का सुधार हो। मघवागणी ने फरमाया—'हमेशा शुद्ध भावना रखना, यथाशक्ति त्याग-विराग बढाना, आत्मोन्नति के अमोघ साधन हैं।' उन्होने चतुर्दशी के दिन हरियाली न खाने का तथा मद्यपान व शिकार न खेलने का आजीवन परित्याग कर दिया।

(मघवा सुजश ढ़ा० २३ दो० १ से ७ के आधार से)

६३. श्रावक जोधोजी बावलास (मेवाड़) के निवासी, अत्यंत श्रद्धाशील और विवेकी व्यक्ति थे। आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर भी अपनी आन-बान के बड़े पक्के थे। आसपास के गांवो मे फेरी देकर यत् किंचित् व्यापार करके अपने परिवार का गुजारा करते थे। फिर भी अनैतिकता का एक पैसा भी अपने घर मे नही आने देना चाहते थे। पूर्ण संतोषी और सादगी मे अगुआ थे।

उनके सात पुत्रियां थी। उस समय अधिक पुत्रियो का होना एक सौभाग्य समझा जाता था क्योकि अधिकाश परिवार पुत्रियों का पैसा लेते थे। पुत्र वालों को पैसा देकर भी कठिनता से ही लडकियां प्राप्त होती थी। ऐसे युग मे सात पुत्रियो के होने का अर्थ था—बिना हाथ-पैर हिलाए लखपति बन जाना। परन्तु जोधोजी इस परम्परा के बिल्कुल विरुद्ध थे। वे कहते कि बेटिया कोई गाय-भैंस थोड़े ही हैं कि जिनको बेचा जाए और रुपया कमाया जाए। मैं ऐसा कार्य कभी नही करूंगा।

जब कोई जोधोजी से अपने पुत्र के लिए उनकी पुत्री की माग करते तो वे बहुत स्पष्टता के साथ कह दिया करते थे कि मेरे पास केवल कन्या और कुकुम है। इसके अतिरिक्त और कोई सामग्री नही है, अत पहले सोच लें और फिर बात करें।

इतना होने पर भी उनकी सातो पुत्रियो का विवाह अच्छे घरो मे हुआ। दहेज के नाम पर वे एक थाली व लोटा ही दे पाते थे। वह भी कभी विवाह के समय और कभी बाद मे जबकि जुगाड़ हो पाता।

वे प्राय. सगाई के बाद ही विवाह कर दिया करते थे, उस समय जब कि छोटी अवस्था मे ही सगाई तथा विवाह होने की प्रथा चालू थी। उन्होंने अपनी प्रत्येक लड़की का विवाह जब किया कि वे जाते ही घर सभालने के योग्य हो गई।

बरात मे केवल चार आदमी ही बुलाया करते थे—एक वर, एक नाई और दो वर के कोई पारिवारिक। केवल मीठे चावलो का भोजन करा कर विवाह कर देते। पुत्र वाले जब कहते कि आप हम से रुपये लेकर भोज कर दें तो उनका उत्तर होता—'जब मेरे पास भोज दे सकने जितना पैसा नही है तब इस झूठे दिखावे की आवश्यकता ही क्या है।"

सभी पुत्रियां जहां गृह-कार्य मे निपुण थी वहा धार्मिकता में भी परिपूर्ण थी। उदयपुर के अनेक परिवार उन्ही बहनों के समझाये हुए है। निष्ठाशील पिता

की पुत्रिया उसके अनुरूप ही निष्ठाशील हो इसमे आश्चर्य ही क्या ।

जोधोजी तृतीयाचार्य रायचदजी के समय से श्रावक थे । उनकी गुरुदर्शन व सेवा करने की तीव्र उत्कंठा रहती । आर्थिक स्थिति सहयोग नही देती तो वे पैदल यात्रा कर अपनी भावना को पूर्ण करते । पदयात्राओं के द्वारा वे अनेक वार थली तक दर्शनार्थ भी आये थे। उनकी ये यात्राएं वहुधा साधु-साध्वियों की सेवा मे हुआ करती थी । कहा जाता है कि प्रत्येक यात्रा मे उनका अर्थ-व्यय कभी एक रुपया हो जाता, कभी चौदह आना ।

एक वार की घटना है कि पंचमाचार्य मघवागणी सं० १९४३ का चातुर्मास उदयपुर में विता रहे थे । जोधोजी गुरुदर्शन के लिए उद्यत हुए और अपने गांव (वावलास) से वत्तीस कोश पैदल चल कर उदयपुर पहुंचे । उम समय आचार्य श्री मघवागणी चतुर्विध सघ के वीच प्रवचन कर रहे थे । जोधोजी ने दूर से गुरुदेव का मुखारविंद देखा और निकट जाकर दर्शन व चरण-स्पर्शन के लिए आगे वढ़ने लगे । भाइयों ने उन्हे फटे-पुराने कपड़ो में एक साधारण व्यक्ति समझकर मनाह कर दिया। महान् दयालु मघवागणी की नजर जोधोजी पर पड़ी और उन्होने फरमाया—'इन्हें मत रोको, दर्शन करने दो' । उन्होने समीप जाकर दर्शन किये और गुरुदेव की अपूर्व कृपा से फूले न समाते हुए भावविभोर हो गये। अपने भाग्य की सराहना करते हुए तत्कालीन आशुकविता द्वारा आचार्य श्री के प्रति वहुत-वहुत आभार प्रदर्शित किया । पढ़िये वे पद्य :—

वावलास तो कोश वत्तीसां, पगां पायलो आयोजी ।
उदयपुर महाराजा केरा दर्शन कर सुख पायो जी ॥
दर्शन दीज्योजी महाराजा, हूं आयो वदन के काजा ।
दर्शन दीज्योजी महाराजा ॥१॥
फाटा कपड़ा दुर्वल दीसूं, वर्ष घणेरा मांही जी ।
आगे होणी सो होय गई, अव होणे की नांही जी ॥२॥
इन्द्र घटा ज्यूं मन उमग्यो, सुणो शहर का सेठों जी ।
पारस भेट्यां कंचन होवै, दर्शन ठेठा ठेटो जी ।
घणी वार मैं दर्शन कीधा, चारतीर्थ रे मांही जी ।
समकित श्रद्धा सेंठी धारी, कमी न राखी कांई जी ॥४॥

मघवागणी के वावलास पधारने के समय कहे गये पद्य :—

पांच रुपया परचूनी न मिलता, वोहरो नांय भयो ।
(आप) लाख रुपया रो खत जो मांड्यो, म्हांरो ही मान रह्यो ॥५॥
पूज मघराज नै स्मर ले रे वन्दा! भूल क्यों गयो भूल क्यों गयो रे वन्दा ।
विछुड़ क्यों गयो पूज मघराज नै स्मरले रे वन्दा, भूल क्यों गयो···॥

(श्रुतिगत)

६४. मघवागणी द्वारा रचित साहित्यिक कृतिया इस प्रकार है :—

१. जय सुजश।
२. गुलाव सुजश।
३. वन्नासती का चौढालिया।
४. दुलीचन्दजी स्वामी का चौढालिया।
५. मयाचन्दजी स्वामी का चौढ़ालिया।
६. गुलावसती गुण वर्णन गीतिकाएं।
७. भिक्षु चरमोत्सव, मर्यादा महोत्सव तथा जय पट्टोत्सव की अनेक गीतिकाए।
८. सस्कृत तथा राजस्थानी भापा के छन्द, श्लोक आदि।
९. प्रश्नोत्तर पत्र १५।

६५. स० १९४९ के रतनगढ-चातुर्मास के प्रारम्भ मे मघवागणी को प्रतिश्याय हुआ। किंतु उसके विगड़ जाने से धीरे-धीरे खांसी, ज्वर और वमन की शिकायत हो गई, जिससे उनका शरीर शिथिल व काफी कमजोर हो गया। फिर भी उन्होने सुदृढ मनोवल से चातुर्मास के पश्चात् विहार किया। मृगसर वदि १ को पुर के वाहर धर्मशाला मे रह कर प्रदेशी राजा का व्याख्यान सुनाया। वहा से राजलदेसर पधारे तव वीदासर के भाइयो ने अपने यहा पधारने की प्रार्थना की। आचार्य देव ने फरमाया—'अभी शीतकाल मे चूरू तथा सरदारशहर की तरफ जाने का विचार है, क्योकि गर्मी के समय उधर जाना नही हो सकेगा।'

आचार्यप्रवर राजलदेसर से फिर रतनगढ होते हुए चूरू पधारे और वहां से सरदारशहर पधार कर मर्यादा महोत्सव किया। माघ शुक्ला ७ (मर्यादा महोत्सव) तथा माघ शुक्ला १५ (जय-पट्टोत्सव) के दिन नई ढाल वनाकर सुनाई। प्रात कालीन व्याख्यान मे भी प्रतिदिन पधारते। शारीरिक दुर्वलता होने पर भी वे आत्मीय साहस से सघ के सभी कार्य करते। चतुर्विध सघ को शिक्षा देते।

(मघवा सु० ढा० २४ दो० १, २ तथा गा० १ से १३ के आधार से)

६६. अपने उत्तराधिकारी का चयन करना भी आचार्य का प्रमुखतम कार्य होता है। उस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए मघवागणी ने चिंतन किया और फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी को अपने हाथ से एक पत्र लिखकर साध्वी-प्रमुखा नवलाजी (२४०) को सौपा। उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है :—

"अरहन् सिद्ध साधूभ्यो नम.

भिक्षु भारीमाल ऋषराय जयजश मघवा रे लारे ऋष माणकलालजी नैं सर्व काम गण रो भार भलायो विनयवत आज्ञा अखंड अराधसी तो मुरजी वध सी कुर्व वधसी सर्व कार्य सिद्ध होसी सवत् १९४९ रा फागुण सुध ४ ए कागद लिख

नवलाजी नै दीधो।"

उक्त पत्र को प्रकट करने के पूर्व उन्होंने माणकगणी को 'आलोयणा' तथा हाजरी का काम भी सभला दिया था। अतः पत्र मे लिखित नाम की कल्पना सहज ही होने लगी। फाल्गुन शुक्ला १३ के दिन माणकगणी को समुच्चय में आहार करने का भी आदेश दे दिया। कई साधुओं को गाथाए भी वखशीश की।

चैत्र कृष्णा द्वितीया को चारतीर्थ के बीच उक्त पत्र को प्रकट करते हुए मघवागणी ने माणकगणी को विधिवत् युवाचार्य पद दे दिया। समूचे संघ मे उल्लास की तरगे उछलने लगी।

(मघवा सु० ढा० २४ गा० १४ से २१ के आधार से)

६७. मघवागणी द्वारा कृत वखशीशो के मूल पत्र की प्रलिलिपि इस प्रकार है :—

१. जेठाजी (३४०) रे सर्व काम वोज री वगसीस।
२. मोताजी (१७४) रे गोचरी विना काम वोज री वगसीस।
३. चादाजी (३८७) रे एक पोथी री वगसीस।
४. वडा किस्तुराजी (२२७) रे वोझ री वगसीस।
५. केसरजी (३१४) रे भेला मे एक पोथी वगसीस न्यारां मे दो पोथी वगसीस।
६. छोटा किस्तुरांजी (३३२) रे भेलां मे एक पोथी वगसीस न्यारां मे दो पोथी वगर्सास।
७. हरखकुंवरजी (३४६) रे वोझ री वगसीस।
८. जडावाजी (४८७) रे वोझ री वगसीस।

लिखतु मघ नृपेण

(प्रकीर्णक पत्र सग्रह प्रकरण ५ संख्या ३४)

६८. चैत्र कृष्णा पचमी मध्याह्न के समय 'वाल्हीवाई' नामक एक वहिन ने आचार्य श्री से सुखपृच्छा की तव उन्होंने कहा—'भावतः साता ही है।' अन्य पूछने वाले लोगो को भी वे ऐसा ही उत्तर देते। उस दिन रात्रि के ग्यारह वजे लगभग फरमाया—'खासी बहुत आ रही है।' थोड़ी देर के पश्चात् जव वोलना विल्कुल वद कर दिया तव सेवा मे स्थिति मुनि श्री कालूजी आदि साधुओं ने चार शरण आदि सुनाना प्रारभ कर दिया। इतने मे आचार्य श्री ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'एकाएक मेरी खासी कैसे वन्द हो गई जाओ! माणकलालजी को जगा लाओ।' सतो के जगाने पर युवाचार्यश्री तत्काल गुरु चरणो मे उपस्थित हुए। अन्य साधु भी आ गये। मघवागणी ने युवाचार्य को सवोधित करके कहा—'माणकलालजी! अव साधु-साध्वियो की वागडोर तुम्हारे हाथ मे है,

अतः उन सब का संक्षरण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। पृथक् विहार करने वाले साधुओ की पृच्छा स्वयं करना तथा उनके विहरण आदि का विवरण भी देखते रहना। साधु-साध्वियां सब समान नही होती। किसी की प्रकृति कोमल व किसी की कठोर होती है। अतः आवश्यकतानुसार नरम तथा गरम होकर जब तक उनकी सयम पालने की भावना हो तब तक निभा लेना ही अच्छा है। तुम स्वयं भी निर्मल आचार का पालन करना। धैर्य, सहिष्णुता, गभीरता व वचन में मधुरता और धर्म रखना। पठन-पाठन व स्वाध्याय-ध्यान का अधिकाधिक उद्यम करना।' युवाचार्य श्री ने गुरुदेव के एक-एक वचन को हृदयगम कर लिया। इसी प्रकार साधुओं को भी शिक्षा देते हुए फरमाया—'तुम लोग माणकलालजी की आज्ञा मे चलना, जिससे तुम अपनी चतुर्मुखी उन्नति कर सकोगे।' सतो ने गुरुवाणी को शिरोधार्य किया।

उस समय साधुओ के अतिरिक्त कुछ सुप्रसिद्ध श्रावक[1] भी सेवा मे बैठे थे। आचार्यवर ने उन सबके अलग-अलग नाम पूछे। वदना करने पर उनकी वदना स्वीकार की। आचार्यदेव ने फिर आगमो का सदर्भ देते हुए फरमाया—'वेदना के समय दृढता व समभाव रखना हमारा धर्म है।' इस प्रकार विविध शिक्षा देने के पश्चात् जब वे रुके तो काफी थकान आ गई थी। सतों ने उन्हे सहारा देकर विश्राम के लिए लेटा दिया।

(मघवा-सुजश ढ़ा० २५दो० १ से ४ तथा गा० १ से १४ के आधार से)

६९. मघवागणी अतिम समय तक पूर्ण जागरूक थे। भैरूंदानजी दुगड़ ने वदना की तब उन्होने अपने मुखारविन्द से 'जी' कहकर स्वीकृति दी। लेटे रहने

---

१. श्रीचन्दजी गधैया (गणेशदासजी, वृद्धिचन्दजी के पिता एव नेमीचंदजी के दादा) सपतरामजी दुगड़ (सुमेरमलजी के पिता, भंवरलालजी के दादा), भैरूदानजी नाहटा (बालचदजी के पिता), बाघजी मथेरण, मालूजी ब्राह्मण, रूपोजी जाट तथा सुजानगढ से आगन्तुक सेठ हनूतरामजी सेठिया, चुन्नीलालजी रामपुरिया (हजारीमलजी के पिता, शुभकरणजी दसाणी के पड़नाना) केवलचदजी वैद और रतनगढ से समागत चुन्नीलालजी कोचर व जशकरण वैद (महालचदजी के पिता एव मोहनलालजी के दादा) एव चूरू से आये हुए गुलाबचदजी सुराणा, रायचदजी सुराणा (माणकचदजी के पिता) व मंगूरामजी कोठारी थे।

उक्त सुजानगढ के सेठ हनूतरामजी वहां अनेक दिनो से सेवा कर रहे थे। उनके लिए मघवागणी ने फरमाया—"सेठजी ने अच्छी सेवा की है, गुरु के प्रति इनकी हार्दिक भक्ति और विशेप प्रीति है।'

के कुछ समय पश्चात् फिर उन्होने बैठने की इच्छा व्यक्त की तब साधुओ ने सहारा देकर उन्हे बिठा दिया। किन्तु उन्हे तभी उबासी आई और चेहरे की आकृति बदल गई। ऐसी स्थिति देखकर मुनि श्री कालूजी ने उन्हें चौविहार सथारा पचखा दिया। साथ ही उन्होने यह भी कहा कि यदि आपने सथारा श्रद्ध लिया है तो हुकारा देने की कृपा करें। उस समय बोलने की शक्ति न होने से उन्होने दो बार शिर हिलाते हुए स्पष्ट कर दिया कि सथारा श्रद्ध लिया गया है। उसी समय वे सतो के सहारे बैठे हुए स्वर्ग-लोक पधार गये। वह सं० १९४९ चैत्र कृष्णा पचमी की रात्रि थी।

(मघवा सु० ढ़ा० २४ गा० १५ से २४ के आधार से)

मघवागणी के शरीर का दाह-सस्कार दूसरे दिन (चैत्र कृष्णा ६) किया गया। शोभा-यात्रा मे शानदार जुलूस सजाया गया। हजारो की सख्या में जनता सम्मिलित हुई। जयनाद से आकाश और धरती का कण-कण गूजने लगा। जुलूस बड़ी धूमधाम से शहर के प्रमुख बाजार से होता हुआ शिवजीरामजी आंचलिया की छतरी के निकट पहुचा। वहा दहन-क्रिया सपन्न की गई। लगभग नौ हजार रुपये चरम महोत्सव के उपलक्ष मे खर्च किये।

मघवा सुजश ढ़ा० २६ गा० ९ से १६ मे उक्त विवरण विस्तार पूर्वक दिया गया है।

मघवागणी की शारीरिक अस्वस्थता को बढ़ते देखकर श्रीचन्दजी गधैया ने कालूरामजी जम्मड़ से सलाह करके उनके शव-यात्रा की तैयारी पहले से ही प्रच्छन्न रूप मे करवा ली थी। उन्होने ऊटो को भेजकर जयपुर से आवश्यक सब सामग्री मगवा ली।

मघवागणी के स्वर्गवास होने पर पंच एकत्रित होकर शवयात्रा का सामान जुटाने के लिए चिन्तन करने लगे। उन्हे यह चिता भी थी कि एकाएक हम इतनी तैयारी कैसे कर सकेंगे। उस समय कालूरामजी जम्मड़ ने श्रीचन्दजी गधैया द्वारा गुप्त रूप से एकत्रित किये गये सामान का रहस्योद्घाटन किया तो पच लोग आश्चर्य चकित हुए और गधैयाजी की दूरदर्शिता के प्रति आभार प्रदर्शित किया। उन्हे तभी (सं० १९४९ चैत्र कृष्णा ५) से पंचायत कार्य सौंपकर उनका समुचित सम्मान किया[1]।

(माणक महिमा ढ़ा० ११ सो० ७ से ९ तथा गा० १० से १५ के आधार से)

७०. मघवागणी के स्वर्गवास होने पर नगराजजी बैगानी (बीदासर) को अपने अधिष्ठित देव द्वारा आभास हुआ कि मघवागणी का स्वर्गवास हो गया है।

---

१. पचायत की वह बही अभी तक उनके घर मे सुरक्षित है।

वे उसकी सूचना देने के लिए शोभाचन्दजी बैंगानी के घर की ओर जा रहे थे। संयोगवश उधर से शोभाचन्दजी भी इन्ही के घर की ओर आ रहे थे। मार्ग मे दोनों मिल गये। नगराजजी ने कहा—'आज तो एक दु खद सूचना मिली है कि सरदारशहर मे मघवागणी का देहावसान हो गया।' शोभाचन्दजी ने व्यग्रता पूर्वक पूछा—'कौन लाया है यह सूचना ?' नगराजजी बोले—'लाने वाला कोई होता तो वह मेरे पास न आकर पहले आपके पास ही आता, परन्तु मुझे तो अभी अभी यह 'दरसाव' हुआ है।' उनके द्वारा उद्घोषित अनेक घटनाएं समय-समय पर सत्य सिद्ध हुई अत: अविश्वास करने का कोई कारण नही था। शोभाचन्दजी ने कहा—'नगर-वासियो को समय से पूर्व ऐसी घटना की सूचना देना तो उपयुक्त न होगा पर हम दोनों को इसी समय चल देना चाहिए।' दोनों व्यक्ति ऊटो पर सवार होकर तत्काल सरदारशहर की ओर चल दिये। ऊटो को तेज गति से चलाते हुए वे दाह-संस्कार से पूर्व ही पहुच गये।

(श्रुतिगत)

७१. माणकगणी ने 'मघवा सुजश' नामक ग्रंथ का निर्माण कर उसमें मघवागणी के जीवन-चरित्र पर समुचित प्रकाश डाला है। उस कृति की कुल २७ ढाले हैं। उनके सब मिलाकर १२५ दोहे और ५०४ गाथाए हैं। उसका रचना-काल स० १९५३ कार्त्तिक शुक्ला अष्टमी गुरुवार और स्थान बीदासर है।

इसके अतिरिक्त मुनि बुद्धमलजी द्वारा लिखित 'तेरापंथ का इतिहास' छठे परिच्छेद मे मघवागणी का जीवन-वृत्त है।

७२. मघवागणी के युग में कुल ११९ दीक्षाए हुई। उनमे ३६ साधु और ८३ साध्विया थी। मघवागणी ने अपने हाथ से २२ संत और ४५ सतियों को दीक्षित किया। शेष दीक्षा अन्य साधु-साध्वियो द्वारा हुई :—

संत छत्तीस थया गणी रे, समणी तयांसी जाण।
स्व हस्त बावीस नें पैंताली, तारचा गणी गुण भांण ।।

(मघवा सु० ढ़ा० २७ गा० ३३)

उनके स्वर्गवास के समय संघ मे ७१ साधु और १९३ साध्वियां विद्यमान थी।

संत एकोतर सत्यां शतत्राणूं, म्हैली सारचा आतम काज।

(मघवा सु० ढ़ा० २७ गा० ३४)

उनके युग मे साध्वी-प्रमुखा गुलाबाजी (गुलाब सती) तथा नवलांजी (२४०) हुई।

दीक्षा सिंहावलोकन परिशिष्ट २ (क) पृ० सख्या १०१ से १०८ तथा परि-शिष्ट २ (ख) पृ० १०९ से १२४ में।

७३. आचार्य श्री मघवागणी ११ वर्ष गृहस्थाश्रम मे, १२ वर्ष साधु, १८ वर्ष युवाचार्य और साढे ग्यारह वर्ष आचार्य पद मे रहे। उनकी सर्वायु कुछ कम ५३ साल की थी। उनका सयमी जीवन इकतालीस वर्ष और पौने चार महीनो का रहा :—

इकतालीस वर्ष पूणा च्यार मासज, आराध्यो चरण उदार।
सर्व आउ तेपन वर्ष मठेरो, गणी पाल्यो पुन्य प्रकार॥
(मघवा सु० ढा० २७ गा० ३५)

महत्त्वपूर्ण वर्ष

१ जन्म सवत् १८९७ चैत्र शुक्ला एकादशी
२. दीक्षा-सवत् १९०८ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी
३. युवाचार्य-पद-संवत् १९२० आश्विन कृष्णा त्रयोदशी
४. आचार्य-पद सवत् १९३८ भाद्रपद शुक्ला द्वितीया
५. स्वर्गवास-सवत् १९४९ चैत्र कृष्णा पचमी

महत्त्वपूर्ण स्थान

जन्म-स्थान—बीदासर
दीक्षा-स्थान—लाडणू
युवाचार्य पद-स्थान—चूरू
आचार्यपद-स्थान—जयपुर
स्वर्गवास-स्थान—सरदारशहर

७४. मघवागणी ने दीक्षित होने के बाद मुनि एव युवाचार्य अवस्था मे तीस चातुर्मास जयाचार्य की सेवा में किये। तत्पश्चात् आचार्य पद मे ग्यारह चातुर्मास किये, उनकी तालिका इस प्रकार है :—

आचार्य अवस्था के ११ चातुर्मास

स्थान	संख्या	संवत्
बीदासर	३	१९३९,४४,४७
चूरू	१	१९४०
सरदारशहर	२	१९४१,४५
जोधपुर	१	१९४२
उदयपुर	१	१९४३
लाडणू	१	१९४६
जयपुर	१	१९४८
रतनगढ़	१	१९४९

संवत्	स्थान	साधु-संख्या	साध्वी-संख्या
१९३९	बीदासर	१६	३६
१९४०	चूरू	१९	४१
१९४१	सरदारशहर	२०	४०
१९४२	जोधपुर	२५	४५
१९४३	उदयपुर	२४	२८
१९४४	बीदासर	२०	४१
१९४५	सरदारशहर	२६	५०
१९४६	लाडणूं	२३	५४
१९४७	बीदासर	२८	४२
१९४८	जयपुर	२५	४८
१९४९	रतनगढ़	३०	४०

उपर्युक्त साधु-साध्वियों की संख्या के संदर्भ मे पढ़िये निम्नोक्त समीक्षा :—

(१) स० १९३९ मे साधु साध्वियो की संख्या का उल्लेख मघवा-सुजश ढाल १४ गा० १ तथा चातुर्मासिक तप विवरण ढ़ा० १ गा० १ मे है।

(२,३,४) स० १९४०,४१,४२ मे साधु-साध्वियो की संख्या का उल्लेख मघवा सुजश ढाल १४ गा० १७, ढा० १५ गा० १३ तथा ढ़ाल १६ गा० ९ में है। इन वर्षो की चातुर्मासिक तप-विवरण ढ़ालें नही हैं।

(५) स० १९४३ मे साधु-साध्वियो की सख्या का उल्लेख मघवा-सुजश ढ़ाल १८ गा० १ तथा चातुर्मासिक तप-विवरण ढ़ा० २ दो० १ मे है।

(६) सं० १९४४ मे साधु-साध्वियो की संख्या का उल्लेख मघवा-सुजश ढ़ाल २० गा० १५ मे है तथा चातुर्मासिक तप विवरण ढ़ा० ३ मे उल्लिखित नाम भी उतने ही हैं।

(७) सं० १९४५ में साधुओं की संख्या का उल्लेख मघवा सुजश ढ़ा० २२ गा० ७ मे है तथा चातुर्मासिक तप विवरण ढ़ा० ४ मे उल्लिखित नाम भी उतने ही हैं। साध्वियो की संख्या का उल्लेख चातुर्मासिक तप-विवरण ढा० ४ गा० ७० मे है। मघवा सुजश मे नही है।

(८) स० १९४६ मे साधुओं की संख्या का उल्लेख मघवा सुजश ढा० २२ गा० १० मे है तथा चातुर्मासिक तप विवरण ढा० ५ मे उल्लिखित नाम उतने ही हैं। साध्वियो की संख्या का उल्लेख चातुर्मासिक तप विवरण ढा० ५ मे उल्लिखित नामो की गणनानुसार किया है।

(९) सं० १९४७ में साधु-साध्वियों की संख्या चातुर्मासिक तप विवरण ढा० ७ गा० २ के आधार से दी गई है :—

'अठवीस मुनि ओपता, सतियां बयांलिस !'

मघवा-सुजश ढा० २२ गा० १६ मे साधु २६ और साध्वियां ५६ थी, ऐसा उल्लेख है पर चातुर्मासिक तप विवरण ढ़ाल स्वय मघवागणी द्वारा रचित है तथा उसमे अलग-अलग २८ साधु और ४२ साध्वियों के नाम हैं, अत. वह सख्या सही प्रतीत होती है।

(१०) सं० १९४८ मे साधु-साध्वियो की सख्या चातुर्मासिक तप-विवरण ढा० ७ दो० २ के आधार से दी गई है :—

'त्यां पंचवीस मुनिवर भला, सत्यां आठ चालीस।'

मघवा-सुजश ढा० २३ गा० १ मे साधु २६ और साध्विया ५२ थी, ऐसा उल्लेख है पर चातुर्मासिक तप-विवरण ढाल स्वयं मघवागणी द्वारा रचित है तथा उसमे अलग-अलग २५ साधु और ४८ साध्वियो के नाम हैं। अत. वह सख्या सही प्रतीत होती है

(११) सं० १९४९ मे साधु-साध्वियो की सख्या चातुर्मासिक तप-विवरण ढ़ा० ८ दो० २ के आधार से दी गई है :—

'संत तंत सहु तीस त्यां, सतियां वर चालीस।'

मघवा-सुजश ढा० २३ गा० १० मे साधु तो ३० ही हैं पर साध्वियां ३९ होने का उल्लेख है, पर चातुर्मासिक तप-विवरण ढ़ाल मे साध्वियो के अलग-अलग ४० नाम हैं अतः वह सख्या ठीक लगती है।

उर्युपक्त स० १९४१ के सरदारशहर चातुर्मास मे आचार्य श्री मघवागणी आदि २० साधु थे, उनके नाम इस प्रकार हैं :—

१. आचार्यश्री मघवागणी
२. मुनिश्री मोतीजी (१७४)
३. मुनिश्री भीमजी (१९६)
४. मुनिश्री जुहारजी (२०९)
५. मुनिश्री मयाचदजी (२१४)
६. मुनिश्री रामसुखजी (२१७)
७. मुनिश्री नंदरामजी (२२८)
८. मुनिश्री उदैचदजी (२३६)
९. मुनिश्री ईशरजी (२४०)
१०. मुनिश्रीनवलजी (२५२
११. मुनिश्री हजारीमलजी (२५८)
१२. मुनिश्री शिवकरणजी (२६५)
१३. मुनिश्री अभयराजजी (२६६)
१४. मुनिश्री पनजी (२६९)
१५. मुनिश्री चांदमलजी (२७२)
१६. मुनिश्री मूलचदजी (२७४)
१७. मुनिश्री शिवराजजी (२७५)
१८. मुनिश्री मोतीलालजी (२७९)
१९. मुनिश्री आणदरामजी (२८०)
२०. मुनिश्री हरखचंदजी (२८३)

(श्रावक हनूतमलजी द्वारा रचित गु० व० ढ़ाल के आधार से)

सं० १९३९ तथा १९४३ से ४९ तक के चातुर्मासो मे जितने साधु-साध्विया मघवागणी के साथ थे उनकी सूची मघवागणी रचित चातुर्मासिक तप विवरण ढ़ालो मे देखे।

७५. मघवागणी ने निम्नोक्त स्थानो मे मर्यादा-महोत्सव मनाया।

मर्यादा-महोत्सव

स्थान	संख्या	संवत्
१. जयपुर	२	१९३९,४७
२. चूरू	१	१९३९
३. लाडणू	३	१९४०,४१,४६
४. जोजावर	१	१९४२
५. दौलतगढ	१	१९४३
६. बीकानेर	१	१९४४
७. रतनगढ	१	१९४५
८. सुजानगढ़	१	१९४८
९. सरदारशहर	१	१९४९

७६. आचार्य श्री मघवागणी के समय दीक्षित होने वाले प्रमुख साधु-साध्वियां :—

(क) प्रभावशाली

१. मुनिश्री मगनलालजी (२९४) 'गोगुदा'
जो आचार्यो द्वारा सम्मानित और मत्री पद से विभूषित हुए।

२. मुनि श्री कालूरामजी (२९६) 'छापर'
जो तेरापथ के महान् प्रभावक आठवे आचार्य हुए।

१. साध्वी मातुश्री छोगांजी (५४०) 'छापर'
जो अप्टमाचार्य कालूगणी की माता थी।

२. साध्वी श्री कानकवरजी (५४१) 'श्री डूंगरगढ़'
जो अष्टमाचार्य कालूगणी की मौसी-सुता थी एव पांचवी साध्वी-प्रमुखा हुई।

३. साध्वीश्री मुखांजी (५४४) 'सरदारशहर'
होनहार साध्वी।

(ख) विशिष्ट तप एवं अनशन

१. मुनिश्री चुन्नीलालजी (२८१) 'सरदारशहर'
जिन्होने २३ वर्ष बेले-बेले तप तथा लघुसिंह निष्क्रीडित तप की तीन परिपाटिया (प्रथम, द्वितीय, तृतीय) संपन्न करके तेरापथ मे नया कीर्तिमान स्थापित किया।

२. मुनिश्री चौथमलजी (३००) 'पुर'

छहमासी (आछ के आगार से) तप किया।

१. साध्वीश्री जेठांजी (४६८) 'रतनगढ'

पहले गण से बहिर्भूत मुनि छोगजी, चतुर्भुजजी मे दीक्षित एव फिर तेरापंथ मे दीक्षित हुई। प्रभावक अनशन १६ दिन (सलेखना, १० दिन संथारा ६ दिन), चतुर्विध संघ मे अपूर्व त्याग-विराग की वृद्धि हुई।

२. साध्वीश्री सुखांजी (५१३) 'चंदेरा'

ऊपर मे दो मासी। ५२ दिन सलेखना १ दिन अनशन।

३. साध्वीश्री गुलाबांजी (५३८) 'सरदारशहर'

लघुसिह निष्क्रीडत तप की पहली परिपाटी की।

४. साध्वी मातुश्री छोगांजी (५५०) 'छापर'

सर्व तप दिन ७५६० (२१ वर्ष १ महीना)। २१ वर्ष एकांतर।

५. साध्वीश्री मीरांजी (५५३) 'सिरसा'

उपवास से १३ तक लडी। तीन हजार से अधिक उपवास।

६. साध्वीश्री जड़ावांजी (५६२) 'चाडवास'

लघुसिह निष्क्रीडित तप की पहली परिपाटी मे ५ दिन के अनशन मे दिवंगत।

७. साध्वीश्री जीतांजी (५६५) 'उदयपुर'

तीन हजार से अधिक उपवास। १८ दिन का चौविहार संलेखना संथारा।

८. साध्वीश्री छगनाजी (५७५) 'रासीसर'

प्रभावक एव चमत्कारी अनशन ३७ दिन।

(ग) शास्त्रज्ञ एवं तत्त्वज्ञानी

१. मुनिश्री पूनमचदजी (२६२) 'पचपदरा'

२. मुनिश्री डायमलजी (२६६) 'हरनांवा'

३. मुनिश्री भीमराजजी (३०३) 'आमेट'

१. साध्वी प्रमुखा कानकंवरजी।

(घ) पांच आचार्यों का शासन काल देखने वाले साधु

१. मुनिश्री पूनमचदजी

२. मुनिश्री मगनलालजी

३. मुनिश्री भीमराजजी

साध्वियां

१. साध्वी श्री लिछमाजी (४६४) 'सुजानगढ़'
२. „ नवलाजी (५०३) 'गोगुदा'
३. „ मघांजी (५१८) 'सरदारशहर'
४. „ सिणगारांजी (५२१) 'आमेट'
५. „ अभांजी (५२५) 'सरदारशहर'
६. „ गोगांजी (५२७) 'लाडनूं'
७. „ फूलाजी (५२६) 'मंदसोर'
८. „ पेफांजी (५३३) 'केलवा'
६. „ गुलाबांजी (५३८) 'सरदारशहर'
१०. „ छोगांजी (५४०) 'छापर'
११. „ सेरांजी (५४६) 'सरदारशहर'
१२. „ मीराजी (५५३) 'सिरसा'
१३. „ सूजांजी (५५६) 'चूरू'
१४. „ जड़ावाजी (५६२) 'चाडवास'
१५. „ तीजांजी (५६४) 'सरदारशहर'
१६. „ जीताजी (५६५) 'उदयपुर'

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

चातुर्मासिक तपस्या

सं० १९३९ (वीदासर)

साधु १६

उपवास	२	३	४	५	२२
१९७	१७	१०	५	२	१

मुनिश्री भीमजी (१९६) ने चातुर्मास मे वेले-वेले चौविहार किया।

साध्विया ३६

उपवास	वेला	तेला	४	५	७	८	९	१०	११
८००	४६	२६	१४	४	१	४	१	२	१

१२	१५	१६	२०	२४	२६	२७	३०	३२
१	१	२	१	१	१	१	१	१

श्रावक

पचरंगी	अठाई
१	५

उपवास, वेले, तेले आदि वहुत।

हीरालालजी कोठारी कलकत्ता से अठाई पचख कर रवाना हुए और वीदासर मे गुरुदर्शन करने के पश्चात् पारणा किया।

श्राविका

पचरंगी	८	९
१४	३४	४

आगे-पीछे का तप मिलाने से एक नवरगी हुई।

धर्मचक्र	धर्मचक्रवाल	एकान्तर सावनमे	वेले-वेले सावन मे	तेले-तेले संवत्सरी तक
२	१	२२	१४	१ ।

सवत्सरी के वाद एक पचरगी फिर हुई। उपवास वेले आदि स्फुटकर तपस्या भी नहुव हुई।

सं० १९४३ (जयपुर)

साधु २४

उपवास	वेला	तेला	४	५	६	१०	१५	१६
१७०	११	२	४	४	१	१	२	१ ।

मुनिश्री भीमजी ने चातुर्मास मे तेले-तेले चौविहार तप किया।

साध्वियां २८

उपवास	वेले	३	४	५	८	१०	११	१२	१५
४५३	७४	२१	९	२	२	१	१	२	१

१६	१७	१८	२१	२२ (चौ०)	३०	३१
१	१	२	१	१	१	१ ।

साध्वी जेठाजी (३४०) ने २२ दिन का चौविहार तप कर तेरापथ में नया कीर्त्तिमान स्थापित किया।

सं० १९४४ (बीदासर)

साधु २०—आसोज महीने मे एक दीक्षा और होने से २१ हो गये।

उपवास	२	३	४	११	२८	एकासन
१६३	११	३	९	१	१	१ ।

मुनिश्री भीमजी ने तेले-तेले चौविहार किया।

साध्वियां ४१ :—आसोज महीने मे दो दीक्षाएं और होने से ४३ हो गई।

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
६९८	११३	४२	१८	७	४	३	२	१	१

११	१२	१४	१६	१७	१८	२०	२३
२	१	१	२	१	२	१	१

श्रावक

पचरगी	अठाई	फिर नवरंगी	पचरगी	पौषध
२	४	१	१	१६५

श्राविका

नवरगी — २ — सावन वदि १५ को सबके एक साथ पारणे हुए, जो आश्चर्यजनक बात थी। इनमे ४ — ४०, ३ — ३०, २ — ६०, उपवास — अनेक हुए।

४	३	२	उपवास
४०	३०	६०	अनेक

सर्वतप वहिनों मे—

४	५	६ और ७	८	९	१०	१९	३८
२१३	९८	१५	५७	१२	१२	१	१

सवत्सरी तक ३० वहनो ने एकान्तर तप किया।

सवत्सरी तक २८ वहनो ने वेले-वेले तप किया।

सवत्सरी तक ५ वहनो ने तेले-तेले तप किया।

चातुर्मास के समय वहनों मे कुल थोकड़े ४२४ हुए और कुल पौषध ४०० से अधिक हुए।

सं० १९४५ (सरदारशहर)

साधु २६

उपवास	२	३	४	५	६	७	१०	१५	२८
२२५	१२	१०	१५	७	१	१	२	१	१

मुनिश्री भीमजी ने चातुर्मास मे चौविहार तेले-तेले तप किया।

मुनिश्री चुन्नीलालजी (२८१) ने ३ महीने एकांतर तथा कार्त्तिक वदि ३ से वेले-वेले तप किया।

मुनिश्री छजमलजी (२६०) ने ३६ दिन एकातर तप किया।

साध्वियां ५०—आसोज मे एक दीक्षा और होने से ५१ हो गई।

उपवास	वेले	तेले	४	५	६	७	८	१०	११
९७५	७२	५९	२३	२०	३	४	३	१	१

१२	१३	१४	१६	१७
१	१	१	२	२

तथा थोकड़े ३ और हुए।

इस चातुर्मास मे कुल पचास साध्वियां थी। उन्होने भाद्रव महीने मे दो पचरगी की। सबके एक दिन पारणे हुए।

श्रावक

पचरगी
२

एक साथ हुई। अठाइया, पन्द्रह तथा इक्कीस दिन का तप हुआ।

श्राविका

नवरगी	पचरगी
२	१४

सबके पारणे एक साथ हुए।

३०
२

। स्फुटकर पचरंगियां, सैकड़ो थोकड़े हुए तथा अनेक अठाईया हुई।

चैत्र शुक्ला ९ को लाडनू मे लिखमीचन्दजी चोरड़िया[1] के लघुसिंह निष्क्रीडित तप का पारणा हुआ। मघवागणी उस समय वहां विराजते थे।

---

१. लिखमीचदजी अचक्षु थे फिर भी हृदय जागृत होने से अच्छी तरह घूम-फिर लिया करते थे। दूकान मे अनाज को वरावर तोल लेते थे। उनकी शादी नही हुई थी। वे अपना जीवन साधु-सेवा व धर्म-ध्यान मे विताते थे। तपस्या वहुत करते, पचरंगी आदि के समय आगे रहते।

उनके वड़े भाई लिछमणदासजी और प्रतापमलजी थे। लिछमणदासजी के तीन पुत्र थे—लालूरामजी, झूमरमलजी (जो सुजानगढ गोद चले गये

सं० १९४६ (लाडनूं)

साधु २३

उपवास	२	४	७	१३	१६
१८४	६	५	१	१	१

मुनि श्री भीमजी ने चातुर्मास मे तेले-तेले चौविहार तप किया ।

मुनि श्री चुन्नीलालजी (२८१) ने चातुर्मास मे प्राय एकान्तर तथा कार्तिक सुदि मे तेले-तेले तप किया ।

मुनि श्री लिखमीचन्दजी (२८६) ने प्राय एकान्तर किये ।

साध्वियां ५४

उपवाम	वेला	तेला	४	५	६	७	८	९	११
१२०२	९४	४३	२३	१३	३	५	१	१	२

१२	१४	१६	१७	१८	१९
१	१	१	३	१	१

भाई-बहनों मे पचरंगी आदि बहुत तपस्या हुई ।

सं० १९४७ (बीदासर)

साधु २८—२ दीक्षा और होने से ३० हो गये ।

उपवास	वेला	तेला	४	५	६	७	८	९	१२
२६१	११	७	८	२	१	१	१	१	१

१४	१७	३०
१	१	१

मुगि श्री भीमजी ने चातुर्मास मे तेले-तेले तप किया ।

मुनि श्री चुन्नीलालजी ने चातुर्मास मे एकांतर तप किया ।

मुनि श्री गोरीदासजी (२४६) ने प्रतर तप किया ।

थे, साधु-साध्वियों के व्याख्यान मे हुकारा देने मे बड़े चतुर थे) इन्द्रचंदजी (अविवाहित)। लालूरामजी के पुत्र चम्पालालजी आदि तथा प्रतापमलजी के पौत्र—शोभाचदजी आदि अभी विद्यमान है ।

साध्विया ४२ —एक दीक्षा और होने से ४३ हो गई।

उपवास	वेला	तेला	४	५	६	७	८	९
९२७	११६	५६	९	४	१	२	७	२

१०	११	१३	१५	१८	१९	२२	२९	३०
१	२	१	२	१	१	१	१	४

साध्वियो मे पूर्व तप सहित भाद्रव महीने मे २ पचरगी हुई।

साधु-साध्वियो मे उपवास से १९ तक का क्रमबद्ध तप हुआ। साधुओं मे २९ और साध्वियो मे ४५ थोकड़े हुए।

श्रावक

पचरंगी/१ ,उपवास, वेले आदि वहुत हुए।

श्राविका

नवरगी/१ सावन सुदि मे एक दिन पारणे हुए। उस नवरंगी मे ८/१८ तथा ९, १०, १२ के वहुत थोकड़े हुए। दो मासखमण हुए।

सर्व पचरगिया/११ जिनमे ७ पचरंगियो के एक साथ पारणे हुए। नवरंगी की अठाइयो सहित चातुर्मास मे कुल ४१ अठाइयां हुई। ९ से मासखमण तक कुल ३६ थोकड़े हुए। सावन तथा भाद्रव महीने मे ४१ वहनो ने वेले-वेले तप किया।

कई वहनों ने एकान्तर एवं कई वहनों ने तेले-तेले तप किया।

चातुर्मास मे कुल सैकडो थोकड़े हुए।

सं० १९४८ (जयपुर)

साधु २५

उपवास	वेले	४	५	८
१६३	१०	७	१	१

मुनि श्री भीमजी ने चातुर्मास मे तेले-तेले चौविहार तप किया।

मुनि श्री चुन्नीलालजी ने एकातर तथा $\frac{\text{प्रतरतप}}{१}$ किया।

साध्वियां ४८ —२ दीक्षा होने से ५० हो गई।

उपवास	वेले	तेले	४	५	६	७	८	९	१०	११
१०१८	११८	४६	१६	११	६	५	४	१	१	१

१२	१५	२०	२८
१	१	१	१

।

श्रावक

उपवास, वेले काफी हुए। कई भाइयो ने पौषध किये कइयों ने थोकड़े सीखे एवं कइयो ने १२ व्रत धारण किये।

श्राविका

$\frac{\text{पचरगी}}{४}$ पहले पीछे करके हुई। $\frac{८}{३}$ उपवास, वेले, तेले आदि तप तथा सामायिक, पौषध—वहुत हुए।

सं० १९४९ (रतनगढ़)

साधु ३०

उपवास	वेला	तेला	४	५	८	९	१६
२४६	१५	४	७	११	२	१	१

।

मुनि श्री भीमजी ने चातुर्मास मे तेले-तेले चौविहार तप किया।

मुनि श्री चुन्नीलालजी वेले-वेले करते हुए वैसाख वदि ६ से लघुसिंह-निष्क्रीडित तप की पहली परिपाटी प्रारम्भ की और कार्त्तिक शुक्ला २ को सम्पन्न हुई जिसके २१ थोकडो मे १३ थोकड़े चातुर्मास मे आये।

साध्वियां ४०

उपवास	वेला	तेला	४	५	६	७	८	९	१०
७५०	९७	३६	१४	९	७	३	१	२	२

$\frac{११}{२}$ $\frac{१३}{२}$ $\frac{१४}{१}$ $\frac{१८}{१}$ $\frac{१६}{१}$ $\frac{२३}{१}$ ।

साध्वियो में:— $\frac{\text{पचरंगी}}{२}$ (एक वेला कम)।

साध्वी श्री मानकंवरजी (४३७) और कस्तूराजी (४३८) ने सावन-भाद्रव में वेले-वेले तप किया। वीच मे थोकड़े भी किये।

साध्वी श्री छोगांजी (५४०) ने सावन मे वेले-वेले तप किया।

ग्यारह साध्वियों ने सवत्सरी तक पच तिथियों के उपवास किये।

साध्वी श्री मघाजी (५१८), अभांजी (५२५) ने एक महीने तक और छोटाजी (४७२) ने एक पक्ष तक एकान्तर तप किया।

श्रावक

हजारीमलजी ने ५ थोकड़े किये :—

$\frac{१५}{१}$ $\frac{५}{२}$ $\frac{४}{२}$ तथा अनेक उपवास व पौपध किये।

लिखमीचन्दजी ने एक पचोला किया।

अन्य भाइयो ने उपवास, वेले, तेले तथा पौपध वहुत किये।

श्राविका

$\frac{\text{पचरगी}}{२}$ सावन वदि में,

$\frac{\text{पचरगी}}{३}$ सावन सुदि मे।

$\frac{\text{पचरगी}}{५}$ भाद्रव वदि अमावस्या को एक साथ पारणे आये।

उनमे $\frac{५}{२५}$ $\frac{४}{५०}$ $\frac{३}{३७}$ $\frac{२}{१३}$ $\frac{\text{उपवास}}{५१}$ हुए।

जुहारमलजी भटेरा की पत्नी ने मासखमण तप किया।
मन्नालालजी कोचर की पत्नी ने २१ दिन का तप किया।
जेसराजजी कोचर की पत्नी ने १७ दिन का तप किया।
नथमलजी आचलिया की पत्नी ने १६ दिन का तप किया।
भैरूदानजी आंचलिया की पत्नी ने निम्नोक्त तप किया :—

$\frac{१५}{१}$ $\frac{११}{२}$ $\frac{१०}{१}$ $\frac{९}{१}$ $\frac{८}{८}$।

पूर्व तप सहित बहनों में १७६ थोकड़े हुए। उपवास, बेले-तेले बहुत हुए।

(मघवागणि रचित चातुर्मासिक तप विवरण
ढाल १ से ८ के आधार से)

परिशिष्ट—२ (क)
दीक्षा-सिंहावलोकन

दोहा

मघवा शासनकाल में, संत हुए छत्तीस।
तारा ग्रह नक्षत्र से, शोभित हुए मुनीश ॥१॥

पंचमाचार्य श्री मघवागणी के समय के साधुओं का दीक्षा-दर्पण

देश	संख्या	जाति	संख्या	वय	संख्या	नाबालिग-बालिग	संख्या	स्वर्ग-गणबाहर	संख्या
मारवाड़	१०	ओसवाल	२७	अविवाहित	१९	नाबालिग	१२	स्वर्गवास	२५
मेवाड	११	अग्रवाल	४	पत्नी वियोग के बाद	७	बालिग (वयस्क जो १८ वर्ष से अधिक हो)	२४	गणबाहर	११
थली	७	पोरवाल	३	स्त्री छोड	१				
हरियाणा	५	सरावगी	१	सपत्नी	३				
गुजरात	१	अज्ञात	१	अज्ञात	६				
मालवा	१								
ढुंढाड़	१								
	३६		३६		३६		३६		३६

आचार्य श्री रायचंदजी और जीतमलजी के समय के विद्यमान एवं आचार्य श्री मघवागणी के समय के साधुओं का न्याय-दर्पण

आचार्य सख्या	आचार्य नाम	पूर्व विद्यमान तथा साधु दीक्षा	साधु स्वर्गवास	गणबाहर	विद्यमान
३	श्री रायचदजी	१२	८	०	४
४	श्री जीतमलजी	५९	१५	८	३६
५	श्री मघराजजी	३६	२	३	३१
		कुल १०७	२५	११	७१

आचार्य श्री मघराजजी के पदासीन होने के समय आचार्य श्री रायचदजी के समय के १२ साधु थे उनमे ८ साधु दिवगत हो गए और ४ साधु विद्यमान रहे। आचार्य श्री जीतमलजी के समय के ५९ साधु थे उनमे १५ दिवगत और ८ गणबाहर हुए एव ३६ साधु विद्यमान रहे। आचार्य श्री मघवागणी के समय मे ३६ साधु दीक्षित हुए। उनमे उनके समय मे २ दिवगत, ३ गणबाहर और ३१ साधु विद्यमान रहे।

संत छत्तीस थया गणी बारै, श्रमणी तियांसी जाण।
स्व हस्त बावीस नें पैंताली, तारया गणी गण भाण ॥
(मघवा सुजश ढा० २७ गा० ३३)

सत एकोतर सत्यां शत त्राणूं।
म्हैली सारचा आतम काज ॥
(मघवा सुजश ढा० २७ गा० ३४)

पंचमाचार्य श्री मघराजजी के समय दीक्षित साधु

क्रम	संख्या	नाम	गांव	दीक्षा सं०	स्वर्ग या गणबाहर संवत्
२७०	१	मुनि श्री हरदयालजी	कसूण	१९३८	१९५२
२७१	२	„ कजोडीमलजी	आणदपुर(कालू)	„	१९८८
२७२	३	„ चादमलजी	जयपुर	„	१९९२
२७३	४	„ रूलारामजी		१९३९	मघवा युग मे गणबाहर
२७४	५	„ मूलचन्दजी	पाचोड़ी	„	१९४१
२७५	६	„ शिवराजजी	„	„	१९५१ गणबाहर
२७६	७	„ कृष्णचन्दजी	चाणोद	„	१९५६
२७७	८	„ जीवणजी	गोगुदा	„	१९५१
२७८	९	„ नाथूजो	वखतगढ़	„	१९६० गणबाहर
२७९	१०	„ मोतीलालजी	सरदारशहर	१९४०	१९४४ गणबाहर
२८०	११	„ आणन्दरामजी	डूगरगढ	„	१९७५
२८१	१२	„ चुन्नीलालजा	सरदारशहर	„	१९७५
२८२	१३	अमरचन्दजी	लावा (सरदारगढ)	„	१९६८ गणबाहर
२८३	१४	„ हरखचदजी	ठीकरवास		१९५६
२८४	१५	„ रावतमलजो	पालो	„	१९६१
२८५	१६	„ मोडीरामजी (मोडजी)	चन्देरा	„	१९५६
२८६	१७	„ लिखमोजी	वम्बई	१९४१	१९६० गणबाहर
२८७	१८	„ भानजी	वीकानेर	„	१९५६
२८८	१९	„ धनजी	उदासर	„	१९५२
२८९	२०	„ धर्मचन्दजी	चंडालिया	१९४२	१९५८
२९०	२१	„ सुखजी	चाणोद	„	१९४७
२९१	२२	„ उदयचन्दजी	जोधपुर	„	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे गणबाहर

२९२	२३	मुनि श्री पूनमचन्दजी	पचपदरा	१९४२	१९६६
२९३	२४	,, पन्नालालजी	गोगुंदा	१९४३	१९८९
२९४	२५	,, मगनलालजी	गोगुंदा	,,	२०१६
२९५	२६	,, गोपालजी	,,	,,	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे गणवाहर
२९६	२७	आ० श्री कालूरामजी	छापर	१९४४	१९९३
२९७	२८	श्री चिरंजीलालजी	ऊमरा	,,	१९५७ (चैत्रादि से १९५८)
२९८	२९	,, जयचन्दलालजी	केलवा	१९४५	१९७०
२९९	३०	,, डायमलजी	हरनावां	१९४६	१९८३
३००	३१	,, चोथमलजी	पुर	१९४७	१९५६
३०१	३२	,, शिवराजजी	जोधपुर	,,	१९५१ गणवाहर
३०२	३३	,, चिरजीलालजी	भिवानी	,,	१९७७
३०३	३४	,, भीमराजजी	आमेट	१९४८	१९९९
३०४	३५	,, छगनलालजी	कानोड़	१९४९	१९७७
३०५	३६	,, तिरखारामजी	बुडाण	,,	१९५८ गणवाहर

पंचमाचार्य श्री मघराजजी के समय दिवंगत साधु

क्रम	नाम	दीक्षा क्रम	दिवंगत संवत्
	ऋषिराय युग के		
१	श्री भवानजी	१२०	१६४७
२	,, वच्छराजजी	१२४	१६३६
३	,, शिववगसजी	१२८	१६४७
४	,, बीजराजजी	१३५	१६४७
५	,, छोटूजी	१४८	१६४२
६	,, दीपचन्दजी	१४६	१६४४
७	,, भवानजी	१६०	१६४२
८	,, मघराजजी	१६४	१६४६
	जय युग के		
६	,, छजमलजी	१७५	१६४२
१०	,, बीजराजजी	१८३	१६४०
११	,, ज्ञानचन्दजी	१८६	१६४१
१२	,, दुलीचन्दजी	१६७	१६४४
१३	,, सिरेमलजी	२०६	१६३६
१४	,, पृथ्वीराजजी (वडा)	२०७	,,
१५	,, भोपजी	२१०	१६४५
१६	,, चतुर्भुजजी	२१२	१६४१
१७	,, मयाचन्दजी	२१४	१६४८
१८	,, प्रभवजी	२२१	१६४१
१६	,, नन्दरामजी	२२८	१६४६
२०	,, दुलीचन्दजी	२३७	१६४१
२१	,, कुशालजी	२४५	१६४४
२२	,, धनजी	२६१	१६४७
२३	,, हसराजजी	२६७	१६४३ के बाद
	मघवा युग के		
२४	,, मूलचन्दजी	२७४	१६४१
२५	,, सुखजी	२६०	१६४७

पंचमाचार्य श्री मघराजजी के समय गणबाहर साधु

क्रम	नाम	दीक्षा क्रम	गणबाहर संवत्
	जय युग में		
१	श्री मोतीजी छोटा	२०८	१९४४
२	,, हजारीमलजी	२११	१९३८
३	,, गुलावजी	२१८	१९३९
४	,, जुहार जी	२२६	१९३८
५	,, सूरजमलजी	२३८	,,
६	,, ताराचन्दजी	२३९	,,
७	,, सरदारमलजी	२६८	,,
	मघवा युग मे		
८	,, रूलारामजी	२७३	
९	,, मोतीलालजी	२७९	१९४४
	,, लिखमीचन्दजी[1]	(२३२)	
	,, चिरजीललाजी[2]	(२९७)	

---

१. मघवागणी पदासीन हुए तव सघ मे ७१ साधु थे और ३६ साधु उनके युग मे दीक्षित हुए। कुल १०७ होते हैं। मघवा युग मे दिवगत २५ और गण-वाहर ९ एव कुल ३४ हुए। उनको वाद देने से ७३ साधु ठहरते हैं पर जयाचार्य द्वारा स० १९२८ मे दीक्षित मुनि लिखमीचन्दजी स० १९४२ मघवा युग मे तीसरी वार गणवाहर हुए और डालिम युग मे दीक्षित होकर डालिम युग मे दिवगत हुए अत उनके नाम का उल्लेख डालगणी के समय दिवगत साधुओ मे कर दिया है।

२. इसी तरह चिरजीलालजी स० १९४५ मघवा युग मे गणवाहर हुए थे फिर माणकगणी के समय स० १९५३ मे दीक्षित होकर डालिमगणी के समय स० १९५७ (चैत्रादि क्रम से १९५८) मे दिवगत हो गये अत. उनके नाम का उल्लेख माणकगणी के स्वर्गवास के समय विद्यमान साधुओ तथा डालिम युग के दिवगत साधुओ मे कर दिया गया है जिससे मघवागणी के स्वर्गवास के समय विद्यमान साधुओ की सख्या ७१, माणकगणी के स्वर्गवास के समय विद्यमान साधुओ की सख्या ७२ और डालगणी के पदा-सीन होने के समय मे भी साधुओ की सख्या ७२ ठहरती है।

पंचमाचार्य श्री मघराजजी के समय विद्यमान साधु

क्रम	नाम	दीक्षाक्रम	बाद में दिवंगत या गणबाहर संवत्
	ऋषिराय युग के		
१	श्री चिमनजी	१४७	१९५८
२	„ नाथूजी	१५३	„
३	„ रामदयालजी	१५७	„
४	„ कानूजी (बड़ा)	१६३	१९५८
	जय युग के		
५	„ मोतीजी	१७४	१९५३
६	„ रामनाथजी	१८१	१९५३
७	„ वृद्धिचन्दजी	१८४	१९५१
८	„ रामलालजी	१९३	१९६७
९	„ भीमजी	१९६	१९५९
१०	„ गोविन्दजी	२००	१९६९ कानू युग में गणबाहर
११	„ डालचन्दजी	२०४	„
१२	„ जुहारजी	२०९	१९७९ गणबाहर
१३	„ पृथ्वीराजजी	२१६	१९८५
१४	„ राममुखजी	२१७	१९७७
१५	„ दीपचन्दजी	२१९	१९५८
१६	„ गणेशलालजी	२२०	१९७२
१७	„ पन्नालालजी	२२४	१९७२
१८	„ छबीलजी	२३०	२००२
१९	„ माणकलालजी	२३१	१९५४
२०	„ फोजमलजी	२३४	१९६० गणबाहर
२१	„ कन्हैयालालजी	२३५	१९६३
२२	„ उदयराजजी	२३६	१९६४ के बाद डालिम युग में
२३	„ ईसरजी	२४०	१९७९
२४	„ फौजमलजी (फौजीलाट)	२४२	१९७६
२५	„ गोरीदासजी	२४६	१९६६
२६	„ बीजराजजी	२४८	१९६४ के पूर्व डालगणी के युग में

क्रम	नाम	दीक्षाक्रम	बाद में दिवंगत या गणबाहर संवत्
२७	श्री हुक्मचन्दजी	२५०	१९५१ गणबाहर
२८	,, नवलजी	२५२	१९६५
२९	,, नेमजी	२५३	१९५७
३०	,, खूबचन्दजी	२५६	१९५२
३१	,, ऋषभदासजी	२५७	— माणक युग मे दिवगत
३२	,, हजारीमलजी	२५८	१९५९
३३	,, रामचन्द्रजी	२५९	१९३६
३४	,, छजमलजी	२६०	१९८१
३५	,, पृथ्वीराजजी	२६२	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
३६	,, सदासुखजी	२६३	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
३७	,, जवानजी	२६४	१९७६
३८	,, शिवकरणजी	२६५	१९७७
३९	,, अभयराजजी	२६६	१९८५
४०	,, धनजी	२६९	१९५१ गणबाहर
	मघवा युग के		
४१	श्री हरदयालजी	२७०	१९५२
४२	,, कजोडीमलजी	२७१	१९८८
४३	,, चादमलजी	२७२	१९९२
४४	,, शिवराजजी	२७५	१९५१ गणबाहर
४५	,, कृष्णचन्दजी	२७६	१९५६
४६	,, जीवणजी	२७७	१९५१
४७	,, नाथूजी	२७८	१९६० गणबाहर
४८	,, आनन्दरामजी	२८०	१९७५
४९	,, चुन्नीलालजी	२८१	,,
५०	,, अमरचन्दजी	२८२	१९६८ गणबाहर
५१	,, हरखचन्दजी	२८३	१९५६
५२	,, गवतमलजी	२८४	१९६१
५३	,, मोडीरामजी (मोडजी)	२८५	१९५६
५४	,, लिखमोजी	२८६	१९६० गणबाहर
५५	,, भानजी	२८७	१९५६

क्रम	नाम	दीक्षाक्रम	बाद में दिवगत या गणबाहर सवत्
५६	श्री धनजी	२८८	१९५२
५७	,, धर्मचन्दजी	२८९	१९५८
५८	,, उदयचन्दजी	२९१	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे गणबाहर
५९	,, पूनमचन्दजी	२९२	१९६६
६०	,, पन्नालालजी	२९३	१९८९
६१	,, मगनलालजी	२९४	२०१६
६२	,, गोपालजी	२९५	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे गणबाहर
६३	,, कानूरामजी	२९६	१९९३
६४	,, जयचन्दलालजी	२९८	१९७०
६५	,, डायमलजी	२९९	१९८३
६६	,, चौथमलजी	३००	१९५६
६७	,, शिवराजजी	३०१	१९५१ गणबाहर
६८	,, चिरजीलालजी	३०२	१९७७
६९	,, भीमराजजी	३०३	१९९९
७०	,, छगनलालजी	३०४	१९७७
७१	,, तिरखारामजी	३०५	१९५८ गणबाहर

परिशिष्ट—२ (ख)
दीक्षा-सिंहावलोकन

दोहा

यंत्र पंचमाचार्य की, शिष्याओं का भव्य ।
ज्ञापित करता सूचिका, देख लीजिए सभ्य ॥१॥

देश	संख्या	जाति	सख्या	वय	सख्या	नाबालिग-बालिग	सख्या	स्वर्ग-गणबाहर	सख्या	
थली	४०	ओसवाल	७५	अविवाहित	८	नाबालिग	१०	स्वर्गवास	७८	
मेवाड़	२४	पोरवाल	६	पति वियोग के बाद	६७	बालिग (व्यस्क जो १८ वर्ष से अधिक हो)	७३	गणबाहर	५	१ मुनि नवलजी (२५२), साध्वी नवलाजी (५०३)
मारवाड	१३	अज्ञात	२	पति को छोडकर	३					२. मुनिदौलतरामजी (२५४), साध्वी नोजाजी (५११)
मालवा	२			प्राग् दीक्षित पति	२					
हाडोती	२			पति सहित	३					
ढूढाड	१									
पजाब	१									
	८३		८३		८३		८३		८३	

आचार्यश्री भारीमालजी रायचंदजी और जीतमलजी के समय की विद्यमान साध्वियां एवं आचार्य श्री मघराजजी के समय की साध्वियों का न्याय-दर्पण

आचार्य संख्या	आचार्य नाम	पूर्व विद्यमान तथा साध्वी दीक्षा	साध्वी स्वर्गवास	गण बाहर	विद्यमान
२	श्री भारीमालजी	१	१	०	०
३	श्री रायचंदजी	३२	१६	०	१६
४	श्री जीतमलजी	१७२	६४	२	१०६
५	श्री मघराजजी	८३	८	४	७१
		कुल २८८	८९	६	१९३

आचार्य श्री मघराजजी के पदासीन के समय आचार्य श्री भारीमालजी के समय की १ साध्वी थी वे आचार्य श्री मघराजजी के समय मे स्वर्ग पधार गई। आचार्यश्री रायचंदजी के समय की ३२ साध्वियां थीं उनमें १६ दिवंगत हो गई और १६ विद्यमान रही। आचार्य श्री जीतमल के समय की १७२ साध्वियां थी उनमें ६४ दिवगत और २ गणबाहर हो गई एवं १०६ विद्यमान रहीं। आचार्यश्री मघराजजी के समय ८३ साध्वियां दीक्षित हुई उनमें उनके समय मे ८ दिवगत और ४ गणबाहर हुई एवं ७१ विद्यमान रही।

संत छत्तीस थया गणी वारे, श्रमणी तियांसी जाण ।
स्व हस्त बावीस ने पैंताली, तारचा गणी गण भाण ॥

(मघवा सुजश ढा० २७ गा० ३३)

संत एकोतर सत्यां शत त्राणूं,
म्हेली सारचा आतम काज ॥

(मघवा सुजश ढा० २७ गा० ३४)

पंचमाचार्य श्री मघवागणी के समय की साध्वियां

क्रम संख्या		नाम	गांव	दीक्षा सं०	स्वर्ग या गणवाहर संवत्
४९३	१	जोधाजी	सुजानगढ	१९३८	१९४७
४९४	२	लिछमाजी	,,	,,	२००१
४९५	३	तीजाजी	झालरापाटण	,,	१९६६ कालू युग में
४९६	४	नानूजी	पचपदरा	,,	१९८४
४९७	५	कसुम्वाजी	,,	,,	१९९०
४९८	६	जेठाजी	रतनगढ	,,	१९४५
४९९	७	कुनणाजी	कोशिथल	,,	१९६४के पूर्वडालिम युग मे
५००	८	चादूजी	खाटू	,,	१९४८
५०१	९	सिरेकवरजी	वोरावड	,,	१९५७
५०२	१०	पन्नाजी	सायरा	१९३९	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
५०३	११	नवलाजी	गोगुदा	,,	१९९३ तुलसी युग मे
५०४	१२	फूलाजी	जोजावर	,,	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
५०५	१३	किस्तूराजी	देवगढ	,,	१९७५
५०६	१४	पन्नांजी	पाचोडी	,,	१९४६
५०७	१५	सिरेकवरजी	,,	,,	१९४३
५०८	१६	राजाजी	खेरवा	,,	१९८१
५०९	१७	गुलावांजी	वकाणी	१९४०	१९५९ गणवाहर
५१०	१८	चादूजी	देवगढ़	,,	१९४३ ,,
५११	१९	नोजाजी	ठीकरवास	,,	१९५८
५१२	२०	गोराजी	राजलदेशर	,,	१९६६ कालू युग मे
५१३	२१	सुखाजी	चदेरा	,,	१९७७
५१४	२२	सिणगारांजी	छापर	१९४१	१९८५
५१५	२३	पेमांजी	कसुंवी	,,	१९४२
५१६	२४	अणचाजी	डूगरगढ	,,	१९५७
५१७	२५	नोजाजी	राजलदेशर	,,	१९६४
५१८	२६	मघाजी	सरदारशहर	,,	१९९९

५१९	२७	जुहारांजी	फलौदी	१९४१	१९७६
५२०	२८	सुजांजी	सरदारशहर	,,	१९४९ मघवा युग मे
५२१	२९	सिणगारांजी	आमेट	,,	१९९४
५२२	३०	रंगूजी	गोगुदा	,,	१९५७
५२३	३१	जुहारांजी	,,	,,	१९५७
५२४	३२	चंपाजी	जयपुर	,,	१९५७
५२५	३३	अभांजी	सरदारशहर	,,	१९९६
५२६	३४	चत्रूजी	सुजानगढ	,,	१९४१ गणवाहर
५२७	३५	गोगांजी	लाडनूं	,,	१९९६
५२८	३६	रुकमांजी	नागोर	१९४२	१९६७
५२९	३७	फूलांजी	मंदसोर	,,	१९९६
५३०	३८	कालांजी	रतनगढ	,,	१९६९
५३१	३९	मकतूलांजी	रतनगढ़	,,	१९४८
५३२	४०	जीतांजी	,,	,,	१९७३
५३३	४१	पेपांजी	केलवा	,,	१९९७
५३४	४२	देवकंवरजी	,,	,,	१९५२
५३५	४३	रूपाजी	देशनोक	१९४३	१९७४
५३६	४४	धन्नांजी	गोगुदा	,,	१९७५
५३७	४५	चादांजी	सरदारशहर	,,	१९७५
५३८	४६	गुलाबांजी	,,	,,	१९९६
५३९	४७	हीराजी (छोटा)	गोगुदा	,,	१९८६
५४०	४८	छोगाजी	छापर	१९४४	१९९७
५४१	४९	कानकंवरजी	डूंगरगढ़	,,	१९९३ कालू युग मे
५४२	५०	कालाजी	रतनगढ़	,,	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
५४३	५१	केशरजी	खाटू	,,	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
५४४	५२	मुखांजी	सरदारशहर	,,	१९५५
५४५	५३	छोगाजी	कालू	,,	१९७४
५४६	५४	सेरांजी	सरदारशहर	,,	२००२
५४७	५५	गोरांजी	सुजानगढ़	,,	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
५४८	५६	गंगाजी	केलवा	,,	१९७५

५४९	५७	जुहाराजी	पेटलावद	१९४४	१९९१
५५०	५८	जडावाजी	सिसोदा	,,	१९५७
५५१	५९	रायकवरजी	लाछुड़ा	१९४४	१९७९
५५२	६०	भीखाजी	रीणी	१९४५	१९६८
५५३	६१	मीराजी	सिरसा	१९४५	२००४
५५४	६२	सिणगाराजी	राजाजीकाकरेड़ा	,,	१९७५
५५५	६३	केशरजी	उदयपुर	,,	१९८३
५५६	६४	सिणगारांजी	केलवा	,,	१९४५ गणवाहर
५५७	६५	छोगाजी	वीकानेर	,,	१९६५
५५८	६६	जड़ावाजी	वीदासर	,,	१९४५ गणवाहर
५५९	६७	सुजांजी	चूरू	,,	१९९५
५६०	६८	तीजांजी	राजलदेशर	,,	१९६४ के पूर्व डालिम युग में
५६१	६९	मूलांजी	,,	१९४६	१९५३
५६२	७०	जड़ावाजी	चाड़वास	१९४७	१९९७
५६३	७१	चोथांजी	वीकानेर	,,	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
५६४	७२	तीजांजी (छोटा)	सरदारशहर	,,	१९९७
५६५	७३	जीतांजी	उदयपुर	,,	२००९
५६६	७४	नाथांजी	सरदारशहर	१९४८	१९६०
५६७	७५	आशांजी	राजलदेशर	,,	१९७४
५६८	७६	पेपांजी	पहुना	,,	१९७३
५६९	७७	जीवणांजी	पड़िहारा	,,	१९५७
५७०	७८	चावाजी	रीणी	,,	१९७२
५७१	७९	सिणगारांजी	आमेट	,,	१९८७
५७२	८०	गगाजी	रतनगढ़	,,	१९५६
५७३	८१	चांदकवरजी	,,	,,	१९६३
५७४	८२	पेफांजी	गढवोर	१९४९	१९७३
५७५	८३	छगनांजी	रासीसर	,,	१९८१

पंचमाचार्य श्री मघवागणी के समय दिवंगत साध्वियां

क्रम	नाम		दीक्षा क्रम	दिवगत संवत्
	भारी युग की			
१	साध्वी श्री नदूजी		९२	१९४१
	ऋषिराय युग की			
२	साध्वी श्री मेहरवाजी		१४४	१९४२
३	,,	ऋद्धूजी	१५५	१९४३
४	,,	गोमाजी	१६०	१९४१
५	,,	उमेदाजी	१६३	१९४६
६	,,	चदनांजी	१६४	१९४२
७	,,	नवलांजी	१८२	१९४९
८	,,	चदनांजी	१८८	१९४२
९	,,	सेराजी	१९९	१९४८
१०	,,	सुजानकुवरजी	२००	१९४४
११	,,	रभाजी	२२०	१९४३
१२	,,	रामाजी	२२४	१९४२
१३	,,	सुरताजी	२३३	१९४०
१४	,,	सिरदाराजी	२४७	१९४३
१५	,,	दोलाजी	२४९	१९३९
१६	,,	भानाजी	२६३	१९४२
१७	,,	सुन्दरजी	२६४	१९४३ के वाद
	जय युग की			
१८	साध्वी श्री गुलावाजी		२७१	१९४२
१९	,,	मोताजी	२७६	१९३९
२०	,,	झूमांजी	२७९	१९४१
२१	,,	सिणगारांजी	२८०	१९४३
२२	,,	सेरांजी	२८६	१९४८
२३	,,	अमृताजी	२९२	१९४१
२४	,,	वृद्धाजी	२९५	१९४७
२५	,,	छोटांजी	२९८	१९४८
२६	,,	भामाजी	३०७	१९३९

२७	साध्वी श्री जीऊजी	३१०	१६४२
२८	,, लिछमाजी	३११	१६४४
२६	,, उमेदांजी	३१३	१६४६
३०	,, केसरजी	३१४	१६४६
३१	,, मृघाजी	३१६	१६४७
३२	,, कुन्नणाजी	३१८	१६४१
३३	,, नोहदाजी	३३४	१६४२
३४	,, गुलाबाजी	३३६	१६४८
३५	,, नोजाजी	३४१	१६४५
३६	,, जड़ावांजी	३४७	१६४२
३७	,, हरकुवरजी	३४६	१६४५
३८	,, जड़ावांजी	३५२	१६४८
३६	,, सुरताजी	३५४	१६४३
४०	,, गोरखाजी	३५६	१६४८
४१	,, जेठाजी	३६०	१६४४
४२	,, ऋद्धूजी	३६३	१६४६
४३	,, चूनाजी	३६८	१६४६
४४	,, महतावाजी	३७२	१६४६ मघवा युग मे दिवगत
४५	,, झूमराजी	३७५	१६४१
४६	,, मोताजी	३७६	१६४३
४७	,, राजाजी	३८४	१६४२
४८	,, ऊमांजी	३८८	१६३६
४६	,, छोगाजी	३६०	१६४५
५०	,, किस्तूराजी	३६१	१६४५
५१	,, नानूजी	३६३	१६४३
५२	,, जमुनाजी	३६८	१६४५
५३	,, पन्नांजी	४०२	१६४६
५४	,, जुहारांजी	४०८	१६४४
५५	,, छगनाजी	४१८	१६४१
५६	,, सिरदारांजी	४२७	१६४७
५७	,, कुन्नणाजी	४२६	१६४३
५८	,, बुरजकुवंरजी	४३५	१६४३
५६	,, पाताजी	४३६	१६४२
६०	,, पानकुवरजी	४४३	१६४८

६१	साध्वी श्री पन्नांजी	४५२	१९४३
६२	,, जयकुवरजी	४५५	१९४८
६३	,, रामूजी	४५८	१९४३
६४	,, केसरजी	४५९	१९४४
६५	,, मंगलाजी	४६४	१९४७
६६	,, छोगाजी	४७१	१९४०
६७	,, राजकुवरजी	४८०	१९४३
६८	,, हस्तूजी	४८६	१९४४
६९	,, जेठाजी	४८८	१९४५

समीक्षा

जयाचार्य के युग की निम्नोक्त ३४ साध्वियो मे से ११ साध्वियां मघवागणी के समय दिवगत हुई। २३ साध्विया विद्यमान रही। ३४ साध्वियां :—

क्रम	नाम	दीक्षाक्रम	दिवंगत संवत्
१	साध्वी श्री जसोदांजी	२८३	१९४७ के वाद
२	,, चन्नूजी	२८८	
३	,, नानूजी	३०२	
४	,, जडावांजी	३०४	
५	,, सुवटाजी	३०९	
६	,, सेराजी	३२०	
७	,, तीजाजी	३२४	१९४८ के वाद
८	,, रतनकुंवरजी	३२५	
९	,, चिमनांजी	३५१	
१०	,, नवलाजी	३५३	
११	,, सिणगारांजी	३६६	
१२	,, छोटांजी	३७१	
१३	,, सिणगारांजी	३७६	
१४	,, दाखांजी	३८१	
१५	,, सदाजी	३८६	
१६	,, हीराजी	४०४	१९४९ के वाद
१७	,, वदनांजी	४१०	
१८	,, अमृतांजी	४१३	
१९	,, गोरखांजी	४१९	

२०	साध्वी श्री चंपाजी	४२०	१६४५ के वाद
२१	,, रूपाजी	४२३	
२२	,, उदैकवरजी	४३१	
२३	,, मूजांजी	४४१	
२४	,, समरथकुंवरजी	४४५	
२५	,, मथुरांजी	४४६	
२६	, उदांजी	४५३	
२७	,, रुकमांजी	४६०	१६४६ के वाद
२८	,, शुभाजी	४६१	
२९	,, रतनकुवरजी	४६३	
३०	,, तीजांजी	४६५	
३१	,, नोजांजी	४७४	
३२	,, ऋद्धूजी	४८१	
३३	,, सोनाजी	४८४	१६४४ के वाद
३४	,, इन्द्रूजी	४८६	१६३६ के वाद

मघवा युग मे दिवंगत साध्वियो की सख्या पूर्वोक्त ६६ एवं समीक्षा के द्वारा निर्णीत १२ साध्वियां, दोनो को मिलाने से ८१ संख्या होती है। उसके वाद मघवा युग की दिवंगत साध्वियो के नाम दिये जा रहे हैं।

मघवा युग की

क्रम	नाम	दीक्षाक्रम	दिवंगत संवत्
८२	साध्वी श्री जोधांजी	४६३	१६४७
८३	,, जेठांजी	४६८	१६४५
८४	,, चांदूजी	५००	१६४८
८५	,, पन्नांजी	५०६	१६४६
८६	,, सिरेकुवरजी	५०७	१६४३
८७	,, पेमाजी	५१५	१६४२
८८	,, सुजाजी	५२०	१६४६
८९	,, मकतूलाजी	५३१	१६४८

पंचमाचार्य श्री मघवागणी के समय गणवाहर साध्वियां

क्रम	नाम	दीक्षा क्रम	गणवाहर संवत्
	जय युग की		
१	साध्वी श्री उमेदांजी	४८२	१६४२
२	,, गोरांजी	४६१	१६४३
	मघवा युग की		
३	साध्वी श्री चांदूजी	५१०	१६४३
४	,, चन्नूजी	५२६	१६४१
५	,, सिणगारांजी	५५६	१६४५
६	,, जड़ावांजी	५५८	१६४५

पंचमाचार्य श्री मघवागणी के स्वर्गवास के समय विद्यमान साध्वियां

क्रम	नाम	दीक्षाक्रम	वाद में दिवंगत या गणवाहर संवत्
	ऋषिराय युग की		
१	साध्वी श्री अमृताजी	१०९	१९४३ के वाद १९६४ के पूर्व डालिम युग मे
२	,, पन्नांजी	१२६	१९५९
३	,, मघूजी	१९३	१९५८
४	,, चूनांजी	२१०	१९४९ के वाद १९६४ के पूर्व डालिम युग मे
५	,, अमरूजी	२११	१९४९ माणक युग मे
६	,, कुन्नणाजी	२१२	१९४३ के वाद १९६४ के पूर्व डालिम युग मे
७	,, मूलांजी	२१३	१९४६ के वाद १९६४ के पूर्व डालिम युग मे
८	,, रगू जी	२१५	१९५५
९	,, किस्तूराजी	२२७	१९७५
१०	,, मन्नाजी	२३५	१९४६ के वाद १९६४ के पूर्व डालिम युग मे
११	साध्वी श्री नवलांजी	२४०	१९५४ डालिम युग मे
१२	,, अमरूजी	२४४	१९४६ के वाद १९६४ के पूर्व डालिम युग मे
१३	,, सिरदाराजी	२४६	१९५६
१४	,, कुन्नणाजी	२५९	१९४ के वाद १९६४ के पूर्व डालिम युग मे
१५	,, ऊमाजी	२५७	१९७
१६	,, वगतावरजी	२५९	१९५२
	जय युग की		
१७	साध्वी श्री चंदनांजी	२६९	१९५२
१८	,, जेतांजी	२७७	१९५२

१९	साध्वी श्री	मघूजी	२८१	१९५२
२०	,,	खेमाजी	२८४	१९५३
२१	,,	लालाजी	२९६	१९५३
२२	,,	मानाजी	३१७	१९५२
२३	,,	चूनाजी	३२१	१९६७
२४	,,	वखतावरजी	३२६	१९६३
२५	,,	रायकुवरजी	३२८	१९७२
२६	,,	चपाजी	३३१	१९५२
२७	,,	किस्तूराजी	३३२	१९६२
२८	,,	भूराजी	३३३	१९६९
२९	,,	पारवतांजी	३३५	१९६१
३०	,,	जेताजी	३३७	१९५२
३१	,,	जेठाजी	३४०	१९८१
३२	,,	पन्नाजी	३४२	१९६४
३३	,,	छोटाजी	३४५	१९६०
३४	,,	उदयकुवरजी	३५६	१९६६ कालू युग मे
३५	,,	तीजाजी	३५७	१९७५
३६	,,	गौराजी	३५८	१९५२
३७	,,	वरजूजी	३६१	१९५६
३८	,,	हस्तूजी	३६२	१९८५
३९	,,	रभाजी	३६५	१९५६
४०	,,	लच्छूजी	३६७	१९७४
४१	,,	नानूजी	३६९	१९६३
४२	,,	अमृताजी	३७०	१९६८
४३	,,	सिणगाराजी	३७७	१९५७
४४	,,	भूराजी	३७८	१९६७
४५	,,	मानकवरजी,	३८०	१९५७ और १९६४ के वीच
४६	,,	जडावाजी	३८२	१९७९
४७	,,	मकतूलांजी	३८५	१९६९
४८	,,	चादाजी	३८७	१९७४
४९	,,	हुलासाजी	३९२	१९५७

५०	साध्वी श्री	चांदांजी	३६४	१६५४ माणक युग मे
५१	,,	मगदूजी	३६५	१६५७
५२	,,	वीराजी	३६६	१६७२
५३	,,	लिछमाजी	४०१	१६८४
५४	,,	जडावाजी	४०३	१६६१
५५	,,	फूलाजी (फूलकवरजी)	४०७	१६८४
५६	,,	दोलांजी	४०६	१६६६ कालू युग मे
५७	,,	चंदनाजी	४११	१६६५
५८	,,	मानकुवरजी 'छोटा'	४१२	१६४६ मघवा युग मे दिवगत
५६	,,	चिमनाजी	४१४	१६७५
६०	,,	वगतूजी	४१५	१६५६
६१	,,	चोथाजी	४१७	१६७५
६२	,,	ज्ञानांजी	४२१	१६७४
६३	,,	नानूजी	४२२	१६८४
६४	,,	हरखूजी	४२४	१६६८
६५	,,	मोताजी	४२५	१६६३
६६	,,	कुन्नणाजी	४२६	१६६८
६७	,,	साकरजी	४२८	१६७५
६८	,,	तीजाजी	४३०	१६८६
६६	,,	सुदरजी	४३२	१६८५
७०	,,	कसुम्वाजी	४३४	१६६१
७१	,,	मानकुवरजी	४३७	१६७५
७२	,,	किस्तूरांजी	४३८	१६७०
७३	,,	ऋद्धूजी	४३६	१६८८
७४	,,	गोराजी	४४०	१६६४ के पूर्व डालिम युग मे
७५	,,	चादाजी	४४२	१६६६ कालू युग मे
७६	,,	गगाजी	४४४	१६६३ तुलसी युग मे
७७	,,	फूलाजी	४४७	१६६६
७८	,,	रायकुंवरजी	४४८	१६६५

७६	साध्वी श्री महादेवाजी	४४६	१६७२
८०	,, वखतावरजी	४५०	१६५५
८१	,, किस्तूराजी	४५४	१६७०
८२	,, सिरेकुवरजी	४५६	१६७४
८३	,, जयकुवरजी	४६२	१६६५
८४	,, सरसांजी	४६६	१६५२
८५	,, जीवूजी	४६७	१६५७
८६	,, मोजाजी	४६८	१६६६
८७	,, नदूजी	४६६	१६७४
८८	,, वरजूजी	४७०	१६६७
८६	,, छोटाजी	४७२	१६७६
६०	,, प्राणाजी	४७३	१६६६
६१	,, वख्तावरजी	४७५	१६५८
६२	,, सिरदारांजी	४७६	१६७५
६३	,, मगदूजी	४७७	१६५७
६४	,, चपाजी	४७८	१६८२
६५	,, हीरांजी	४७६	१६७०
६६	,, किस्तूरांजी	४८३	१६६४
६७	,, गीगांजी	४८५	१६८४
६८	,, जड़ावांजी	४८७	२०००
६६	,, शिवकवरजी	४६०	१६६४ के वाद डालिम युग में
१००	,, उमांजी	४६२	१६८५

समीक्षा

मघवागणी के समय दिवगत साध्वियो की सूची के अन्तर्गत (क्रम सख्या ६६के वाद) की गई समीक्षानुसार जय युग की ३४ साध्वियों मे से ११ साध्वियां मघवा युग मे दिवंगत हुई, शेष २३ साध्विया मघवागणी के स्वर्गवास के समय विद्यमान रही। उन २२ को उपर्युक्त १०० के साथ जोड़ने से सख्या १२२ होती है। अव मघवा युग की विद्यमान साध्विया दी जाती है—

क्रम	नाम	दीक्षा क्रम	वाद में दिवंगत या गणवाहर संवत्
	मघवा युग की		
१२३	साध्वी श्री लिछमाजी	४६४	२००१
१२४	,, तीजांजी	४६५	१६६६ कालू युग मे

१२५	साध्वी श्री	नानूजी	४६६	१६८४
१२६	,,	कसुम्बाजी	४६७	१६६०
१२७	,,	कुन्नणाजी	४६६	१६६४ के पूर्व डालिम युग मे
१२८	,,	सिरेकुंवरजी	५०१	१६५७
१२६	,,	पन्नाजी	५०२	१६६४ के पूर्व डालिम युग मे
१३०	,,	नवलाजी	५०३	१६६३ तुलसी युग मे
१३१	,,	फूलाजी	५०४	१६६४ के पूर्व डालिम युग मे
१३२	,,	किस्तूरांजी	५०५	१६७५
१३३	,,	राजाजी	५०८	१६८१
१३४	,,	गुलाबाजी	५०६	१६५८ गणबाहर
१३५	,,	नोजाजी	५११	१६५८
१३६	,,	गोराजी	५१२	१६६६ कालू युग मे
१३७	,,	सुखाजी	५१३	१६७७
१३८	,,	सिणगाराजी	५१४	१६८५
१३६	,,	अणचाजी	५१६	१६५७
१४०	,,	नोजांजी	५१७	१६६४
१४१	,,	मघाजी	५१८	१६६६
१४२	,,	जुहाराजी	५१६	१६७६
१४३	,,	सिणगाराजी	५२१	१६६४
१४४	,,	रगूजी	५२२	१६५७
१४५	,,	जुहारांजी	५२३	१६५७
१४६	,,	चंपाजी	५२४	१६५७
१४७	,,	अभाजी	५२५	१६६६
१४८	,,	गोगाजी	५२७	१६६६
१४६	,,	रूकमांजी	५२८	१६६७
१५०	,,	फूलांजी	५२६	१६६६
१५१	,,	कालाजी	५३०	१६६६
१५२	,,	जीताजी	५३२	१६७३
१५३	,,	पेपांजी	५३३	१६६७

१५४	साध्वी श्री देवकुंवरजी	५३४	१९५२
१५५	,, रूपाजी	५३५	१९७४
१५६	,, धन्नांजी	५३६	१९७५
१५७	,, चांदाजी	५३७	१९७५
१५८	,, गुलाबांजी	५३८	१९९६
१५९	,, हीरांजी (लघु)	५३९	१९८६
१६०	,, छोगाजी	५४०	१९९७
१६१	,, कानकुंवरजी	५४१	१९९३ कालू युग मे
१६२	,, कालाजी	५४२	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
१६३	,, केसरजी	५४३	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
१६४	,, मुखांजी	५४४	१९५५
१६५	,, छोगांजी	५४५	१९७४
१६६	,, सेरांजी	५४६	२००२
१६७	,, गोराजी	५४७	१९६४ के पूर्व डालिम युग मे
१६८	,, गंगाजी	५४८	१९७५
१६९	,, जुहारांजी	५४९	१९९१
१७०	,, जड़ावांजी	५५०	१९५७
१७१	,, रायकवरजी	५५१	१९७९
१७२	,, भीखाजी	५५२	१९६८
१७३	,, मीरांजी	५५३	२००४
१७४	,, सिणगारांजी	५५४	१९७५
१७५	,, केशरजी	५५५	१९८३
१७६	,, छोगांजी	५५७	१९६५
१७७	,, सुजांजी	५५९	१९९५
१७८	,, तीजांजी	५६०	१९६४ के पूर्व डालिम
१७९	,, मूलाजी	५६१	
१८०	,, जड़ावाजी	५६२	
१८१	,, चौथाजी	५६३	

१८२	साध्वी श्री तीजांजी (छोटा)	५६४	१९९७
१८३	,, जीतांजी	५६५	२००९
१८४	,, नाथांजी	५६६	१९६०
१८५	,, आसांजी	५६७	१९७४
१८६	,, पेपांजी	५६८	१९७३
१८७	,, जीवणांजी	५६९	१९५७
१८८	,, चावांजी	५७०	१९७२
१८९	,, सिणगारांजी	५७१	१९८७
१९०	,, गंगाजी	५७२	१९५६
१९१	,, चांदकंवरजी	५७३	१९६३
१९२	,, पेफांजी	५७४	१९७३
१९३	,, छगनांजी	५७५	१९८१